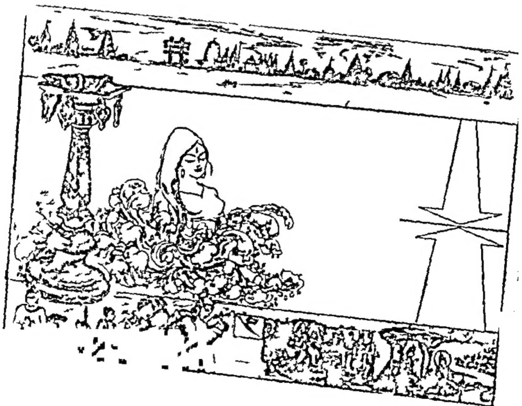
हिन्दी महाकाव्य सिद्धांत और मूल्यांकन





अपोलो पब्लिकेशन
जयपुर–३

हिन्दी महाकाव्य सिद्धांत और मूल्यांकन

देवीप्रसाद गुप्त
एम ए एल एल बी
प्राध्यापक हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर
डूंगर महाविद्यालय
बीकानेर (राजस्थान)



अपोलो पब्लिकेशन
जयपुर-३

हिन्दी
महाकाव्य सिद्धांत
और
मूल्यांकन

देवीप्रसाद गुप्त
एम ए [illegible]
प्राध्यापक, हिन्दी [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

▫ हिन्दी महाकाव्य सिद्धांत और मूल्यांकन
▫ © देवीप्रसाद गुप्त
▫ प्रथम संस्करण
१९६८
▫ मूल्य पच्चीस रुपये
▫ प्रकाशक
अपोला पब्लिकेशन
सवाई मानसिंह हाई वे
जयपुर–३
▫ मुद्रक
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
नरसा न ४
आगरा–४

श्रद्धेय डॉ० माताप्रसाद गुप्त
को
सादर समर्पित

प्रस्तावना

श्री दिनकर ने अर्द्धनारीश्वर में लिखा है कि— विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं। वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सकता है। इस कथन के आलोक में यदि महाकाव्य की महत्ता पर विचार किया जाय तो वह सर्वोपरि काव्यरूप सिद्ध होता है। महाकाव्य की काव्यरूपात्मक सर्वोपरिता का मुख्य आधार उसका शिल्पगत वैशिष्ट्य एवं जीवनदर्शन सम्बन्धी उपलब्धियाँ हैं। वस्तुतः महाकाव्य जातीय जीवन एवं सामाजिक चेतना के आकलन के सांस्कृतिक प्रयास होते हैं क्योंकि उनमें नवीन सामाजिक संरचना का उदात्त संकल्प, राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधि स्वरूप, नवजागरण का महान् उद्घोष, सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा, आध्यात्मिक निष्ठाओं का परिष्कार एवं कलात्मक उत्कर्ष होता है। किन्तु यह चिन्ता का विषय है कि काव्यशास्त्र में महाकाव्यालोचन सम्बन्धी प्रतिमानों के अनिश्चित प्राय होने एवं समालोचकों की बद्धमूल धारणाओं के कारण हिन्दी के अनेक महत्त्वपूर्ण काव्यग्रन्थों को न तो महाकाव्य के रूप में स्वीकृति प्रदान की गयी है और न उनका निश्चित मूल्यांकन किया गया है। हिन्दी के सुधी समीक्षकों में इस बात पर तीव्र मतभेद है कि कौन सी काव्य कृतियाँ महाकाव्य हैं? कौन-सी नहीं?

प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है। पुस्तक की विषय सूची के दो भाग हैं—सिद्धान्त खण्ड और मूल्यांकन खण्ड। सिद्धान्त खण्ड में महाकाव्य की परिभाषा, रूपविधायक तत्त्वों, स्वरूप विकास, सामान्य प्रवृत्तियों एवं सृजन-सम्भावनाओं आदि का विवेचन है। मूल्यांकन-खण्ड में महाकाव्य के तत्त्वगत विकास को रूपायित करने वाली कतिपय महाकाव्य कृतियों का मूल्यांकन है। इनमें भी प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी और कुरुक्षेत्र नामक महाकाव्यों का छात्रोपयोगी महत्त्व दृष्टिगत करके सर्वांगीण मूल्यांकन किया गया है। शेष महाकाव्यों का मूल्यांकन तत्त्व विशेष पर आधृत है।

पुस्तक का विषय विस्तार स्वतन्त्र लेखों के रूप में होने के कारण सम्भव है यत्र-तत्र किसी तथ्य की पुनरावृत्ति हो गयी हो। मेरे कतिपय पूर्व प्रकाशित लेख भी पुस्तक में सम्मिलित हैं। अस्तु पुस्तक की विषय-योजना में अध्ययन क्रम की एकरूपता दो सन्दर्भों में द्रष्टव्य है—प्रथम मूल्यांकन के लिए गृहीत

सभी महाकाव्य पौराणिक विषयों के तथा आधुनिक हैं। दूसरे सभी के मूल्यांकन में मानवतावादी विचारदर्शन के विकास को उद्घाटित किया गया है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य के परिप्रेक्ष्य में सिद्धान्त निरूपण और मूल्यांकन के इस प्रयास में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय विज्ञ पाठक करेंगे। मुझे इतना सन्तोष अवश्य है कि मूल्यांकन विषयक परम्परित सन्दर्भों में रहते हुए भी इस पुस्तक में महाकाव्यालोचन की कुछ नवीन सम्भावनाएं साकार हो सकी हैं।

अन्त में अपनी त्रुटियों के प्रति क्षमायाचना करते हुए माँ भारती के मन्दिर में अपनी श्रम-साधना का यह पुष्प समर्पित करता हूँ।

बीकानेर
१ १ ६८

देवीप्रसाद गुप्त

अनुक्रम

महाकाव्य और महान् काव्य

महाकाव्य और महान् काव्य

काव्य शब्द के पहले महा विशेषण का प्रयोग संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी भाषाओं में एक काव्य रूप के अर्थ को द्योतित करता है जिसे महाकाव्य' कहते हैं। महा विशेषण का बहुल काव्य की महत्ता को व्यक्त करता है। काव्य के संदर्भ में महत्ता का प्रतिपादन दो प्रकार से हो सकता है—एक तो काव्यात्मक उपकरणों की महानता और दूसरे प्रतिपाद्य की अर्थात् कोई रचना काव्य-रचना की भूमि पर महत् होने से महाकाव्य होती है या महत् जीवन चेतना को आत्मसात करके अभिव्यक्त करने से। यद्यपि दोनों दृष्टियों से काव्य महत् बनता है किन्तु महाकाव्य को महाघता प्रदान करने के लिए कलात्मक सौन्दर्य के साथ साथ जीवन दर्शन की विराट् व्यंजना भी अपेक्षित है। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में— इसमें सन्देह नहीं कि महाकाव्य में श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ समाहित होती आवश्यक हैं। और ये उपलब्धियाँ प्रधानतः शृंखलित और अन्तर्योजित प्रतीकों सौन्दर्यबद्ध प्रतिमानों विस्तृत वर्णनों एवं समृद्ध विवरणों के साथ-साथ महाकाव्य के कथानक की सुबद्धता वास्तुमयता (आर्कीटेक्टोनिक) तथा प्रतीकात्मकता को समेट कर चलती हैं जिससे महाकाव्य व्यष्टि मानस का उद्गार न होकर राष्ट्रीय मानस अथवा समष्टि मानस का उद्घोष बन जाता है। परन्तु यह स्पष्ट है कि काव्य की ये उदात्त भूमियाँ मात्र ही महाकाव्य को महाघता नहीं देती। उसमें अभिव्यक्त जीवन का घनत्व प्रतीकत्व या विराटत्व ही महाकाव्य का मूल संवेदन बन सकता है।[1]

अस्तु! काव्य की महत्ता काव्यात्मक गुणों पर आधारित है। महाकाव्य की महत्ता के लिए काव्याचार्यों ने शास्त्रीय गुणों का विधान भी किया है। ये काव्य शास्त्रीय लक्षण (गुण) परवर्ती काल के समीक्षकों के लिए महाकाव्यालोचन के मानदण्ड बन गये। काव्यकर्त्ताओं ने अपनी रचनाओं में इन लक्षणों का निर्वाह कर महाकवि की उपाधि धारण की। किन्तु सर्ग विधान छन्द-योजना

---

[1] सरस्वती संवाद, महाकाव्य विशेषांक वर्ष ८, अंक १ अगस्त १९५९

धीरोदात्त नायक चतुवर्ग फलप्राप्ति रसनिष्पत्ति आदि जो महाकाव्य रचना के अनिवाय लक्षण माने जाते हैं किसी भी काव्य के लक्षण हो सकते हैं। सत्य तो यह है कि ये लक्षण महाकाव्य के रूढ रूप के निर्धारण में भले ही सक्षम हों किन्तु अपने आप में काव्य की महानता के निर्धारक नहीं बन सकते। उदाहरणार्थ छन्दबन्ध से रहित मुक्तक कविता भी महान् काव्य हो सकती है। वर्तमान युग के अनेक प्रबन्ध काव्यों में प्राचीन काव्यों के गौणनायकों और उपेक्षित पात्रों (जैसे रावण एकलव्य कर्ण उर्मिला लक्ष्मण व राजाओं) पर भी उत्कृष्ट कोटि की काव्य रचना हुई है। आज के जनतन्त्रीय एवं मानवतावादी विचारणा के युग में कुलीन नायक की श्रेष्ठता की कल्पना निराधार सिद्ध हो चुकी है। सर्ग विधान में महाकाव्य के विशाल कथानक का सुन्दर संयोजन हो सकता है किन्तु महानता की दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं। यही बात महाकाव्य की प्राचीन परिभाषाओं में उल्लिखित अन्य तथाकथित लक्षणों के बारे में भी चरितार्थ होती है। हाँ रसपरिपाक निश्चय ही महाकाव्य की महानता के अनुरूप है। महाकाव्य के विशाल कलेवर में रसपरिपाक सौंदर्य बोध व्यापक चरित्र सृष्टि अभिव्यंजना एवं रचना शिल्प आदि सभी दृष्टियों से अनिवार्य है। महान् काव्य की रचना के लिए महाकाव्य की मान्यताएँ आवश्यक नहीं हैं। अतः काव्य की महत्ता की दृष्टि से दोनों में तात्त्विक अन्तर है।

महाकाव्य की रचना एक प्रबन्ध काव्य के रूप में होती है। काव्य रूप की दृष्टि से यह आवश्यक नहीं कि महान् काव्य प्रबन्धात्मक हो वह मुक्तक भी हो सकता है।

महाकाव्य में जीवन का सर्वांगीण चित्रण अंकित होता है। महाकाव्य की रचना युग जीवन के संघर्ष को व्यापक रूप में चित्रित करने के निमित्त होती है जबकि महान् काव्य में हमारे जीवन का कोई भी पूर्ण या अपूर्ण रूप ग्रहण किया जा सकता है। महान काव्य जीवन की खण्ड अभिव्यक्ति करके भी महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

महाकाव्य का उद्देश्य जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आकलन का सांस्कृतिक निरूपण करना होता है। किन्तु महान् काव्य के लिए समाज या जातीय जीवन का चित्रण करना अनिवार्य या अपेक्षित नहीं।

सामाजिक एवं जातीय जीवादर्शों की प्रतिष्ठा का आग्रह होने के कारण महाकाव्य में प्रतिपादित जीवन दर्शन आदर्शवादी ही होता है। महान् काव्य आदर्श की अपेक्षा यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति पर बल देता है।

महाकाव्यकार जीवन मूल्यों की व्याख्या परम्परा-आधृत सिद्धान्तों पर ही प्राय करता है जबकि महान कवि युग-जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति को ही अपना ध्येय मानता है।

शिल्प विधान की दृष्टि से विचार करें तो महान् काव्य को हम पूर्णत कलात्मक और रसात्मक ही पायेंगे। महाकाव्य में रसात्मकता और कलात्मकता के साथ-साथ रचना विधि के अन्य सब तत्त्वों पर भी बल दिया जाता है। महाकाव्य अन्तत कलाकाव्य होता है उसमें कथानक की योजना चरित्र-सृष्टि भाषा शैली का समुन्नत रूप एवं छन्द अलंकार विधान प्रकृति चित्रण आदि सभी आवश्यक है। महान काव्य में इन सबकी अपेक्षा नहीं की जाती है। हाँ भाषा का परिनिष्ठित रूप और अलंकरण महान् काव्य में भी आवश्यक होते हैं। इसके विपरीत लोक महाकाव्यों में रचना सरल सुबोध भाषा शैली में भी होती है। इस दृष्टि से रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि (महान् काव्य) और लोक महाकाव्य आल्हखण्ड द्रष्टव्य है।

जहाँ तक महाकाव्य और महान काव्य की पाठकों पर प्रभाव प्रतिक्रिया का सम्बन्ध है निश्चय ही महान काव्य अधिक प्रभावपूर्ण एवं आह्लादकारी है। क्योंकि उसमें भाव-गाम्भीर्य और कलात्मक आकर्षण होता है। महाकाव्य से पाठक तभी प्रभावित होता है जब वह उस गुरु गम्भीर काव्य रचना (महाकाव्य) का धैर्यपूर्वक आद्यान्त विधिवत अध्ययन अनुशीलन करे और उसमें प्रतिपादित जीवन दर्शन की महत्ता स्वीकार करे।

इस प्रकार तत्त्वत महाकाव्य और महान काव्य में अन्तर स्पष्टत किया जा सकता है। वस्तुत महाकाव्य एक निश्चित नियमबद्ध काव्य रूप है। सृजन प्रक्रिया के लिए निर्मित नियम महाकाव्य को काव्यरूपों में निश्चय ही सर्वोपरि सिद्ध करते हैं। महाकाव्य लेखन गुरुतर कार्य है। महाकाव्य की रचना में शास्त्रीय नियमों का अनुपालन कोरी रूढ़िवादिता ही नहीं कहा जा सकता है। नियमों के सफल निर्वाह से ही तो महाकाव्य का रूप रक्षित है और उसकी सुदीर्घ परम्परा का सहज सन्धान किया जा सकता है। महाकाव्य की महत्ता के कारण कलात्मक उपकरण ही नहीं अपितु व्यापक जन जीवन समाज एवं जातीय संस्कृति का चित्रण तथा उनकी सृजन प्रेरणा भी है। इसके अतिरिक्त संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा प्रस्तावित मान्यताओं पर भी आज के महाकाव्यकार का आग्रह नहीं है। वर्तमान युग के अधिकांश महाकाव्य युग जीवन की चेतना के प्रतीक है। आधुनिक युग के महाकाव्यों की महानतम उपलब्धि उनका मानवतावादी दृष्टिकोण है। हिन्दी के महाकाव्यों को वाह्याकार

भी काव्यशास्त्रीय नियमों के ही सर्वथा अनुरूप नहीं है। उदाहरणार्थ तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' और प्रसाद-कृत 'कामायनी' द्रष्टव्य हैं। इन महाकाव्यों ने शास्त्रीय नियमों को ही नहीं, महाकाव्य के गुणों को भी आत्मसात् कर लिया है। हिन्दी के ये गौरव ग्रन्थ एक साथ ही महाकाव्य और महान् काव्य हैं। महाकाव्य अपनी महार्घता के कारण ही लोक और शास्त्र दोनों द्वारा सम्मान्य है।

महाकाव्य की परिभाषा

महाकाव्य की परिभाषा

महाकाव्य की कोई सार्वकालीन या सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है क्योंकि विभिन्न युगों में इसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। महाकाव्य युगीन जीवन चेतना को आत्मसात करने के कारण व्यापक अर्थ में प्रगतिशील रचना है। महाकाव्य-सृजन एक सांस्कृतिक प्रयास है। जिस प्रकार संस्कृति का मूल रूप अविच्छिन्न रहते हुए भी उसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहते हैं उसी प्रकार महाकाव्य की काव्यरूपात्मक प्रभुता के अखण्ड होते हुए भी उसकी प्रवृत्तियों और परम्पराओं में विकास क्रम निरन्तर गतिमान रहता है। महाकाव्य व्यष्टि जीवन की अभिव्यक्ति न होकर जातीय जीवन का चित्र होता है जिसमें सामाजिक-जीवन की सामयिक परिस्थितियों और विश्व-जीवन की प्रचलित प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्बन स्वतः ही हो जाता है। श्री दिनकर ने एक स्थान पर लिखा है कि— 'विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं। वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।'[1] अस्तु महाकाव्य को प्रगतिशील रचनाओं की भाँति किसी रूढ़ परिभाषा में बाँधा नहीं जा सकता। किन्तु महाकाव्य के तात्त्विक विवेचन एवं विकास क्रम को समझने के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता होती है। इस विश्लेषण के लिए प्रथम आवश्यकता है—परिभाषा। जिसके अभाव में रचना का स्वरूप सम्बन्धी बोध नितान्त अनिश्चित प्राय रहता है।

पाश्चात्य एवं पौर्वात्य देशों के साहित्य शास्त्रियों ने अद्यावधि महाकाव्य की जो परिभाषाएँ निश्चित की हैं उनका आदर्श उनके समय से पूर्व रचित महाकाव्य रहे हैं। जैसे अरस्तू के लिए 'इलियड' और 'ओडेसी' तथा भारतीय काव्याचार्यों के लिए 'महाभारत' और 'रामायण'। किन्तु प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित परिभाषाएँ आधुनिक युग के महाकाव्यों पर लागू नहीं होतीं है क्योंकि इनका रूप प्रवृत्ति और परम्परा सभी दृष्टियों से महाकाव्य रचना

---

[1] रामधारीसिंह दिनकर, अर्धनारीश्वर, पृ० ४६

परिवतनशीलता रही है जिम विकास की सत्ता इतना अधिक युक्तिसगत होगा। इस सम्बध म डा० शम्भूनाथसिंह का मत है कि— कौन-सा ग्रथ महाकाव्य है और कौन नहा इस तक के मान्य महाकाव्य के लक्षणा के आधार पर इसका निणय करना कठिन है। इसका सबसे सुगम उपाय तो यह है कि प्रत्येक देश या समाज म जिस काव्य का परम्परा स महाकाव्य माना जाता है या वतमान काल के जो काव्य सामान्यत महाकाव्य मान लिय जात है उन्ह सामने रखकर महाकाव्य की परिभाषा निर्धारित की जाय।[२] किन्तु डा० सिंह ने स्वय अपने शोधप्रबध म इस दृष्टिकोण का पूणत अनुपालन नहीं किया है। उन्होने वतमान युग के मान्य महाकाव्यों (जैसे साकेत कृष्णायन पावती प्रियप्रवास आदि) को महाकाव्य नहा माना है।[3] जबकि परम्परा स जिसे सामान्य काव्य का सज्ञा प्राप्त है उस आल्हखण्ड को उन्होने महाकाव्य माना है।[४] वास्तव म डा० सिंह का उपयुक्त मान्यता को महाकाव्य की कसौटी नहा माना जा सकता। हाँ एक सुझाव के रूप म ठीक है। इसके अतिरिक्त परम्परा भी किसी काव्य ग्रथ को महाकाव्य की मान्यता उसके स्वरूप आकार प्रकार प्रवृत्ति उद्देश्य तथा प्रसिद्धि आदि के आधार पर देता है। अत इस दृष्टि स भी किसी रचना को महाकाव्य का सज्ञा देने के लिए सामान्य काव्यशास्त्रीय लक्षणा का निर्वाह या निधारण करना अनिवाय हो जाता है। महाकाव्य की परिभाषा के निश्चय स पूव भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानो के एतद्विषयक मतो की विवेचना आवश्यक है।

भारतीय मत

सस्कृत काव्यशास्त्र म आचाय भामह के काव्यालकार नामक ग्रन्थ म महाकाव्य की परिभाषा दी गयी है। उन्होने काव्य के पाच भेद—सगबध अभिनयाथ आख्यायिका कथा और अनिबध—बताते हुए सगबध रचना को ही महाकाव्य कहा है। आचाय भामह ने अपनी परिभाषा म महाकाव्य के व्यापक रूप का समाहार करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार महाकाव्य सगबद्ध रचना है जिसका आकार बडा होना चाहिए। उसकी कथा का आधार महान् चरित्र होते है। अलकारयुक्त अग्राम्य (शिष्ट) भाषा का प्रयोग होता है। उसम राजदरबार दूत आक्रमण सधि र युद्ध आदि का विस्तृत वणन होना चाहिए। उसम नाटक की पाचो सन्धियो के साथ-साथ अति व्याख्या

---

२ डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४३

3 वही पृ ६६८

४ वही पृ० ३६७ ६८

नहीं होनी चाहिए। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का विधान होना चाहिए। उसमें नायक का अभ्युदय होना है किन्तु अन्य पात्र का उत्कर्ष दिखाने के लिए नायक का वध नहीं किया जाता है।[4]

आचार्य दण्डी ने महाकाव्य का विवेचन करते समय भामह द्वारा कही गयी सभी बातों को अपनी परिभाषा में समेटा है किन्तु कुछ परिवर्तन भी किये हैं। उन्होंने महाकाव्य के बहिरंग सम्बन्धी नियमों पर भी बल दिया है जैसे वर्णन वैविध्य, अलंकृति, चमत्कार आदि।[5] दण्डी की परिभाषा का परवर्ती काव्याचार्यों ने भी अनुकरण किया। उदाहरणार्थ रुद्रट[6] और हेमचन्द्र

---

४ सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्॥
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया॥

—भामह काव्यालंकार, परि० १ १९–२२

५ सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि॥
अलङ्कृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलङ्कृति॥
न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति।
यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विदः॥

—दण्डी काव्यादर्श परि० १ १४–२०

६ तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंशप्रशंसां च॥
तत्र त्रिवर्गसक्तं समुद्धशक्तिं च सर्वगुणम्।
रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत्॥

की परिभाषाओं में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तृत विवरण होते हुए भी उन्हीं का पुनरावृत्ति है। रुद्रट ने महाकाव्य के विषय में महदुद्देश्य महच्चरित्र महती घटना और समग्र जीवन का रसात्मक चित्रण आदि चार प्रमुख लक्षणों का निर्देश करके अपने दृष्टिकोण की व्यापकता और मौलिकता का परिचय दिया है। हेमचन्द्र ने महाकाव्य का विवेचन करते समय प्राकृत तथा अपभ्रंश के महाकाव्यों को अपने समक्ष रखा था।[८] कविराज विश्वनाथ ने महाकाव्य की बड़ी व्यापक और स्पष्ट परिभाषा दी है। उनका समय ईसा की १४वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध था अतः अपने साहित्य-दर्पण नामक ग्रंथ में उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट समस्त लक्षणों का समाहार कर लिया है। उनकी महाकाव्य विषयक परिभाषा में निम्नांकित तथ्य द्रष्टव्य हैं

१ कथानक की ऐतिहासिकता।

२ कथावस्तु का सर्गों में विभाजन।

विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृत्तं च।
तस्य कदाचित्प्रभवत् शरदादीन् वर्णयेत्समसमयम्॥
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि साधयिष्यतस्तस्य।
कुर्यादविकलमतं प्रतिपक्षं वर्णयेद् गुणिनम्॥
स्वचरात्तद् दूताद्वा कुतोऽपि वा वर्णितानि कार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञः क्षोभं क्रोधोद्धचित्तगिराम्॥
सम्मन्त्र्यसममं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः।
न दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम्॥
अथ नायकं प्रयाणं नागरिकाक्षोभजनपदादिजम्।
अटवीं काननं सरमाश्रमं जलधिं द्वीपं भुवनानि॥
स्कन्धावारनिवेशं क्रीडां यूनां यथायथं तेषु।
अस्तमयं सन्ध्यां सतमसमथोदयं शशिनः॥
रजनीं च तत्र यूनां समाजसंगीतपानशृंगारान्।
इति वर्णयेत्प्रसंगात्कथां च भूयो निबध्नीयात्॥
प्रतिनायकमपि तद्वदभिमुखमभ्युपयमाणमायान्तम्।
अभिदध्यात्कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि॥
याद्धव्यं प्रातरिति प्रबन्धं मधुपीति निशि कलत्रस्य।
स्ववधं विशंकमाना सन्देशं दापयेत्सुभटान्॥
सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरभयोः।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते॥
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तरप्रकरणानि कुर्वीत।
सन्धीनपि संश्लिष्टांस्तेषामन्योन्यसम्बन्धात्॥

—रुद्रट काव्यालंकार अध्याय १६ ७ १९

[८] हेमचन्द्र काव्यानुशासन अध्याय ८ ६

३ नाटकीय संधियों का निर्वाह।

४ नायक का धीरोदात्त गुणों से युक्त एवं उच्चकुलीन होना। एक वंश के एकाधिक राजा भी नायक हो सकते हैं।

५ शृंगार, वीर और शान्त रसों में से एक की प्रमुखता एवं अन्य रसों का सहायक होना।

६ चतुर्वर्ग फल प्राप्ति (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)।

७ सर्ग संख्या आठ से अधिक तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन के नियम का अनुपालन।

८ काव्यारम्भ में नमस्कार, मंगलाचरण, आशीर्वचन आदि।

९ सज्जन स्तुति, दुर्जन निन्दा।

१० सन्ध्या, सूर्य, रजनी, प्रदोष, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, सागर, संभोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, पुर, रण, यात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि का सांगोपांग वर्णन होना।

११ महाकाव्य का नामकरण कवि, कथा अथवा नायक पर आधारित होना। सर्गों का नाम कथा के आधार पर होना चाहिए।

---

[१] सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा॥
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः॥
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा॥
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः॥

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, ३१५-२५

कविराज विश्वनाथ की उपर्युक्त परिभाषा व्यापक अवश्य है किन्तु परिभाषा में मौलिकता की अपेक्षा सङ्कलन की प्रवृत्ति प्रधान है । उन्होंने दण्डी की महाकाव्य विषयक मान्यताओं को ही समसामयिक महाकाव्यों की प्रचलित रूढ़ियों के आधार पर सुनियोजित करने का प्रयास किया है । आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा का परवर्ती महाकाव्यकारों द्वारा बहुमान हुआ । कवियों ने महाकवि बनने तथा अपने काव्य को महाकाव्य की संज्ञा से सम्बोधित करने के लिए विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों का निर्वाह प्रारम्भ कर दिया । आज (बीसवीं शताब्दी) तक के महाकाव्यों में साहित्य-दर्पणकार द्वारा दिये गये लक्षणों का निर्वाह होता है । हिन्दी महाकाव्य विषयक अधिकांश समालोचनाओं में इन्हीं लक्षणों को आधारमान के रूप में स्वीकार भी किया गया है । किन्तु यह सर्वथा उपयुक्त नहीं है क्योंकि अधिकांश महत्वपूर्ण हिन्दी साहित्य के विकास का मूल स्रोत प्राकृत अपभ्रंश साहित्य था । साहित्य शास्त्र के क्षेत्र में हिन्दी के आलोचकों ने संस्कृत साहित्यशास्त्र का अनुसरण किया है । इस सम्बन्ध में डा० शम्भूनाथसिंह का यह कथन उल्लेखनीय है कि— यह हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य रहा कि यद्यपि उसके अधिकांश मूल्यवान साहित्य का मूल स्रोत प्रायः प्राकृत अपभ्रंश का साहित्य था पर उसका साहित्य शास्त्र प्रारम्भ से ही संस्कृत साहित्यशास्त्र का अन्धानुकरण करता रहा है । इसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव पड़ा ही नहीं है । बहुत अधिक पड़ा है पर उसका सहज विकास संस्कृत की ओर से नहीं प्राकृत-अपभ्रंश की ओर से हुआ है । अतः हिन्दी के काव्यरूपों का विवेचन प्राकृत अपभ्रंश के आधार पर विशेष रूप से होना चाहिए केवल संस्कृत के अलंकारशास्त्रों के आधार पर नहीं । महाकाव्य की जो परिभाषा संस्कृत के आचार्यों ने दी है वह मूलतः संस्कृत के महाकाव्यों को देखकर बनायी गयी है । यह बात दूसरी है कि किसी किसी ने प्राकृत अपभ्रंश के महाकाव्यों की कुछ ऊपरी बातों की चर्चा कर दी है ।[1] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृत आचार्यों द्वारा दिये गये महाकाव्य विषयक लक्षणों का प्रमुख आधार उनके युग में प्रचलित महाकाव्य थे । संस्कृत आचार्यों की महाकाव्य सम्बन्धी परिभाषाओं में महाकाव्य के बाह्य रूप पर विशेष बल दिया गया है । यद्यपि उनके द्वारा परिभाषित लक्षणों का निर्वाह आज के महाकाव्यकार भी अपनी कृतियों में कर रहे हैं किन्तु अधिकांश उपेक्षित प्रायः हो गये हैं । उदाहरणार्थ

---

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ५६

मंगलाचरण, उच्चकुलीन नायक की परिकल्पना, सर्ग संख्या, सर्गान्त छन्द परिवर्तन आदि नियमों का अनुपालन आधुनिक युग के हिन्दी महाकाव्यों में नहीं हुआ है।

पाश्चात्य मत

पाश्चात्य साहित्य शास्त्र में महाकाव्य को एपिक (Epic) कहा गया है। 'एपिक' शब्द एपास (Epos) से बना है जिसका अर्थ है—शब्द। कालान्तर में एपास का प्रयोग 'गीत' के लिए होने लगा और अन्ततः यह शब्द वीर काव्य के लिए प्रयुक्त हुआ।

संसार के प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य का प्रारम्भिक युग वीर युग रहा है। इस युग के साहित्य में वीरगाथाओं का सृजन हुआ है। इन वीरगाथाओं में वीरों के अदम्य साहस, पराक्रम, शक्ति एवं शौर्य की प्रशंसा की गयी है। वीर युग संघर्ष और युद्ध का काल था जिसमें युद्धों का आयोजन उत्सवों की भाँति होता था। इसी काल में महाकाव्य का बीज वपन प्रारम्भ होता है। इन्हीं वीर गाथाओं का विकास वीर-स्तुतियों (प्रशस्तियों) में हुआ। इन्हीं में क्रमशः के अनुरूप कलात्मक और विकसनशील (Epic of Art and Epic of Growth) महाकाव्यों का विकास हुआ। महाकाव्य के स्वरूप विकास के अध्ययन से भी यही बात सही प्रतीत होती है कि वीर-काव्यों का विकास [illegible] के अनुरूप महाकाव्यों में हुआ। विश्व के सभी आरम्भिक महाकाव्यों में वीर भावना का ही चित्रण मिलता है। डा० शम्भूनाथसिंह ने यूरोपीय महाकाव्यों के विकास की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार— 'पहली अवस्था वीर भावना की, दूसरी शास्त्रीय धार्मिक और नैतिक भावना की, तीसरी रोमांचक भावना की और चौथी स्वच्छन्दता वादी भावना की। पहली अवस्था के महाकवि होमर, दूसरी के वर्जिल, दान्ते, कमोस, मिल्टन आदि, तीसरी के स्पेन्सर, एरियास्टो, टासो आदि और चौथी के गटे, टेनीसन, ब्राउनिंग, विक्टर ह्यूगो, हार्डी आदि।'[11] ला बुक आव एपिक की भूमिका में तो महाकाव्य की परिभाषा ही इस तथ्य को दृष्टिगत करके की गयी है— 'एपिक प्रधान रूप से उस वीर रस प्रधान कथात्मक काव्य का नाम है जिसमें श्रेष्ठ काव्यों के सभी गुण हों जैसे सुगठन और संयोग वियोग का चित्रण तथा रीति तत्त्वों और कथा-तत्त्वों का मिश्रण आदि हों, जिसमें स्वाभाविक जीवन के मनोहारी चित्र और ध्यान

---

[11] हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ७०

प्रतिपादन वर्णित हो और जिसमें सार तत्वों का प्रकृत समन्वय इस कुशलता से किया गया हो कि वह रचना सदा के लिए अमर हो जाय।[12] अस्तु स्पष्ट है कि पाश्चात्य साहित्यशास्त्रियों ने महाकाव्य का स्वरूप निर्धारण करते समय बाह्य काव्यों को लक्षीभूत किया था।

पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तु ने महाकाव्य का विवेचन किया है। उनके विवेचन का आधार 'इलियड' और 'ओडेसी' नामक महाकाव्य है। 'पोइटिक्स' नामक ग्रन्थ में महाकाव्य का जो विवेचन किया गया है, यद्यपि इस विवेचन के आधार-ग्रन्थ 'इलियड' और 'ओडेसी' जैसे विकसनशील महाकाव्य ही प्रतीत होते हैं किन्तु वे लक्षण किसी सीमा तक अलंकृत महाकाव्यों पर भी लागू होते हैं। अरस्तु द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों की व्यापकता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि पाश्चात्य महाकाव्याचार्यों में उनमें से अधिकांश लक्षण आज भी मान्य हैं। अरस्तु के महाकाव्य विषयक विवेचन का सारांश इस प्रकार है

१ महाकाव्य भी काव्य की भांति किसी पूर्ण, गम्भीर और उन्नत कार्य व्यापार की अनुकृति होती है।

२ महाकाव्य कथात्मक काव्य है जिसका कथानक ऐतिहासिक हो सकता है। महाकाव्य के कथानक में गुरु गम्भीर संयोजना होती है। कथानक में अतिप्राकृत तथा अलौकिक तत्त्वों[13] का मिश्रण तथा असम्भव बातों का वर्णन रहता है।[14] महाकाव्य का कथानक नाटक की भाँति अन्वितिपूर्ण होना चाहिए यद्यपि नाटक से महाकाव्य के कथानक का आकार बड़ा होता है और बड़ा

---

[12] विदेशों के महाकाव्य, अनुवादक गोपीकृष्ण गोपेश भूमिका पृ० १३

[13] The surprising is necessary in tragedy but the epic poem

I A Moxon

[14] The poet should prefer impossibilities which appear pro

kind or if he does it it should be exterior to the action itself —*Ibid* p 50

होना स्वाभाविक है।[१४] कथानक में आदि, मध्य और अन्त होना चाहिए।

३ महाकाव्य में आरम्भ से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। यह छन्द षट्पदी (hexametre) है। वीरकाव्यों में इस छन्द का व्यवहार उपयुक्त भी है।

४ त्रासदी (tragedy) और महाकाव्य की तुलना करते हुए पात्रों के बारे में अरस्तू ने लिखा है कि जहाँ तक शब्दों के माध्यम से महान् चरित्रों और उनके कार्यों के अनुकरण का सम्बन्ध है महाकाव्य और त्रासदी में समानता पायी जाती है। अर्थात् पात्र महान होने चाहिए।[१५]

५ महाकाव्य में जीवन की सम्पूर्णता का चित्रण होता है। अतः महाकाव्य के कवि को अपनी सशक्त कल्पना द्वारा जीवन के विविध व्यापारों का वर्णन करना चाहिए।

६ महाकाव्य की भाषा का चयन सुन्दर होना चाहिए। महाकाव्य चाहे सरल हो या जटिल किन्तु भावनाओं को साकार करने की शक्ति भाषा में अवश्य होनी चाहिए।

७ अरस्तू की मान्यता थी कि काव्य का लक्ष्य मुख्यतः अनुकृति द्वारा आनन्द की उपलब्धि कराना है। अतः महाकाव्य का भी यही लक्ष्य होना चाहिए।

अरस्तू के अतिरिक्त महाकाव्य के सम्बन्ध में अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भी विचार किया है। फ्रेंच विद्वान ला बस्सु (Le Bassu) के अनुसार—महाकाव्य प्राचीन घटनाओं का छन्दोबद्ध रूपक है।[१७]

लार्ड केम्स के अनुसार—'महाकाव्य वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में किया गया वर्णन है।[१८]

---

[१४] But the epic imitation being narrative admits of many such simultaneous incidents properly related to the subject which swell the poem to a considerable size —*Ibid* p 48

[१५] Epic poetry agrees so far with tragic as it is imitation of great characters and actions by means of words —*Ibid* p 13

[१७] Le Bassu defined epic as 'a composition in verse intended to form the manners by instructions disguised under the allegories of an important action —Quoted by M Dixon *English Epic and Heroic Poetry* p 2

[१८] As to the general taste there is a little reason to doubt that a work where heroic actions are related in an elevated style will without further requisite be deemed an epic poem' —*Ibid*, p 18

हाब्स ने कथात्मक कविता को महाकाव्य कहा है।[१९] इन सभी परिभाषाओं में महाकाव्य के बाह्य स्वरूप पर ही अधिक विचार किया गया है।

वर्तमान काल में भी अंग्रेजी के समालोचकों ने महाकाव्य का स्वरूप विवेचन किया है। सुप्रसिद्ध समालोचक बावरा ने महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है— सर्वसम्मति से महाकाव्य वह कथात्मक काव्य रूप है जिसका आकार बड़ा होता है। जिसमें महत्त्वपूर्ण और गरिमायुक्त घटनाओं का वर्णन होता है और जिसमें कुछ चरित्रों की क्रियाशील जीवन-कथा होती है। उसके पढ़ने के बाद हमें विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है क्योंकि उसकी घटनाएं और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महानता गौरव और उपलब्धियों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न करते है।[२] इनकी परिभाषा में महाकाव्य की आन्तरिक व्याख्या बनी स्पष्ट हुई है किन्तु बाह्याकार के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं है। एवरक्राम्बी की महाकाव्य विषयक परिभाषा इस प्रकार है— बृहद् आकार के कारण ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं बन सकता है। महाकाव्य की शैली ही उसे महाकाव्य बना सकती है। और वह शैली कवि की कल्पना विचारधारा तथा उसकी अभिव्यक्ति से जुड़ी रहती है। इस शैली के कारण हम उस लोक में पहुँचा देते हैं जहाँ कुछ भी महत्त्वहीन और असारगर्भित नहीं रह जाता है। महाकाव्य के भीतर एक पुष्ट स्पष्ट और प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसकी गति का आद्यान्त संचालन करता है।[२१]

---

[१९] The heroic poem narrative is called an epic said Hobbes the heroic poem dramatic is tragedy —*Ibid* p 22

[२] An epic poem is by common consent a narrative of some length and deals with events which have a certain grandeur and importance and come from a life of action especially of violent action such as war It gives a special pleasure because its events and persons enhance our belief in the worth of human achievement and in the dignity and nobility of man —C M Bowra *From Virgil to Milton* p 1

[२१] What epic quality detached from epic proper do these poems possess them apart from the mere fact that they take up great many pages? It is a simple question of their style—the style of their conception and the style of their writings the whole style of their imagination in fact They take us

महाकाव्य के सम्बन्ध में प्रो॰ टिलीयार्ड ने भी विस्तार से विचार किया है। उनका मत है कि हमारे पास मूल्यांकन का कोई निश्चित मानदण्ड नहीं है कि अमुक रचना महाकाव्यात्मक प्रभाव से युक्त है या नहीं।[२२] महाकाव्य की कुछ अनिवार्य विशेषताएँ ही होती हैं जिनके आधार पर उनका निर्णय किया जा सकता है। उन्होंने महाकाव्य के लिए जिन आवश्यकताओं का उल्लेख किया है वे संक्षेप में इस प्रकार हैं

१ महाकाव्य उत्तम गुणों से युक्त गम्भीर रचना है।[२३]

२ महाकाव्य व्यापक विविधो मुखी और सर्वांगीण जीवन का चित्रक होना चाहिए।[२४]

३ महाकाव्य की तीसरी आवश्यकता व्यापक मानवीय विश्वासों और भावनाओं का सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप चित्रण होना चाहिए।[२५]

४ महाकाव्य की चौथी आवश्यकता यह है कि उसमें समसामयिक जीवन तथा जनसमूह की भावनाओं तथा उद्गारों को अभिव्यक्ति देने की अमोघ शक्ति होनी चाहिए।[२६]

२२ We donot find any principle to guide us in deciding whether this or that work does or does not give the epic impression —E M W Tillyard *The English Epic and its Background* p 3 (London 1954)

२३ The first Epic requirement is the simple one of high quality and of high seriousness —*Ibid* p 5

२४ The second Epic requirement can be roughed out by vague words like amplitude breadth inclusiveness and so on as (Aristotle directs us to greater amplitude in the epic that ability to deal with more sides of life which differentiate it from tragic drama) —*Ibid* p 6

२५ The third Epic requirement has been hinted already though what I said about fortuitous concatenations —*Ibid* p 6

प्रो॰ टिलीयार्ड ने इस मन्तव्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है

This exercise of will and belief in it (*Paradise Lost*) which are a corollary of our third Epic requirement help to associate epic poetry with the largest human movements and solidest human institutions In creating what we call civilization the sheer human will has had a major part

२६ 'The fourth Epic requirement can be called choric The Epic must express the feeling of a large group of people living in or near his own time The notion that Epic is primarily patriotic is an unduly narrowed version of this requirement

५ सच्चे अर्थों में महाकाव्य कही जाने वाली रचना में वीर भावना की प्रभावाभिव्यक्ति होनी चाहिए।[२७]

६ जहाँ तक महाकाव्य के विषय विधान का सम्बन्ध है महाकाव्यकार का जीवन की सर्वांगीणता का व्यापक अनुभव और विस्तृत ज्ञान होना चाहिए।[२८]

इस प्रकार प्रो० टिलीयार्ड ने अपने महाकाव्य विषयक विवेचन में महाकाव्य के बाह्य एवं आभ्यन्तरिक दोनों पक्षों पर बल दिया है। उनकी परिभाषा आज के महाकाव्यों पर भी पूर्णत लागू होती है। आज का महाकाव्यकार प्राचीन रूढ़ और काव्यशास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह आग्रहपूर्वक नहीं करता है। प्रो० टिलीयार्ड के विवेचन में काव्य के उदात्त गुणों और सर्वांगीण जीवन के चित्रण पर विशेष बल दिया गया है जो युगानुरूप है। समष्टि रूप से विभिन्न पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य विषयक जो मत प्रकट किये हैं उनका सारांश इस प्रकार है

१ महाकाव्य वीरकाव्य (Heroic Poetry) है।

२ महाकाव्य का कथानक लोक विश्रुत और महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। उसमें जातीय जीवन का व्यापक चित्रण होना चाहिए।

४ महाकाव्य का नायक असाधारण प्रतिभा और व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति होता है। उसमें शौर्य वीर्य और पराक्रम आदि गुणों का

We can simplify even further and say no more that the Epic must communicate the feeling what it was like to be alive at time But that feeling must include the condition that behind the Epic author is a big multitude of men whose most serious convictions and dear habits he is mouthpiece —*Ibid* p 12

२७ I want to insist that true Epic creates a Heroic impression —*Ibid* p 10

२८ As to contents the writer must seem to know everything before his mission to speak for a multitude can be ratified He must also span a corresponding width of emotions if possible one embracing the simplest sensualities at one end and a sense of the numinous at the other But while in the large area of the life the Epic writer must be counted in normal he must measure the crooked by the straight he must exemplify the sanctity that has been claimed for true genius Only of this condition will the community trust him and allow him to speak for them —F M W Tillyard *The Epic Strain in English Novel* p 16

होना अनिवार्य है। अन्ततोगत्वा वह काव्य में विजयी चित्रित किया जाता है। उसके व्यक्तित्व में राष्ट्रीय जीवन का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व होता है।

५ महाकाव्य में घटना बाहुल्य और वर्णन वैविध्य होता है। अतः वस्तु संकलन में शिथिलता आ जाती है। कथानक में समृद्धि तो होती है किन्तु नाटकों जैसी अन्विति का अभाव होता है।

६ महाकाव्य की भाषा ओजपूर्ण होती है। उसमें जातीय जीवन के आदर्शों की व्यंजना की पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य होनी चाहिए। शैली गरिमापूर्ण तथा एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए।

७ महाकाव्य का रचयिता महान् प्रतिभा-सम्पन्न मेधावी कलाकार होता है। उसमें विराट कल्पना शक्ति और विलक्षण काव्य-कौशल होना चाहिए।

८ महाकाव्य का उदय महान होता है अर्थात शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा। उदाहरण के लिए असत पर सत् की विजय। महाकाव्य सम सामयिक जीवन की प्रेरणा का स्रोत होना चाहिए।

पाश्चात्य और पौर्वात्य काव्यादर्शों की तुलना

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक देश के साहित्याचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते समय पूर्व प्रचलित महाकाव्यों को ही लक्ष्य ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त आरम्भिक काल के सभी देशों के महाकाव्यों में भी सामान्य प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं क्योंकि विश्व भर के महाकाव्यों के मूल स्रोतों की खोज मानव जाति के आदिम साहित्य के भीतर में की जाती है।[२६] यही कारण है कि महाकाव्य विषयक पाश्चात्य और पौर्वात्य आचार्यों की आधारभूत मान्यताओं के सम्बन्ध में विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता है। दोनों ही देशों के विचारक महाकाव्य को काव्य का महत्त्वपूर्ण रूप मानते हैं। दोनों ही मानते हैं कि महाकाव्य में महान कार्य और व्यापक विषय वस्तु होती है। महाकाव्य की कथा पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा लोक विश्रुत होनी चाहिए। महाकाव्य की घटनाओं और कार्यों के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टि से कोई प्रतिबन्ध नहीं, इसीलिए भारतीय महाकाव्यों की घटनाएँ अनेक वर्षों की होती हैं जबकि पाश्चात्य देशों के महाकाव्यों में कार्य की अवधि कुछ दिनों की भी होती है। जैसे इलियड और ओडेसी की कथा कुछ दिनों की ही है।

---

[२६] हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० १

महाकाव्य के नायक के सम्बन्ध में दोनों के दृष्टिकोण समान हैं। महाकाव्य का नायक उदात्त गुणों से सम्पन्न आदर्श और चरित्रवान् होना चाहिए। नायक के व्यक्तित्व में जातीय जीवन और सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिनिधित्व की क्षमता होनी चाहिए। भारतीय महाकाव्यों में आदर्श चरित्र की धारणा के मूल में नैतिक की महानता अन्तर्भूत है। नायक के व्यक्तित्व में वह शक्ति शील और शौर्य होना चाहिए जो असत और अमानवीय प्रवृत्तियों का शमन कर दे। नायक का कृतित्व जीवन के स्थायी मूल्यों (सत्य शील नय शान्ति व्यवस्था आदि) का संस्थापक होना चाहिए। घोर संघर्ष के बाद भी महाकाव्य में अन्तत नायक की विजय होनी चाहिए। पाश्चात्य देशों के महाकाव्यों में हम नायक का चारित्रिक पतन और हनन भी पाते हैं अत स्पष्ट है कि नायक की चारित्रिक उच्चता पर वहाँ इतना बल नहीं दिया जाता है।

महाकाव्य की भाषा सशक्त और शैली गरिमापूर्ण होनी चाहिए। भाषा शैली में काव्य के प्रतिपाद्य को अभिव्यक्त करने की शक्ति और क्षमता होनी चाहिए। वर्णनों की विविधता को दोनों ने ही माना है। छन्द विधान के सम्बन्ध में पाश्चात्य समीक्षकों ने महाकाव्य में आद्यान्त एक ही छन्द के प्रयोग पर बल दिया है जबकि भारतीय महाकाव्यों में एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग उचित माना गया है। संस्कृत के कुछ आचार्यों ने सर्गान्त में छन्द परिवर्तन का उल्लेख किया है।

अति प्राकृत तत्त्वों और अलौकिक शक्तियों का समावेश भी उचित माना गया है। दैवी शक्तियों और नियति के बारे में भी सहमति है। किन्तु पाश्चात्य देशों के महाकाव्यों में जहाँ भूत प्रेत दैत्य दानव देवता आदि प्रत्यक्ष पात्रों के रूप में कथा में आये हैं वहाँ भारतीय महाकाव्यों में देवता अवतार ग्रहण करके अप्रत्यक्ष रूप से आये हैं।

पाश्चात्य महाकाव्यों में वीर भावना पर बल दिया गया है। युद्ध की घटनाओं और संघर्षों ने ही वहाँ के महाकाव्यों में प्रमुख स्थान पाया है। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में महाकाव्य (Epic Poetry) वीरकाव्य (Heroic Poetry) का पर्याय रहा है। वस्तुत प्रारम्भिक महाकाव्यों में युद्ध ही सर्वत्र प्रधान तत्त्व रहा है। किन्तु भारतीय महाकाव्यों में शृंगार वीर और शान्त रसों में से एक रस की प्रधानता और अन्य सब रसों का वर्णन भी अंग रूप में स्वीकार किया गया है। पाश्चात्य महाकाव्यों में भौतिकतावादी संस्कृति की अनिवार्य विशेषताएँ ही संघर्ष द्वन्द्व और युद्ध की अवतारणा का मूल कारण है। भारतीय संस्कृति की त्याग और वैराग्य

भावना ने महाकाव्यों में शौर्य सत्त्व और नीति तत्त्वों को प्रमुखता दी है। इसीलिए हमारे यहाँ के महाकाव्यों का उद्देश्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष अर्थात् चतुर्वर्ग फल प्राप्ति माना गया है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में युद्धों की रक्त रंजित गरिमा से विराटत्व की स्थापना हुई है, किन्तु युद्ध नीति यहाँ धर्म नीति में ही अन्ततः बदलती है। हमारे यहाँ युद्ध क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) भी धर्म क्षेत्र ही रहा है। महाभारत का केन्द्र बिन्दु भारत युद्ध न होकर गीता के सत्यं जयते नानृतं उपदेश में सन्निहित है। रामायण में भी राम रावण का संघर्ष मानव की दानवीय और दैवीय प्रवृत्तियों का संघर्ष है और फिर संघर्ष प्रमुख नहीं संघर्ष का परिणाम अर्थात् असत् पर सत् की अनीति पर नीति का अधर्म पर धर्म की विजय प्रमुख और महत्त्वपूर्ण है। हमारे महाकाव्यों में प्रतिपादित शाश्वत जीवन मूल्य भोग योग और कर्म हैं। कर्म, कर्त्तव्य भावना से युक्त, योग त्याग निष्ठा से युक्त और भोग, धर्माचरण में है। यही कारण है कि भारतीय महाकाव्यों में जीवन दर्शन का एक व्यवस्थित रूप मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य की आधारभूत मान्यताओं में कथा—कथा-संयोजन चरित्र सृष्टि वर्णन वैविध्य, छन्द विधान भाषा शैली की गरिमा जातीय जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा समग्र जीवन चित्रण एवं उद्देश्य की महानता आदि की दृष्टि से पाश्चात्य और पौर्वात्य दृष्टियों में समानता है। महाकाव्य के एक साहित्यालोचक डिक्सन ने महाकाव्यों की मौलिक समानताओं को देखकर ही कहा था कि— महाकाव्य (वीरकाव्य) सर्वत्र एक ही प्रकार का होता है। वह चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो अथवा दक्षिण का उसका रक्त और प्रकृति समान होते हैं। सच्चा महाकाव्य कहीं भी लिखा जाय वह एक कथात्मक काव्य होता है, उसमें महान् चरित्र और महान् कार्य होते हैं उसकी शैली विषय की व्यापकता के अनुकूल होती है। जिसका प्रयास चरित्रों और कार्यों को आदर्श रूप में चित्रित करके घटनाओं और वर्णनों के द्वारा कथात्मक चमत्कार की अभिवृद्धि करना होता है।[3]

---

3 Yet Heroic Poetry is one, whether of East or West the North or South its blood and temper are the same and the true Epic wherever created, [illegible]

पाश्चात्य और भारतीय काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के बहिरंग पक्ष पर अपने विवेचन में अधिक बल दिया है। उनकी दृष्टि में महाकाव्य में रचनात्मक औदात्त अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। अन्तरंग की दृष्टि से उन्होंने रस निष्पत्ति को पर्याप्त माना है। इस प्रसंग में डा० माता प्रसाद जी गुप्त का यह कथन उचित है कि— "महाकाव्य की परम्परा को देखने से ज्ञात होगा कि हमारे यहाँ के साहित्य शास्त्रियों का ध्यान विशेषतः उसके आकार प्रकार के विषय में रहा है उसकी अन्तरात्मा के विषय में नहीं।"[31] तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर भी पहुँचते हैं कि महाकाव्य पर विचार करते समय आचार्यों ने पूर्ववर्ती एवं समकालीन महाकाव्यों को लक्ष्य बनाया था। यही कारण है कि प्राचीन काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों के निकष पर आज के महाकाव्य खरे नहीं उतरते और सम्भव है कि आधुनिक मान्य लक्षणों के आधार पर भविष्य के महाकाव्यों का स्वरूप निर्णय न हो सके। महाकाव्य का स्वरूप कभी भी एकसा नहीं रहा है। युग जीवन और समाज की परिस्थितियों एवं परम्पराओं के अनुसार महाकाव्य की परिभाषाएं बनती और बदलती रही हैं। हिन्दी महाकाव्य के अध्ययन-अनुशीलन से पूर्व हिन्दी के विद्वानों के महाकाव्य विषयक विचार और परिभाषाओं का समझ लेना समीचीन होगा।

आधुनिक हिन्दी समीक्षकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महाकाव्य के स्वरूप पर विभिन्न महाकाव्यों (यथा रामचरितमानस पद्मावत आदि) की समीक्षा करते हुए सविस्तार विचार किया है। उन्होंने महाकाव्य के केवल चार तत्वों का महत्त्व दिया है—इतिवृत्त वस्तु-व्यापार-वर्णन भाव-व्यंजना तथा संवाद। उनके अनुसार महाकाव्य का इतिवृत्त व्यापक और सुसंगठित होना चाहिए। उसमें ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का चित्रण होना चाहिए जो हमें आन्दोलित कर दें। भाव-व्यंजना इतनी विशद प्रांजल एवं पुष्ट हो जो रसानुभूति में सहायक एवं पूर्ण समर्थ हो। संवाद रोचक नाटकीय और औचित्यपूर्ण होने चाहिए। शुक्ल जी ने परोक्ष रूप से सन्देश की महानता एवं शैली की प्रौढ़ता को भी महाकाव्य का प्रमुख लक्षण माना है। किन्तु शुक्ल जी द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षण अनेक नवीन महाकाव्यों पर लागू नहीं होते हैं।[32] शुक्ल जी ने महाकाव्य के बाह्याकार पर इतना अधिक बल दिया

[31] तुलसीदास पृ० ६६ तृतीय संस्करण १९५३

[32] राजनाथ शर्मा साहित्यिक निबन्ध (संस्करण १९६१) पृ० ६००

है कि वैचारिक गाम्भीर्य एवं भाव सुषमा से परिपूर्ण 'कुरुक्षेत्र' और 'कामायनी' जैसे नवीन महाकाव्यों पर भी ये लक्षण लागू नहीं होते।

डा० श्यामसुन्दरदास ने महाकाव्य का विवेचन करते समय उसमें महत् उद्देश्य, उदात्त आशय, संस्कृति के चित्रण आदि का उल्लेख किया है। उन्हीं के शब्दों में— महाकाव्य में एक महत् उद्देश्य का होना आवश्यक है। संस्कृत के साहित्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के आकार प्रकार और वर्णन विषय के सम्बन्ध में बड़े जटिल और दुरूह व्याख्याएँ की गयी हैं जिनका आधार लेकर लिखने से बहुत से महाकाव्यों के शरीर अब संघटित हो गये हैं पर उनमें से बहुत थोड़े में ऐसे हैं जो आत्मा के किसी उदात्त आशय सभ्यता के किसी युग प्रवर्तक संघर्ष अथवा समाज की किसी उद्वेगजनक स्थिति को लेकर किसी प्रकाण्ड विचारक या कवि द्वारा लिखे गये हैं जिन्हें जातीय इतिहास में अनिवार्य स्थान सुलभ हो सके। रामायण, महाभारत, रामचरितमानस आदि की कोटि के सच्चे महाकाव्य शताब्दियों में दो एक लिखे जाते हैं।[33] डा० श्यामसुन्दरदास जी की परिभाषा का सबसे महत्वपूर्ण अंश वह है जिसमें उन्होंने महाकाव्य का विषय-आत्मा का उदात्त आशय, सभ्यता या संस्कृति के संघर्ष तथा समाज की उद्वेगजनक स्थिति की अवतारणा माना है। आज के महाकाव्यों की कसौटी का एक आवश्यक अंग उपर्युक्त विवेचन ही होना चाहिए क्योंकि युग जीवन के संघर्ष की व्यंजना ही वास्तव में महाकाव्य का उच्चतम आशय है।

डॉ० गुलाबराय जी के मतानुसार— महाकाव्य वह विषय प्रधान काव्य है जिसमें कि अपेक्षाकृत बड़े आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।[34] बाबू जी की इस परिभाषा में जातीय जीवन के चित्रण तथा नायक के कार्यों की महानता पर बल दिया गया है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी जी ने 'साकेत' के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख इस प्रकार किया है— महाकाव्य के तीन प्रमुख लक्षण माने जा सकते हैं। प्रथम, रचना का प्रबन्धात्मक या सर्गबद्ध होना। द्वितीय उसकी शैली की गाम्भीर्य और तृतीय उसमें वर्णित विषय की व्यापकता और महत्त्व। इनके अतिरिक्त भी अन्य उपनियम हो

[33] साहित्यालोचन (११ वाँ संस्करण सं० २०१४) पृ० ६४-६५
[34] काव्य के रूप (चतुर्थ संस्करण) पृ० ८६

सकते हैं किन्तु मैं उनका समावेश इन्हीं तीन लक्षणों में करना चाहूँगा।[३५] इस विवेचन में वाजपेयी जी ने सामान्यत महाकाव्य के सर्वप्रमुख अन्तर्बाह्य लक्षणों का ही उल्लेख किया है।

डा० नगेन्द्र ने कामायनी के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए महाकाव्य रचना के आधारभूत तत्त्वों का विवेचन इस प्रकार किया है— मैं महाकाव्य के उन्हीं मूल तत्त्वों को ग्रहण करूँगा जो देशकाल सापेक्ष नहीं हैं जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव में परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता। ये मूल तत्त्व हैं—(१) उदात्त कथानक (२) उदात्त कार्य अथवा उद्देश्य ( ) उदात्त चरित्र (४) उदात्त भाव और उदात्त शैली अर्थात औदात्त्य ही महाकाव्य का प्राण है।[३६] डा नगेन्द्र द्वारा उल्लिखित तत्त्व महाकाव्य रचना के अनिवार्य और अपरिहार्य तत्त्व हैं। इनके अभाव में महाकाव्य की रचना पूर्ण और सार्थक नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त डा० नगेन्द्र द्वारा निर्देशित लक्षण महाकाव्यालोचन के स्थायी मानदण्ड भी स्वीकार किये जा सकते हैं। अस्तु इन तत्त्वों का महाकाव्य के सृजन और समालोचन दोनों ही दृष्टियों से महत्त्व है।

हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप विकास एवं प्रवृत्तियों आदि पर शोध करने वाले कतिपय विद्वानों ने भी महाकाव्य की परिभाषाएँ दी हैं। डा० प्रतिपालसिंह के शब्दों में— महाकाव्य वह विषय प्रधान रुचिर रचना है जिसमें जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाह सभ्यता के उद्गम संगम युग प्रवर्तक संघर्ष महच्चरित्र के विराट उत्कर्ष समाज की उद्वेगजनक स्थिति आत्मा के किसी उदात्त आशय अथवा रहस्य का उद्घाटन किया जाय।[३७] डा० प्रतिपालसिंह की परिभाषा में डा० श्याम सुन्दरदास की परिभाषा की ही सामान्यत पुनरावृत्ति हुई है।

डा शम्भूनाथसिंह के अनुसार— महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथात्मक काव्य रूप है जिसमें क्षिप्र कथा प्रवाह या अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपांग और जीवन्त लम्बा कथानक होना

---

[३५] आधुनिक साहित्य (द्वितीय संस्करण) पृ० १ ६ १०७

[३६] डा० नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध सम्पादक—भारतभूषण अग्रवाल पृ १२५

[३७] बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य पृ १६

है जो रसात्मकता या प्रभावाभिव्यक्ति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ होता है जिसमें यथार्थ, कल्पना या सम्भावना पर आधारित ऐसे चरित्रों के महत्त्वपूर्ण जीवन वृत्त का पूर्ण या आंशिक चित्रण होता है जो किसी युग के सामाजिक जीवन को किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं और जिसमें किसी महत्प्रेरणा से परिचालित होकर किसी महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्त्वपूर्ण गम्भीर अथवा आश्चर्योत्पादक और रहस्यमय घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर सश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति विशेष और युग विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों पक्षों मानसिक अवस्थाओं अथवा नाना रूपात्मक कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया रहता है और जिसकी शैली इतनी उदात्त गरिमामय होती है कि युग युगान्तर में उसे महाकाव्य का जीवित रहने की शक्ति प्रदान करती है।[38] डा० शम्भूनाथसिंह की परिभाषा यद्यपि बहुत विस्तारपूर्ण है किन्तु उसमें महाकाव्यों के सभी तत्त्वों के समाहार की चेष्टा की गया है। डा० गोविन्दराम शर्मा के अनुसार— महाकाव्य एक ऐसी छन्दोबद्ध प्रबन्धात्मक रचना होती है जिसमें विषय की व्यापकता और नायक की महानता के साथ-साथ कथावस्तु की एकसूत्रता छन्दबद्धता हुआ रस प्रवाह वर्णन की विशदता उदात्त भाषा शैली जीवन का यथासाध्य सर्वांगीण चित्रण और जातीय भावनाओं तथा संस्कृति की सुन्दर अभिव्यक्ति हो।[39] प्रस्तुत परिभाषा में भी महाकाव्य के तत्त्वों पर ही विशेष बल दिया गया है। हिन्दी महाकाव्य के एक अन्य समीक्षक डा० श्यामनन्दन किशोर ने लिखा है कि— महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित एवं कवि की ऐसी छन्दोबद्ध कृति है जिसमें मानव जीवन की किसी ज्वलन्त समस्या का व्यापक प्रतिपादन किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महाप्रवाह उद्भावन उदात्त वर्णन शैली व्यंजक भाषा पूर्ण रसात्मकता और उच्च कोटि के शिल्प विधान द्वारा किया जाता है और जिसका नायक किसी भी निम्न जाति या वंश का होकर भी अपने गुणों में कवि के आदर्शों को मूर्तिमान करने वाला होता है।[40]

हिन्दी महाकाव्य के शोधकर्ताओं के अतिरिक्त हिन्दी के काव्यकर्ताओं (कवियों) ने भी महाकाव्य की परिभाषा निबद्ध करने का प्रयास किया है। कवि सम्राट हरिऔध जी ने पुरोहित प्रताप नारायण के नलनरेश महाकाव्य

---

[38] हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १०८

[39] हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ६३

[40] आधुनिक हिन्दी महाकाव्य का शिल्प विधान, पृ० ६०

की भूमिका में लिखा है कि— महाकाव्य की उचित परिभाषा यह है कि जिसमें वास्तव में महाकवित्व पाया जाय और जिसकी रचना ऐसी महत्त्वमय हो जो देश, जाति और समाज के भावों का स्पष्ट हो, जिसमें ऐसे विचारों और महान कल्पनाओं का चित्रण हो जो किसी लोक-समूह के लिए कल्पद्रुम का काम दे सके। हाँ, उसके सर्ग अथवा अध्यायों की संख्या आठ या दस से अधिक अवश्य हो, जिसमें वर्णित विषयों का उचित परिपाक ग्रन्थ में हो सके। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कोई पच्चीस तीस सर्ग का ग्रन्थ क्यों न लिखे, यदि उसमें महाकाव्यत्व नहीं, कवि कर्म नहीं तो इतना बड़ा ग्रन्थ होने पर भी वह महाकाव्य कहलाने योग्य न होगा। और थोड़े से सर्गों का ग्रन्थ क्या न हो, यदि उसमें व्यंजना की प्रधानता है, भावुकता उसमें छलकती मिलती है, महाकवि का कर्म देखा जाता है तो वह अवश्य ही महाकाव्य कहा जा सकेगा, क्योंकि ग्रन्थ का महत्त्व ही उसकी महत्ता का कारण हो सकता है।[41] श्री हरिऔध ने महाकाव्य में सर्ग संख्या से अधिक महत्त्वपूर्ण भाव-औदात्त और कवि कर्म माना है।

तारकवध महाकाव्य की भूमिका में कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है कि— संक्षेप में महाकाव्य मानव सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास का जीवन्त पर्वताकार स्पन्दन होता है जिसमें अपने युग को देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है।[42] पन्त जी की परिभाषा में महाकाव्य के सांस्कृतिक महत्त्व की ही चर्चा विशेष है। श्री रामधारीसिंह दिनकर ने महाकाव्य की रचना के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है— महाकाव्य की रचना मनुष्य को विकल करने वाली अनेक भावधाराओं के बीच सामंजस्य लाने का प्रयास है। महाकाव्य की रचना समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है। जब परम्परा से आने वाले महान प्रश्नों और भावों की अनुभूति में परिवर्तन होने लगता है तथा इस परिवर्तित संस्कार को चित्रित करने के लिए ही महाकाव्य लिखे जाते हैं। विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं, वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।[43] श्री तारादत्त हारीत कृत दमयन्ती महाकाव्य की प्रस्तावना लिखते हुए महाकाव्य की उद्भावना के सम्बन्ध में कवि श्री गोपालदास नीरज ने लिखा

---

४१ ननरेश [illegible] पृ० १

४२ तारकवध, प्राक्कथन पृ० १

४३ दिनकर, अर्धनारीश्वर पृ० ४६

है कि— जब कवि का मानस चपल भाव के रस से इतना भर जाता है कि वह आसव उसमें से छलक छलक पड़ता है तब गीत का जन्म होता है। लेकिन जब कवि की दृष्टि रूप के ऊपर उठकर लोकमानस की भूमि पर पर से तादात्म्य करने का प्रयास करती है तब महाकाव्य का जन्म होता है। एक में अपनी रचना का लक्ष्य व्यक्ति स्वयं होता है और दूसरे में उसका लक्ष्य समाज और संसार होता है। इसीलिए जहाँ गीत में तीव्र संवेदनशीलता होती है वहाँ प्रबन्धकाव्य में एक विशेष व्यापकता के दर्शन हम पाते हैं। महाकाव्य की महान् योजना के लिए एक स्पष्ट जीवन-दर्शन सूक्ष्म तथा दृष्टि अनुभूतियों की एकतानता भावना बुद्धि और कल्पना का समाधान सन्तुलन आवश्यक होता है।"[44] श्री नागेन्द्र जी ने उपर्युक्त विवेचन में गीतिकाव्य और महाकाव्य के तात्त्विक अन्तर को स्पष्ट करते हुए महाकाव्य रचना के अनिवार्य उपकरणों पर विचार किया है। यह स्मरणीय है कि गीति तत्त्व आधुनिक महाकाव्य रचना का एक अनिवार्य अंग बन गया है। आधुनिक युग के सामान्यतः सभी महाकाव्यों में गीतों की सुन्दर योजना की गयी है। हिन्दी के इन कवियों के अतिरिक्त महाकाव्य की परिभाषा बड़े सुन्दर शब्दों में महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी दी है। वे लिखते हैं— "मन में जब एक महान् व्यक्ति का उदय होता है सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं। उस मन्दिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अन्तर्देश में रहती है और उसका शिखर मेघों को भेदकर आकाश में उठता है। उस मन्दिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है उसके देवभाव से मुग्ध और पुण्य किरणों से अभिभूत होकर नाना दिशाओं से आ आकर लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।"[45] इस विवेचना से विदित होता है कि श्री ठाकुर ने महाकाव्य के लिए विराट् चरित्र कल्पना को प्रमुख अंग माना है।

इन अनेक विद्वानों एवं सुप्रसिद्ध कवियों की इन विभिन्न परिभाषाओं को देखने से प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने अपने मतानुसार एक या एकाधिक महाकाव्य रचना के तत्त्वों को प्रमुखता दी है। इन सभी परिभाषाओं को दृष्टिगत करके महाकाव्य की एक व्यापक परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की जा

---

४४ दमयन्ती महाकाव्य प्रस्तावना पृ० ग घ

४५ मेघनादवध-महाकाव्य भूमिका पृ० १५७ ५८

की जा सकती है 'महाकाव्य वह महत् काव्य रूप है, जिसमें व्यापक कथानक, विराट चरित्र कल्पना गम्भीर अभिव्यंजना शैली विशिष्ट शिल्प विधि और मानवतावादी जीवन दृष्टि से उसका रचयिता युग-जीवन के उन्नत बोध को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित करता है। संक्षेप में श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना मानवता के मंगलमय आख्यान और लोक मानस की चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होती है।

सच तो यह है कि महाकाव्य की कोई सार्वकालीन एवं सर्वपूर्ण परिभाषा नहीं दी जा सकती है क्योंकि युग जीवन की परिस्थितियों और सामाजिक परम्पराओं के अनुसार ही महाकाव्य के स्वरूप लक्षण तत्त्व और मान्यताओं में परिवर्तन होता रहा है। फिर भी उपर्युक्त परिभाषा में महाकाव्य के स्वरूप को व्यापकतम परिवेश में प्रतिष्ठित करने का एक विनम्र प्रयास अवश्य किया गया है। इस परिभाषा में प्रमुख रूप से दो दृष्टियाँ अपनायी गयी हैं—परम्परा और प्रगति। जब तक प्राचीन महाकाव्यादर्शों का अनुसरण करते हुए भी हम अपने युग के महाकाव्यों की प्रवृत्तियों को दृष्टिगत करके लक्षण निर्धारित नहीं करेंगे तब तक सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से पूर्ण न्याय नहीं हो सकेगा। दूसरे इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान महाकाव्य का विकास प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा में ही हुआ है। इसीलिए इस परिभाषा में प्राचीन और नवीन दोनों ही महाकाव्यों के आदर्शों के समन्वय का प्रयत्न किया गया है।

महाकाव्य के रूपविधायक तत्त्व

की जा सकती है। महाकाव्य वह महत् काव्य रूप है जिसमें व्यापक कथानक, विराट चरित्र, कल्पना, गम्भीर अभिव्यंजना शैली, विशिष्ट शिल्प विधि और मानवतावादी जीवन दृष्टि से उसका रचयिता युग-जीवन के उन्नत बोध को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित करता है। संक्षेप में श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना मानवता के मंगलमय आख्यान और लोक मानस की चेतना के आकलन का सांस्कृतिक प्रयास होती है।

सच तो यह है कि महाकाव्य की कोई सार्वकालीन एवं सर्वपूर्ण परिभाषा नहीं दी जा सकती है क्योंकि युग जीवन की परिस्थितियों और सामाजिक परम्पराओं के अनुसार ही महाकाव्य के स्वरूप, उपकरण, तत्त्व और मान्यताओं में परिवर्तन होता रहता है। फिर भी उपर्युक्त परिभाषा में महाकाव्य के स्वरूप को व्यापकतम परिवेश में प्रतिष्ठित करने का एक विनम्र प्रयास अवश्य किया गया है। इस परिभाषा में प्रमुख रूप से दो दृष्टियाँ अपनायी गयी हैं—परम्परा और प्रगति। जब तक प्राचीन महाकाव्यादर्शों का अनुसरण करते हुए भी हम अपने युग के महाकाव्यों की प्रवृत्तियों को दृष्टिगत करके लक्षण निर्धारित नहीं करेंगे तब तक सिद्धान्त विवेचन की दृष्टि से पूर्ण न्याय नहीं हो सकेगा। दूसरे इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान महाकाव्य का विकास प्राचीन महाकाव्यों की परम्परा से ही हुआ है। इसीलिए इस परिभाषा में प्राचीन और नवीन दोनों ही महाकाव्यों के आदर्शों के समन्वय का प्रयत्न किया गया है।

महाकाव्य के रूपविधायक तत्त्व

महाकाव्य के रूपविधायक तत्त्व

महाकाव्य के रूपविधायक तत्त्वों से अभिप्राय उसके रचनात्मक उपकरणों से है। महाकाव्य की परिभाषाओं में पाश्चात्य और पौर्वात्य तथा प्राचीन और नवीन आचार्यों ने रचना के विभिन्न उपकरणों का उल्लेख किया है। इनमें भी कौन से तत्त्व अनिवार्य हैं, कौन से अप्रमुख, इस सम्बन्ध में भी पूर्ण मतैक्य नहीं। कुछ आचार्यों ने कथा-तत्त्व और चरित्र योजना को महत्त्व दिया तो कतिपय ने रचना शिल्प और उद्देश्य की महत्ता स्वीकार की है। कहने का अभिप्राय यह है कि महाकाव्य की रूप रचना का प्रश्न हिन्दी साहित्य जगत में सदा विवादास्पद बना हुआ है। रूपविधायक तत्त्वों की अनिश्चितता के कारण यह कहना बड़ा कठिन रहा है कि कौन सी काव्यकृति महाकाव्य है, कौन सी नहीं। उदाहरणार्थ डा० शम्भूनाथसिंह ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' में 'पृथ्वीराज रासो' 'पद्मावत' 'आल्हखण्ड' 'रामचरितमानस' और 'कामायनी' पाँच ही ग्रन्थों को महाकाव्य माना है। डा० गोविन्दराम शर्मा ने 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य' नामक शोध प्रबन्ध में इन पाँचों के अतिरिक्त 'प्रियप्रवास' 'साकेत' 'कृष्णायन' 'वैदेही-वनवास' और 'साकेत सन्त' को भी महाकाव्य की संज्ञा प्रदान की है। हिन्दी महाकाव्य पर शोध कार्य करने वाले अन्य विद्वानों में डा० प्रतिपालसिंह[1] डा० श्यामनन्दन किशोर[2] डा० श्यामसुन्दर व्यास[3] आदि ने 'कुरुक्षेत्र' 'रावण' 'दैत्यवंश' 'एकलव्य' 'तारक वध' 'नूरजहाँ' 'विक्रमादित्य' 'सिद्धार्थ' 'वर्द्धमान', 'अंगराज', 'पार्वती' प्रभृति काव्य ग्रन्थों को भी महाकाव्य स्वीकार किया है। इस प्रकार इन मान्यताओं में मतैक्य के अभाव का कारण महाकाव्यालोचन के प्रतिमानों का अनिश्चित होना ही है। अस्तु महाकाव्य की आलोचना और रचना दोनों ही दृष्टियों से महाकाव्य के रूपविधायक तत्त्वों का निश्चित किया जाना अपेक्षित है।

---

[1] बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य

[2] आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान

[3] हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण

आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट समस्त लक्षणों का समाहार निम्नांकित चार शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है जिन्हें महाकाव्य रचना के मूलविधायक तत्त्व अभिधान भी दिया जा सकता है

१ लोक प्रख्यात कथानक
२ उदात्त चरित्र सृष्टि
३ विशिष्ट रचना शिल्प तथा
४ महत उद्देश्य और जीवन-दर्शन ।

१ लोक प्रख्यात कथानक

महाकाव्य रचना का सर्वप्रमुख और अनिवार्य तत्त्व कथानक है । कथा तत्त्व के अभाव में महाकाव्य सृजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती । महाकाव्य के कथानक में दो विशेषताएं अनिवार्यत होनी चाहिए । एक तो उसकी ख्याति और दूसरी सुसंगठन । इसके अतिरिक्त एक सामान्य विशेषता विषयवस्तु का व्यापक होना भी है । कथावस्तु के प्रमुख स्रोत होते है— इतिहास पुराण समसामयिक घटना चक्र और कवि कल्पना । महाकाव्यों के लिए प्रथम दो स्रोत ही उपयुक्त है । समसामयिक घटना चक्र पर आधृत कथावस्तु आवश्यक नहीं विख्यात भी हो और कवि कल्पना का समावेश तो प्रत्येक प्रकार की कथावस्तु में होता ही है ।

अधिकांश महाकाव्यों की कथावस्तु का चयन इतिहास पुराण से ही किया गया है क्योंकि इतिहास पुराण के कथानक इतने लोक प्रख्यात हैं कि पाठक सहज ही हृदयगम कर लेता है । कथानक के स्रोत की दृष्टि से पुराणों का अन्यतम स्थान है । पुराणों में भारतीय जीवन चेतना और संस्कृति के अपूर्व तत्त्व विद्यमान है । पुराणों की कथाओं में जीवन को प्रेरणा प्रदान करने वाली असख्य घटनाएं भरी हुई हैं । यही कारण है कि हिन्दी के महाकाव्यकारों ने पुराण ग्रन्थों को महाकाव्य-वस्तु का अक्षय भण्डार माना है । हमारे युग के अधिकांश महाकाव्यों की विषय वस्तु का सकलन पुराणों से ही किया गया है ।[४] अस्तु पुराणों की इस दृष्टि से महत्ता स्पष्ट ही है । हिन्दी में ही नहीं विश्व के सुप्रसिद्ध प्राचीन महाकाव्यों में भी पौराणिक और निजधरी आख्यानों

[४] प्रियप्रवास साकेत कामायनी वैदेही वनवास कृष्णायन साकेतसन्त दैत्यवंश नलनरेश अगराज जय भारत पार्वती रश्मिरथी एकलव्य तारकवध सेनापति कर्ण कुरुक्षेत्र दमयन्ती उर्वशी सारथी अनंग रामराज्य प्रिय मिलन कैकेयी श्रीराम चन्द्रोदय रामचरित चिन्तामणि कृष्णचरितमानस आदि ।

(Myths and Legends) को ही कथानक के रूप में ग्रहण किया गया है। वास्तव में महाकाव्यकार की कल्पना शक्ति इतनी प्रबल और विराट होनी चाहिए कि वह पुराणों की जीर्ण शीर्ण कथाओं को प्राणवान बना सके तथा उन्हें युग जीवन के साँचे में ढालकर प्रस्तुत कर सके। पौराणिक कथाओं के पुनराख्यान का कोई सार्थकता या महत्त्व नहीं यदि वे समसामयिक जीवन चेतना को प्रभावित करने की क्षमता से शून्य हों।

महाकाव्य-वस्तु का सुसंगठित होना भी अनिवार्य है। इसके अभाव में महाकाव्य के प्रबन्धत्व में बाधा पड़ती है। महाकाव्य-वस्तु के संगठित स्वरूप के लिए आचार्यों ने सर्गों का विधान किया है। साथ ही नाटकीय सन्धियों के निर्वाह का भी उल्लेख किया है। सन्धियों की योजना से विषय-वस्तु का विकास व्यवस्थित रूप से होता है। सन्धियों के अतिरिक्त महाकाव्य वस्तु में घटनाओं की अन्विति और कार्य-व्यापारों की सुसम्बद्धता भी होनी चाहिए।

महाकाव्य में कथानक का व्यापक होना भी आवश्यक है। महाकाव्य में सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होती है। यह तभी सम्भव है जब कथानक व्यापक एवं पूर्ण हो। उसमें समग्र जीवन को व्यंजित करने की भी क्षमता होनी चाहिए। महाकाव्य का कथानक जातीय जीवन और समूह चेतना को साकार करने की शक्ति और क्षमता का सधारण कर सके इसी में महाकाव्यकार के कथा-संयोजन कौशल को देखा जा सकता है। संक्षेप में नाम प्रसिद्धि सुसंगठन और व्यापकता महाकाव्य की कथावस्तु की प्रमुख विशेषताएं कही जा सकती हैं।

२ उदात्त चरित्र सृष्टि

महाकाव्य रचना का दूसरा प्रमुख तत्त्व चरित्र सृष्टि है। किसी भी कथा में अच्छे-बुरे सभी प्रकार के पात्र होते हैं। महाकाव्यकार का दायित्व है कि वह असत् पात्रों पर सद्पात्रों की विजय का प्रदर्शन करे। किन्तु इस प्रदर्शन के लिए उसे असद् प्रवृत्तियों वाले पात्रों की मात्र हत्या या वध ही नहीं करवाना चाहिए वरन् सद्पात्रों के उच्च व्यावहारिक आदर्शों की प्रेरणा असद् कोटि के पात्रों का ग्रहण करानी चाहिए। इस प्रक्रिया में पात्रों का चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक ढंग से ही होना चाहिए। पात्रों के चरित्र विश्लेषण में महाकाव्यकार की दृष्टि निरपेक्ष अर्थात् पूर्वाग्रह मुक्त होनी चाहिए। उसे पात्रों के कार्यों एवं चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर उनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना चाहिए। विशेषकर नायक के सम्बन्ध में महाकाव्य के रचयिता का दृष्टिकोण निस्पृह होना चाहिए।

महाकाव्य की मुख्य कथा (आधिकारिक वस्तु) से सम्बद्ध पात्रों में प्रमुख पात्र नायक होता है। काव्य का कार्य-व्यापार नायक द्वारा ही प्रचालित होता है। अतः नायक के व्यक्तित्व और कृतित्व में जीवन के उच्च आदर्शों की प्रस्थापना के लिए संघर्षरत रहने की क्षमता और शक्ति होनी चाहिए। किन्तु इस कार्य के लिए आवश्यक नहीं कि वह उच्चकुलीन सद्वंशीय धीरोदात्त और दक्षादि गुणों से ही सम्पन्न हो। वर्तमान युग की काव्यधारा का मूल स्वर मानवतावादी जीवनादर्शों की स्वीकृति और स्थापना है। अतः मानवोचित चारित्रिक दुर्बलताएँ नायक में भी हो सकती हैं और इनके कारण ही किसी पात्र को नायकत्व के पद से वंचित नहीं किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात नायक का प्रयास महान् होना चाहिए। कार्यों से ही महानता अर्जित की जाती है। आज के अधिकांश महाकाव्य नायिका प्रधान भी हैं अतः पुरुष पात्र ही नायकत्व के एकाधिकारी नहीं हैं। अस्तु महाकाव्य के नायक के लिए निम्नांकित बातें आवश्यक हैं :

(अ) मानवीय चरित्र।

(आ) स्त्री और पुरुष दोनों ही (पात्र) नायक पद पर समासीन हो सकते हैं।

(इ) महान लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील।

(ई) जातीय जीवनादर्शों का प्रतिष्ठाता।

समष्टि रूप में चरित्र-विश्लेषण करते समय महाकाव्यकार की दृष्टि मानव जीवन के समग्र मूल्यांकन की ओर होनी चाहिए। मानवीय व्यक्तित्व के महान् से महान स्वरूप की परिकल्पना नायक के चरित्र में साकार की जानी चाहिए।

३. विशिष्ट रचना शिल्प

यों तो प्रत्येक साहित्यिक रचना का निश्चित शिल्प होता है जिसके आधार पर उसे आकार प्रकार प्रदान किया जाता है। किन्तु महाकाव्य सदृश सर्वोपरि काव्यरूप के शिल्प में विशिष्टता लाने के लिए उसके रचयिता को कुछ नियमों का अनुपालन करना ही चाहिए। नियमों के अनुपालन से अभिप्राय यह है कि महाकाव्यकार को महाकाव्य के स्वरूप विधायक उपकरणों का संयोजन विशेष विधि से करना चाहिए। रचना शिल्प के दो पक्ष हैं—अन्तरंग और बहिरंग।

महाकाव्य के अन्तरंग का निर्माण रसात्मकता द्वारा होता है।

बहिरंग के निर्माण में भाषा, शैली छन्द, वर्णन एवं चित्रण योगदानमय होते हैं।

बहिरंग के उपकरण

(अ) वस्तु-वर्णन—महाकाव्य में वस्तु वर्णन वैविध्यपूर्ण होना चाहिए। महाकाव्य में युग जीवन का समग्र चित्र अंकित रहता है अतः जीवन की अनेक रूपता की व्यंजना विविध वर्णनों द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। प्रकृति के विविध रूपों का कलात्मक वर्णन और नाना भावों की मनोरम झाँकियों की अभिव्यक्ति ही महाकाव्यकार के वर्णन कौशल को व्यक्त करते हैं। काव्याचार्यों ने महाकाव्य में वस्तु-वर्णन-व्यापारों की लम्बी सूचियों का उल्लेख इसी दृष्टि से किया है। प्रकृति और मानव का अनादि सहवास रहा है। परिस्थितियों के अनुरूप दोनों के सम्बन्धों में भी परिवर्तन का क्रम गतिमान रहा है। इसीलिए महाकाव्य में मानव और प्रकृति के मिलन और संघर्ष तथा परिणाम और उपलब्धियों का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त विषय वस्तु के इतिवृत्तात्मक स्थलों की रूक्षता को दूर करने के लिए भी भावपूर्ण मनोरम एवं मार्मिक प्रकृति रूपों की योजना अपेक्षित होती है।

(आ) कल्पना शक्ति—महाकाव्य के कथा स्रोतों का उल्लेख करते हुए कहा जा चुका है कि कथानक के प्रमुख स्रोत इतिहास-पुराण हैं। महाकाव्यकार का कर्तव्य और कौशल इस बात में निहित है कि वह इतिहास-पुराण के पुरातन आख्यानों और जीर्ण शीर्ण कथा-स्रोतों को कल्पना शक्ति के प्रयोग द्वारा दीप्तिमान करके युग, जीवन और समाज के तात्कालिक परिसन्दर्भों में प्रस्तुत करे। कथानक के अतिरिक्त चरित्र-योजना शिल्प विधान और उद्देश्य सिद्धि में भी कल्पना शक्ति का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। सत्य तो यह है कि प्रौढ़ कवि-कल्पना ही महाकाव्य को जन्म दे सकती है।

(इ) मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि—महाकाव्य वस्तु के विशाल कलेवर में मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा पाठकों को सरसता प्रदान करती है। इनकी सृष्टि द्वारा ही महाकाव्य एवं प्रभावपूर्ण रचना बनती है। महाकाव्यकार को घटनाओं के चयन में ऐसे स्थलों को महत्त्व देना चाहिए जो अपनी प्रभाव क्षमता के कारण रागात्मक वृत्तियों को जागृत एवं उद्दीप्त कर सकें।

(ई) गरिमापूर्ण भाषा शैली—महाकाव्य की शैली का स्वरूप अन्य काव्य रूपों की अपेक्षा विशिष्ट और गरिमापूर्ण होता है। गुण रीति अलंकार शब्द शक्तियाँ, ध्वनि आदि शैली विधान के उपकरण हैं किन्तु इनका सम्बन्ध शैली के बाह्य रूप से है। शैली की व्यापकता और गम्भीरता (प्रौढ़ता) उसकी

अन्तरात्मा है। काव्य चेतना की प्रखरता का प्रमाण सरल भाषा और सामान्य अलंकृति द्वारा गम्भीर व्यंजना द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। शैली के माध्यम से कवि के व्यक्तित्व की भी अभिव्यक्ति होती है। इस गुण को साकार करने के लिए भाषा शैली में यत्नसाध्य अलंकरण जटिल शब्द समूह और कृत्रिमता अपेक्षित नहीं वरन् थोड़े में बहुत कहने की सरल शब्दावलि में गम्भीर व्यंजना की तथा चेतना प्रभाव को व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए। महाकवियों की शैली में यह सामर्थ्य हुआ करता है। महाकाव्य की शैली का सबसे बड़ा गुण सम्प्रेषणीयता (Communicability) तथा प्रसंगगर्भत्व होना चाहिए। महाकाव्यकार की शैली के स्वरूप का निर्माण श्रमसाध्य या प्रयत्नपूर्ण न होकर उसकी सुदीर्घ काव्य-साधना का परिणाम होता है।

(उ) छन्द विधान—*छन्दबद्धता महाकाव्य के लिए अनिवार्य है।* काव्यात्मक औदात्य के लिए भी छन्द विधान अपेक्षित है। संस्कृत के आचार्यों ने तो सर्गान्त में छन्द परिवर्तन के नियम का विधान भी किया है। यद्यपि इस नियम का कोई विशेष महत्त्व नहीं और न ही आधुनिक महाकाव्यों में इस नियम का अनुपालन ही किया जाता है। तो भी छन्द वैविध्य से पाठक की मनोवृत्ति का रमण तथा कवि-कौशल का परिचय अवश्य मिलता है।

(ऊ) सर्ग योजना—प्रबन्धत्व के सफल निर्वाह के लिए सर्ग योजना अनिवार्य कथावस्तु के सम्यक् संयोजन और विभाजन के लिए भी सर्ग योजना अपेक्षित है। कथानक का विभाजन हर स्थिति में आवश्यक है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि सर्ग ही नाम दिया जाय। कथावस्तु का विभाजन समय काण्ड पर्वों प्रकाशों या अन्य शीर्षकों से भी हो सकता है। सर्गों की संख्या के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित मत नहीं है। प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य में आठ की संख्या को मान्यता दी है किन्तु आज के महाकाव्यों में सर्गों की संख्या ६ ७ २५ इत्यादि भी मिलती है।

अन्तरंग पक्ष

रसात्मकता—भारतीय साहित्यशास्त्र में रस को काव्य की आत्मा माना गया है। रस की स्थिति प्रत्येक काव्य की संज्ञा पाने वाली रचना में अनिवार्यतः होती है। महाकाव्य के विशाल कलेवर में रस का वेगवान अमित प्रवाह होना चाहिए। रसात्मकता महाकाव्य के अन्तरंग का निर्माण करती है। प्राचीन काव्याचार्यों ने महाकाव्य में वीर शृंगार और शान्त रसों में से किसी एक की प्रधानता एवं अन्य रसों की सम्यक् योजना का उल्लेख किया

है किन्तु आज यह आवश्यक नहीं माना जाता। कोई भी रस प्रधान हो सकता है। वर्तमान युग में करुण रस प्रधान अनेक महाकाव्य मिलते हैं।

रसानुभूति महाकाव्य के पाठक के हृदय में भावोत्तेजना या महान् प्रभाव की जनक होती है। मानव मात्र में मूल मनोभाव और संवेदनाएं एक सी हैं। उन भावों को उच्च और उदार बनाने के लिए उन्हें जीवन की विस्तृत भूमिका में अवतरित कराना महाकाव्यकार की प्रतिभा का द्योतक होता है। इसके अतिरिक्त पात्रों के क्रिया-व्यापारों और घटना प्रवाह से अनुभूति का तादात्म्य रस की भूमिका पर ही हो सकता है। इतिवृत्तात्मक निरसता भी रस प्रवाह में ही दूर होती है। भाव चित्रण या रसात्मकता द्वारा ही सम्भव है।

४ महत् उद्देश्य और जीवन दर्शन

महाकाव्य महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन से अनुप्राणित रचना होती है। भारतीय काव्याचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग फलप्राप्ति अर्थात् धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि तथा रसात्मकता माना है। किन्तु वर्तमान युग जीवन के सन्दर्भ में मात्र इन्हें ही महाकाव्य का लक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है। महत् उद्देश्य से अभिप्राय महाकाव्य सृजन के लिए रचयिता की अन्तरात्मा में किसी महान् प्रेरणा का आविर्भाव भी है। प्रेरणा का स्रोत जीवन की कोई भी घटना परिस्थिति अथवा वस्तु हो सकती है किन्तु कवि का कौशल उस प्रेरणा प्रभाव को विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य में स्थापित करने में है। आज का प्रत्येक काव्य रचना साउद्देश्य है। आज यह मान्यता बलवती है कि काव्य रचना स्वयं के लिए आत्मतोषी या स्वान्तः सुखाय न होकर जाति समाज और विश्व-जीवन के मन तुष्टि के लिए होना चाहिए। डा० माताप्रसाद गुप्त का यह कथन प्रस्तुत सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि— मानवता को अशक्ति से शक्ति अशान्ति से शान्ति और नीचे से ऊंचे ले जाना ही वस्तुतः महाकाव्य के अन्य लक्षणों की अपेक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण माना जा सकता है। इसी में उसकी वास्तविक महानता होनी चाहिए।[४] अस्तु।

महाकाव्य के उद्देश्य की महानता और उसकी सिद्धि के लिए आवश्यक है कि महाकाव्य कहा जाने वाला प्रत्येक रचना में—

(अ) मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा हो,

(ब) युगीन जीवनादर्शों की स्थापना हो

(स) रचना का सांस्कृतिक सम्प्रयन में योगदान हो

---

[४] तुलसीदास तृतीय संस्करण पृ० ३७०

(द) उन्नत विचार-स्पन्दन (जीवन-स्पन्दन) हो।

(प) संजीवनी शक्ति प्रदान करने की क्षमता हो।

(अ) मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा—प्रत्येक युग और देश के काव्य-सृजन की सार्थकता मानवता के मंगल विधान में निहित है। मानव जीवन के चिरंतन मूल्यों और शाश्वत सत्यों की व्यंजना महाकाव्य रचना की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। विश्व भर के महाकाव्यों में सत्त्व से ही किसी न किसी रूप में मानवतावादी जीवन-दृष्टि की प्रस्थापना का आग्रह रहा है। मानव जीवन के स्थायी मूल्य प्रेम करुणा क्षमा शील श्रद्धा सत्त्व न्याय सत्य अहिंसा आदि रहे हैं। इन्हें आध्यात्मिकता की संकुचित सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है। मानव जीवन के वैविध्य का चित्रण करते समय भी इन मूल्यों की प्रतिष्ठा महाकाव्यकार का लक्ष्य होना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति जीवन के विराट संघर्ष में इन मूल्यों को भूल ही नहीं जाता वरन् परिस्थिति वश में इनकी उपेक्षा भी करता है। इस उपेक्षा का परिणाम मानव जाति और समाज की अवनति और अन्ततः विनाश होता है। महाकाव्यकार का दृष्टिकोण इन जीवन मूल्यों की सत्ता सिद्ध करना है। तभी महाकाव्य विश्वजनीन और सार्वभौम हो सकते हैं। मानव मात्र की धरोहर बनने के लिए महाकाव्यों को जातीय समाज और राष्ट्र की सीमाओं का भी अतिक्रमण करना पड़ता है अर्थात् मानवतावाद की प्रतिष्ठा के लिए जातीय हितों की बलि भी देनी पड़ती है।

(ब) युगीन जीवनादर्शों की स्थापना—महाकाव्य युगों की देन होते हैं। उनमें कवियों की भावना जातीय जीवन की विशेषताएं और मानवता का प्रगति व्यंजित होती है। प्रत्येक युग में जीवन के आदर्श स्थापित होते हैं। कभी वीरपूजा का युग आता है तो कभी भक्ति-साधना जीवन का सर्वस्व बनती है। कभी राष्ट्र सेवा परमार्थ समाज कल्याण प्रेममय जीवन समानता और सद्व्यवहार जीवन के आदर्श स्वीकृत किये जाते हैं। महाकाव्यों में इन जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। इनके साथ ही कुछ शाश्वत सत्य एवं चिरन्तन मूल्य होते हैं जो प्रत्येक युग में मानव जीवन को परिचालित करते हैं। अतः महाकाव्यकार को चिरन्तन जीवन मूल्यों के परिपार्श्व में ही युगीन जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। हमारे युग की प्रगति अतीत के प्रयत्नों का परिणाम तथा अनागत के प्रति आस्था का प्रतीक होनी चाहिए। महाकाव्य को विश्व वाङ्मय की अमूल्य निधि हम तभी कह सकते हैं जब उनमें जातीय हो न हो वरन् विश्व जीवन के आदर्शों को साकार करने की

क्षमता हो। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में इस प्रवृत्ति का समुचित विकास हुआ है।

(स) सांस्कृतिक उन्नयन में योगदान—विज्ञान युग में काव्य लेखन एक सांस्कृतिक प्रयास है। इस कथन की मान्यता महाकाव्यवत काव्य रूप की रचना द्वारा ही सिद्ध होती है। महाकाव्यों में जाति, समाज, राष्ट्र और विश्व के सांस्कृतिक उत्कर्ष-अपकर्ष की एक विराट भूमिका उपस्थित की जाती है। महाकाव्य एक सामाजिक देश का सांस्कृतिक इतिहास भी प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि महाकाव्यों में समग्र जीवन का चित्रण करते समय समाज व्यवस्था का निरूपण, सभ्यता के विकास का वर्णन, राष्ट्रीय मर्यादाओं का स्थापन तथा पर्वों और परम्पराओं का आख्यान एक प्रकार से देश की सांस्कृतिक धरोहर ही है। महाकाव्य के पात्रों के संस्कार जातीय एवं राष्ट्रीय आचरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। अस्तु, स्पष्ट है कि महाकाव्य की रचना का जातीय एवं देशीय जीवन के सांस्कृतिक उन्नयन में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

(द) उन्नत विचार दर्शन—विचार-दर्शन से अभिप्राय जीवन-दर्शन है। जीवन-दर्शन का सम्बन्ध कवि के उस दृष्टिकोण से है जिसके आधार पर वह जीवनगत प्रश्नों और समस्याओं पर विचार करता है। जीवन-दर्शन का निर्माण करने वाले तत्त्व हैं—अनुभव, चिन्तन और साधना। महाकाव्य में जिस जीवन-दर्शन की प्रस्थापना होती है वह मूलतः कवि की वैयक्तिक अनुभूति, चिन्तन और साधना की सामाजिक परिणति है। महाकाव्यकार का समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करने के लिए जीवन दृष्टि निर्धारित करना ही पड़ता है। इस जीवन-दृष्टि को ही जीवन-दर्शन अभिधान दिया गया है। इस दृष्टि के दो रूप हैं—एक परम्परागत और दूसरा प्रगतिशील। महाकाव्य में दोनों ही अपेक्षित हैं।

परम्परागत जीवन-दृष्टि का आधार लेकर महाकाव्यकार कृति में दार्शनिक प्रवृत्तियों और मान्यताओं के परम्परागत स्वरूप को प्रस्तुत करता है जैसे ईश्वर, माया, जीव, मोक्ष, नियति, काल, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, धर्म का स्वरूप आदि।

प्रगतिशील जीवन-दृष्टि का आधार ग्रहण कर वह परम्परागत दार्शनिक मान्यताओं की युग सापेक्ष व्याख्या और युगधर्म का निरूपण सामयिक सन्दर्भों में प्रस्तुत करना है। जैसे समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्वभाव, कर्तव्यपरायणता, परमार्थ, आत्म-विश्वास, कल्याण, मानव के मंगल और अभ्युदय के लिए साधना के महत्त्व का निरूपण आदि।

आज के युग (विज्ञान युग) की काव्य रचना में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता होती है। आज का काव्यकार मात्र भावप्रवण प्राणी न होकर बुद्धिजीवी कलाकार होता है। उसका लक्ष्य रसानुभूति ही नहीं वरन् वैचारिक उपलब्धि भी है। अस्तु महाकाव्य में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गहन उन्नत विचार दर्शन की आयोजना होती है।

(५) संजीवनी शक्ति प्रदान करने की क्षमता—महाकाव्य की रचना का कोई महत्त्व नहीं यदि उसमें जीवन का अदम्य उत्साह और आशाप्रद सन्देश प्रसारण की संजीवनी शक्ति न हो। जीवन की परिस्थिति द्वन्द्व, सामाजिक परिवर्तनों, राष्ट्रीय जीवन के सम विषम प्रभावों एवं विश्व जीवन की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने की सामर्थ्य महाकाव्य में होना चाहिए। महाकाव्यों में जिस शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह और प्रेरणा को हम पाते हैं वह तत्त्वतः व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधि रूप है। इसीलिए महाकाव्य व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर राष्ट्रीय धरोहर और विश्व निधि होते हैं। तुलसी का रामचरितमानस 'स्वान्तः सुखाय' होते हुए भी जातीय गौरव और राष्ट्रीय गरिमा का काव्य है। उसमें वह संजीवनी शक्ति है जिसके कारण शताब्दियों से वह महाकाव्य भारतीय जनता का कण्ठहार हो रहा है। अनेक स्वदेशी विदेशी भाषाओं में अनूदित हो जाने पर उसका क्षेत्र और महत्त्व व्यापक होता जा रहा है। महाकाव्यों की यही संजीवनी शक्ति उन्हें युगों तक जीवित रखती है। वे समय चक्र की घूर्णन गति से काल-कवलित तो क्या धूल धूसरित भी नहीं होते। महाकाव्यों की इसी अमोघ शक्ति को संजीवनी शक्ति कहते हैं।

इस प्रकार लोक प्रख्यात कथानक, उदात्त चरित्र सृष्टि, विशिष्ट रचना शिल्प और महत् उद्देश्य एवं जीवन दर्शन महाकाव्य रचना के स्थायी एवं अनिवार्य तत्त्व हैं। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर किसी भी महाकाव्य कहे जाने वाली कृति की समालोचना भी की जा सकती है। अस्तु इन्हें हम महाकाव्य सृजन के प्रतिमान और महाकाव्यालोचन के मानदण्ड दोनों ही कह सकते हैं।

महाकाव्य-रचना और पौराणिक कथानक

आज के युग (विज्ञान युग) की काव्य रचना में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता होती है। आज का काव्यकार मात्र भावप्रवण प्राणी न होकर बुद्धिजीवी कलाकार होता है। उसका लक्ष्य रसानुभूति ही नहीं वरन् बौद्धिक उपलब्धि भी है। अस्तु महाकाव्य में इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक उन्नत विचार दर्शन की आयोजना होती है।

(५) सजीवनी शक्ति प्रदान करने की क्षमता—महाकाव्य की रचना का कोई महत्त्व नहीं यदि उसमें जीवन का अजस्र उत्साह और आशाप्रद सन्देश प्रसारण की सजीवनी शक्ति न हो। जीवन की परिस्थिति जन्य सामाजिक परिवर्तनों, राष्ट्रीय जीवन के सम विषम प्रभावों एवं विश्व जीवन की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने की सामर्थ्य महाकाव्य में होना चाहिए। महाकाव्यों में जिस शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह और प्रेरणा को हम पाते हैं वह तत्त्वतः व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधि रूप है। इसीलिए महाकाव्य व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर राष्ट्रीय धरोहर और विश्व निधि होते हैं। तुलसी का रामचरितमानस स्वान्तःसुखाय होते हुए भी जातीय गौरव और राष्ट्रीय गरिमा का काव्य है। उसमें वह सजीवनी शक्ति है जिसके कारण शताब्दियों से वह महाकाव्य भारतीय जनता का कण्ठहार हो रहा है। अनेक स्वदेशी विदेशी भाषाओं में अनूदित हो जाने पर उसका क्षेत्र और महत्त्व व्यापक होता जा रहा है। महाकाव्यों की यही सजीवनी शक्ति उन्हें युगों तक जीवित रखती है। वे समय चक्र की घूर्णन गति से कालकवलित तो क्या धूल धूसरित भी नहीं होते। महाकाव्यों की इसी अमोघ शक्ति को सजीवनी शक्ति कहते हैं।

इस प्रकार लोक प्रख्यात कथानक, उदात्त चरित्र सृष्टि, विशिष्ट रचना शिल्प और महत् उद्देश्य एवं जीवन दर्शन महाकाव्य रचना के स्थायी एवं अनिवार्य तत्त्व हैं। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर किसी भी महाकाव्य कही जाने वाली कृति की समालोचना भी की जा सकती है। अस्तु इन्हें हम महाकाव्य सृजन के प्रतिमान और महाकाव्यालोचन के मानदण्ड दोनों ही कह सकते हैं।

महाकाव्य-रचना और पौराणिक कथानक

समुचित प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य की अद्यावधि सभी प्रमुख विधाओं (यथा कहानी उपन्यास नाटक एकांकी काव्य आदि) में पुराणों के कथानकों विचार परम्पराओं और नीतियों का प्रयोग हुआ है। काव्य के विभिन्न रूपों में महाकाव्य का प्रमुख स्थान है। गुरुत्व और गाम्भीर्य की दृष्टि से तो दीप। महाकाव्य में युग जीवन की चेतना का विराट चित्र और उच्च उद्घोष होता है। महाकाव्यकार अपनी काव्य प्रतिभा में सम्पन्न कलाकार होता है। उसके शब्दनाद में समाजों के सांस्कृतिक सृजन और समुन्नयन के गीत की स्वर लहरी होता है। वह काव्य का महान प्रणेता होता है। उसकी रचना महा की महता से समोचित की जाती है। प्रस्तुत प्रसंग में इस काव्य रूप (महाकाव्य) के सृजन में पौराणिक इतिवृत्त के अनुदान पर विचार अभीप्सित है।

हम इस तथ्य को तथ्याभूत करके चल रहे हैं कि महाकाव्य का विधायक अपने काव्य की सामग्री का सकलन ज्ञानराशि के अथाह सागर का जीवन और चेतना स्पन्दित ऊर्मियों से करता है। महाकाव्य प्रबन्धकाव्य का वह भेद है जिसमें अनिवार्यत कथाक्रम होता है। कथानक महाकाव्य का अपरिहार्य अंग या प्रमुख उपकरण है। महाकाव्यों के कथानकों की प्राप्ति के अक्षय भण्डार पुराण ग्रन्थ रहे हैं। हिन्दी ही नहीं अपितु भारतीय और विश्व महाकाव्य को इस दृष्टि से अध्ययन करने पर यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि उनका वृहद् अंश पौराणिक कथानक और निजन्धरी आख्यानों (Myths and Legends) पर अवलम्बित है। सभी साहित्यों के आदि और प्राचीन महाकाव्यों पर तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। यदि हम अपने अध्ययन क्रम की परिधि सीमित करके भी विचार करें अर्थात् संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के महाकाव्यों को ही कथानक की दृष्टि से पर्यालोचन करें तो भी हम पौराणिक प्रभाव स्वीकार करना पड़ेगा। इसका एक कारण यह भी है कि पुराणों की कथाएँ महाकाव्य वस्तु के लिए निर्दिष्ट सभी गुणों से सम्पन्न हैं। संस्कृत काव्याचार्यों द्वारा दिये गये महाकाव्य वस्तु विषयक सभी निर्देशों का इन पर सफल निर्वाह भी हो जाता है।

हिन्दी के महाकाव्यकारों ने पुराणों के अक्षय कथा भण्डार से सामग्री का सकलन किया है। पौराणिक कथा-वस्तु से संपृक्त महाकाव्यों में कतिपय के नाम इस प्रकार हैं—रामचरितमानस रामचन्द्रिका रामचरित चिन्तामणि प्रियप्रवास साकेत कामायनी वर्द्धमान कृष्णायन साकेत सत दत्यवंश रावण पार्वती रश्मिरथी एकलव्य कुरुक्षेत्र अंगराज उर्मिला तारकवध सेनापति कर्ण नल नरेश उर्वशी आदि।

इन महाकाव्यों में पौराणिक वस्तु को कहीं तो मूल रूप में कहीं सांकेतिक रूप में और कहीं तत्त्व रूप में ग्रहण किया है। पौराणिक कथाओं की कुछ काव्यात्मक विशेषताएं भी हैं। उदाहरण के लिए अर्थ वैभिन्य अर्थ वैचित्र्य आदि। पौराणिक कथाओं के साहित्यिक परीक्षण करने पर हम इन कथाओं के आध्यात्मिक भौतिक और ऐतिहासिक अर्थों के अतिरिक्त सार्वभौमिक प्रतीक परम्परित और लोक विश्रुत अर्थ भी मिलते हैं। पौराणिक कथाओं को प्राय कथा कल्पित असंगत और अतिरंजित कहकर तिरस्कृत किया जाता है किन्तु यह अल्पज्ञता का प्रमाण है। पौराणिक कथाओं के गम्भीर अध्ययन से उनके तात्त्विक अर्थ प्राप्त हुए हैं जो ज्ञानार्जन और साहित्य सृजन दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। पं० रामप्रसाद त्रिपाठी ने वायु पुराण की भूमिका में बताया है कि— वायु पुराण के अन्तर्गत नहुष ययाति तुर्वश आदि राजाओं के वर्णन दोनों पक्ष में अपना रहस्यपूर्ण स्थान रखते हैं। जब हम इन कथाओं पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हुए वैदिक वर्णनों से तुलना करते हैं तो हम यह राजा के बजाय आकाशीय पदार्थ हो जाते देखते हैं। वायु पुराण में नहुष के लड़के का नाम ययाति था। उसकी रानी शुक्र की कन्या थी। दूसरी रानी का नाम वृषपर्वा था। वैदिक आख्यान से संगति मिलाते हुए जब हम पौराणिक आख्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं तो ययाति शुक्र की कथा और वृषपर्वा सभी आकाशीय पदार्थ ही सिद्ध होते हैं।[3] इसके अतिरिक्त पौराणिक कथाओं के सूक्ष्म अध्ययन पर इन कथाओं में हम सत्य और कल्पना यथार्थ और आदर्श आदि साहित्यिक कथातत्त्व भी पाते हैं। कथाओं में प्राकृत, अतिप्राकृत और अप्राकृत घटना चक्र तथा कार्य व्यापार सभी सप्रयोजन हैं। उदाहरण के लिए श्री त्रिपाठी ने समुद्रमथन की कथा का विश्लेषण करते हुए बताया है कि समुद्रमथन के द्वारा यह संकेत किया है कि अमृत और विष दोनों इस संसार रूपी महासागर से ही निकलते हैं। किसी उत्तम वस्तु की प्राप्ति में या आविष्कार में शक्ति (असुर) और ज्ञान (सुर या सत्त्व) और रज या तम (असुर) के परस्पर सहयोग की आवश्यकता होती है। परन्तु उपयोग के समय सत्त्व और ज्ञान की ही आवश्यकता है अन्यथा आसुरी शक्ति प्रबल होकर विश्व संहार कर देगा।[4]

हिन्दी के महाकाव्य रचयिताओं ने पुराणों से वस्तु ग्रहण करके उसमें युगानु

---

[3] पं० रामप्रसाद त्रिपाठी, वायु पुराण, भूमिका पृ० ८

[4] वही पृ० १६

हिन्दी महाकाव्य स्वरूप-विकास

हिन्दी महाकाव्य के उद्भव और विकास की आख्यायिका का सम्बन्ध भारतीय महाकाव्य-परम्परा से है। भारतीय महाकाव्य का स्वरूप विकास विभिन्न युगों की भावना और संजीवनी शक्ति का परिणाम है। यद्यपि भारतीय महाकाव्य का प्राचीनतम लिखित रूप हमें रामायण और महाभारत में मिलता है तथापि उस रूप के निर्मित होने में उससे पूर्व भी कुछ समय लगा होगा। वास्तव में महाकाव्यों का उदय मानव-सभ्यता की अल्प या अर्द्ध विकसित अवस्था में हुआ है। इसलिए महाकाव्य के स्वरूप विकास का सम्यक् अध्ययन करने के लिए मानव-सभ्यता के विकसनशील युगों के ऐतिहासिक सन्दर्भ ग्रहण करना नितान्त अनिवार्य है। मनुष्य ने जब बर्बरता की अवस्था को पार करके संगठित रूप में रहना सीखा (रक्षा की दृष्टि से अथवा अन्य कारणों से) तो सर्वप्रथम कबीले बने। इन कबीलों का आधार जातियाँ थीं। इन कबीलों के सभी कार्य सामूहिक ढंग से हुआ करते थे। इन कबीलों समाजों की धार्मिक चेतना विभिन्न अवसरों पर नृत्यों और गीतों के रूप में अभिव्यक्त हुआ करती थी। आज भी पिछड़ी हुई जातियों में नृत्यगीत और गाननृत्य की प्राचीन परम्पराएँ प्रचलित हैं। इन्हीं नृत्यगीतों में आदिम काव्य के रूप का सवाल किया जा सकता है। कबीला युग की अपनी विशेषताएँ थीं—उस समय युग में वीरों की पूजा होती थी क्योंकि शौर्य साहस और पराक्रम ही तत्कालीन जीवनादर्श थे। यह कबीला समाज शक्ति-पूजक था। शक्तिशाली व्यक्ति ही उस कबीला जनसमाज के नायक होते थे। साहित्येतिहासों में इसे वीरयुग (Heroic Age) अभिधान दिया गया है। इस प्रकार का युग संसार के प्राय सभी देशों के इतिहास में मिलता है। प्रत्येक देश के आदिम काव्यों में वीरभावनाओं का ही उत्कर्ष दिखाई भी देता है। प्रारम्भिक महाकाव्यों की रचना का आधार भी वीरगाथाएँ ही हैं। कालान्तर में इन गाथाओं ने गाथाचक्रों (Cycles of Ballads) का रूप ग्रहण किया जिनसे महाकाव्य का आरम्भिक रूप निर्मित हुआ।

वीरगाथाओं में वीरों की प्रशंसा के गान हुआ करते थे। विद्वानों का मत है कि प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में वीरों की स्तुतियाँ प्रचलित थीं।

ऋग्वेदादि ग्रन्थों में भी इन्द्र, अग्नि आदि शक्तिशाली देवों (वीरों) के कार्यों की प्रशंसा के गीत पाये जाते हैं जिनमें भारतीय महाकाव्य के मूल प्रतिपाद्य विषय की झलक देखी जा सकती है।[1] और यह मत है कि उन्हीं प्राचीनकाल से ही इस देश में महाकाव्यों की रचना हुआ करती थी। मैक्समूलर का मत है कि वीरों और देवताओं की प्रशंसा में गाये जाने वाले गीत भारत और अन्य आर्य राष्ट्रों में बहुत प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध थे। इसलिए महाकाव्य के रूपानुसन्धान के लिए वीरगाथा की खोज रामायण और महाभारत में नहीं अपितु वेदों में करनी चाहिए। अतः वैदिक गीतों को महाकाव्य कहा जा सकता है।[2] प्राचीनतम लिखित वाङ्मय का रूप आज वैदिक साहित्य के रूप में उपलब्ध है और वेदों में महाकाव्य के प्रारम्भिक मूल रूप की उपलब्धि उसकी प्राचीनता की ही द्योतक है। भारतीय महाकाव्य की प्राचीनता का द्योतक वेद के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ हो भी कौन-सा सकता है? मानव जाति ने अपनी आदिम अवस्था में काव्य रचना किस प्रकार की, इसका निश्चित प्रमाण आज उपलब्ध भी नहीं है। किन्तु जैसा प्रारम्भ में कहा गया है कि आज भी अविकसित (अर्द्ध-सभ्य या असभ्य) जातियों की रीतियों और परम्पराओं के अध्ययन द्वारा तत्कालीन समाज की मनोवृत्तियों के बारे में अनुमानाधारित तथ्यों को जाना जा सकता है और इसी क्रम से वैज्ञानिक अध्ययन भी। आदिवासी जातियों की विभिन्न परम्पराओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में अन्धविश्वास बहुत होंगे। मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत होकर उनकी उपासना करता होगा। इस उपासना में बलिदान की प्रथा मुख्य

१ Songs in celebrations of great heroes were current in India from very oldest time. The deeds of Indra and other Gods ...

२ This is not meant denial that the real epic poetry that is to say a mass of popular songs celebrating the power of exploits of Gods and heroes existed in very early periods in India as well as among the other Aryan nations but it shows that if it is existing it is not in the Mahabharata and Ramayana we have to look for these old songs but rather in Veda itself. In the collection of the Vedic hymns there are some which may be called epic and may be compared with the shortest hymns ascribed to Homer. —Max Muller, *A History of Ancient Sanskrit Literature*, p. 19

रही होगी। उत्सव के अवसर पर कबीलों के लोग एकत्रित होकर गान गाकर और नृत्य करके अपने मनोभावों को अभिव्यक्ति देते होंगे। जादू मन्त्र तन्त्र और टोने में उन लोगों का अधिक विश्वास रहा होगा। इस प्रकार मानव जाति के आदिम समाज के हर्ष उल्लास आमोद प्रमोद की भावाभिव्यक्ति सामूहिक रूप में नृत्य और गीत के रूप में होती थी। डा० शम्भूनाथ सिंह ने महाकाव्य के विकास की प्रारम्भिक सामूहिक गीतों से लेकर अलङ्कृत महाकाव्य तक छ स्थितियाँ बतलायी हैं। वे इस प्रकार हैं[3]

१ सामूहिक गीत नृत्य (Coral Music and Dance)
२ आख्यान नृत्य गीत (Ballad Dance)
३ आख्यान और गाथा (Lays and Ballads)
४ गाथा चक्र (Cycles of Ballads)
५ प्रारम्भिक महाकाव्य (Epic of Growth)
६ अलङ्कृत महाकाव्य (Epic of Art)

वैदिक साहित्य में धार्मिक मन्त्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मन्त्र भी उपलब्ध हैं जिनमें आख्यान का स्वरूप निहित है। इन्हें आख्यान-सूक्त भी कहा जाता है। इन सूक्तों का रूप संवादात्मक और नाटकीय है। ऋग्वेद में इन्द्रसूक्त के अन्तर्गत जो वर्णन मिलता है उसमें महाकाव्य के प्रारम्भिक लक्षण स्पष्ट रूप से मिल जाते हैं। ऐसे ही संवाद और आख्यान जब किसी प्रतिभाशाली कवि द्वारा एक साथ सङ्ग्रहीत कर दिये गये तो महाकाव्य का जन्म मिल गया। आगे चलकर महाभारत में संवाद के भीतर संवाद की जो अनेक स्थितियाँ दीखती हैं वह सम्भवतः इन्हीं वैदिक आख्यानों की प्रेरणा से विकसित हुई होंगी।[4] इसके अतिरिक्त वेदों में कुछ ऐसी प्रशंसाएँ भी मिलती हैं जिन्हें दानस्तुति गाथा नाराशंसी और कुन्तापसूक्त कहा जाता है। इन प्रशंसाओं में राजाओं की वीरता का वर्णन है। विण्टरनित्स आदि विद्वानों का मत है कि इन प्रशंसात्मक सूक्तों से ही महाकाव्य के रूप का भी प्रादुर्भाव हुआ।[5]

वेदों के अनन्तर पौराणिक काल में आकर आख्यानों ने कथाओं का रूप

---

3 हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ४

4 डा० शकुन्तला दुबे काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास पृ० ४५

5 These songs in praise of man probably soon developed into epic poems of considerable length i e heroic songs and into entire cycles of epic songs entering around one hero
—M Winternitz *A History of Indian Literature* Vol I p 314

धारण किया। यद्यपि इन पौराणिक कथाओं की रचना में मूल रूप से विभिन्न आख्यानों एवं परम्परागत अनुश्रुतियों आदि का भी योगदान रहा है तो भी पौराणिक कथाओं में ऐतिहासिक तथ्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पुराणों में भारतीय जीवन और समाज का बहुत व्यापक रूप से चित्रण किया गया है। वेदों के पश्चात् पुराण ही लोकप्रिय एवं उपादेय सामग्री से सम्पन्न ज्ञानराशि के ग्रन्थ हैं। पुराणों में भारतीय संस्कृति और साहित्य की चिरन्तन निधि सुरक्षित है। भारतीय मनीषा के व्यापक चिन्तन और चेतना के सम्यक् विकास का समृद्ध रूप पुराणों में ही प्राप्य है। जन-जीवन की सांस्कृतिक चेतना के अभ्युदय और विकास का जितना भव्य, विराट और महान् चित्र अंकित करने में पुराणकार सफल हुए हैं उतना भारतीय वाङ्मय के किसी रूप का कोई भी लेखक नहीं। पुराणों की महत्ता का मूल कारण उनका लोकग्राह्य होना है। पुराण सच्चे अर्थों में जनवाणी साहित्य हैं क्योंकि उनकी भाषा, भाव, विचार, परम्परा, जीवन-दर्शन, आदर्श एवं प्रतिपाद्य सभी का आधार तत्कालीन जनवाणी प्रवृत्तियाँ और लोकप्रचलित परम्पराएँ हैं। पुराणों में असंख्य आख्यान हैं जो साहित्य स्रष्टाओं को सृजनात्मक उपकरण प्रदान करते रहे हैं। पुराणों में विषयों की व्यापकता इतनी अधिक है कि उसमें अन्विति का अभाव है। पुराणों की कथाएँ अव्यवस्थित रूप में बिखरी हुई हैं और काव्य तत्त्व का भी उनमें अभाव है। समय-समय पर बहुत से नये-नये आख्यान भी उनमें जुड़ते रहे हैं जिनके कारण उनकी ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता भी सन्दिग्ध बनी रही। अस्तु पुराणों में महाकाव्य का कोई निश्चित रूप उपलब्ध नहीं होता है। हाँ, पुराण ग्रन्थों ने महाकाव्यों की रचना के लिए विषय-सामग्री (कथानक) प्रदान करने में निश्चय ही महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

महाकाव्यों की सुव्यवस्थित परम्परा का विकास रामायण और महाभारत से होता है। भारतीय वाङ्मय के इन दोनों ग्रन्थों को पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों ने एक मत से महाकाव्य स्वीकार किया है। हिन्दी महाकाव्य की सम्पूर्ण परम्परा का विकास रामायण और महाभारत कथा-प्रसंगों, आख्यानों एवं उपाख्यानों को लेकर हुआ है। इसीलिए इन दोनों काव्यों को आर्ष ग्रन्थ अभिधान दिया जाता है। इन ग्रन्थों का हमारे जीवन, समाज और संस्कृति से गहन सम्बन्ध है। संस्कृत साहित्य में रामायण और महाभारत से बढ़कर कोई महाकाव्य नहीं लिखा गया है। भाषा, भाव, कला, शिल्प, शैली, चरित्र-चित्रण, कथा-संयोजन आदि सभी दृष्टियों से इन महाकाव्यों को परवर्ती कवियों ने आदर्श रूप में स्वीकार किया है। रामायण और महाभारत दोनों ही संकलनात्मक

महाकाव्य हैं। संस्कृत महाकाव्य की सुदीर्घ परम्परा का विकास इन्हीं महाकाव्यों का आदर्श मान कर हुआ। प्राचीन काव्याचार्यों ने महाकाव्य के जिन लक्षणों का निरूपण किया है उनमें भी इन महाकाव्यों का योगदान है। वास्तव में परवर्ती महाकाव्यकारों ने महाभारत से कथातत्त्व ग्रहण किया शैली और शिल्प विधान की प्रेरणा का स्रोत रामायण बना। इस प्रकार रामायण और महाभारत लिपिबद्ध (लिखित) महाकाव्य परम्परा के दो आदि ग्रन्थ कहे जा सकते हैं।

संस्कृत में कलात्मक महाकाव्यों (Epic of Art) की एक सुव्यवस्थित परम्परा मिलती है। कालिदास से पूर्व महाकाव्य का इतिहास अन्धकारमय सा है। केवल अश्वघोष के 'बुद्धचरित' और सौन्दरनन्द नामक दो महाकाव्य ही कालिदास से पूर्व उपलब्ध होते हैं। अश्वघोष के पश्चात कालिदास के दो महाकाव्य कुमार सम्भव और रघुवंश भारवि का किरातार्जुनीय माघ का शिशुपालवध और श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरित' संस्कृत के पाँच उत्कृष्ट महाकाव्य हैं। इन सभी महाकाव्यों में उच्चकोटि का काव्यत्व एवं कला-कौशल प्रदर्शित हुआ है। लक्षणकारों ने महाकाव्य की जो परिभाषाएँ दी हैं उनका आधार यही महाकाव्य हैं। संस्कृत के अन्य महाकाव्यों में भट्टी कविकृत रावणवध कुमारदास कृत जानकीहरण रत्नाकर कृत हरविजय कविराज कृत राघवपाण्डवीय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत की भाँति ही पाली प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में भी महाकाव्यों की रचना हुई है। पाली में दीपवंश और महावंश दो ऐतिहासिक महाकाव्य लिखे गये हैं। प्राकृत के महाकाव्यों में प्रवरसेन का सेतुबन्ध और कृष्णलीला का चिह्नकाव्य (सिरिचिंध काव्य) उपलब्ध हैं। प्राकृत में ही वाक्पतिराज का गौडवहो और रामपाणिवाद का उषानिरुद्ध नामक महाकाव्य मिलते हैं। अपभ्रंश में जैन कवियों ने अनेक चरितकाव्यों की रचना की है, जिनमें स्वयम्भू का पउमचरिउ (रामायण) पुष्पदन्त का महापुराण (तिसट्ठिमहापुरिस गुणालंकार) और धनपालकृत भविसयत्तकहा के नाम उल्लेखनीय हैं। अधिकांश जैन चरित काव्यों में काव्य की अपेक्षा धार्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता है। विकासक्रम की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्य परम्परा संस्कृत की अपेक्षा अपभ्रंश से ही अधिक प्रभावित है।

हिन्दी महाकाव्य परम्परा का प्रारम्भ चन्दबरदाई के पृथ्वीराजरासो से होता है। उसकी ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विभिन्न प्रवादों के प्रचलित होते हुए भी वह हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। इसके अनन्तर भक्तिकाल के महाकाव्यों में जायसी के पद्मावत और तुलसीकृत रामचरित

मानस उल्लेखनीय है। रीतिकाल में महाकाव्यों का विकास अवरुद्धप्राय रहा। आचार्य केशव ने रामचन्द्रिका की रचना अवश्य की है किन्तु उसे एक सफल महाकाव्य नहीं कहा जा सकता यद्यपि उसमें पाण्डित्य प्रदर्शन का आग्रह ही अधिक दिखायी देता है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में महाकाव्यों की एक व्यवस्थित परम्परा मिलती है जिसका सूत्रपात हरिऔध के प्रियप्रवास से होता है। प्रियप्रवास की रचना का आधार कृष्ण कथा है। प्रियप्रवास में राधा और कृष्ण के परम्परित रूप को युगीन सम्भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में परिष्कार करके उन्हें लोकसेवक और लोकसेविका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक काल का दूसरा सफल महाकाव्य श्री मैथिलीशरणगुप्त का साकेत है जिसकी रचना राम कथा की उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र को लेकर हुई है। इसके पश्चात इस युग के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य कामायनी की रचना महाकवि श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा हुई। कामायनी में मानवता के विकास का सुन्दर रूपक पौराणिक आख्यान को आधार बना कर प्रस्तुत किया गया है।

कामायनी के अनन्तर जिन महाकाव्यों की रचना हिन्दी में हुई है उनके रचयिता सहित नाम निम्न प्रकार हैं

वैदेही वनवास (हरिऔध) कृष्णायन (द्वारिका प्रसाद) साकेतसन्त (बलदेव प्रसाद) सिद्धार्थ (अनूप शर्मा) नूरजहाँ (गुरुभक्तसिंह) दैत्यवंश (हरदयालुसिंह) अंगराज (आनन्दकुमार) वर्द्धमान (अनूपशर्मा) रावण (हरदयालुसिंह) जयभारत (मैथिलीशरणगुप्त) पार्वती (डा० रामानन्द तिवारी) रश्मिरथी (दिनकर) मीरा (परमेश्वर द्विरेफ) एकलव्य (डा रामकुमार वर्मा) उर्मिला (बालकृष्ण नवीन) तारकवध (गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश) सेनापति कर्ण (लक्ष्मीनारायण मिश्र) कुरुक्षेत्र (दिनकर) श्रीरामचन्द्रोदय (रामनाथ ज्योतिषी) कृष्णचरित मानस (पद्मसिंह) जौहर (श्यामनारायण पाण्डेय) आर्यावर्त्त (मोहनलाल महतो) हल्दीघाटी (श्याम नारायण पाण्डेय) विक्रमादित्य (गुरुभक्तसिंह) महामानव (ठाकुरप्रसाद सिंह) जननायक (रघुवीरशरण मित्र) अंगराज (ठाकुर गोपालशरण) देवार्चन (रांगेय राघव) झाँसी की रानी (श्यामनारायण) युगद्रष्टा प्रेमचन्द (परमेश्वर द्विरेफ) सारथी (डा रामगोपाल दिनेश) उर्वशी (दिनकर) लोकायतन (सुमित्रानन्दन पन्त) रामराज्य (डा बलदेवप्रसाद मिश्र) दमयन्ती (ताराचन्द हारीत) नारी (अनूपकृष्ण शास्त्री) कैकेयी (केदारनाथ मिश्र

प्रभात) प्रिय मिलन (नन्दकिशोर झा) बाणाम्बरी (रामावतार अरुण पोद्दार) मानवेन्द्र (रघुवीरशरण मित्र)।

इनके अतिरिक्त भी कुछ नाम हैं जैसे रामचरित चिन्तामणि, कान्तिकिशोर, विश्वज्योति बापू, नवाणी, अनग आदि।

महाकाव्यों की उपर्युक्त विस्तृत सूची को देखकर हिन्दी महाकाव्य सृजन की समृद्ध परम्परा का सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ मैं इस प्रश्न के मूल में नहीं जाना चाहता कि उपर्युक्त सूची में कितने महाकाव्य हैं, कितने मात्र प्रबन्धकाव्य या तथाकथित महाकाव्य हैं? अथवा एकार्थकाव्य या महाकाव्याभास इन कोटि के प्रबन्धकाव्य हैं। यह अलग से महाकाव्य रचना के सिद्धान्तों से सम्बन्धित विषय है। इस सम्बन्ध में हिन्दी के सुधी समीक्षकों में मतैक्य भी नहीं। डा० शम्भूनाथ सिंह ने पृथ्वीराजरासो, पद्मावत, आल्हा खण्ड, रामचरितमानस और कामायनी केवल पाँच ही ग्रन्थों को महाकाव्य माना है। डा० गोविन्दराम शर्मा ने इनके अतिरिक्त प्रियप्रवास, साकेत, कृष्णायन, वैदेही वनवास, साकेत सन्त आदि को आधुनिक काल के प्रतिनिधि महाकाव्य तथा अन्य ग्रन्थों को अन्य महाकाव्य और तथाकथित महाकाव्य शीर्षक के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। महाकाव्य पर शोध करने वाले विद्वानों में डा० प्रतिपालसिंह, डा० श्यामनन्दनकिशोर, डा० श्यामसुन्दर व्यास प्रभृति विद्वानों ने उपर्युक्त सूची के सामान्यतः अधिकांश ग्रन्थों को महाकाव्य ही स्वीकार किया है। वस्तुतः युग जीवन की सांस्कृतिक चेतना की विशिष्ट शिल्पविधि में कलात्मक अभिव्यक्ति करने वाली प्रबन्धरचना को महाकाव्य स्वीकार किया जाना ही चाहिए।

हिन्दी के महाकाव्यों की रचनाविधि (शिल्प) सांस्कृतिक चित्रण, जीवन दर्शन, समस्या, उपलब्धियों पर विचार किया जाय तो निश्चय ही हिन्दी महाकाव्य प्रगतिपथगामी प्रतीत होता है। अधिकांश महाकाव्यों की विषय सामग्री यद्यपि पौराणिक है तथापि उनमें वर्तमान युगजीवन को प्रेरित करने की अनन्त शक्ति और सामर्थ्य भी है। पौराणिक विषयों के अतिरिक्त हमारे युग के पराक्रमी महान् व्यक्तियों एवं महापुरुषों पर भी महाकाव्यों की रचना हुई है। महामानव, जननायक, जगनायक, विश्वज्योति बापू नामक महाकाव्य गाँधीजी के महिमामय व्यक्तित्व की गाथा कहते हैं। मानवेन्द्र पं० जवाहरलाल नेहरू पर लिखा गया महाकाव्य है। हल्दीघाटी में महाराणा प्रताप सिंह की गाथा, में महारानी लक्ष्मीबाई, [illegible] में तुलसीदास, युगद्रष्टा में प्रेमचन्द, भारती में भारत का, बाणाम्बरी में बाणभट्ट, सिद्धार्थ में गौतमबुद्ध

वर्द्धमान में भगवान महावीर, आर्यावर्त्त में महाराज पृथ्वीराज आदि युगप्रवर्त्तक चरित्रों का वैभवशाली चित्रण है। हिन्दी के महाकाव्य मात्र राम कृष्ण की कथाएँ ही न रहे। उपेक्षित और तिरस्कृत पात्रों पर ही नहीं वरन् सामान्य स्तर एवं निम्नवर्णी चरित्रों पर भी हिन्दी महाकाव्यों की रचना हुई है। सूत पुत्र कर्ण के चरित्र पर सेनापति कर्ण, रश्मिरथी, सेनापति कर्ण एवं अंगराज नामक चार महाकाव्य लिखे गये हैं। रावण और दुर्योधन के राजाओं पर महाकाव्य रचना हुई है। निषाद पुत्र एकलव्य पर डा० रामकुमार ने महाकाव्य लिखा है। हमारे युग की व्यापकतम अभिव्यक्ति पन्तकृत लोकायतन और डा० रामगोपाल सिंह कृत सारथी नामक महाकाव्यों में द्रष्टव्य है। उपेक्षित पात्रों में भरत, कैकेयी, उर्मिला, दमयन्ती आदि पात्रों पर स्वतन्त्र महाकाव्य रचे गये हैं।

इस प्रकार हिन्दी महाकाव्यों में सृजन की सामर्थ्य का उत्तम आदर्श प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी के कतिपय समीक्षक प्राय यह कहते हैं कि वर्तमान युग गद्य का है, महाकाव्य का स्थान उपन्यास ने ले लिया है आदि। किन्तु यह सर्वथा सत्य नहीं है। वस्तुत महाकाव्य की रचना युग जीवन के व्यापक संघर्ष, सामाजिक उत्थान पतन तथा जीवन मूल्यों के उत्कर्ष अपकर्ष को व्यंजित करने के लिए होता है। इस दृष्टि से विचार करें तो महाकाव्य प्रत्येक युग के लिए अपेक्षित है। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में— प्रत्येक युग का जीवन महाकाव्य की माँग करता है क्योंकि महाकाव्यबद्ध होकर ही वह परिपूर्णता और सार्थकता को प्राप्त होता है।[६] इसी सन्दर्भ में श्री रामधारी सिंह दिनकर का मत भी द्रष्टव्य है कि— अगर परस्पर विरोधी भावों का आक्रमण कवि को महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दे सकता है तो उसका समय आज है। अगर महाकाव्य की रचना का समय वह युग होता है जबकि प्रश्नों की विभिन्न धाराएँ अपना समाधान पाने के लिए किसी समुद्र की खोज में वेग से दौड़ती हैं तो वह समय आज हुआ है। यह संस्कृति के मन्थन का समय है यह परम्पराओं के परिवर्तन का काल है, क्या इससे भी और अधिक उपयुक्त समय चाहिए।[७] अस्तु स्पष्ट है कि महाकाव्य सृजन की सम्भावनाएँ पूर्ववत ही हैं।

हिन्दी महाकाव्यों का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन करने से उनकी रचना का महत्त्व और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। हिन्दी के महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

---

[६] सरस्वती संवाद महाकाव्य विशेषांक पृ० २

[७] दिनकर अर्धनारीश्वर महाकाव्य की वेला नामक निबंध पृ० ५

है—मानवतावादी जीवन दर्शन, सांस्कृतिक निष्ठाओं और उच्च भावनाओं की प्रतिष्ठा, नारी चेतना और जनजागृति का उद्घोष, शिल्पविधि की नवीनता और पात्रों का युगीन परिसन्दर्भों में प्रस्तुतीकरण। इन विशेषताओं के बल पर ही महाकाव्य काव्य की महानता को प्राप्त करते हैं। हिन्दी के महाकाव्यों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानवतावादी जीवनदृष्टि का विकास और भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं के अभ्युदय में योगदान है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधित्व, युगीन चेतना की अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक उन्नयन, सामाजिक उत्थान, कलात्मक कौशल और काव्यात्मक वैभव से सम्पन्न होने के कारण हिन्दी महाकाव्य रचना का भविष्य निश्चय ही आशापूर्ण एवं आलोकमय है। वर्तमान युग के महाकाव्य हिन्दी भाषा और साहित्य की सर्वोन्मुखी प्रगति के परिचायक हैं।

हिन्दी महाकाव्य · प्रसादोत्तर

हिन्दी महाकाव्य प्रसादोत्तर

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने एक स्थान पर लिखा है कि— 'विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं, वे सूचित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।'[1] इस कथन के आलोक में यदि हिन्दी महाकाव्य परम्परा पर दृष्टिपात किया जाय तो वह नितान्त प्रगतिशील एवं सार्थक प्रतीत होती है। पृथ्वीराज रासो से लेकर (जिसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है) मानवेन्द्र (जो नेहरूजी के जीवन पर आधारित है और १९६५ में प्रकाशित हुआ है) तक गत सहस्र वर्षों में हिन्दी महाकाव्य सृजन की सुदीर्घ परम्परा का विकास बड़े व्यवस्थित ढंग से हुआ है। हिन्दी महाकाव्य का अतीत की सृजन परम्पराओं (जैसे संस्कृत, प्राकृत और विशेष रूप से अपभ्रंश भाषा के महाकाव्यों) से रचनाविधि एवं शिल्पतत्त्व की दृष्टि से गहरा सम्बन्ध भी रहा है। इस परम्परा में तुलसी और प्रसाद जैसे महान् महाकाव्यकार हुए हैं जिनकी कृतियाँ विश्व-वाङ्मय की अमूल्य निधि हैं। 'आधुनिक युग' में महाकाव्य लेखन का समारम्भ श्री हरिऔध के 'प्रियप्रवास' से होता है। तदनन्तर जो महाकाव्य लिखे गये उनमें श्री मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत' और प्रसादजी द्वारा रचित 'कामायनी' नामक महाकाव्यों के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात् 'प्रसादोत्तर काल' में विरचित महाकाव्यों के रचयिताओं के नाम तथा प्रकाशन तिथि सहित सूची निम्नांकित है—

	महाकाव्य	रचयिता	प्रकाशन तिथि
१	सिद्धार्थ	अनूप शर्मा	१९३७
२	श्रीरामचन्द्रोदय	रामनाथ ज्योतिषी	१९३७
३	वैदेही वनवास	हरिऔध	१९४०
४	हल्दीघाटी	श्यामनारायण पाण्डेय	१९३९
५	कृष्णचरित मानस	[illegible]	१९४१

[1] दिनकर 'अर्द्धनारीश्वर' 'महाकाव्य की वेला' नामक निबन्ध पृ० ४६

हिन्दी महाकाव्य प्रसादोत्तर

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने एक स्थान पर लिखा है कि— "विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं, जो यह सूचित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।"[1] इस कथन के आलोक में यदि हिन्दी महाकाव्य-परम्परा पर दृष्टिपात किया जाय तो वह नितान्त प्रगतिशील एवं सार्थक प्रतीत होता है। पृथ्वीराज रासो से लेकर (जिसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है) मानवेन्द्र (जो नेहरूजी के जीवन पर आधारित है और १९६४ में प्रकाशित हुआ है) तक गत सात सौ वर्षों में हिन्दी महाकाव्य सृजन की सुदीर्घ परम्परा का विकास बड़े व्यवस्थित ढंग से हुआ है। हिन्दी महाकाव्य का अतीत की सृजन परम्पराओं (जैसे संस्कृत, प्राकृत और विशेष रूप से अपभ्रंश भाषा के महाकाव्यों) से रचनाविधि एवं शिल्पतन्त्र की दृष्टि से गहरा सम्बन्ध रहा है। इस परम्परा में तुलसी और प्रसाद जैसे महान महाकाव्यकार हुए हैं जिनकी कृतियाँ विश्व-वाङ्मय की अमूल्य निधि हैं। आधुनिक युग में महाकाव्य-लेखन का समारम्भ श्री हरिऔध के प्रियप्रवास से होता है। तदनन्तर जो महाकाव्य लिखे गये उनमें श्री मैथिलीशरण गुप्त कृत साकेत और प्रसाद जी द्वारा रचित कामायनी नामक महाकाव्यों के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात 'प्रसादोत्तर काल' में विरचित महाकाव्यों के लेखकों के नाम तथा प्रकाशन तिथि सहित सूची निम्नांकित है—

	महाकाव्य	रचयिता	प्रकाशन तिथि
१	सिद्धार्थ	अनूप शर्मा	१९३७
२	श्रीरामचन्द्रोदय	रामनाथ ज्योतिषी	१९३७
३	वैदेही वनवास	हरिऔध	१९३९
४	हल्दीघाटी	श्यामनारायण पाण्डेय	१९३९
५	कृष्णचरित मानस	प्रद्युम्न शर्मा	१९४१

---

[1] दिनकर : अर्द्धनारीश्वर, 'महाकाव्य की कथा' नामक निबन्ध, पृ० ४६

महाकाव्य	रचयिता	प्रकाशन तिथि
६ कृष्णायन	द्वारिकाप्रसाद मिश्र	१९४३
७ कुरुक्षेत्र	दिनकर	१९४३
८ आर्यावर्त	मोहनलाल महतो	१९४३
९ जौहर	श्यामनारायण पाण्डेय	१९४४
१० महामानव	ठाकुरप्रसाद सिंह	१९४६
११ साकेत संत	बलदेव प्रसाद	१९४६
१२ विक्रमादित्य	गुरुभक्त सिंह	१९४७
१३ दैत्यवंश	हरदयालु सिंह	१९४७
१४ जननायक	रघुवीरशरण मित्र	१९४९
१५ अंगराज	आनन्दकुमार	१९५०
१६ वर्द्धमान	अनूप शर्मा	१९५१
१७ रावण	हरदयालु सिंह	१९५२
१८ जयभारत	मैथिलीशरण गुप्त	१९५२
१९ जगदालोक	ठाकुर गोपालशरण सिंह	१९५२
२० देवार्चन	आ करात	१९५२
२१ पार्वती	रामानन्द तिवारी	१९५५
२२ वामा की गाथा	श्यामनारायण प्रसाद	१९५५
२३ रश्मिरथी	रामधारी सिंह दिनकर	१९५७
२४ नारी	अनन्तकृष्ण गोस्वामी	१९५७
२५ मीरा	परमेश्वर द्विरेफ	१९५७
२६ दमयन्ती	ताराचन्द हारीत	१९५७
२७ उर्मिला	बालकृष्ण नवीन	१९५८
२८ एकलव्य	डा० रामकुमार वर्मा	१९५८
२९ तारकवध	गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश	१९५८
३० सेनापति कर्ण	लक्ष्मीनारायण मिश्र	१९५८
३१ युगद्रष्टा प्रेमचन्द	परमेश्वर द्विरेफ	१९५९
३२ रामराज्य	बलदेव प्रसाद	१९६०
३३ उर्वशी	दिनकर	१९६१
३४ आस्था	रामगोपाल दिनेश	१९६१
३५ बाणाम्बरी	रामावतार पोद्दार	१९६१
३६ अनंग	डा० छुन्नूलाल शुक्ल	१९६१

	महाकाव्य	रचयिता	प्रकाशन तिथि
३७	प्रियमिलन	नन्दकिशोर झा	(वि० सं०) २०२१
३८	लोकायतन	सुमित्रानन्दन पन्त	१९६४
३९	मानवेन्द्र	रघुवीरशरण मित्र	१९६५

(इनके अतिरिक्त 'वसुधा', 'भवानी' और 'विश्वज्योति बापू' नामक महाकाव्यों की सूचना और मूल प्राप्त हैं पर इन्हें पढ़ा नहीं जा सका है।)

हिन्दी के उपर्युक्त प्रकाशित महाकाव्यों की सूची देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिन्दी में महाकाव्यों की रचना विपुल परिमाण में हो रही है। क्या ये सभी ग्रन्थ 'मानस' या 'कामायनी' की टक्कर के हैं? इनमें से कितने मात्र प्रयत्नकाव्य हैं? कितनों को 'प्रतिनिधि' या 'तथाकथित' महाकाव्य कहा जाय? कौन से ग्रन्थ 'एकार्थ काव्य' या 'बृहत् खण्डकाव्य' की संज्ञा पायेंगे? यह अलग से विचारणीय विषय है जिसका सम्बन्ध महाकाव्य के स्वरूप, परिभाषा एवं लक्षणों से है और महाकाव्यालोचकों में इस प्रश्न को लेकर पर्याप्त मतभेद भी है। उदाहरणार्थ डा० शम्भूनाथ सिंह[२] ने पृथ्वीराज रासो, पद्मावत, आल्हखण्ड, रामचरितमानस और कामायनी पाँच ही ग्रन्थों को महाकाव्य माना है। डा० गोविन्दराम शर्मा[३] ने इनके अतिरिक्त प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी, कृष्णायन, वैदेही वनवास और साकेत सन्त को प्रतिनिधि महाकाव्य तथा अन्य ग्रन्थों को 'अन्य महाकाव्य' और 'तथाकथित महाकाव्य' सीमा के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। किन्तु महाकाव्य पर शोध करने वाले विद्वानों में डा० प्रतिपाल सिंह[४], डा० श्यामनन्दन किशोर[५] तथा डा० श्यामसुन्दर व्यास[६] ने उपर्युक्त उल्लिखित सूची के सामान्यतः अधिकांश ग्रन्थों को महाकाव्य ही स्वीकार किया है। अस्तु प्रस्तुत प्रसंग में इन ग्रन्थों का निष्पक्ष विवेचन न कर विचारणीय यह है कि प्रसादोत्तर हिन्दी महाकाव्य का विकास किन युगीन प्रेरणाओं के फलस्वरूप हुआ है? इन महाकाव्यों की विषयगत एवं जीवनदर्शन सम्बन्धी उपलब्धियाँ क्या हैं? इसी परिप्रेक्ष्य में इन महाकाव्यों की समान प्रवृत्तियों तथा हिन्दी महाकाव्य की रचना के भविष्य का प्रश्न भी

---

२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास

३ हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य

४ बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महाकाव्य

५ आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान

६ हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण

विचारणीय है। वस्तुत इन्ही प्रश्न चिह्नों के परिप्रेक्ष्य म प्रसादोत्तर हिन्दी महाकाव्य का मूल्यांकन हम यहाँ प्रस्तुत करेंगे।

प्रवृत्तिमूलक दृष्टि से प्रसादोत्तर हिन्दी महाकाव्य के रचना विधान पर विचार किया जाय तो सवप्रथम लक्षण परम्परित काव्यशास्त्रीय लक्षणों का परित्याग दिखायी देता है। हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यकारों ने संस्कृत काव्याचार्यों (भामह दण्डी रुद्रट हेमचन्द्र विश्वनाथ आदि) द्वारा प्रस्तावित लक्षणों यथा—मंगलाचरण सगसंख्या सर्गांत छन्द परिवतन सज्जन स्तुति दुजन निंदा चतुवग फल प्राप्ति उच्च एव कुलीन नायक आदि के निर्वाह का साग्रह प्रयत्न नहीं किया है। आधुनिक महाकाव्यों की रचना प्रक्रिया म बाह्य तत्त्वों की अपेक्षा जातीय और युग जीवन के व्यापक चित्रण युगीन जीवनादर्शों की स्थापना एव मानवीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा पर अधिक बल दिया गया है।

प्रसादोत्तर महाकाव्यों म कथानक के प्रमुख स्रोत पुराण और इतिहास रहे हैं। किन्तु समसामयिक जीवन की घटनाएँ परिस्थितियाँ एव व्यक्तित्व भी महाकाव्य रचना के आधारमान रहे हैं। उदाहरण के लिए—वदेही वनवास कृष्णायन साकेत सन्त दत्यवश रावण जयभारत पावती रश्मिरथी एकलव्य उर्मिला उवशी तारकवध कुरुक्षेत्र सारथी दमयती रामराज्य आदि महाकाव्यों की कथावस्तु पुराण-आधृत है तो नूरजहाँ सिद्धाथ वद्धमान मीरा हल्दीघाटी आयावत्त झाँसी की रानी बाणाम्बरी विक्रमादित्य आदि महाकाव्यों की इतिहासोद्भूत है। किन्तु महामानव जननायक जगदालोक युगस्रष्टा प्रेमचन्द लोकायतन मानवेन्द्र आदि महाकाव्यों की रचना समसामयिक युग जीवन युगपुरुषों और युगीन घटनाओं पर आधारित है। इन महाकाव्यों की कथावस्तु इतिहास-पुराण आधृत होते हुए भी कथाचयन की नवीनता मौलिक प्रसगोद्भावनाओं एव मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि के कारण महाकाव्यकारों की असाधारण रचना सामर्थ्य की परिचायक है।

नायक की परिकल्पना तथा चरित्र विश्लेषण की पद्धतियों म भी आधुनिक महाकाव्यकारों ने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उन्होंने एक ओर दवी पात्रों (जसे—राम कृष्ण सीता राधा आदि) के देवत्व का प्रक्षालन तथा दानवीय पात्रों (जसे रावण हिरण्यकश्यप दुर्योधन दुःशासन आदि) के दानवत्व का परिमार्जन कर उन्हें मानवता के धरातल पर खड़ा किया है तो दूसरी ओर उपेक्षित तिरस्कृत एव कलंकित कहे जाने वाले पात्रों

(जैसे—एकलव्य कर्ण आदि) को महाकाव्यों का नायक बनाकर व्यापक मानवतावादी जीवन-दृष्टि का परिचय दिया है। आधुनिक युग के महाकाव्यों की यह एक ऐसी विशेषता है जो समग्र हिन्दी काव्य रचना के स्तर और धरातल को ऊँचा उठाती है। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग के अनेक महाकाव्य नायिका प्रधान हैं जैसे—वन्दी वनवास नूरजहाँ उर्मिला दमयन्ती मीरा झाँसी की रानी शर्वाणी कैकेयी उर्वशी नारी आदि। इन काव्यों के माध्यम से महाकाव्यकारों ने नारी जीवन की समस्याओं और आदर्शों को ही प्रस्तुत नहीं किया वरन नारी जागरण की महान् आन्दोलनकारी चेतना को भी अभिव्यक्ति दी है।

महाकाव्यों की रचना का लक्ष्य—युग सम्भूत समस्याओं का निदान प्रस्तुत करना होता है—इस तथ्य का अन्वेषण इस युग के महाकाव्यों में सम्यक् रूप से किया जा सकता है। इन महाकाव्यों में देश प्रेम स्वजातीय गौरव राष्ट्रीय सम्मान मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा समसामयिक जीवनादर्शों के अनुरूप युगीन प्रश्नों के समाधान की विराट चेष्टा की गयी है। समष्टि रूप में मानवतावादी जीवन दर्शन सांस्कृतिक निष्ठाएं उत्थानमूलक जीवनादर्श नारी चेतना के मुखरित स्वर जन-जागृति का उद्घोष रचना शिल्प की नवीनता तथा चरित्रों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा प्रसादोत्तर काल के महाकाव्यों की विशेषताएं रही हैं जिनके आधार पर इन काव्य ग्रन्थों को माँ भारती के भण्डार की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

अब एक प्रश्न शेष है—हिन्दी महाकाव्य रचना का भविष्य ! यद्यपि यह कहा जाता है कि आज गद्य का युग है और गद्य युग का महाकाव्य उपन्यास है और हिन्दी में उपन्यास महाकाव्य का स्थान ग्रहण कर रहा है आदि। किन्तु यह कथन सर्वथा सत्य नहीं है। क्योंकि महाकाव्य जैसे गम्भीर काव्य रूप के विशिष्ट रचना शिल्प की गरिमा और उद्देश्य की महत्ता का औपन्यासिक वृत्त में कभी भी समाहार नहीं हो सकता। वस्तुतः महाकाव्य की रचना युग जीवन के व्यापक संघर्ष सामाजिक उत्थान-पतन तथा जीवन मूल्यों के क्रमागत उत्कर्षापकर्ष को व्यंजित करने के लिए होती है। इस दृष्टि से विचार करें तो महाकाव्य की रचना प्रत्येक युग के जीवन के लिए अनिवार्य है। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में— प्रत्येक युग का जीवन महाकाव्य की माँग करता है। क्योंकि महाकाव्यबद्ध होकर ही वह परिपूर्णता और सार्थकता को प्राप्त करता है। अस्तु स्पष्ट है कि गद्य-युग में भी महाकाव्य-सृजन की सम्भावनाएं

पूर्ववत ही है। यह हर्ष का विषय है कि हिन्दी के महाकाव्यकार अपने गुरुतर दायित्व के प्रति सजग और सचेष्ट हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल के महाकाव्य हिन्दी भाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि के साथ-साथ युग-चेतना को जिस कलात्मक औदात्य और काव्यात्मक वैभव से सम्पन्न करके व्यंजित कर रहे हैं, उसके कारण हिन्दी महाकाव्य रचना का भविष्य निश्चित रूप से आशामय एवं आलोकपूर्ण है।

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य मे प्रवृत्ति-साम्य

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य मे प्रवृत्ति-साम्य

विभिन्न काव्यरूपों में आकार, प्रकार और महत्त्व तीनों ही दृष्टियों से महाकाव्य का शीर्ष स्थान है। जीवन्त कथानक, महान नायक, गरिमामयी उदात्त शैली, महत् उद्देश्य, युग जीवन के व्यापक चित्रण, गम्भीर अभिव्यंजना शक्ति, रस-परिपाक, विराट कल्पना और जीवन दर्शन की बलवती प्रेरणा के कारण महाकाव्य निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण काव्यरूप माना जाता है। महाकाव्य का स्रष्टा कवि असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार होता है। महाकाव्य सृजन गुरुतर कार्य है। महाकाव्य जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आवर्तन का सांस्कृतिक प्रयास है। जीवन के सम विषम प्रभावों की अभिव्यंजना महाकाव्यकार की लेखनी अनुभूत सत्याधारों और कलात्मक संस्पर्शों के माध्यम से परम मांगलिक और जनोपयोगी रूप में करती है। इसीलिए काव्याचार्यों ने महाकाव्यकार को महान कवि की संज्ञा से सम्बोधित किया है। एबरक्राम्बी के अनुसार the epic poet is the rarest kind of Artist[1] कविवर दिनकर ने भी लिखा है— महाकाव्य तभी लिखा जाता है जबकि युग की अनेक विचारधाराएँ वेग से बहती हुई किसी समुद्र में मिलना चाहती हैं। जब ऐसी अनेक धाराएँ वेगवन्त प्रवाह में होती हैं तभी महाकाव्य की रचना का समय होता है। और जो कवि उनके महामिलन के लिए सागर का निर्माण कर सकता है, वही महाकाव्य लिखने का अधिकारी होता है। महाकाव्य की रचना मनुष्य को विकल करने वाली अनेक भावधाराओं के बीच सामंजस्य लाने का प्रयास है। महाकाव्य की रचना समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है। विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं। वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।[2]

भारतीय महाकाव्य का समृद्ध स्वरूप हम संस्कृत वाङ्मय में पाते हैं।

---

[1] *The Epic*, p 41

[2] दिनकर अर्द्धनारीश्वर पृ० ४६

रामायण और महाभारत विश्व महाकाव्य की श्रेणी की रचनाएँ हैं। इसी प्रकार की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ कुमारसम्भव रघुवंश किरातार्जुनीय शिशुपाल वध और नषधीय चरित हैं। संस्कृत महाकाव्य-परम्परा का सम्यक विकास पालि प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य में भी हुआ है। हिन्दी महाकाव्य-परम्परा विकास की दृष्टि से पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की अनुवर्तिनी अवश्य है किन्तु आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों के व्यापक विकास में संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि के अतिरिक्त पाश्चात्य (विशेषत ग्रीक और आंग्ल) तथा समकालीन बंगला के महाकाव्यों का भी पर्याप्त योगदान रहा है। आधुनिक युग का समारम्भ यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से होता है किन्तु महाकाव्य-सृजन के क्षेत्र में कवि सम्राट हरिऔध का प्रियप्रवास प्रथम रचना है।

उस समय तक हमारे देश का सम्पूर्ण सांस्कृतिक वातावरण पाश्चात्य देशों से सम्पर्क स्थापित कर चुका था। ज्ञान विज्ञान के सभी क्षेत्रों में चिन्तन की हर दिशा में चेतना के प्रत्येक चरण पर आंग्ल सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। वैज्ञानिक विकास प्रेस के प्रचलन यातायात के प्रसार तथा शैक्षणिक व्यवस्था आदि कारणों से इस देश की साहित्यिक गतिविधियों में भी आमूल परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन-क्रम की परिणति में हमने पाया कि हमारे अध्ययन मनन चिन्तन आदि की सभी दिशाएँ और दृष्टिकोण एक नवीन प्रवाह की ओर उन्मुख हो गये। साहित्य के स्थापित मानदण्डों काव्य की परम्पराओं कला के आधारमानों सृजन के सिद्धान्तों युग जीवन के मूल्यों यहाँ तक कि कवि कल्पनाओं में क्रान्तिकारी व्यावहारिक प्रतिक्रिया हुई। साहित्य के क्षेत्र में इन परिवर्तनों के परिणामों पर दृष्टिपात करें तो कहना होगा कि स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि आज के रचना विधानों का परम्परित मान्यताओं से सम्बन्ध स्थापन असम्भव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य हो गया है। इसी परिपार्श्व में यदि हिन्दी महाकाव्य के स्वरूप विकास का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट दिखायी देगा कि पृथ्वीराजरासो से लेकर आचार्य केशवकृत रामचन्द्रिका तक के महाकाव्यों में सृजनात्मक विकास प्रक्रिया का स्वरूप संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के महाकाव्यों से सुसम्बन्धित है। महाकाव्यों के लक्षणों तत्त्वों और मूल्यांकन के मानदण्डों—सभी दृष्टियों से पूर्ववर्ती परम्परा से इन महाकाव्यों का सघन सम्बन्ध स्थापित करके अध्ययन अनुशीलन किया जा सकता है प्रवृत्तिमूलक समता का अनुसंधान भी किया जा सकता है। किन्तु हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों का सृजन प्रेरणा विषय विधान शिल्प विधि मूल्यांकन

के मानदण्ड तथा प्रवृत्तियाँ सभी भिन्न और नवीन हैं। हिन्दी के आधुनिक युग के तथा इससे पूर्व के महाकाव्यों में प्रवृत्तिमूलक दृष्टि से स्पष्ट विभाजन रेखाएँ निश्चित की जा सकती हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है आधुनिक महाकाव्य लेखन का आरम्भ हरिऔधजी के प्रियप्रवास से माना जाता है। तब से आज तक अनेक महाकाव्य लिखे जा चुके हैं। कतिपय इस प्रकार हैं—प्रियप्रवास (हरिऔध) साकेत (मैथिलीशरण गुप्त) कामायनी (जयशंकर प्रसाद) वैदेही वनवास (हरिऔध), कृष्णायन (द्वारिका प्रसाद) साकेत संत (बलदेव उपाध्याय) नूरजहाँ (गुरुभक्तसिंह) सिद्धार्थ (अनूप शर्मा) दैत्यवंश (हरदयालु सिंह) नल-नरेश (पु० प्रताप नारायण कविरत्न) अंगराज (आनन्द कुमार), वर्द्धमान (अनूप शर्मा) जय भारत (मैथिलीशरण गुप्त), पार्वती (डा० रामानन्द तिवारी) रावण (हरदयालु सिंह) रश्मिरथी (दिनकर) मीरा (परमेश्वर द्विरेफ) एकलव्य (डा० रामकुमार वर्मा), उर्मिला (नवीन) तारकवध (गिरीश) सेनापति कर्ण (लक्ष्मीनारायण मिश्र) कुरुक्षेत्र (दिनकर) रामचरित चिन्तामणि (रामचरित उपाध्याय) कृष्ण चरित मानस (प्रद्युम्न दुगा)।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महाकाव्य भी लिखे गये हैं जो महाकाव्य तो कहे जाते हैं किन्तु उनमें महाकाव्यात्मक औदात्य का अभाव ही दिखायी देता है जैसे श्रीरामचन्द्रोदय (रामनाथ ज्योतिषी) हल्दीघाटी (श्यामनारायण पाण्डेय) आर्यावर्त (मोहनलाल महतो) विक्रमादित्य (गुरुभक्तसिंह) जननायक (रघुवीर शरण) महामानव (ठाकुरप्रसाद सिंह) जगदालोक (गोपाल शरण), झाँसी की रानी (श्यामनारायण प्रसाद) जौहर (श्यामनारायण पाण्डेय) देवार्चन (कराल) युगस्रष्टा प्रेमचन्द (द्विरेफ) दमयन्ती महाकाव्य (ताराचन्द हारीत)।

इन काव्यों को महाकाव्य मानने न मानने का प्रश्न प्रस्तुत प्रसंग में विचारणीय नहीं है। यहाँ इन काव्यों के प्रवृत्तिमूलक साम्य पर विचार अभिप्रेत है। आधुनिक युग के हिन्दी महाकाव्यों के सम्यक् अध्ययन से सामान्यतः इस निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों में प्राचीन काव्यादर्शों के प्रति आग्रह नहीं है अर्थात अधिकांश आधुनिक महाकाव्यकारों ने संस्कृत काव्याचार्यों (भामह दण्डी रुद्रट हेमचन्द्र विश्वनाथ आदि) द्वारा प्रस्तावित महाकाव्यों के लक्षणों—यथा सर्ग-संख्या छन्द अनुक्रम मंगलाचरण कुलीन कुलोद्भव नायक

दुर्जन निन्दा सज्जन-स्तुति सन्धि-संयोजन चतुर्वर्ग फल प्राप्ति आदि—के निर्वाह के लिए साग्रह प्रयत्न नहीं किया है।

रचना प्रक्रिया के इस परिवर्तन के फलस्वरूप महाकाव्यालोचन के सिद्धान्तों में भी परिवर्तन हुए हैं। पहले महाकाव्यालोचन के आधारमान आचार्यों द्वारा निरूपित लक्षण थे। आज का सजग समालोचक महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग फल प्राप्ति न मानकर महत् भावना से अनुप्राणित होना ही उसका उद्देश्य मानता है। महाकाव्य का नायक देव ही नहीं साधारण मानव और दानव भी हो सकता है। सर्ग-संख्या छन्द परिवर्तन वर्णन वैविध्य मंगलाचरण आदि स्थूल लक्षणों का परिगणन आज के महाकाव्यालोचक के वक्तव्य की इतिश्री नहीं। वह तो महाकाव्य में जातीय और सामाजिक जीवन के व्यापक चित्रण युगीन जीवनादर्शों की स्थापना मानव मूल्यों के विवेचन पर अधिक बल देता है। महान काव्य महत् प्रेरणा का परिणाम होता है अतः आज के आलोचक का दायित्व महाकाव्यकार की अन्तःप्रेरणा का उद्घाटन कर रचना की अन्तश्चेतना का अनुसंधान करना भी होता है। इसके साथ ही कलात्मक और सांस्कृतिक पक्ष पर भी विचार करना अनिवार्य होता है।

आधुनिक महाकाव्यों में कतिपय को छोड़कर सभी की कथावस्तु पौराणिक कथाओं पर आधारित है। हमारे दो आदि महाकाव्यों में महाभारत इतिहास पुराण शास्त्र सभी कुछ अपने आप में है रामायण में भी पौराणिक थीम्स (Themes) ही ली गयी हैं। हिन्दी महाकाव्यों में पौराणिक कथातत्त्व का युग की आवश्यकताओं के अनुसार संगठन किया गया है। कवियों की मौलिकता और सृजनशक्ति का पता भी थीम्स के आधार पर लगाया जा सकता है। कामायनी साकेत प्रियप्रवास साकेत सन्त दैत्यवंश रावण कृष्णायन एकलव्य वदेही वनवास कुरुक्षेत्र रश्मिरथी जयभारत अंगराज नलनरेश दमयन्ती उर्मिला तारकवध पार्वती आदि सभी काव्यों में पौराणिक कथाओं को ही ग्रहण किया गया है।

पौराणिक कथातत्त्व (Puranic Themes) का प्रयोग होते हुए भी हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों की पात्रसृष्टि सर्वथा नवीन और युगानुरूप है। देवी पात्रों के देवत्व (यथा राम कृष्ण सीता राधा) का प्रक्षालन कर तथा दानवीय पात्रों (रावण हिरण्यकश्यप दुर्योधन दुःशासन) के दानवत्व का परिमार्जन कर उन्हें मानवता के धरातल पर खड़ा किया गया है। उपेक्षित पात्रों (उर्मिला विष्णुप्रिया) तिरस्कृत पात्रों (एकलव्य कर्ण आदि) पर महाकाव्य लिखकर व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया गया है।

हमारे महाकाव्यों की यह बड़ी महत्त्वपूर्ण विशेषता है जो समग्र हिन्दी काव्य के सांस्कृतिक धरातल को ऊँचा करती है।

अधिकांश आधुनिक महाकाव्य नायिका प्रधान हैं—यथा साकेत, प्रियप्रवास, कामायनी, वैदेही-वनवास, नूरजहाँ, उर्मिला, दमयन्ती, सारा, झाँसी की रानी, जौहर आदि। इन काव्यों में आधुनिक कवि के नारी विषयक दृष्टिकोण तथा आदर्श को समझने की विस्तृत विचारभूमि उपस्थित की है। इन काव्यों में नारी-जागरण की महान् चेतना मुखरित हुई है।

महाकाव्यकार की चेतना युग-सम्भूत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है—इस तथ्य का सत्यापन आधुनिक महाकाव्यों में सम्यक् ढंग से किया जा सकता है। इसका सबल प्रमाण तो यह है कि स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय भावना, मानव मूल्यों की स्थापना, समसामयिक आवश्यकताओं के अनुसार युगीन प्रश्नों का समाधान और दिव्य सन्देश आधुनिक महाकाव्यों की सामान्य विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं से प्रतीत होता है कि जीवन को व्यापक परिवेश और विस्तृत दृष्टिकोण से समझने के लिए आज का महाकाव्य पहले से अधिक सजग और सचेत है। उदाहरण के लिए कामायनीकार की निम्न पंक्तियों में मानवता के नाम अमर सन्देश प्रसारित किया गया है—

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय॥

(श्रद्धा सर्ग)

आधुनिक महाकाव्यों में युग की प्रमुख विचारधाराओं को भी (जैसे साम्यवाद, समाजवाद, प्रजातन्त्र, गांधीवाद आदि) आत्मसात किया गया है। काव्य में राजनीतिक वादों का विवरण सैद्धान्तिक कट्टरता या आग्रहपूर्वक नहीं हो सकता, वहाँ तो विचारों का सामयिक प्रसंगों के सन्दर्भ में ही उपयोग सम्भव है। इसी दृष्टि से साकेत में राजतन्त्र और प्रजातन्त्र के समन्वय को आदर्श गांधीवादी धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। कामायनी में तो विश्वव्यापी मानववाद के आदर्श-स्थापन का भव्य और विराट प्रयास है।

इस प्रकार आधुनिक युग के महाकाव्यों में विचार, आदर्श, दृष्टिकोण सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। यद्यपि आज के युग में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, तुलसी जैसे काव्य प्रतिभा-सम्पन्न कवि नहीं, फिर भी इस युग के काव्यकलाओं की समीक्षा और नया युग जीवन की

एक नवीन दिशा की ओर प्रयत्नोन्मुख है। वस प्रसादजी और कामायनी महाकाव्यों और महाकाव्यकर्ताओं की ऐतिहासिक शृंखला की कड़ियाँ हैं। इसके अतिरिक्त आज के महाकाव्य का विकास उपन्यासों में हो रहा है। उपन्यास ही गद्य युग के महाकाव्य होते हैं। समष्टिरूप में आधुनिक महाकाव्यों ने निश्चय ही मानवतावादी दृष्टिकोण ग्रहण कर साहित्यिक प्रगति के साथ साथ सांस्कृतिक अभ्युदय में भी योगदान दिया है। आज के वैज्ञानिक बौद्धिक और गद्य युग में भी महाकाव्य जगत की दिशा में आशातीत प्रगति हुई है।

हिन्दी महाकाव्य : सृजन की सम्भावनाएँ

हिन्दी महाकाव्य सृजन की सम्भावनाएँ

काव्य रूपों के विकासात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि महाकाव्य और नाटक प्राचीनतम काव्यरूप हैं। भारतीय वाङ्मय का पुरातन स्वरूप वेदों में सुरक्षित है। और महाकाव्य के मूल रूप का विकास वैदिक वाङ्मय से ही हुआ है।[1] सुप्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर का भी यही मत है कि महाकाव्य के स्वरूप को हम रामायण और महाभारत में ही नहीं अपितु वेदों में पाते हैं।[2] वेदों के वीर आख्यानों के अतिरिक्त दानस्तुतियों, गाथानाराशंसी एवं सूक्तों में भी वह बीज मिलता है जो आगे चलकर महाकाव्य के रूप में अंकुरित हुआ।[3] श्रीयुत विण्टरनित्ज के अभिमत का भी इस मान्यता से साम्य

१ In ऋग्वेद there are certain संवादs or dialogues or conversations hymns Hertel and Schroeder regard them as a kind of drama All these poems are but ancient आख्यानs or ballads forming the source both of Epic and other dramas The ballads consist of a narrative and of a dramatic element The epic developed from narrative and drama arose from dramatic element —Kokileshwar Shastri *A History of Sanskrit Literature* (Vedic and Classical) p 19

२ ' this real epic poetry that is to say a mass of popular songs celebrating the power and exploits of gods and heroes existed in a very early period in India as well as among other Aryan Nations but it shows that if yet existing it is not in the Mahabharata and Ramayana we have to look for the old songs but rather in Veda itself In the collection of Vedic hymns there are some which may be called epic and may be compared with the short hymns ascribed to Homer

Visec
—Mf
and

३ डॉ० शकुन्तला दुबे काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० ४६

वह युग की जटिल संवेदना एवं यथार्थता को व्यक्त करने के लिए कोई नवीन और सशक्त माध्यम न ढूँढ निकाले तब तक प्रचलित छन्द विधान भी यथार्थ को नये सन्दर्भ में तीव्रता से पकड़ पाने में बाधक ही सिद्ध होता रहेगा।

अस्तु इस सारी विचिकित्सा का निष्कर्ष यही है कि आज की परिस्थितियाँ महाकाव्य प्रणयन के एक दम अनुकूल नहीं रह गया है।[७] गद्य-युग की कविता का भी गद्य कल्प हो गया है। गद्यकाव्य एवं काव्य रूप भी है। वर्णन वैविध्य जिसके लिए पाश्चात्य एवं पौर्वात्य आचार्यों ने महाकाव्य की अनिवार्य मान्यता के रूप में आग्रह किया है वही आज सम्भव नहीं है। क्योंकि आज मानवीय ज्ञान के चेतन स्तरों में इतना विस्तृति आ गयी है कि कोई भी महाकवि समस्त जीवन बोध का रूपायित करने में समर्थ नहीं हो सकता। प्रा० टिलीयार्ड का मत है कि मानव के भण्डार में बहुत अधिक एकत्रित हो गया है। आर्थिक स्वतन्त्रता और वैचारिक आदान प्रदान से समाज के स्वरूप का भी प्रसार और विस्तार हुआ है। आज होमर और दान्ते जैसे महाकाव्यकारों ने भी जैसे समाज की सम्भावनाएं की थी वह समाप्त हो गयी हैं। आज महान से महान् साहित्य को भी जो विश्वजनीन होने का दावा करता है परिस्थितिवश किसी न किसी सीमा तक विशिष्ट हो बनना पड़ता है सर्वव्यापी नहीं। और इसी कारण मध्यवर्गीय जीवन के चित्रक उपन्यास का विकास हो रहा है। १९वीं शताब्दी तक महाकाव्य की धारा का लोप उपन्यास के प्रवाह में हो गया।[८] इसी प्रकार आज व्यक्ति पूजा का युग

---

७ प्रो० आनन्दनारायण शर्मा का महाकाव्य स्वरूप और सम्भावनाएं शीर्षक लेख सरस्वती संवाद अगस्त सितम्बर १९५९ पृ ४५ ४६

८ the possibility of epic writing in a different tradition was shut out What happened in the 18th century (if not in the second half of 17th) was this hip had become so complicated so much had been added to the stock of human learning there was so much ecumenical freedom to exchange ideas that the epic spanning a total society like Homer s or Dante s became impossible Any great work of literature however ambitous of Universality was forced to be in some degree specialist Now the speciality that turned out most propitious for the epic effect was middle class novel that began to flourish in the 18th century By the 19th century the real course of the epic had forsaken the tradition verse for the novel —E M W Tillyard *The English Epic and Its Background* pp 530 31

नहीं। अतः महाकाव्य का नायक विषयक परिकल्पना भी युगीन जीवनादर्शों के प्रतिकूल है। यही स्थिति महाकाव्य के अन्य लक्षणों के सम्बन्ध में भी है। अस्तु महाकाव्य के आदर्श ही आज के काव्य-शिल्प की दृष्टि से अग्राह्य, अमान्य और अनापेक्षित हो गये हैं।

(४) गद्य-युग का महाकाव्य उपन्यास है। डा० देवराज उपाध्याय का तो मत है कि उपन्यास कोई नव-आविष्कृत साहित्यिक विधा न होकर प्रबन्धकाव्य और रोमांस का परिष्कृत स्वरूप है। वस्तुस्थिति तो यह है कि विज्ञान युग के प्रभाव से आक्रान्त मानव-अन्तर्मन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में अपने रूप को ही उपन्यास ने अर्पित कर दिया है। आज का उपन्यासकार जग भी हो मानवमन के संघर्ष और अंतश्चेतना विकास को कृति के माध्यम से व्यंजित करना चाहता है। श्री रामधारीसिंह दिनकर का तो मत यह है कि "जो काम पहले महाकाव्य करते थे, वही काम बाद को नाटक और उपन्यासों द्वारा किया जाने लगा। अतएव हम देखते हैं कि बाद के साहित्य में बहुत से नाटककार और औपन्यासिक हुए, जो अगर कवि होते तो उनका स्थान रामायण और महाभारत, इलियड और आडेसी के रचयिताओं के समकक्ष होता। नाटककार इब्सन और बर्नार्ड शा, उपन्यास लेखक रोमांरोला और गोर्की—इनमें से प्रत्येक ने अपने समय की महान् समस्याओं के भीतर पैठकर उनका निदान खोजने की कोशिश की है। और प्रत्येक ने अपने क्षेत्र में वही काम किया है जो महाकाव्यों के कवियों द्वारा किया जाता है। जर्मन कवि गेटे और जर्मन दार्शनिक नीत्से की रचनाओं में भी हम महाकाव्य की ही झाँकी पाते हैं।"[10]

(५) महाकाव्य की रचना का युग शान्तिकाल ही होता है—चाहे उसका विकास वीरयुग के वातावरण में ही हुआ हो। जैसे महाभारत, पृथ्वीराज रासो आदि विकसनशील (Epic of Growth) महाकाव्य हैं जिनकी सामग्री का संकलन करने में अनेकों हाथ लगते हैं। उनका स्वरूप आकार व्यवस्थित शान्तियुग में ही होता है। अलंकृत या शास्त्रीय महाकाव्य (Epic of Art) तो शांतिकाल में ही सम्भव होता है।

(६) महाकाव्य महाकाव्य होता है, उसका रचयिता महाकवि होता है

---

[9] डॉ० देवराज उपाध्याय, प्रबन्धकाव्य, रोमांस और उपन्यास नामक लेख, आलोचना, उपन्यास विशेषांक।

[10] दिनकर, अर्द्धनारीश्वर, पृ० ४७

उसका नायक महान् होता है, उसकी कथा गरिमापूर्ण, कल्पना विराट, अभिव्यंजना गम्भीर, जीवन की बलवती प्रेरणा और उद्देश्य महत् होता है। किन्तु आज की जनतन्त्रीय समाज-व्यवस्था के युग में व्यक्तिपूजा या महाजनों की महिमा युगविरोधी भावना की परिचायक है, हास्यास्पद है। आज राजकुलीन सामन्त या राजा रानी ही नायक के रूप में मान्य नहीं रह गए। आज के साहित्य में कृषक, श्रमिक और दलित-पतित वर्ग के लोग भी नायक हो सकते हैं। आज की रचना आवश्यक नहीं, महत् उद्देश्य से ही अनुप्राणित हो। समाज की किसी एक समस्या, अन्तर्मन के द्वन्द्व की व्यंजना, व्यक्ति के एक क्षण की विवृति, सामान्य और असामान्य घटनाएँ—सभी काव्य रचना के उपकरण और उद्देश्य हो सकते हैं। महाकाव्यकार नाना बन्धनों के कारण चित्रण के स्वातन्त्र्य का अनुसरण नहीं करता है। इसके विपरीत उपन्यासकार साहित्य-शिल्प के किसी विशेष आग्रह को स्वीकार नहीं करता है। अतः उपन्यास समाज की सम्पूर्ण और सशक्त सभी सवेदनाओं को साकार करने में सक्षम और सामर्थ्यवान है। उपन्यास की उत्तरोत्तर लोकप्रियता बढ़ती माँग, अत्यधिक लेखन और प्रकाशन इसके ज्वलन्त प्रमाण है।

यहाँ तक महाकाव्य सृजन की अनुपयुक्तता के विषय में दिये जाते हैं। हम इन्हीं तार्किक स्थापनाओं के परिपार्श्व में महाकाव्य सृजन की सार्थकता, सम्भावना और उज्ज्वल भविष्य पर विचार करेंगे।

युग गद्य का हो या पद्य का, कला का हो या राजनीति का, वैज्ञानिक के प्रभुत्व का हो या दार्शनिकों के वैचारिक आधिपत्य का—किन्तु मानवीय संवेदनाएँ, मनोवृत्तियाँ और अन्तःप्रवृत्तियाँ सम्बद्ध ही सभी परिस्थितियों में अभिव्यक्ति के लिए आकुल रहती हैं। इसी आकुलता का परिणाम काव्य है।[११] काव्य आत्मा का संगीत है। प्राणों की पुकार है। वह परिस्थितियों का परिणाम भी है और एकान्त की परिकल्पना भी। इसलिए काव्य की स्रोतस्विनी मानव जीवन की सरसता के लिए सदैव से ही वांछनीय रही है। इसलिए काव्य रचना प्रत्येक युग में होती रही है। काव्य की उपयोगिता और आवश्यकता पर प्रश्नवाचक चिह्न किसी भी काल, युग या परिस्थिति में नहीं लगा है। महाकाव्य काव्य का उदात्त रूप है। महाकाव्य सृजन की सम्भावनाओं का प्रश्न मानव चेतना की विकासशील परिस्थितियों से जुड़ा

---

११ Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings
—*Wordsworth*

है। कला और काव्य के विकास के साथ साथ महाकाव्य का भी विकास स्वाभाविक है। अत महाकाव्य का निरन्तर सृजन हो रहा है।

महाकाव्य सृजन की सम्भावना पर यथातथ्य दृष्टि से विचार करने वाले विद्वानों का यह तर्क नितान्त सम्मत नहीं प्रतीत होता कि विज्ञान युग का पाठक महाकाव्य के लोकविश्रुत ऐतिहासिक और पौराणिक कथा विधान से अपनी बौद्धिक चेतना की परितृप्ति और विश्वास को सबल नहीं दे सकता। वास्तव में महाकाव्य की कथा विषयक ही नहीं अपितु सभी मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हो गया है। आज आवश्यक नहीं कि महाकाव्य की कथा इतिहास पुराण उद्भूत ही हो। वर्तमान युग के अनेक महाकाव्यों[१२] में अति अर्वाचीन एवं समसामयिक कथा तत्त्व का भी उपयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त आधुनिक महाकाव्यों में इतिवृत्त तो सूत्ररूप में ग्रहण किया जाता है—कवि की कल्पना शक्ति ही प्रमुख होती है। उदाहरण के लिए कामायनी महाकाव्य में मनु श्रद्धा का उपाख्यान सूत्ररूप में ही ग्रहण किया गया है किन्तु उसमें व्यक्त भावनाएं और संवेदनाएं हमारे युग जीवन का विराट चित्र अंकित करती हैं। कामायनी का मूल स्वर मानवता की विजय आनन्दवाद और समन्वयवाद है। कथात्मक रूप से यह समन्वय श्रद्धा और इडा का मनु के जीवन में है किन्तु वास्तव में समन्वय की आवश्यकता की ओर संकेत कामायनीकार ने हमारे युग की परिस्थितियों के अनुरूप किया है। अर्थात् समन्वय की व्यंजना शासक और शासित शोषक और शोषित धनिक और श्रमिक स्त्री और पुरुष बुद्धि और हृदय की है। मैं समझता हूं कि कामायनी में विज्ञान युग के पाठक की विचारणा को प्रबुद्ध करने और चेतना को जागरण का आह्वान देने की पर्याप्त सामग्री वर्तमान है।

जहाँ तक विज्ञान युग के पाठक की रुचि का प्रश्न है यह पहले निवेदन किया जा चुका है कि काव्य के प्रति अरुचि कभी किसी को नहीं क्योंकि काव्य का सम्बन्ध मानव के शाश्वत मनोभावों से है। प्रेम करुणा ममत्व प्रकृति के प्रति प्रेम ही भाव-संवेदना के वे उपकरण हैं जो मानव की आत्मपिपासा की परितृप्ति के कारण मान्यतः बनते हैं। रस निर्वाह जिसे महाकाव्य के अनिवार्य लक्षणों में स्वीकृत किया गया है वास्तविक आनन्द का विधाता है। यही अन्तरंग की बात है।

---

[१२] झांसी की रानी मीरा, हल्दीघाटी जौहर महामानव जगदालोक युग स्रष्टा प्रेमचन्द आदि महाकाव्य।

अनेक लेखकों और समालोचकों ने उपन्यास को गद्य युग में महाकाव्य का पर्याय माना है। गद्यात्मक विधाओं में आकार प्रकार एवं लोकप्रियता की दृष्टि से उपन्यास भले ही उत्कृष्ट साहित्य रूप हो सकता है किन्तु यह कहने में मैं निःशंक हूँ कि वह महाकाव्य की समता तो क्या समता की पहुँच की सीढ़ियों का भी स्पर्श नहीं कर पाया है। इसका मूल कारण वही है जिसे कतिपय समालोचक महाकाव्य की त्रुटियाँ कहते हैं अर्थात् स्वरूप निर्माण या रचना शिल्प के मानदण्ड। उपन्यास के रचना शिल्प का निश्चय न होने के कारण इस कोटि के उपन्यास भी लिखे जा रहे हैं जिनका निर्धारित लक्ष्य साहित्य शिल्प अथवा विनियोजित विचार तत्त्व तो दूर रहा आकार प्रकार विषय विधान प्रतिपाद्य और प्रयोजन सभी अनिश्चित हैं। जहाँ महाकाव्य समग्र जीवन का चित्र है वहाँ उपन्यास एक वर्ष एक दिन की घटना का भी चित्रण नहीं। उसके कालक्रम घटना विनियोजन कथावस्तु सभी में अनिश्चय की स्थिति चल रही है।

उपन्यास व्यक्ति केन्द्रित है। व्यक्ति ही नहीं अब तो उसके विवेचन का विषय मन ही रह गया है। उपन्यास के विकास में पाश्चात्य विचार परम्परा का योग रहा है। अतः भौतिकतावादी सभ्यता के प्रभाव में उसने व्यक्ति चेतना को ही सर्वस्व मान लिया है। यथार्थ के नाम पर आज का उपन्यासकार हीन ग्रन्थियों के प्रकाशन अतृप्तियों की व्यंजना और व्यष्टि स्वार्थ साधना की सर्वोपरिता के प्रतिपादन में कृतकार्य समझने लगा है। अतीत का औपन्यासिक के लिए महत्त्व नहीं अनागत की चिन्ता नहीं और वर्तमान में उसे प्रत्यक्ष ही कुरूपता दिखायी देती है। आदर्शों की अवहेलना के कारण उपन्यास कोई महती देन नहीं दे सका है। उपन्यास की रचना महाकाव्य के समान सांस्कृतिक जीवन का विधायक नहीं। हाँ युद्ध और शान्ति (War and Peace) जैसे कतिपय उपन्यास अवश्य ही महाकाव्यात्मक गरिमा से सम्पन्न हैं। किन्तु उतना व्यापक जीवन दृष्टि का अधिकांश आधुनिक उपन्यासकारों में अभाव ही दिखायी देता है। मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि आज का उपन्यास यथार्थ और वास्तविकता के नाम पर जीवन की मधुरताओं मन विश्लेषण की कुण्ठित परिधियों और आत्मचेतना के हतमृत धरातलों की दलदल में इतना फँस गया है कि जीवन के शाश्वत आदर्श भी उसके लिए उपेक्षणीय हो गये हैं। आज उपन्यास में प्रयोग अधिक हो रहे हैं परम्पराओं का निर्माण कम। उसमें मन विश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है मनस्ताप के साधना का संयोजन कम हो रहा है। उसमें पाश्चात्य के

अन्धानुकरण का प्रवत्ति अधिक है भारतीय आदर्शों के प्रति आस्था कम। इसलिए आज उपन्यासकार परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई बन गया है। उस न समालोचक के सुझाव मान्य हैं, न लोक रुचि के सम्मान की चिन्ता है और न साहित्यादर्शों के संवद्धन का व्यामोह है। जबकि महाकाव्य का लेखक आज भी परम्पराओं का अनुमोदक आदर्शों के प्रति निष्ठावान युग जीवन की आवश्यकताओं के प्रति सचेत, शिल्प विधि निर्वाह के हेतु सक्षम और मानवतावादी मूल्यों की स्थापना के साथ साथ काव्य रचना का सांस्कृतिक प्रयास मान कर चल रहा है।

वर्तमान युग म महाकाव्य सृजन की संदिग्ध स्थिति के विषय म यह भी तर्क दिया जाता है कि वह शांतिकाल की रचना है। आज का संघर्ष युग महाकाव्य सृजन और पाठन दोनों ही दृष्टियों से अनुकूल नहीं। आज के कवि की प्रतिभा अन्तर्मुखी और व्यक्तिनिष्ठ हो गयी है। इस विषय म कविवर दिनकर के ये शब्द उल्लेखनीय है— अगर परस्पर विरोधी भावों का आक्रमण कवि को महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दे सकता है तो उसका समय आज है। अगर महाकाव्य की रचना का समय वह युग होता है जबकि प्रश्नों की विभिन्न धाराएं अपना समाधान पाने के लिए किसी समुद्र की खोज म वेग से दौड़ती है तो वह समय आज हुआ है। यह संस्कृति के बदलने का समय है यह परम्पराओं के परिवर्तन की वेला है क्या महाकाव्य के लिए इससे भी और उपयुक्त समय चाहिए और क्या प्राचीन एवं मध्यकालीन नाटकों तथा महाकाव्यों म हम मानव चरित्र के भीतर जिस द्वन्द्व एवं संघर्ष का प्रतिबिम्ब देखते है, वह आज के व्यक्ति एवं समाज म कुछ कम है? मनुष्य आज जिन शंकाओं और द्वन्द्वों से ग्रस्त है उन्ह अगर वह काव्य के किसी एक ही दर्पण खण्ड म देख पाये तो वह स्वयं चीत्कार कर उठेगा।[13]

दिनकरजी का यह कथन सर्वथा सत्य है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आधुनिक युग म, महाकाव्य रचना की दृष्टि से जिसका समारम्भ हरिऔधजी के प्रियप्रवास म माना जाता है अनेक महाकाव्य लिखे जा रहे हैं।

पिछले पचास वर्षों म हिन्दी म लगभग चालीस महाकाव्य कहे जाने वाले ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। महाकाव्यों की इस बढ़ी संख्या के विषय म मैंने अनेक प्रतिष्ठित आलोचकों को नाक भौं सिकोड़ते और टीका टिप्पणी करते भी सुना है कि अमुक काव्य तो महाकाव्य नहीं एकार्थ-काव्य है अमुक म महा

[13] दिनकर अर्द्धनारीश्वर महाकाव्य की वेला नामक लेख पृ० ५० ५२

काव्याभास है अमुक में सफल प्रबन्धकाव्यत्व तो है किन्तु महाकाव्यत्व नहीं है आदि। डा० शम्भूनाथ सिंह ने अपने शोध प्रबन्ध हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास में केवल पृथ्वीराजरासो आल्हखण्ड पद्मावत रामचरित मानस और कामायनी—पाँच ही काव्यों को महाकाव्य माना है। आल्हखण्ड जैसे लोकगीतों के संकलन को तो वे महाकाव्य मानते हैं किन्तु साकेत पार्वती कृष्णायन प्रियप्रवास आदि उत्कृष्ट प्रबन्धकाव्यों में उन्हें महाकाव्यात्मक गरिमा और अनवरुद्ध जीवनीशक्ति का अभाव दिखायी देता है। ऐसी मान्यता के प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि प्रथम तो वे काव्य हैं प्रबन्धकाव्य हैं और वह भी नये युग के हैं। दूसरे महाकाव्य के पुरातन और बहुचर्चित मानदण्डों पर ही इन महाकाव्यों की परख की भी नहीं जा सकती है। संस्कृत या ग्रीक विद्वानों ने महाकाव्यों के लक्षणों का निर्धारण करते समय पूर्व प्रचलित महाकाव्यों को लक्ष्य ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया था—उनमें से अधिकांश लक्षण निरर्थक सिद्ध हो गये हैं। उन लक्षणों के आधार पर तो विश्व काव्यों की कोटि की रचना रामचरितमानस भी महाकाव्य नहीं ठहरती। हाँ महाकाव्य की रचना और परख के कुछ स्थायी तत्त्व और चिरन्तन लक्षण हैं जैसे कथावस्तु की व्यापकता समग्र जीवन का चित्रण उदात्त गरिमामयी शैली महत् उद्देश्य रस परिपाक और भाव चित्रण कौशल सजीवनी शक्ति और मानवतावादी मूल्यों की स्थापना आदि। इन लक्षणों का यदि किसी प्रबन्ध काव्य में निर्वाह हुआ है तो हमें निश्चय ही उसे महाकाव्य मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। प्रसन्नता का विषय है कि हिन्दी के विद्वान और समालोचक अब महाकाव्य की परख व्यापक दृष्टि से कर रहे हैं और महाकाव्य सम्बन्धी नवीन मान्यताओं की स्वीकृति भी मिलने लगी है अस्तु।

महाकाव्य सृजन की सुदीर्घ परम्परा आज भी अक्षुण्ण है। उसके रचना प्रवाह का वेग आज भी अपूर्व गति से गतिमान है। महाकाव्य के सृजन की सम्भावनाएँ प्रत्येक युग में बनी रहेगी। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में—प्रत्येक युग का जीवन महाकाव्य की माँग करता है क्योंकि महाकाव्यबद्ध होकर ही वह परिपूर्णता और सार्थकता को प्राप्त होता है। वर्तमान युग के गद्यात्मक विकास के प्रभाव से भी अधिक काव्य सृजन के लिए व्यवधान और अवरोध का कारण विज्ञान की प्रगति है। विज्ञान युग के भौतिकतावादी जीवन मूल्यों ने मानव चेतना को स्वार्थपरायण व्यष्टिवादी सशंकित निराश और कुण्ठित कर दिया है। विज्ञान युग की संस्कृति का आधार जीवन की विकृतियाँ बनती जा रही हैं। अर्थलोलुपता और स्वार्थसिद्धि की कुत्सित

भावनाओं ने मनुष्य-मनुष्य के शाश्वत सम्बन्धों (जिनका आधार प्रेम, सत्य, अहिंसा, करुणा, सत्त्व, शील, नय आदि था) को विकृत कर दिया है। समग्र भौतिक सुख-सुविधाओं को उपलब्ध करके भी मानव का अहं सन्तुष्ट नहीं। समस्याएँ भी उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं। अधिक से अत्यधिक और अत्यधिक से सर्वाधिक की कामना ने घोर वैयक्तिकता और विध्वंसकारिणी शक्तियों को विकसित किया है। विज्ञान के उपयोगी उपकरणों का उपयोग ध्वंस के साधनों के सन्धान में होने लगा है। मानवता अनागत के दारुण परिणामों की कल्पना से भयाक्रान्त है। विचित्र विडम्बना है! भविष्य के प्रति इतना नैराश्यमूलक दृष्टिकोण—वर्तमान में असन्तोष और अतीत के प्रति निश्चिन्तता! अतीत के आदर्शों की ओर उन्मुख होना तो रूढ़िवादिता, पिछड़ापन और प्रगति पथ से पराङ्मुख होना कहा जाता है। ऐसी परिस्थितियों में महाकाव्यों की रचना अतीत, अनागत और वर्तमान के प्रति आस्था और विश्वास पैदा करने वाली होती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे जीवन मूल्यों और आस्थाओं में आमूल परिवर्तन—परिवर्तन नहीं, एक वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी जाय। आज के मनुष्य की अतिवादी बौद्धिक वृत्तियों को भावात्मक स्तरों पर सद्प्रवृत्तियों के अनुसरण द्वारा सन्तुलित किया जाय। आज के जीवन की अनेकरूपता में एकता जीवन के शाश्वत सिद्धान्तों को ग्रहण करने से ही सम्भव हो सकती है। सत्त्व, शील, नय, प्रेम, अहिंसा, भ्रातृभाव आदि शाश्वत मूल्यों की पुनर्स्थापना पर बल दिया जाय। परमार्थ नहीं तो निःस्वार्थ साधना, कर्तव्यपरायणता और आत्मिक सौहार्द की भावनाओं के विकास से ही मानवता प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकती है।

ऐसे महान लक्ष्य की साधना के लिए महाकाव्य सर्वथा उपयुक्त काव्यरूप है। उसमें वह शक्ति होती है जो मानवीय मनोवृत्तियों के समुन्नयन और युग जीवन के उन्नत बोध को प्रतिफलित करने की सामर्थ्य से संयुक्त होती है। युग युग की चेतना का नवजागरण, राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधित्व, सांस्कृतिक उन्नयन, सामाजिक उत्थान, कलात्मक औदात्त और काव्यात्मक वैभव महाकाव्यों के समृद्धस्वरूप के ही परिचायक हैं। उनके सृजन की सम्भावनाएँ ही नहीं अपितु महत्त्व, सार्थकता और अनिवार्यता प्रत्येक युग में रहा है और रहेगा। हिन्दी महाकाव्य रचना का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। आज के हिन्दी महाकाव्य हिन्दी की सर्वतोमुखी प्रगति के ही परिचायक हैं।

हिन्दी महाकाव्यों मे वीर रस

हिन्दी महाकाव्यों मे वीर रस

हिन्दी महाकाव्यों में वीर रस

साहित्य के विविध रूपों में महाकाव्य को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। महाकाव्य की महत्ता का मूल कारण उसके रचना उपकरण ही हैं। सुसंगठित और प्रख्यात कथानक, महान चरित्र सृष्टि, विशिष्ट काव्य शिल्प, महत् उद्देश्य, मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा, युगीन आदर्शों की स्थापना, विराट कल्पना और रसात्मकता महाकाव्य के 'महा' विशेषण की सार्थकता के प्रबल प्रमाण हैं। यों तो प्रत्येक प्रकार के काव्य सृजन में रस तत्त्व का निश्चित महत्त्व है और रस को काव्य की आत्मा भी कहा गया है। किन्तु महाकाव्य सृजन में रसात्मकता का विशेष महत्त्व है। रस व्यंजना ही महाकाव्य को सरस और परिपूर्ण बनाती है। इसीलिए काव्याचार्यों ने महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण करते समय रसतत्त्व का सूक्ष्म विवेचन किया है। दण्डी ने अपनी महाकाव्य सम्बन्धी व्याख्या में रसतत्त्व को प्रधानता दी है। रुद्रट ने महाकाव्य में सभी रसों का होना अनिवार्य माना है। कविराज विश्वनाथ ने महाकाव्यों में रसों के निर्वाह के साथ-साथ शृंगार, वीर और शान्त इन तीन रसों में से किसी एक के पूर्ण परिपाक का भी उल्लेख किया है। हिन्दी के भी सभी महाकाव्यों में इन तीन (शृंगार, वीर और शान्त) में से किसी एक रस की प्रधानता अवश्य रही।

वीर रस सदैव से ही महाकाव्य रचना का आधारस्थान रहा है। भारतीय महाकाव्य के स्वरूप विकास के अध्ययन से यह मत और भी दृढ़ होता है कि महाकाव्य-सृजन के मूल में वीरत्व की भावना प्रबल रूप में क्रियमाण रही है। सभी देशों के महाकाव्यों का विकास वीर आख्यानों से हुआ है। प्रत्येक देश के इतिहास में वीर-युग, वीरता की भावना, वीर पुरुष और वीरत्व के गायक चारण कवियों का उल्लेख मिलता है। आर्ष महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) से लेकर हिन्दी के आदि महाकाव्य (पृथ्वीराजरासो) और तदनन्तर अद्यावधि सभी हिन्दी महाकाव्यों में वीरत्व का स्वर एक अध्याय के रूप में वर्तमान रहा है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल में वीर काव्यों की प्रधानता के कारण ही उसका नाम वीरगाथा-काल हुआ। इस युग के

प्रमुख महाकाव्य (पृथ्वीराजरासो) के अतिरिक्त अन्य रासो-काव्यों (जैसे आल्हखण्ड और विजयपालरासो) में वीररस का पूर्ण परिपाक हुआ है। परवर्ती काल के महाकाव्यों (रामचरितमानस रामचन्द्रिका पद्मावत आदि) में भी वीर रस के सुन्दर स्थल हैं।

प्रस्तुत लेख में हम आधुनिक महाकाव्य परम्परा (जिसका प्रारम्भ हरिऔध के प्रियप्रवास से होता है) में वीररस के निर्वाह का विवेचन करेंगे।

प्रियप्रवास (हरिऔध)—प्रियप्रवास करुण रस प्रधान महाकाव्य है जिसमें शृंगार के विप्रलम्भ पक्ष का पूर्ण परिपाक है। किन्तु अंगी रूप में वीर रस के प्रसंग भी यत्र-तत्र आये हैं। उदाहरण के लिए कृष्ण द्वारा विभिन्न दैत्यों के वध वर्णन प्रसंगों में वीर रस की योजना हुई है। त्रयोदश सर्ग में व्योमासुर के वध के अवसर पर—

क्षमा नहीं है खल के लिए भला।
समाज उत्सादक दण्ड योग्य है।।
कुकर्म कारी नर का उबारना।
सुकर्मियों को करता विपन्न है।।
अतः अरे पामर सावधान हो।
समीप तेरे अब काल आ गया।।
न पा सकेगा खल त्राण आज तू।
सम्हाल तेरा वध वाञ्छनीय है।।
सरूप बातें सुन श्याम मूर्ति की।
हुआ महा क्रोधित व्योम विक्रमी।।
उठा स्वकीया गुरु दीर्घ यष्टि को।
तुरन्त मारा उसने ब्रजेन्दु को।।
अपूर्व आस्फालन साथ श्याम ने।
अतीव लम्बी यष्टि वह छीन ली।।
पुनः उसी के प्रबल प्रहार से।
निपात उत्पात निकेत का किया।।

(१३/८१ ८४)

इसी प्रकार गोवर्धन धारण पूतना वध दावानल कालियनाग आदि प्रसंगों में कृष्ण के वीर रूप का प्रदर्शन हुआ है।

साकेत (मैथिलीशरण गुप्त)—द्वादश सर्ग में लक्ष्मण के मेघनाद के प्रति वचन में युद्धवीर की दर्पपूर्ण उक्ति है—

मेघनाद है विफर उगलता जो विष तू
मत कर अपनी आप बड़ाई मेरे मिष तू ॥
जीवन क्या है एक जूझना मात्र जनों का
और मरण ? वह नया जन्म है पुरातनों का ॥
× × ×
यदि सीता ने एक राम को ही वर माना,
यदि मैंने निज वधू उर्मिला को ही जाना।
तो बस अब तू सँभल, बाण यह मेरा छूटा
रावण का वह पाप पूर्ण हाटक घट फूटा ॥

(सर्ग १२ पृ० ४८७-८८)

इसी सर्ग में हनुमानजी से सीताहरण और लक्ष्मण शक्ति की सूचना पाकर भरत में वीर भाव उद्वेलित हो उठता है—

अनुज मुझे रिपु रक्त चाहिए डूब मरूँ मैं।
× × ×
सज अभी मारुत बजे हाँ जय का डंका।
रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लंका ॥

कामायनी (जयशंकर प्रसाद)—कामायनी को विद्वानों ने शान्त रस प्रधान माना है। संघर्ष सर्ग में सारस्वत प्रदेश की प्रजा जब मनु पर आक्रमण करती है तो मनु वीरता से उसका प्रतिरोध करते हैं—

'यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सम्हाला
देव आग ने उगली त्यों ही ज्वाला।
छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले।
टूट रहे नभ धूम केतु अति नीले पीले ॥
अंधड़ था बढ़ रहा प्रजा दल सा झुँझलाता
रण वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता।
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को।
ताण्डव में थी तीव्र प्रगति परमाणु विकल थे,
नियति विकर्षणमयी, त्रास से सब व्याकुल थे।

(संघर्ष सर्ग पृ० २००)

वैदेही वनवास (हरिऔध)—प्रियप्रवास की भाँति यह भी करुण रस प्रधान महाकाव्य है। तृतीय सर्ग में रजक के द्वारा सीता के सम्बन्ध में

लोकापवाद की बात को सुनकर लक्ष्मण के उग्र स्वभाव में वीर भाव की सुन्दर झलक है—

> सभय कर मुँह को म्लान राज्य में है जिसका बसना।
> चाहता है यह मेरा जी रात की मींच नें रमना॥
> प्रमादी लोग ही कितने मगन में उनका गकना है।
> × × ×
> मुझे यदि आना हो तो मैं पचा दूँ कुजा की बाई।
> छल्ल दे छील छाल करके कुरुचि उर की कुत्सित काई॥
>
> (पृष्ठ ३७-५८)

कृष्णायन (श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र)—कृष्णायन वीर रस प्रधान महाकाव्य है। इसमें स्थान स्थान पर वीर भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है। विशेष रूप से जय काण्ड में

> हनि प्रचण्ड शर शत्रु विदारक
> वधेउ प्रचारि वीर वृन्दारक।
> पुनि कौशल अधिराज बृहद्गत
> हतेउ मदक बधि वक्षस्थल॥
> × × ×
> भग्न कृपाचार्य रथ चाका पतित भारद्वाज पताका।
> पाण्डु भूमि-प्रवा—शरासन मूर्च्छित छिन्न देह दुःशासन।
> विरथ द्रोणसुत विचरत धायन आहत सोबत कोट पलायन।
> मर्माहत कुरुपति अंग अंगा भागे न रथ भीत तुरगा।
> पहुँच कर्ण निग पुनि क्वर प्रेरे कणिक बाण।
> कम्पित गिरि भूकम्प जनु छिन्न देह तनु प्राण॥
> पतित सारथी साश्व गिरी ध्वस्त क्षिति तल ध्वजा।
> हत सब रथर पार्श्व विकल विरथ राधा सुवन॥
>
> (जयकाण्ड)

साकेत सन्त (डा० बलदेवप्रसाद मिश्र)—इस महाकाव्य का प्रमुख रस तो शान्त है किन्तु प्रसंगानुरूप विविध रसों का निर्वाह हुआ है। भरत जब ससैन्य चित्रकूट की ओर राम से मिलने आ रहे हैं तो मार्ग में निषाद और उसके साथी राम के अमंगल की सम्भावना करके भरत का प्रतिशोध करने को सन्नद्ध हो जाते हैं। उनके उत्साह में वीर भावों की व्यंजना द्रष्टव्य है—

> दण्ड दुर्बल के न उसका नाम लो
> शस्त्र कुण्ठित जो न उससे काम लो।

हम व्यवस्थापक अनिच्छा से सहा
एक आना पर क्या सकते नहीं।
राम का यदि बान भी बाँका हुआ
जान लो कर्तव्य पथ आँका हुआ।
मार कर चाहे न लें बदला कहा
मर मिटेंगे याय पर हम सब वहीं॥

(सर्ग ७ पृष्ठ ८७)

दलबश (हरदयालु सिंह)—इस महाकाव्य में जहाँ जहाँ कुमार और तारक के शौर्य का वर्णन है वहाँ वीर रस का परिपाक हुआ है। वामन की माता अदिति के प्रति निम्न उक्ति उद्धृत है

'आयुस होय तो जाय अरे
असुराधिप को रन माँहि प्रचारा।
त्यौंही वड-वर्षे दतन के
गहि के अबही कहौ सीस उपारा।
कै निज क्रोध कृसानु में आज
जराय कै छार तिन्हें कर डारा॥

(१०/५३)

छठ सर्ग में देवासुर संग्राम के अवसर पर तारक का उत्साह दर्शनीय है

क्रोध अमल तारक जिय जाग्यो।
कामुक कोपि स्रवन लगि ताना॥
लाग्यो वीर चलावन बाना।
या विधि सो तारक सर छांड्यो।
अवनि अकास निसिरन ते पाट्यो॥

(६/८७)

अगराज (आनन्दकुमार)—यह वीर रस प्रधान महाकाव्य है। अगराज के रचयिता ने काव्य की भूमिका में कहा है कि— वीरगाथाओं को हम पृथ्वी पर पूर्वजों का वीरलोक मानते हैं। वीर वृत्तान्तों से लोक में वीर धर्म की प्रतिष्ठा होती है। वीर धर्म का पालन रण मनिवार्य के लिए आवश्यक है। वास्तव में वीरता ही सजीवता है। वीर रस ही जीवन का मुख्य रस है। वीर वाणी से कम से कम कापुरुषता की प्रवृत्ति का नाश और कर्मोत्साह का उद्दीपन तो होता है। (अगराज भूमिका भाग)

इक्कीसवें सर्ग में अंगराज कर्ण के सेनापतित्व में सेना के प्रयाण का वर्णन इस प्रकार है

अंगवीर कर्ण का निदेश सुनते ही वहाँ
गूँज उठी सैन्य सिंहनाद से रणस्थली ।
वीर रस मज्जित सुसज्जित चले समस्त
युद्ध सिद्ध आयुधी महारथी महाबली ।।
गर्वित मतंग चले धावित तुरंग चले
वेगित शताग भी सजाकर ध्वजावली ।
शत्रु को पुकारती प्रधान वैजयन्तिका की
आरती उतारती सी भारती चमू चली ।।
(सर्ग २१/२)

रावण (हरदयालु सिंह)—रावण के समान महापराक्रमी और योद्धा पर आधारित इस प्रबन्ध काव्य में रावण के शौर्य साहस और उत्साह के भव्य दृश्य अंकित हुए हैं। त्रयोदश सर्ग में राम रावण के युद्ध के अवसर पर वीर रस से पूर्ण वर्णन हुआ है

रामहि देख निकट नियराया ।
दससिर कोपि सरासर लाया ।।
बरसत बान झुकत अधियारी ।
भादव जलद घटा जनु कारी ।।
× × ×
या विधि बान वृन्द झरि लाई ।
रन में रुधिर नदी बह आई ।।
जल सरधार बहत विकराला ।
गज विमान भाई जुगल किनारा ।।

पार्वती (डा रामानन्द तिवारी भारती नन्दन)—वीर रस की इस महाकाव्य में भी प्रधानता है। कुमार कार्तिकेय के नेतृत्व में देव सेना तारकासुर के दलन को जब उद्यत हुई तो कवि ने वीर रस की सरिता ही प्रवाहित कर दी है

उमड पडा कोमल हृदयों में
किस पौरुष का नव उत्साह ।
फूट पडा निश्चल मानस में
किस प्रपात का तूर्ण प्रवाह ।।

फड़के कर्कश बाहु सिंधु सा,
उमड़ पड़ा उनका उन्नत वक्ष।
अन्तर का आवेश वदन की
हुआ लालिमा में प्रत्यक्ष ॥
× × ×
जागी वीरों के नयनों में
कौन अपूर्व तेज की ज्वाल।
पुलकित स्कन्धों के निषंग में
बाण कर रहे गुरु झंकार।
हुईं दिगन्तों में प्रतिगुंजित
धनुषों की भीषण टंकार ॥
रुक न सका उत्सुक वीरों के,
अन्तर का आकुल आवेश।
मिला विजय वर सा प्रयाण का
आज अभीप्सित प्रत्यादेश ॥

(सर्ग १७ पृ० ३५४)

जयभारत (मैथिलीशरण गुप्त)—युद्ध काण्ड में भीष्म के अपूर्व रण कौशल में वीर रसानुभूति होना है

तेसा रण रंग गंगानन्दन ने था किया
पाडवों का सारा दल अस्त-व्यस्त हो गया।
द्वन्द्व जहाँ हो रहा था संकुल तुमुल था
भर गई सारी रणभूमि रुण्ड मुण्डों से।
रक्त में प्रवाह छूटे पानी की पुकार था।
× × ×
सो गये थे शत्रु मित्र भूमि पर साथ हो
सब को किशोरों सा सुलाया पितामह ने।

(युद्धकाण्ड पृ० ३७४)

तारकवध (गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश')—प्रस्तुत महाकाव्य में वीर रस के अनेक सुन्दर स्थल यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। त्रयोदश सर्ग के गीतों में वीर रस की अभिव्यंजना सुंदर है

हम करना है अरि संहार
मग को देना है आहार।

सिन्धु के भीतर भी धस जाय
शत्रु होगा तब भी असहाय ॥
हमारा प्रोधानल अति चण्ड
उसे कर डालेगा निरुपाय ।
यही है कौशल का ललकार ॥
(सर्ग १३ पृ० ३४५)

अथवा

चलो रण प्रागण म हे वीर
शत्रु के उर म मारो तीर ।
प्रकृति का आया है आह्वान
हम करना सहार विधान ॥
विश्व का हो नव नव निर्माण
विधात्री ने अपना वरदान ।
वक्ष वैरी का डालो चीर
सिह जैसे तडपो हे वीर ॥
(पृ ३४५)

एकलव्य (डा० रामकुमार वर्मा)—इस महाकाव्य म द्रोणाचाय और एकलव्य के चरित्र म अपार शौय और वीर भावो का चित्रण हुआ है । सप्तम सग म एकलव्य के निम्न कथन म वीर दप का भाव दर्शित

सावधान भूमिपति ! हम म भी है शक्ति
भूमि पुत्र सवदा है बाहुबल जानते ।
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है
आत्मबल की हमारे पास सीमा नही ॥
× × ×
किन्तु शौय धय मयी बाहुए हमारी है
ब्रह्मचय अग पर सत्य का कवच है ।
मन तूणीर म शिलीमुख हैं सयम के
और कामधनु पर प्राण की प्रत्यचा है ॥
(सग ६ पृ० १७८)

रश्मिरथी (रामधारीसिह दिनकर)—सप्तम सग म कण अजुन युद्ध के अवसर पर राधेय (कण) का अपने सारथी शल्य के प्रति वीरता से ओतप्रोत कथन

सामने प्रकट हो प्रलय ! फाड़,
तुझको मैं राह बनाऊँगा।
जाना है तो तेरे भीतर
संहार मचाता जाऊँगा॥
क्या धमकाता है काल ! अरे
आ जा मुट्ठी में बन्द करूँ।
छुट्टी पाऊँ तुझको समाप्त कर दूँ
निज को स्वच्छन्द करूँ॥
ओ मलय ! हवा का तेज बना
ले चल उड़ाकर शीघ्र वहाँ।
गोविन्द पाद के साथ डटे हों
चुन कर मारें वीर जहाँ॥
(पृ० १८५)

उर्मिला (बालकृष्ण शर्मा नवीन)—लक्ष्मण का निम्न कथन वीरत्व भाव से परिपूर्ण है

माँ दरसोगी दूध तुम्हारा नहीं लजायेगा लक्ष्मण
देकर अपने प्राण करेगा, वह आदर्शों का रक्षण।
जिसके बन्धु राम हों, जिसकी पूज्य सुमित्रा महतारी
धिक् है वह यदि प्राण मोह में पड़ बन जाय अविचारी।
एक एक घूँट में तुम्हारे पय के मैंने अमृत पिया है,
कैसे विचलित कर सकता, मुझे मृत्यु को अनन्त किया है।
(सर्ग ४ पृ० ३३६)

कुरुक्षेत्र (रामधारीसिंह दिनकर)—भीष्मपितामह के अधिकांश कथनों में युद्धवीर का ओजस्वी स्वर मुखरित है

युद्ध की ललकार सुन प्रतिशोध से
दीप्त हो अभिमान उठता बोल है
चाहता नस तोड़ कर बहना लहू
आ स्वयं तलवार जाती हाथ में।
(सर्ग [illegible] पृ० २३)

यही नहीं, वीरों की भाँति भीष्म ने स्पष्ट कहा

कायरों की बात कर मुझको जनमते आज तक
है रहा आराध्य मेरा वीरता, बलिदान ही,

जाति मन्दिर म जनावर मूरता की आरती
जा रहा हू विश्व से चढ युद्ध क ही यान पर।
(२/२७)

जौहर (श्यामनारायण पाण्डय)—यह वीर और करुण रससिक्त महाकाव्य है। गोरा बादल के युद्ध पराक्रम म वीर रस का परिपाक हुआ है

देख सवारों की चिनगारी
रोम रोम म लगी निकलने।
दोनों आँखें लाल हो गया
लगी क्रोध स काया जलने॥
भौंह कुटिल कमान हो गयी
पलकें उठी उतान हो गयी।
गोरा की असि दीप्त भुजाए
फडकी काल समान हो गया॥
प्रलय मेघ सा गरज म्यान से
एक प्रखर तलवार निकाली।
साथ साथ हुङ्कृति की उसने
गोहुवन सी फुफ्कार निकाली॥
और दूसरे ही क्षण अरि के
हय पर कूद सवार हो गया।
अश्वारोही गिरा धरा पर
जीवन क उस पार हो गया॥
(दसवी चिनगारी पृ० १०६)

झाँसी की रानी (श्यामनारायण)—युद्ध वणन म महारानी लक्ष्मीबाई क वीरत्व की झाँकी अवलोकनीय है

तलवार किधर कब उठती थी
कब किधर छपाछप करती थी।
यह भी अरिदल को ज्ञात न था
कब किधर लपालप करती थी॥
कवर इतना ही कह पाते थे
रानी आई रानी आई।
तब तक सिर धड स अलग लोट
भू पर कहता रानी आई॥

जब तक घोड की टापा की,
ध्वनि हो अरिदल सुन पाता था।
तब तक रानी का खडग तुरत,
बन मृत्यु शीश पर आता था॥
दायें बायें दो हाथो से
रानी थी रिपु सिर काट रही
स्वात य भवन की नयी नीव
थी शत्रु मुण्ड से पाट रही॥
(बाइसवा हुकार पृ० २६४ ६५)

सेनापति कण (लक्ष्मीनारायण मिश्र)—सुप्रसिद्ध नाटककार श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र का कण के जीवन पर यह अपूण लिखित महाका य है। म त्रणा नामक प्रथम सग म कण का यह कथन वीर भाव स पूरित है

' चुनौती यह देव की
दे रहा हूँ आज हीन जन्मा हीन नर म।
साक्षी मान सब शुचि वीर मणि सूय को
सूय सेवी हू जो सूय तेज धारी रण म॥
मारूगा धनजय को, कल वह दम्भी जो
आया अडने को यही शत्रु पथ म।
× × ×
और क्या कहूँ मैं ? हिला काल पृष्ठ कर म,
वाम कर काँपा चढी प्रत्यचा धनुष की।
रोषपूण आँखें हुइ निर्निमय पलक,
खिंच उठी भाह बक्र र घ्र नासिका के द॥
(पृ० ४६)

रामरा य (डा० बल्देवप्रसाद मिश्र)—प्रस्तुत महाका य क नवम सग म राम रावण युद्ध क अवसर पर वीर रस के दृश्य हैं

हुआ दुदुभी ना उभय शिवि तुमुल हो उठा जयजयकार
होने लगी उभय शिवि स ही, विविध आयुधो की बौछार।
तरु शाखाएँ लटठ बन गइ पत्थर बन डाल तलवार,
विफल हुए जिन पर असुरा क बरछ भाल तीर कटार॥
× × ×

महाकाल का डमरू बोला डमड डमड डम घरघर मार
काली नाच उठी छप्पर भर आता स धरके शृगार ॥

(पृष्ठ १०१)

नूरजहाँ (गुरुभक्तसिंह)—यह शृगार रस प्रधान महाकाव्य है। किन्तु इसम भी वीर रस का चित्रण हुआ है। शर अफगन का अपनी पत्नी के प्रति कथन देखिए

म हू वीर मुझ मरन का नही जरा भी लगता भय।
जब तक है तलवार हाथ म तू किस भय म भूली है।
नही कुतुब की कुछ मजाल वह कौन खत की मूली है॥
शांत रहो घबराओ मत डरो न मुझको जाने दो।
और नही कोई भी चिन्ता अपने दिल पर आने दो॥

विक्रमादित्य (गुरुभक्तसिंह)—यह भी शृगार रस प्रधान महाकाव्य है। इसम चन्द्रगुप्त के पराक्रम का वणन इस प्रकार हुआ है

अरि की रथ सेना कुचल गजा न
पग स रज म मिला दिया।
दांता स हय दल छद छद
उनम भी भगदड मचा दिया॥
जब मार पडा तलवारा की
भालो की भी भरमार हुई।
छक्के छूट गये कमर टूटी
अरि के प्रतिकूल यार हुई॥

नारी (अनुनकृष्ण गोस्वामी)—इसम नारी के विविध रूपो का वणन ह। कवि ने नारी के वारागना रूप का वणन निम्न प्रकार किया है

तजस्विनी आत्मगौरवमयि उत्सर्गोद्यत निभय नारी॥
कौन कर सके इस तिरस्कृत किसका इसे विश्व म है डर।
इस पर दृष्टि उठा सकन का साहस किस न नत किसका सिर॥
तल्पशायिनी अश्वरोहिणी चण्डी वाल कोमल कर म।
जब तलवार उठा लती है फिर रुक पाता कौन समर म॥
आज न यह अबला न दुबला इस पर शक्ति प्रयोग न सम्भव।
अपराजित सम्मानित सक्षम यह जावत जागृत नारी नव॥

(पृष्ठ २८०)

इस प्रकार वर्तमान युग के हिन्दी महाकाव्यों में वीर रस की स्रोतस्विनी का अमित प्रवाह अक्षुण्ण है। हिन्दी काव्य परम्परा में वीर रस की जो धारा महाकवि चन्दवरदाई के पृथ्वीराजरासो में प्रवाहित हुई थी, उसका उद्गम आज भी सूखा नहीं है। वीर भावना मानव मात्र की आदिम और जन्मजात प्रवृत्ति है। संसार में जब तक वीरों का समादर रहेगा और वीरत्व भाव में निष्ठा रहेगी तब तक काव्य रचनाओं में वीरता के गीत अवश्य गाये जायेंगे। महाकाव्य तो जातीय-जीवन चेतना के आकलन का सात्त्विक प्रयास होते हैं उनमें युग जीवन का उन्नत बोध प्रतिफलित होता है। अतः वीरत्व भाव की व्यंजना का सर्वाधिक प्रतिफलन महाकाव्यों में ही होता है। हिन्दी ही नहीं अपितु विश्व महाकाव्यों की परम्परा इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

हिन्दी महाकाव्यो मे हास्य रस

हिन्दी महाकाव्यों में हास्य रस

महाकाव्य की महार्घता का मूल आधार उसके रूप निर्धायक तत्त्व है। महाकाव्य सृजन में रसपरिपाक पर विशेष बल दिया जाता है। भारतीय साहित्याचार्यों ने महाकाव्य की रचना के उपकरणों का आख्यान करते हुए रसव्यंजना का भी उल्लेख किया है। रुद्रट ने 'सर्वे रसाः क्रियन्ते काव्य स्थानानि सर्वाणि'[1] और दण्डी ने 'अलंकृतम् संक्षिप्तम् रस भाव निरन्तरम्'[2] कहकर महाकाव्य में सभी रसों के सफल निर्वाह का उल्लेख किया है। विश्वनाथ ने शृंगार, वीर और शान्त नामक रसों में से किसी एक का प्रमुख रूप में तथा अन्य रसों का सहायक रूप में महाकाव्य में होना बताया है। पाश्चात्य विद्वानों (जैसे अरस्तू) ने भावाभिव्यंजना पर बल दिया है। डा० शम्भूनाथसिंह का इस सम्बन्ध में मत है कि— भावव्यंजना का ही भारतीय नाम रस है।[3] अस्तु महाकाव्य में रस-योजना का महत्त्व स्पष्ट हो है। जहाँ तक हास्य रस का सम्बन्ध है महाकाव्यकारों ने हास्य रस की योजना अपनी कृतियों में प्रसंगानुकूल की है। शास्त्रीय दृष्टि से हास्य रस महाकाव्य के लिए अपेक्षित मुख्य रसों का सहायक भी है। डा० जगदीश गुप्त के मतानुसार— साहचर्य भाव से हास्य रस शृंगार, वीर और अद्भुत रस का पोषक है। शान्त के भी अननुकूल नहीं है।[4] प्रस्तुत प्रसंग में हिन्दी महाकाव्यों में हास्य रस की नियोजना पर विमर्श अभीप्सित है।

पृथ्वीराजरासो—हिन्दी के आदि महाकाव्य पृथ्वीराजरासो में प्रमुखता तो शृंगार और वीर रसों की है किन्तु एकाध स्थल पर हास्य की व्यंग्य विनोद मिश्रित छटा भी दर्शनीय है। कनवज्ज समय में जयचन्द के यहाँ संयोगिता स्वयंवर में चन्द कवि और उनके सेवक के रूप में पृथ्वीराज चौहान पहुँचे

---

1 काव्यालंकार अध्याय १६

2 काव्यादर्श प्रथम परिच्छेद १८

3 हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ११७

4 हिन्दी साहित्य कोश हास्य रस पर टिप्पणी पृ० ८८५

क्योंकि पृथ्वीराज को आमन्त्रित नहीं किया गया था। चन्दबरदाई ने परम्परा के अनुसार जयचन्द का प्रशस्तिगान किया जिससे जयचन्द बहुत प्रसन्न हुआ। जैसे ही जयचन्द कवि चन्द को पुरस्कृत करने को भाव रहे थे तभी कवि ने पृथ्वीराज की प्रशंसा प्रारम्भ कर दी। पृथ्वीराज की प्रशंसा से चिढ़कर जयचन्द ने चन्दबरदाई को वरद् (बैल) कह संबोधित किया

मुन्द दरिदद अह तुच्छ तन जगनराव सुन्द्द।
बन उजार पसु तन चरन क्यों दुब्बरो वरद्द॥

यहाँ जयचन्द ने कवि को वरद् और पृथ्वीराज को जंगलराव कहकर व्यंग्य कसा। साथ ही चन्द (बैल) के दुबले होने का कारण पूछा। प्रत्युत्तर में चन्द ने कहा कि पृथ्वीराज ने सभी राजाओं को जीत लिया है। पराजित राजा पृथ्वीराज की अधीनता स्वीकार कर दाँतों में तिनके एवं घास दबाकर भाग गये हैं। इसीलिए बैल को अपना भाग्य-स्वाद न मिलने से वह दुबला हो गया है। जयचन्द को चन्द की व्यंग्योक्ति चुभ गयी और उसने दूसरा उपहासपूर्ण कथन कहा

हंस न्याय दुब्बरो मुत्ति नम्म न चनुत्त।
सिंघ न्याय दुब्बरो करी चम्पे स कठ वह॥
म्रग न्याय दुब्बरो नाद बधिय सुवधन।
छन छक्क दुब्बरो त्रिया दुब्बरी मात मन॥
आसाढ़ गाठ बघन धुरा एकहि गहि ह हरद्दिया।
जगर जुरारि उज्जर परन यों दुब्बरो बरद्दिया॥

अर्थात् हंस मोती के अभाव में सिंह गज के कुंभस्थल के रक्तपान के अभाव में मृग संगीत मोह में बन्धनग्रस्त होने से रसिक व्यक्ति मौज न कर सकने पर और स्त्री मनानुकूल मित्र के अभाव में दुबले हो जाते हैं और उनका दुबला होना युक्तिपूर्ण भी है। किन्तु आसाढ़ मास में जब आकाश में घटाएं छायी हैं और पृथ्वी घास से हरी भरी है, बैल को हल भी नहीं जोतना पड़ता तब भी बैल दुबला क्यों है?

इसी प्रकार यह व्यंग्य विनोदपूर्ण वार्तालाप चलता रहता है और अन्त में चन्द के उस उत्तर से जिसमें बैल की अनन्त महिमा का बखान है, सुनकर जयचन्द प्रसंग बदलता है।

पद्मावत—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सहित पद्मावत के सभी समीक्षकों ने

प्रस्तुत महाकाव्य में हास्य के अभाव की चर्चा की है।[४] किन्तु पद्मावत के एक प्रसंग में क्षीण हास्य की सामग्री मिल जाती है। पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड में रत्नसेन योगी की प्रेम विनती सुनकर उसका उपहास उड़ाती हुई पद्मावती कहती है

'ओ हट होसि जोगि ! तोरी चेरी। आव बास कुरकुटा केरी।
देखि भभूति धूनि मोहि लागा। कांपै चांद सूर सौ भागा।
जोगि तोरि तपसी कै काया। लागि चहै मोरे अंग छाया।
× × × ×
हौं रानी तू जोगि भिखारी। जोगिहि भोगहि कौन चिन्हारी।
× × × ×
तजि सो नेह का दिन कर रहहि न एकौ देस।
जोगि भौंर भिखारी इन्ह सौं दूर अदेस॥

रामचरितमानस—मानस में हास्य के अनेक स्थल हैं जिनकी आयोजना कवि ने प्रसंगानुकूल की है। बालकाण्ड में राजा शीलनिधि द्वारा आयोजित स्वयम्वर में राजकन्या का वरण करने के उद्देश्य से मर्कट मुख लेकर आये हुए नारदजी को देखकर शिवगणों का उपहास करना उल्लेखनीय है

'तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखेउ न कोऊ।
करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई।
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी।
जेहिं दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली।
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं।

इसी काण्ड में शिव की बरात के वर्णन में तथा लक्ष्मण परशुराम संवाद तथा रावण अंगद संवाद में भी हास्य की सुन्दर योजना हुई है। वस्तुतः मानस में हास्य का स्वरूप शिष्ट और मर्यादित है।

रामचन्द्रिका—चमत्कार प्रदर्शन के व्यामोह में रामचन्द्रिका में रसपरिपाक का अभाव तो है ही साथ ही हास्य की सजीव सृष्टि का भी अभाव है। सीता स्वयम्वर के प्रसंग को लेकर मानसकार ने जहाँ शिष्ट हास्य की योजना की है वहाँ भी केशवदास हास्य का सुन्दर समाहार नहीं कर पाये हैं। उदाहरणार्थ एकाध ही स्थल रामचन्द्रिका में हास्य के नाम पर दिखायी देता है। जब परशुरामजी के आगमन पर योद्धा राजा अस्त्र शस्त्र छोड़कर प्राण बचाने के

[४] जायसी ग्रन्थावली (पंचम संस्करण) भूमिका पृ० १०२

निए भागत ही नहा हैं वरन् वार्ड वार्ड ता अपन ववधानि काटकर स्त्री का वश भी धारण कर लते हैं

मसन्नि अमत्त ह्व गय न्गि न्गि न गन्जन्ग
ठौर ठौर मुन्डेण वन्गव दुन्दभि नानि बन्जन्ग।
न्गनि डारि हथ्थान मूरज जीव न न भन्जन्ग
कानि व तन मान नरनि नारि भपन गन्जन्ग ॥

(मानवाँ प्रकाश छन्द ७)

इसी प्रकार पन्गराम जा क निम्नांकित कथन म भा न्गस्य है जन व कन्त हैं

नन्मण क पुरषान किया पुरुषाथ मा न कह्यौ परइ।
वष पनाय किया बनितान का दवत कशव ह्यौ न्ग्इ ॥'

(वही छन्द ३६)

प्रियप्रवास—न्गिऔधकृत प्रियप्रवास आधुनिक युग म खडी बोली हिन्गी का प्रथम महाकाव्य है। इसका वण्यरस (करुण) न्गस्य की प्रकृति के अनुरूप नन्गा है। किन्तु प्रकृति चित्रण क समय कुछ हास्य उक्तियाँ देकर हरिऔधजी न अपन विनान्गी स्वभाव का परिचय निया है। जसे नवम सग म नीम तथा नारगी का वणन न्पट्य है

स्वकीय पचाग प्रभाव म मन्गा
बनस्थनी बीच नारागना बन्गा।
किसी गुणी वद्य समान था खडा
स्वनिम्बता गर्वित वक्ष निम्ब का।
सुरग न्गन तमग कन्ड नगा
न्गर सजीन निज वस्त्र का सजे।
धन्न अनूठपन साथ था खन्गा
मन्गारगीला तरु नारगी बना ॥

साकेत—साकेत महाकाव्य म यद्यपि शृगार एव करुण रस की ही प्रधानता है तथापि हास्य की दृष्टि स निम्नांकित स्थन अवलोकनीय है

प्रथम सग म उर्मिला-लक्ष्मण सवान्ग की न्गस्योक्तियाँ जस उर्मिला का यन्ग कथन

कर बन्गा कर जो कमन मा था खिला
मुस्करान्ग और बोली उर्मिला।

मत्त गज बन कर विवेक न छोड़ना,
कर कमल कह कर न मेरा तोड़ना।'

हास्य की सफल सृष्टि 'अष्टम सर्ग' में जरठ जाबालि मुनि और श्रीराम के पारस्परिक वार्तालाप में है

जाबालि जरठ को हुआ मौन दु सह सा
बोले व स्वजटिल शाप डला कर सहसा—
ओहो! मुझको कुछ नहीं समझ पड़ता है
देने का उल्टा राज्य द्वन्द्व लड़ता है।
पितृ वध तक उसके लिए लोग करते हैं।
हे मुने राज्य पर वही मत्य मरते हैं।
हे राम त्याग की वस्तु नहीं वह ऐसा
पर मुने भोग की भी न समझिए वैसी।
हे तरुण तुम्हें सकोच और भय किसका ?
मैं जरठ नहीं इस समय आपका जिसका।'
'पशु पक्षी तक हैं और स्वार्थ साक्षी है।
'हे धीर किन्तु मैं पशु न आप पक्षी हैं।'

कामायनी— कामायनी महाकाव्य में हास्य रस का नितान्त अभाव है। विद्वानों ने इस तथ्य को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। डा० द्वारिकाप्रसाद के शब्दों में— सारांश यह है कि कामायनी में हास्य रस को छोड़कर सभी रसों का चित्रण सफलता के साथ मिलता है। हास्य रस के अभाव का कारण प्रसादजी का गम्भीर एवं चिन्तनशील स्वभाव है। दूसरे आदि पुरुष की कथा इतने गम्भीर वातावरण में होकर चलती है कि उसमें हास्य के लिए कहीं अवकाश नहीं मिलता।'[६] कामायनी के एक अन्य समीक्षक का मत है कि— पता नहीं क्यों प्रसादजी ने इसे (हास्य) कामायनी में स्थान नहीं दिया जबकि उनके नाटकों में हम हास्य की अत्यन्त सुन्दर व्यंजना देख पाते हैं। कुछ भी हो हास्य रस का अभाव कामायनी में खटकता अवश्य है। शिष्ट हास्य के दो एक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते थे।[७] जो हो हास्य का अभाव कामायनी महाकाव्य की एक कमी है जिसे हम सखेद स्वीकार

---

६ डा० द्वारिकाप्रसाद कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० १६२
७ शिवकुमार मिश्र कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा पृ० १३४

करना चाहिए। महाकाव्य में नवरंग परिवार विधान की दृष्टि से भी यह एक काव्यशास्त्रीय त्रुटि है।

दरयवश—प्रस्तुत महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में हास्य रस के सुन्दर दृश्य हैं। लक्ष्मी स्वयम्बर के अवसर पर शारदा देवी और कन्या का परिचय देते समय ब्रह्माजी का परिचय जिस शब्द-योजना द्वारा प्रस्तुत करना है और लक्ष्मी को उद्वरण करने का परामर्श देती है वह हास्य से पूर्ण है

> तानहू नाक के ये करता
> अरु चारहू वेद बनावन हारे।
> दाढ़ी भई मन सो सिगरी
> सिर पे कहू केस न दीसत कारे।
> नारद सो इनके हैं सपूत
> तिहू पुर ज्ञान सिखावन हारे।
> प्रेम की पास में बाधन की
> तुम्हें बूढ़े बवा इत हैं पगु धारे॥

एकलव्य—डा० रामकुमार वर्मा रचित एकलव्य महाकाव्य के प्ररणा और साधन सर्गों में हास्य व्यंग्य और विनोद के प्रसंग प्राप्त हैं।

जब एकलव्य ने प्रण कर लिया कि वह गुरु द्रोणाचार्य का शिष्य बन बिना भोजन नहीं करेगा तब उसके मित्र नागदन्त ने विनोद से कहा

> अच्छा एकलव्य ! करो भोजन मैं कल जा
> उनकी पद धूलि रथ भर ले आऊगा
> उसकी मूर्ति बना बार बार पूजना
> (प्ररणा सर्ग पृ० ८४)

एकलव्य के पिता ने भी उसके रूठ जाने पर कहा

> भोजन करेगा नहीं ? पिता हम बाल के—
> रूठने से बाण विद्या भी कभी आती है ?
> और रूठा शिष्य किस गुरु ने बनाया है ?
> एकलव्य यदि बाण विद्या और चाहता
> पहले बना ले लक्ष्य अन्न ही को।
> पिता ने अट्टहास किया एकलव्य भी हँसा।
> (वही पृ० ८७)

हस्तिनापुर से लौटने पर एकलव्य के साथी उसका व्यंग्य से स्वागत करते हुए कहते हैं

"आओ आओ, एकलव्य ! शिष्य आये द्रोण के !
साधक महान ! समकक्ष क्षत्रियों के हैं।

इसी प्रकार के हास्य की योजना लाघव सर्ग में भीम और अर्जुन के सवादों में है।

कृष्णायन—श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र के 'कृष्णायन' महाकाव्य में हास्य के प्रसंग यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। अवतरण काण्ड में जब ब्रजवन में दावाग्नि लग गया और कृष्ण ने अग्नि पान कर लिया तब एक ब्रजनारी ने कहा कि हम भी यह मंत्र सिखाओ कि अग्निपान कैसे किया जाता है। तब कृष्ण ने हास्यपूर्ण उत्तर में कहा

'विहँस हरि बोली ब्रज नारी सिखवहु हमहि मन्त्र बनवारी।
बोले कान्ह—मन्त्र तेहि आव चोरी करि जो माखन खाव।
उरहन जासु गेह नित आव, जननी सुनि सुनि जासु रिसाव।
ऊखल ते जो रहे बधाव हाथ भार दस साटी खाव।
(कृष्णायन, पृ० ६५ ६६)

उर्म्मिला—श्री बालकृष्ण 'नवीन' कृत 'उर्म्मिला' महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में पुष्पक विमान से लंका से अयोध्या लौटते समय देवर भाभी (लक्ष्मण और सीता) का परिसंवाद हास्य रस की स्रोतस्विनी प्रवाहित करता है। सीता ने लक्ष्मण से ठिठोली करते हुए कहा कि कैसे खोये-खोये से हो रहे हो क्या कोई वनबाला तो मन में नहीं बस गया ? तभी लक्ष्मण ने कहा

भाभी यों यों लक्ष्मण बोले विहँस मधुर वचनावलियाँ।
भाभी यदि ऐसी ही भोरी होती ये विदेह ललियाँ।
यदि यों सहज छोड़ देता ये रघुकुलजों का हिय आसन।
तो क्या आज लंक में होता वधु विभीषण का शासन।
बाँध दाशरथियों को रखती हैं विदेह की नन्दिनियाँ।
बड़ी चतुर हो तुम मैथिलियाँ हो तुम सब मायाविनियाँ।
(पंचम सर्ग छन्द १५३)

इस पर सीता ने व्यंग्य में कहा कि रघुकुल की तो रीति एकाधिक पत्नियाँ रखने की है। उनका संकेत महाराज दशरथ की ओर था। प्रत्युत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि यदि सौत चाहिए तो मैं राम से कहूँ। तभी सीता ने कहा—अपनी चिन्ता करो। शूर्पणखा के मन के आकर्षण तो तुम ही हो। अन्त में लक्ष्मण ने कहा

बहन बहन सब मिल बैठी हैं
बन देरानी जेठानी
अब औरों की गुजर कहाँ ? क्या ?
है न ठीक भाभी रानी।
(वही पृ० ५६४)

प्रत्युत्तर में सीता ने कहा

तो या कहो कि बहन उर्मिला
की स्मृति में ही हो डूबे।
अब समझी हो इसीलिए यों
उत्सुक से ऊबे ऊबे।
(वहा पृ० ५६५)

नूरजहाँ—हास्य की दृष्टि से श्री गुरुभक्तसिंह जी के *नूरजहाँ महाकाव्य* की निम्नांकित पंक्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं

बोला एक सखी है मुझ पर थी हुजूर की बड़ी निगाह
क्या बतलाऊँ अभी हाल में मेरा हुआ है विवाह
मरू छोड़ कर किस पर अब मैं नयी नवेली दुल्हिन को
वह जी कभी नहीं सकती है मेरे बिना एक क्षण को।

रामराज्य—डा बल्देवप्रसाद जी द्वारा रचित रामराज्य महाकाव्य में लंका विजय के उपरान्त राम जब वानरों और असुरों सहित अयोध्या लौट आये तो अयोध्यावासियों ने उनका अपूर्व स्वागत किया। अच्छे से अच्छे भोजन वस्त्र दिये। आरामदायक वस्तुओं को पाकर वनचरों की दशा विचित्र थी

वन्य जनों को मिले स्फीत आवास सुहाये
दर्पण देख और बहुत मन में मुसकाये।
कोई पावड़े वसन समझ कटि तीर सजाता
कोई था मणिदीप पक्व फल मान चबाता॥
जो थे कर्कशभूमि के ही आयासी
गद्दे उलट तभी ले सके झपकी खासी।
भोजन कच्चा और निलवण जिसने खाया
अदरख वासित साग सूँघ कर मुँह बिचकाया॥
भृत्यों को प्रभु मान गिरे चरणों पर कोई
जन छवि चेतन जान गये भ्रम से भर कोई।
× × ×

प्रासादों की घटाटोप लख घबराये थे।
नगर मानो किसी बटघर में आये थे॥'

(दशम सर्ग पृ० १११)

श्रीरामचन्द्रोदय—देव पुरस्कार विजेता श्रीरामनाथ ज्योतिषी का 'श्रीरामचन्द्रोदय' महाकाव्य परम्परित राम कथा पर आधारित है। सीता स्वयम्बर में धनुभंग के अवसर पर परशुराम लक्ष्मण संवाद में हास्य व्यंग्य की सुन्दर झाँकी है। लक्ष्मण का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है

'अब लगि मैं जान्यो तुम्हें भृगुकुल करक चन्द,
पै सग रागत कान तो हो जमराज दुचन्द॥

× × ×

यठिय भाजन करिय कंठ करि प्रभु मोहि सनाथ
लाइय परसु सुधारहु पाहन पै मुनिनाथ॥

साकेत-संत—डा० बल्देवप्रसाद कृत साकेत सन्त महाकाव्य के प्रथम सर्ग में भरत माण्डवी के पारस्परिक वार्तालाप में हास्य व्यंग्य की छटा दर्शनीय है। भरत माडवी से कहते हैं

'मनुज को मधुप वृत्ति पर चोट
लगाया खूब व्यंग्य की आट।
किन्तु क्या प्रिय नहीं यह तान
तुम्हारी अब इन प्राणों की तान॥

भरत की उक्त उक्ति को सुनकर माण्डवी ने सविनोद कहा

तान मैं हूँ, मैं जीवित बान
अहा उपमाएं मधुर नवीन।
न इच्छा में हो या अनुराग
मन सिखलाया करते त्याग॥

(प्रथम सर्ग पृ० २६)

अंगराज—श्री आनन्दकुमार रचित अंगराज महाकाव्य के छठे सर्ग में धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ के अवसर पर कौरवों को भी आमन्त्रित किया। दुर्योधन भी आया। इन्द्रप्रस्थ का सभाभवन स्फटिकमणियों से जड़ा था। वहाँ जल में थल का और थल में जल का भ्रम होता था। दुर्योधन इससे अपरिचित था। वह उस ओर भ्रमवश चला जिधर जल था और तालाब में गिर गया। तभी द्रौपदी ने उपहास करते हुए व्यंग्योक्ति की

भीमसेन से बोली प्रमत्त करके त्रुटि प्रहार
हुआ चमत्कृत महित भूप की मान दृष्टि का ह्रास
सत्य सर्वदा रहा रहेगा सुपथ भ्रष्ट यह दीन
अर्धपिता का आत्मजात भी होता चक्षु विहीन ।।

मीराबाई— श्री परमेश्वर द्विरेफ प्रणीत मीराबाई महाकाव्य में चतुर्थ सर्ग में जब मीरा की भाभी और सहेलियाँ उससे ठिठोली करती हैं तो हास्य का सरस चित्र अंकित हो जाता है। एक सहेली कहती है

तुम को पाकर कृत कृत्य हुए
तेरे चरणों को चूमेंगे।
पीछे पीछे ही घूमेंगे।
तुम गृहलक्ष्मी हो रानी हो
पर जीजाजी तो भृत्य हुए।
पर सुनते हैं वे काले हैं
चपला ने सहसा व्यंग्य किया
विधि ने क्या ऐसा रंग दिया
पर ठीक ठीक अन्य वाली
कलि का तन होता मतवाला
पर अलि का तन होता काला
काले होते देंगे भाल।
(चतुर्थ सर्ग पृ० ७)

तारक वध— श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' विरचित प्रस्तुत महाकाव्य में पार्वती परिणय के लिए शिव के बराती प्रेतों की साजसज्जा का वर्णन हास्य पूरित है। प्रेत परस्पर कहते थे कि

मेरी नाक जीभ से काटो छोटी उसे बनाओ।
एक आँख में दूँगा तुमको दिव्य दृश्य तो पाओ।
दाँत तुम्हारे का आतुर थे लम्बे दाँतों वाले।
मिला न कोई हाँफ रहे थे लम्बी जीभ निकाले।
प्रभुवर सिर पर मौर धरेंगे हम भी क्या न धरें फिर
हिम प्रदेश की किसी प्रेतनी को हम क्या न वरें फिर ?
बिना रूप के नहीं वरेगी कोई प्रेत कुमारी।
तड़प उठा प्रिय रूप प्राप्ति हित प्रेत मंडली सारी

थके सरित सर निथर आनन का प्रतिबिम्ब दिखाते।
पानी थका वस्त्र को धाकर उसमें पानी लाते॥
(पञ्चम सर्ग पृ० ४१८)

रावण—श्री हरदयालुसिंह लिखित रावण महाकाव्य के छठे सर्ग में बालक मेघनाद रावण के साथ कैलाश पर्वत पर गया। वहाँ पार्वती वाहन सिंह ने दहाड मारी उसे मेघनाद ने डाँट लगायी। उस डाट को सुनकर सिंह तो चुप हो ही गया। साथ ही मूसक गजानन बैल आदि भी डर के मारे भाग गये। इसी अवसर पर कवि ने हास्य रस पूर्ण सरस कल्पना की है कि सर्पों के कान नहीं होते इसीलिए वे मेघनाद का डाट न सुनकर ही शिव के शरीर पर स्थित रहे। यदि सर्प भी डाँट के डर से भाग जाते तो शिव का कौवना और कोपीन खुल जाने और एसी स्थिति में शिव लज्जा में गड जाते

होत बिना उपवीत महेस
जटान के जूट सब ढरि जात।
नाजन ही गरत सब कौधनी
और कोपीन दुओ खलि जात॥
पावते डोरी कहा ते पिनाक की
पानी में कगन कैसे सजात।
स्याल के कान जो होत कहूँ
घननाद को होरि जुप सुनि पात॥
(सर्ग ६ पृ० ९८)

इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों में हास्य रस की उपलब्धि पर विचार किया जाय तो यह उपलब्धि विशेष उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होती है। हिन्दी के महाकाव्यों में सामान्यत हास्य का अभाव है। जो प्रसग उपलब्ध भी हैं वे भी व्यग्य विनोद मिश्रित हैं। महाकाव्यों में हास्य का अभाव स्वाभाविक भी है। महाकाव्य वह गुरु गम्भीर काव्य रूप है जिसमें कला शिल्प भावव्यजना सभी की अभिव्यक्ति गाम्भीर्यपूर्ण होती है। जातीय जीवन की सास्कृतिक चेतना के विराट रूप का आकलन जिस काव्य रूप (महाकाव्य) के माध्यम से किया जाय उसमें हास्य का सम्यक विनियोजन सम्भव भी नहीं है। दूसरे महाकाव्य ही क्या सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य का विराम उन परिस्थितियों में हुआ है जब हमारा जातीय जीवन पराधीन और पददलित था। भारतेन्दु युग में निश्चय ही हास्य के स्वर हमारे साहित्य में मुखरित होने प्रारम्भ हुए हैं। साहित्य में हास्य का अभाव गाम्भीर्य का ही परिचायक है।

भीमसेन से बोली प्रमत्त मत्त पुटित प्रनारा
हुआ चमत्कृत महित भूप की गाता दृष्टि का हास
सदा सवदा रहा रहेगा सुपथ भ्रष्ट यह दीन
अधपिता का आत्मजात भी होना च र विहीन ।।

मीराबाई—श्री परमेश्वर द्विरेफ प्रणीत मीराबाई महाकाव्य म चतुथ सग म जब मीरा की भाभी और सहेलियाँ उससे ठिठोली करती हैं तो हास्य का सरस चित्र अंकित हो जाता है। एक सहेली कहती है

तुम को पाकर कृत कृत्य हुए
तेरे चरणों को चूमेंगे।
पीछे पीछे ही घूमेंगे।
तुम गृहलक्ष्मी हो रानी हो
पर जीजाजी तो भृत्य हुए।
पर सुनते हैं वे काले हैं
चपला ने सहसा व्यंग्य किया
विधि ने क्या ऐसा रंग दिया
पर ठीक ठीक अन्य वाली
कलि का तन होता मतवाला
पर अलि का तन होता काला
काले होते दस भाग।
(चतुथ सग पृ ७)

तारक वध—श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश विरचित प्रस्तुत महाकाव्य म पावती परिणय के लिए शिव के बराती प्रेतों की साजसज्जा का वणन हास्य पूरित है। प्रेत परस्पर कहते थे कि

मेरी नाक जीभ से काटो छोटा उसे बनाओ।
एक आख म दूँगा तुमको दस दृश्य तो पाओ।
दाँत तुडाने को आतुर थे लम्बे दाँतो वाले।
मिला न कोई हाँफ रहे थे लम्बी जीभ निकाले।
प्रभुवर सिर पर मौर धरेंगे हम भी क्या न धरें फिर
हिम प्रदेश की किसी प्रेतनी को हम क्या न बरें फिर ?
बिना रूप के नहीं वरेगी कोई प्रेत कुमारी।
तडप उठी प्रिय रूप प्राप्ति हित प्रेत मंडली सारी

थके सरित सर निरखत आनन का प्रतिबिम्ब दिखात।
पानी थका वस्त्र को धोकर उसमें पानी लात ॥'

(पंचम सर्ग पृ० ४१८)

रावण—श्री हरदयालुसिंह रचित रावण महाकाव्य के छठे सर्ग में बानर मेघनाद रावण के साथ कैलाश पर्वत पर गया। वहाँ पार्वती वाहन सिंह ने दहाड़ मारी, उसे मेघनाद ने डाँट लगायी। उस डाँट को सुनकर सिंह तो चुप हो ही गया। साथ ही मूसक गजानन वल आदि भी डर के मारे भाग गये। इसी अवसर पर कवि ने हास्य रस पूर्ण सरस कल्पना की है कि सर्पों के मान नहीं होते इसलिए वे मेघनाद की डाँट न सुनकर ही शिव के शरीर पर स्थित रहे। यदि सर्प भी डाँट के डर से भाग जाते तो शिव की कौंधनी और कौपीन खुल जाते और ऐसी स्थिति में शिव लज्जा से गड़ जाते

हात बिना उपवीत महेस
जटान के जूट सब टूटि जात।
भाजत ही गरते सब कौंधनी
और कौपीन छूटी सुनि जात ॥
पावते हारी कहा ते पिनाक का
पानी में कंगन कैसे सजात।
व्याल के कान जो होते कहूँ,
घननाद की हाँक जुप सुनि पात ॥

(सर्ग ६ पृ० ८८)

इस प्रकार हिन्दी के महाकाव्यों में हास्य रस की उपलब्धि पर विचार किया जाय तो यह उपलब्धि विशेष उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होती है। हिन्दी के महाकाव्यों में सामान्यतः हास्य का अभाव है। जो प्रसंग उपलब्ध भी हैं वे भी व्यंग्य विनोद मिश्रित हैं। महाकाव्यों में हास्य का अभाव स्वाभाविक भी है। महाकाव्य वह गुरु गम्भीर काव्य रूप है, जिसमें कथा शिल्प भावव्यंजना सभी की अभिव्यक्ति गाम्भीर्यपूर्ण होता है। जातीय जीवन की सांस्कृतिक चेतना के विराट रूप का आकलन जिस काव्य रूप (महाकाव्य) के माध्यम से किया जाए उसमें हास्य का समुचित विनियोजन सम्भव भी नहीं है। दूसरे महाकाव्य ही क्या सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य का विकास उन परिस्थितियों में हुआ है जब हमारा जातीय जीवन पराधीन और सन्त्रस्त था। भारतेन्दु युग से निश्चय ही हास्य के स्वर हमारे साहित्य में मुखरित होने प्रारम्भ हुए हैं। साहित्य में हास्य का अभाव गाम्भीर्य का ही परिचायक है।

वस हास्य जीवन की सरसता के लिए अनिवाय है और इसीलिए नवरसों म हास्य रस को भी स्थान दिया गया है। नवरस विधान की दष्टि स ही हिन्दी महाकाव्यकारों ने अपनी रचनाओं म हास्य की सृष्टि की भी है। इसक अतिरिक्त प्रस्तुत लेख म हास्य के शास्त्रीय स्वरूप स सम्पन्न प्रसगों का उल्लख किया गया है। वसे हास्य के स्मित व्यग्य वक्रोक्ति वाक्छल आदि अनक भदोपभेद हैं जिनके उदाहरण महाकाव्यों म प्रचुरता से प्राप्त है। समष्टि रूप म कहा जा सकता है कि महाकाव्यों म रसयोजना क अध्ययन अनुशीलनकर्त्ता को हास्य क लिए निराश न होना पडगा। केवल कामायनी महाकाव्य ही इस दष्टि स एक अपवाद है।

मूल्यांकन खण्ड

प्रियप्रवास

प्रियप्रवास

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रियप्रवास सर्वप्रथम महाकाव्य है। इस काव्य के रचयिता श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध हैं।

कथासार

प्रियप्रवास की समस्त कथावस्तु सत्रह सर्गों में विभाजित है। वस्तु कथावस्तु बहुत छोटी और संक्षिप्त रूप में ही ग्रहण की गयी है। यद्यपि कृष्ण के मथुरागमन से कथा का आरम्भ होता है किन्तु कथा कथन की एक नवीन शैली को अपनाकर हरिऔधजी ने काव्य के उत्तरार्द्ध में कृष्ण कथा के सम्पूर्ण स्वरूप को उल्लिखित किया है। प्रथम सर्ग का प्रारम्भ प्रकृति वर्णन से होता है

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी राजती
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।

इसी समय श्रीकृष्ण गोचारण के उपरान्त सखाओं सहित ब्रज में आते हैं। उन्हें देखकर समस्त ब्रजजनों को अपार आनन्द होता है। सहसा रात्रि हो जाती है। द्वितीय सर्ग में गोकुल ग्राम में एक ढिंढोरा पिटता है कि प्रातःकाल राजा कंस के यहाँ धनुष-यज्ञ उत्सव हो रहा है और मुकुन्द को मथुरा के लिए आमन्त्रित किया गया है जिसे लेकर श्रीफल्कसुत अक्रूरजी आये हैं। इस घोषणा से समस्त ब्रजवासी व्याकुल होकर अनेक प्रकार की चिन्ताओं में निमग्न हो शोकातुर होते हैं। तृतीय सर्ग में कृष्ण की मथुरा के लिए विदाई का वर्णन है। कृष्ण की विदाई का दृश्य बड़ा कारुणिक एवं हृदय विदारक है। विशेष कर माता यशोदा के ममत्व का चित्रण इस सर्ग में बड़ा भव्य बन पड़ा है। वह जगदम्बा से कृष्ण की रक्षा की प्रार्थना करती है। कृष्ण-बलराम जिस रथ से जाते हैं उसके आगे प्रेम विह्वल नरनारी लेट जाते हैं। जिन्हें वे किसी प्रकार समझा-बुझाकर प्रस्थान करते हैं। चतुर्थ सर्ग में कृष्ण के

मथुरागमनोपरान्त गोकुल ग्रामवासियों की विरह वेदना का वर्णन है। वस्तुतः यशोदा भी कृष्ण की वियोग व्यथा से आकुल है। राधा की वेदना दुगुनी हो जाती है। राधा का परिचय कवि ने इसी सर्ग में दिया है। राधा और कृष्ण की बाल लीलाओं का भी वर्णन है। पाँचवें सर्ग में नन्द कृष्ण बलराम की सुध लेने मथुरा जाते हैं। उसी समय समस्त ब्रजवासी करुणक्रन्दन करते हैं। यशोदा की दशा अवर्णनीय है वह शोकसिन्धु में निमग्न है। छठे सर्ग में ब्रजवासी कृष्णागमन की प्रतीक्षा में पथ पर चलकर उनकी राह देखते हैं। स्त्रियाँ गवाक्षों में से झाँकती हैं। राधा पवन को दूती बनाकर कृष्ण के पास सन्देश भेजती है। सप्तम सर्ग में नन्द श्रीकृष्ण को मथुरा छोड़कर गोकुल लौट आते हैं। उन्हें अकेला देखकर यशोदा विरह में व्याकुल हो जाती है। अष्टम सर्ग में कृष्ण के अनागमन की सूचना यशोदा को पागल बना देती है। तब नन्द बाबा कृष्ण के अतुल पराक्रम अर्थात् कुवलय हाथी, मल्लों एवं कंस के वध की बातें बताते हैं जिससे यशोदा को कुछ सान्त्वना मिलती है किन्तु कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करते-करते सब निराश हो जाते हैं। ब्रज के लोग स्थान स्थान पर बैठकर कृष्ण की बाललीलाओं का स्मरण कर अपने प्रेम भाव को व्यक्त कर रहे हैं। नवम सर्ग में कृष्ण को मथुरा रहते बहुत दिनों बाद ब्रजजनों का स्मरण हो आया। उन्होंने अपने अभिन्न सखा उद्धवजी को ब्रजजनों की सुध लेने तथा समाधान ज्ञान के लिए भेजा। उद्धवजी जब मथुरा से ब्रज जा रहे थे मार्ग में प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दर छटा भी मिली। दशम् सर्ग में यशोदा ने उद्धव के सम्मुख कृष्ण की बाललीलाओं तथा कथाओं का वर्णन किया है। इस सर्ग में मातृत्व की व्यंजना सुन्दर ढंग से हुई है। एकादश सर्ग में उद्धव की ओर संकेत करके एक गोप काली नाग के दमन तथा दावानल से गो गोपों की रक्षा का वृत्त सुनाता है। द्वादश सर्ग में पुरन्दर के प्रकोप के कारण घोर वर्षा तथा कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत धारण की कथा है। त्रयोदश सर्ग में कृष्ण के समाजसेवी रूप का वर्णन है। कृष्ण के द्वारा अघासुर, केशी और व्योमासुर नामक दैत्यों के वध की कथाएँ हैं। चतुर्दश सर्ग में गोपिकाओं का उद्धव के प्रति विरह निवेदन है। इसी सर्ग में भ्रमरगीत की परम्परा का विकसित स्वरूप है। उद्धव गोपी संवाद में निर्गुण सगुण ब्रह्म की बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। पंचदश सर्ग में एक ब्रजबाला मधुमास में उपवन में जाकर भिन्न प्रकार के पुष्पों (बेला, पलाश, चम्पा, जुही, बंधूक, सूर्यमुखी, कुन्द आदि) से अपनी विरह व्यथा सुनाती है। पुष्पों को निरुत्तर देख उन पर व्यंग्य कसती है। तत्पश्चात् भ्रमर से वार्तालाप करती है। अन्त में यमुना

तट पर जाती है। कृष्णप्रेम में विह्वल गोपों के मर्मस्पर्शी भावोद्गारों को उद्धव छिपे हुए सुनते हैं। षोडश सर्ग में उद्धव और राधा का संवाद है। इसी सर्ग में राधा के श्रीमुख से विश्वप्रेम, सत्यनिष्ठा, नवधाभक्ति, सगुण निर्गुण आदि विषयों का विवेचन हुआ है। उद्धव कृष्ण का सन्देश सुनाते हैं। राधा धैर्यपूर्वक कृष्ण का सन्देश सुनकर अपने उद्गार भी कृष्ण के लिए उद्धव से कहती हैं। राधा के प्रेम के सम्मुख उद्धव नतमस्तक हो जाते हैं। उनका समस्त ज्ञानगर्व नष्ट हो जाता है और राधा की चरणरज लेकर मथुरा को चले जाते हैं। सप्तदश सर्ग में मगधपति जरासन्ध के अत्याचारों से पीड़ित जनता को त्राण देने के लिए कृष्ण द्वारिकापुरी चले जाते हैं। उधर राधा दीन हीन निराश्रितों की सेवा-सुश्रूषा करती हुई यशोदा का धैर्य बढ़ाती हुई जीवन व्यतीत करती है। काव्य का पर्यवसान करुणोदधि की लोल लहरियों में इस पद के साथ होता है :

> सच्चे स्नेही अवनिजन के देश के श्याम जैसे
> राधा जैसी सदय हृदया विश्व प्रेमानुरक्ता।
> हे विश्वात्मा भरतभुव के अंक में और आवें
> ऐसी व्यापी विरह घटना किन्तु कोई न होवे॥
>
> (सर्ग १७)

कथानक की समीक्षा

कथात्मक आधार

प्रियप्रवास महाकाव्य का इतिवृत्तात्मक आधार कृष्णकथा है। कृष्णकथा सहस्रों वर्षों से भारतीय जनजीवन का कण्ठहार बनी रही है। हिन्दी साहित्य की सुदीर्घ परम्परा में कृष्ण के नाम पर अपरिमित साहित्य सृजना हुई है। कृष्ण काव्य की एक समृद्ध परम्परा का स्वरूप हमें आदि काल से आज तक प्राप्य है। इसका कारण श्रीकृष्ण के नाम, गुण, चरित्र और व्यक्तित्व की विशेषताएं हैं। कृष्ण के व्यक्तित्व की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता वैविध्य या अनेकरूपता है। दूसरे शब्दों में, कृष्ण का चरित्र लोक जीवन की प्रेरणा रहा है। श्रीमद्भागवत महापुराण, महाभारत, गीता आदि में, कृष्ण का स्वरूप अनेकमुखी प्रतिभाओं से सम्पन्न रहा है। वह माखनचोर, नर्मक शिरोमणि, अवतारवतार, नीतिज्ञ, पराक्रमी वीर, भोगी, त्यागी, वैरागी सभी रहे हैं। वह श्रीमद्भागवत महापुराण में परमपुरुष परमात्मा, गीता में कर्मयोगी, महाभारत में नीतिज्ञ, विद्यापति के काव्य में रसराज शिरोमणि श्यामसुन्दर, सूर के सखा गोपाल, मीरा के मोहन माधव, रीतिकाल के रतिपति

और हरिऔध के प्रियप्रवास में ब्रह्मतेज सम्भूत महामानव के रूप में अवतरित हुए हैं। कृष्ण का रूप वैविध्य ही लोकप्रियता का कारण रहा है। हरिऔधजी ने इन्हीं श्रीकृष्ण की कथाओं को प्रियप्रवास का आधार बनाया है।

कृष्णकथा के पौराणिक स्रोत

पौराणिक वाङ्मय में कृष्णकथा का उल्लेख महाभारत में मिलता है। मूल महाभारत में श्रीकृष्ण का वर्णन अवतार रूप में अधिक नहीं हुआ है। महाभारत में कृष्ण के राजनीतिज्ञ स्वरूप का ही विशद विवेचन है। महाभारत में कृष्ण के द्वारिका गमनोपरान्त की घटनाओं का ही उल्लेख है किन्तु महाभारत के परिशिष्ट हरिवंश पुराण में कृष्णकथा का विस्तृत वर्णन है। अनेक विद्वान हरिवंश पुराण को महाभारत का अंश मानते हैं। हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व में श्रीकृष्ण का जन्म से लेकर द्वारिका जाने तक की कथाओं का विस्तृत वर्णन है।[1]

ब्रह्मपुराण में कृष्ण कथा का विस्तृत विवेचन है। ब्रह्मपुराण के अध्याय १८८ से २१२ तक कृष्ण के चरित्र से सम्बंधित गोकुल, वृन्दावन, मथुरा आदि की लीलाओं का वर्णन है। पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड में कृष्णावतार का उल्लेख मात्र है। इसी पुराण के स्वर्गखण्ड में भी कृष्णकथा का वर्णन है।[3] श्रीकृष्ण के परब्रह्म स्वरूप की व्याख्या के साथ वृन्दावन, गोप, गोपिकाओं की महिमा का भी वर्णन है।[4] पाताल खण्ड में भी श्रीकृष्ण चरित्र दिया गया है। इसके अतिरिक्त विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में श्रीकृष्ण के जन्म की कथा का उल्लेख है।[5] विष्णुपुराण के पाँचवें अंश में श्रीकृष्ण की जन्म से लेकर सम्पूर्ण कथाओं का विस्तृत वर्णन है।[6] महारास का सजीव वर्णन विष्णुपुराण के अध्याय १३ में है। अग्निपुराण को विद्वानों ने विश्व कोश की संज्ञा से अभिहित किया है। इसमें सभी पुराणों के सारभूत विषयों का वर्णन है। अग्निपुराण के १२वें अध्याय में कृष्णावतार की कथा दी गयी है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के ब्रह्मखण्ड में श्रीकृष्ण के परब्रह्म स्वरूप का वर्णन है।[7]

---

१ हरिवंश पुराण विष्णु पर्व सर्ग ४ से ५६ तक

२ कल्याण, पद्मपुराणांक वर्ष १९ अंक १ पृ० ७४

३ पद्मपुराण स्वर्गखण्ड अध्याय ६९ तथा ७

४ पद्मपुराण अध्याय ७ ७२

५ कल्याण, विष्णुपुराणांक वर्ष २८ पृ० ७ १

६ विष्णुपुराण पंचम अंश अध्याय १ से ३८ तक

७ ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय २ ३

डा० हरवंशलाल शर्मा का अभिमत है कि— श्रीकृष्ण चरित्र का पूर्ण विवेचन करने वाला दूसरा पुराण ब्रह्मवैवर्तपुराण है ब्रह्मवैवर्त में बहुत सी स्तुतियां दी गयी हैं और अनेक स्थलों पर उच्च कोटि के शृंगारिक वर्णन हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के कवियों ने बहुत कुछ सामग्री ब्रह्मवैवर्तपुराण से ली है इस पुराण में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन हरिवंशपुराण के वर्णनों की अपेक्षा अधिक शृंगारिक और विस्तृत है।[८] इसी पुराण में श्रीराधा की महिमा का वर्णन तथा गोप और गोपिकाओं की लीलाओं का चित्रण है। इसी पुराण के श्रीकृष्ण जन्म नामक खण्ड में श्रीकृष्ण के जन्म से युवावस्था तक की लीलाओं का विस्तृत उल्लेख है। साथ ही उद्धव गोपी संवाद और भक्ति तत्त्व का विवेचन है। वराहपुराण में श्रीकृष्ण का उल्लेख न होकर मथुरा महात्म्य एवं वृन्दावन आदि वनों की रमणीयता का विस्तृत वर्णन है।[१] देवी भागवतपुराण के चतुर्थ स्कन्ध में कृष्ण जन्म तथा अन्य लीलाओं का वर्णन है।[११] वायुपुराण के द्वितीय खण्ड में श्रीकृष्ण जन्म एवं स्यमन्तक मणि की कथा का उल्लेख है। कृष्ण की १६ सहस्र पत्नियां आदि का भी वर्णन इस पुराण में है कृष्ण की गोपी गोप लीलाओं का वर्णन यहाँ नहीं है।[१२] वामनपुराण में कंसी और कालनेमि के वध की कथा है। कूर्मपुराण में यदुवंश वर्णन तथा श्रीकृष्ण के पुत्रों की कथा है। गरुडपुराण में पूतना वध यमलार्जुन उद्धार कालियदमन गोवर्धनधारण आदि की कथाओं के साथ कृष्ण की रुक्मिणी सत्यभामा आदि ८ पत्नियों का भी उल्लेख है।[१३]

कृष्णकथा का सर्वाधिक समृद्ध स्वरूप श्रीमद्भागवत-पुराण में मिलता है। श्रीमद्भागवत-पुराण के दशम स्कन्ध में ९० अध्यायों में श्रीकृष्ण चरित्र का विस्तार से निरूपण किया गया है।[१४] कृष्ण के जन्म से यौवन काल तक की समस्त घटनाएँ गोपिकाओं के प्रेम महारास विरह वेदना के चित्र गोपी उद्धव संवाद (भ्रमरगीत प्रसंग) प्रभृति वर्णन आदि श्रीमद्भागवत पुराण में

[८] डॉ० हरवंशलाल शर्मा सूर और उनका साहित्य पृ० १२८

[९] ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्री कृष्णजन्म खण्ड अध्याय ६२ ८६

[१०] वराहपुराण अध्याय १५३

[११] देवी भागवतपुराण चतुर्थ स्कन्ध अध्याय २० से २५ तक

[१२] वायुपुराण, द्वितीय खण्ड, अध्याय ४

[१३] गरुडपुराण, अध्याय १४४

[१४] श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध

गमन से होता है। वहाँ कंस वध करके वे मथुराधिप होकर लोकरक्षण में लग जाते हैं। प्रमुख कथा भी यही है। लक्ष्य का अभिधेय भी कृष्ण के लोकरंजक स्वरूप का चित्रण करना ही है। किन्तु उनके वियोग में गोकुल वासियों का गुण स्मरण के रूप में कृष्ण की लीलाओं का उल्लेख हुआ है। प्रियप्रवास में वे कथाएँ विस्तृत रूप से आयी हैं जिनमें श्रीकृष्ण के लोक रक्षक रूप का चित्रण होता है—उदाहरण के लिए कालियदमन[२०] दावानल दाह[२१] गोवर्द्धनधारण[२२] अघासुर वध[२३] केशी दैत्य दमन[२४] तथा व्योमासुर के विनाश की कथाएँ।[२५] इन कथाओं को प्रस्तुत करने में हरिऔधजी ने युग की बौद्धिक प्रवृत्ति एवं कल्पनाशक्ति का भी परिचय दिया है। इस कथन की पुष्टि के लिए कतिपय कथाओं की पौराणिक कथाओं से तुलना आवश्यक है।

श्रीमद्भागवत में कालियनाग को एक महान् विषैला सर्प बताया गया है जिसने यमुनाजल को अपने विष से दूषित कर दिया था और कृष्ण ने एक दिन जल में कूदकर नाग को पकड़ उसे चरण प्रहार से विदीर्ण कर दिया। नागपत्नियों की प्रार्थना पर उसे प्राणदान देकर वहाँ से निर्वासित कर रमणीक द्वीप में भेज दिया।[२६] प्रियप्रवास में श्रीकृष्ण वेणुनाद के द्वारा कौशलपूर्वक उसे वश में करके युक्तिपूर्वक किसी समीपवर्ती पवन के गहन वन में निकाल देते हैं। कृष्ण का नाग चातुर्य मानवीय कार्य है। यहाँ घटना की अलौकिकता का प्रक्षालन कर उसे मानवीय धरातल पर विवेचित किया है।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में इन्द्र प्रकोप से मूसलाधार वर्षा के होने पर श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को उखाड़कर छाते की भाँति उंगली पर रोककर व्रजजनों की रक्षा की।[२७] किन्तु प्रियप्रवासकार ने इस घटना का उल्लेख इस

---

[२०] प्रियप्रवास ११/११ ५४

[२१] वही ११/५६ ६६

[२२] वही १२/१८ ६८

[२३] वही १३/३७ ५७

[२४] वही १३/५८ ६७

[२५] वही १३/६८ ८४

[२६] श्रीमदभागवत पुराण दशम स्कन्ध अध्याय १७

[२७] इत्युक्त्वैकेन हस्तेन धृत्वा गोवर्धनाचलम्
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालक ।
— भागवत दशम स्कन्ध अध्याय १९

प्रकार किया है कि व्रज में घोर वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने ग्रामवासियों को लेकर गोवर्द्धन पर्वत की गुफाओं और कन्दराओं में जाकर निवास किया। बड़े कौशल से श्रीकृष्ण व्रज के आबाल वृद्धजनों को सुरक्षित स्थानों पर ले गये।[२८] श्रीमद्भागवत में दावानल की कथा का वर्णन इस प्रकार है कि एक बार गायें वन में चर रही थीं तो दावाग्नि लग गया। समस्त गायें गोप, ग्वालों को व्याकुल देखकर श्रीकृष्ण उस अग्नि को अपनी माया शक्ति से पी गये।[२९] किन्तु प्रियप्रवास में श्रीकृष्ण अपने सखाओं तथा गायों की रक्षा के लिए अग्नि में कूद पड़े और जाकर उन्हें आग में से निकालकर बचाया।[३] इस प्रकार अन्य उपरिउल्लिखित कथाओं में कृष्ण का मानवीय रूप में अंकन किया गया है। हरिऔधजी ने कथाओं को युगानुरूप आवरण देकर बुद्धिग्राह्य बनाया।

प्रियप्रवास के कथानक में मौलिक प्रसंग तथा नवीन उद्भावनाएँ

वस्तु विधान में प्रियप्रवास का इतिवृत्तात्मक आधार पौराणिक कथाएँ होते हुए भी उसके रचयिता ने वस्तु विधान में मौलिकता का परिचय दिया है। कृष्ण और राधा का समग्र जीवन लोकसेवा के रूप में प्रस्तुत कर हरिऔध ने समस्त कृष्ण काव्य परम्परा को एक नया मोड़ दिया है। पुराण काल से लेकर रीतिकाल तक सर्वत्र ही कृष्ण राधा का स्वरूपांकन रसिक विहारी या गोपाल के रूप में हुआ था। उसमें लोक पक्ष का अभाव था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

---

[२८] मरुत गोकुल को पुर ग्राम को। जनक जाकर ने कुछ काल में।
कुशल से गिरि मध्य बसा लिया। लख बना पवनादिप्रमाद को॥
—प्रियप्रवास सर्ग १२/६३

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में। व्रजधराधिप के प्रिय पुत्र का।
सकल लोग लगे कहने उसे। रख लिया उँगली पर श्याम ने॥
—प्रियप्रवास सर्ग १२/६७

[२९] पतितवामुरान तान् कृष्णा योगाधीशो व्योमयत्।
—भागवत, दशम स्कन्ध अ० १९/२२

कृष्णास्य योग वीर्य तत्योग मायानुभावितम।
दावाग्ने रात्मन क्षेम वीक्ष्यत में निरे अमरम्॥
—वही दशम स्कन्ध अ० १९/१४

[३] रह साथियों की देख दुर्दशा। प्रचंड दावानल में प्रचार से।
स्वयं धँसे श्याम दुरन्त वेग से। चमत्कृता सी वनभूमि को बना॥
प्रवेश के बाद सवेग ही बढ़े। समस्त गोपालक धेनु संग में।
अलौकिक स्फूर्तिमिता विलोक के। वसुन्धरा में कल कान्ति वलि वो॥
—प्रियप्रवास, सर्ग ११/६४ ६५

न लिखा है कि— प्रियप्रवासकार ने कृष्ण के पूर्व प्रचलित चरित्र में आमूल परिवर्तन कर उन्हें समाजसुधारक लोकसेवी जातिउद्धारक विश्वप्रेमी एवं निःस्वार्थ नेता के रूप में चित्रित किया। प्रियप्रवास की समस्त कथाओं की साधकता कृष्ण के इसी रूप की व्यंजना में है। [31]

कृष्ण की ही भाँति राधिका का चरित्र विधान करने वाली समस्त घटनाएँ भी हरिऔधजी की कुशाग्र बुद्धि की परिचायक है। श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख नहीं है। ब्रह्मवैवर्त पुराण से लेकर रीतिकाल तक सर्वत्र ही राधा को कृष्ण की अनन्य प्रेमिका के रूप में चित्रित किया गया है। राधा कृष्ण की प्रेयसी एवं अनन्य उपासिका भी दिखायी गयी है। राधा की विरह व्यंजना में बहुत साहित्य सृष्टि हुई है। राधा के नाम नायिका भेद का परिगणन भी खूब हुआ है किन्तु हरिऔधजी ने कथा में राधा को लोकसेविका और विश्व प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रियप्रवास की कथावस्तु में राधिका कृष्ण के विश्वव्यापी स्वरूप की वन्दना करती है। वह कृष्ण विरह में क्लान्तमना है किन्तु विदग्धा या विमूढ़ा की स्थिति को नहीं पहुँचती वरन् समस्त ब्रजजनों को शान्ति तथा सांत्वना देती है। राधा को परम मानवीया के रूप में प्रियप्रवास के वृत्त में वर्णित किया गया है। उनकी भक्ति का आदर्श भी यथानुरूप ही है। राधिका की लोकोपकारी रूप में प्रतिष्ठा प्रियप्रवासकार की मौलिकता का ही द्योतन करती है।

प्रियप्रवास में पवन दूती प्रसंग भी नितान्त मौलिक है। यद्यपि दूत प्रणाली की एक सुव्यवस्थित परम्परा मिलती है जहाँ विरहिणी नायिकाएँ पक्षियों को प्रायः अधिकतर दूत बनाकर प्रियतम को सन्देश भेजती रही है। प्रियप्रवास में राधा ने पवन को दूतत्व का कार्य सौंपा है। कालिदास के मेघदूत में मेघ को यक्ष ने दूत बनाकर भेजा था। पवन-दूती प्रसंग की प्रेरणा और प्रभाव हरिऔधजी ने यद्यपि कालिदास के मेघदूत से प्राप्त की है तो भी कृष्ण कथा में पवन दूती प्रसंग की उद्भावना मौलिक ही कही जायेगी।

कृष्ण काव्य परम्परा का भ्रमरगीत प्रसंग भी प्रियप्रवास में नवीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वहाँ गोपी उद्धव संवाद के रूप में इसकी संयोजना नहीं हुई है। प्रियप्रवास के पन्द्रहवें सर्ग में एक गोपिका भ्रमर को संबोधित कर अपनी विरह व्यथा निवेदन करती है। उद्धव दूरस्थ में सब सुन लेते है किन्तु वार्तालाप नहीं करते हैं।

---

[31] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ५५३ ५४

प्रियप्रवास की कथावस्तु में मथ्यावर्णन, गोचारण, महारास आदि का निरूपण भी मौलिक ढंग से हुआ है। यद्यपि इन प्रसंगों का कथात्मक स्रोत श्रीमद्भागवत पुराण ही है।

प्रियप्रवास की कथावस्तु में मौलिक प्रसंगोद्भावना के मूल में युग की प्रेरणा है। प्रियप्रवास का रचयिता महान कवि है। युगीन जीवन और जातीय संस्कृति के महाप्रवाह को उसने अपने महाकाव्योदधि में सम्यक रूप से आयोजित किया है। वर्तमान युग की प्रवृत्ति के अनुरूप ही प्रियप्रवास की कथावस्तु का चयन तथा घटनाओं का बौद्धिक संयोजन हुआ है। अवतारवाद की मान्यता को अस्वीकार करते हुए भी श्रीकृष्ण के चरित्र में महामानवीय चरित्र की आस्था का निर्वाह किया गया है। नारी आदर्श के लिए राधा को समाजसेविका और विश्वप्रेमानुरक्ता के रूप में चित्रित किया गया है। अस्तु, प्रियप्रवास की कथावस्तु में मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं का महत्त्व है। फिर महाकाव्य वस्तु में युग जीवन के प्रवाह को संधारण करने की अपूर्व शक्ति होनी भी चाहिए।

इसके अतिरिक्त कथावस्तु में शास्त्रीय विधान एवं परिपाटी का भी समुचित रूप से परिपालन हुआ है। डा० द्वारिकाप्रसाद के शब्दों में—कथानक की योजना कवि ने सर्वथा शास्त्रीय नियमानुसार की है। इसमें संधियों एवं कार्यावस्थाओं का ध्यान रखा है।[32]

प्रियप्रवास के कथानक पर समीक्षकों के मत तथा स्थापनाएं

प्रियप्रवास के कथानक पर महाकाव्य की दृष्टि से विचार अभीप्सित है। विद्वानों ने प्रियप्रवास की कथावस्तु को महाकाव्य के लिए अपर्याप्त माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रियप्रवास की कथावस्तु पर विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि—जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, इसकी कथावस्तु एक महाकाव्य क्या अच्छे प्रबन्धकाव्य के लिए भी अपर्याप्त है।[33] डॉ० शम्भुनाथसिंह ने भी अपने शोध प्रबन्ध में कहा है कि—घटना विरलता और वर्णन विस्तार के कारण इसमें (प्रियप्रवास में) कथानक बहुत संक्षिप्त है और उसमें वह प्रवाह तथा जीवन्तता नहीं जो महाकाव्य के कथानक में होनी चाहिए।[34] डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने लिखा है कि—हरिऔध ने वर्तमान

---

[32] डा० द्वारिकाप्रसाद, प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० ६२

[33] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८२

[34] डॉ० शम्भुनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ६६७

बुद्धिवाद और सुधारवाद की प्रगति के प्रभाव में आकर कृष्ण और राधा को एक आदर्श महात्मा और त्यागिनी के रूप में चित्रित करने की कोशिश तो की थी परन्तु अपनी इस कोशिश के लिए उन्होंने जो प्रतिपाद्य (विषय) चुना वह उसके बिलकुल ही अनुपयुक्त था। [३५] डा० गोविन्दराम शर्मा का मत है कि— महाकाव्य की दृष्टि से प्रियप्रवास की कथा-वस्तु की समीक्षा करने पर उसमें तीन मुख्य त्रुटियाँ दिखायी देती हैं। पहली तो यह है कि वह बहुत व्यापक और विस्तृत न होने के कारण महाकाव्य के उपयुक्त नहीं है। दूसरे कथावस्तु के साथ विविध घटनाओं का पूरा सामंजस्य नहीं दिखायी देता है। तीसरी त्रुटि है पाठकों को खटकने वाली कथा-वस्तु की एक रसता। वास्तव में प्रियप्रवास की कथावस्तु में रोचकता, विविधता और धारावाहिकता का अभाव ही दिखायी देता है। [३६]

इन समीक्षा मतों में जो बात अधिकतर कही गयी है वह कथानक की लघुता की है। इस सम्बन्ध में मेरा मत यह है कि कथानक की लघुता किसी काव्य की महाघता को खंड नहीं करती। वर्तमान युग के काव्यों और उपन्यासों की एक सामान्य प्रवृत्ति कथावस्तु का उत्तरोत्तर ह्रास है। इसका कारण युग की बौद्धिक प्रवृत्ति है। इस युग का बुद्धिजीवी पाठक और लेखक काव्य ग्रन्थों के प्रतिपाद्य को अधिक महत्त्व न देकर इतिवृत्त के माध्यम से विचार उपलब्धि को महत्त्वपूर्ण मानता है। आज के महाकाव्यों में घटना-बाहुल्य है भी नहीं। इस युग के अधिकांश प्रबन्धकाव्यों में कथानक की प्रधानता न होकर भाव और विचार तत्त्व की ही प्रधानता है। उदाहरण के लिए कामायनी और कुरुक्षेत्र को ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त पौराणिक वृत्तों की अलौकिक घटनाओं की पुनरावृत्ति में काव्य और कल्पनाशक्ति का कोई प्रमाण भी नहीं। डा० प्रतिपालसिंह के इस मत से मैं सहमत हूँ कि— सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि कथानक इतना सूक्ष्म है कि कृष्णचन्द्र का पूर्ण जीवन इसमें व्यक्त न हो सका। किन्तु आलोचकों को यह बात नहीं भुला देनी चाहिए कि यह बुद्धिवाद का युग है। इस काल में महाकाव्य उतने घटना प्रधान नहीं होते जितने विचार प्रधान। अतः इस महाकाव्य में कृष्ण चरित को एक बौद्धिक और नैतिक रूप दिया गया है जो राष्ट्रीय भावना के अनुकूल है। जीवनवृत्त कथन न तो काल के अनुरूप होता है न उसमें एक रसता आती है जो कवि

[३५] डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास पृ० ६३

[३६] डा० गोविन्दराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० १४०

का अपेक्षित है। [37] प्रियप्रवास के कथानक की विशेषता महाभारत काल से रीतिकाल तक की कृष्ण कथा में युगीन परिवर्तनों द्वारा नवीन अध्याय का आरम्भ है। प्रियप्रवास में हरिऔधजी ने कृष्ण कथा और काव्य की परम्परा को अग्रसर ही नहीं किया विकसित भी किया है। यही उनकी मौलिकता है। किसी भी ग्रन्थ की मौलिकता नयी-नयी उद्भावनाओं में ही नहीं वरन् विषय की पैठ और गहराई में भी होती है। साहित्य में मौलिकता का अर्थ नवीनता नहीं, विकास है। प्रियप्रवास ने राधा-कृष्ण के अध्ययन में एक नया अध्याय जोड़ा है जो पिछली पीढ़ियों के कवियों से निस्सन्देह कई कदम आगे है।[38] कथानक में वर्णनात्मकता वास्तव में कथा प्रवाह को अवरुद्ध करती है। जैसे सर्ग ११, १२ में उद्धव के सम्मुख एक वृद्ध का भाषण समाप्त हुआ तो दूसरे ने कहना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु ऐसे स्थल कम ही हैं। अन्ततोगत्वा हमारी यह धारणा है कि कृष्ण कथा महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। प्रियप्रवास में कृष्ण की कथा को जिस रूप में ग्रहण किया गया है उससे काव्य की कथात्मक महाघता में कोई विशेष त्रुटि नहीं जान पड़ती वरन प्रियप्रवास की कथात्मक प्रस्तुतीकरण शैली का तो वर्तमान युग के हिन्दी महाकाव्यकारों ने अत्यधिक उपयोग किया है जैसे मैथिलीशरण गुप्त रचित साकेत महाकाव्य में। इस दृष्टि से प्रियप्रवास की कथावस्तु आगत से सुसम्बद्ध और अनागत की परम्पराओं के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध हुई है।

चरित्र विश्लेषण

प्रियप्रवास चरित्र प्रधान काव्य है।[39] किन्तु इस काव्य में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। यद्यपि गोप गोपिकाओं एवं अन्य बालवृद्धों को सम्मिलित करने से पात्रों की संख्या अधिक दिखायी देती है किन्तु इन पात्रों का काव्य में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। जिन पात्रों के चरित्र चित्रण की ओर कवि का विशेष ध्यान रहा है वे पाँच हैं—श्रीकृष्ण राधा नन्द यशोदा और उद्धव। इनमें भी श्रीकृष्ण राधा और यशोदा के चरित्रांकन में हरिऔधजी ने अपनी प्रतिभा और काव्य-कला का सुन्दर परिचय दिया है। प्रियप्रवास के महाकाव्यत्व का वास्तविक आधार ये पात्र ही हैं। व्यापक भूमि के अभाव के कारण प्रियप्रवास के कथा शिल्प और प्रबन्ध कल्पना में जो शिथिलता आ

[37] डॉ० प्रतिपालसिंह बीसवीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) के महाकाव्य, पृ० १००
[38] वासुदेव विचार और निष्कर्ष, पृ० २१२
[39] डॉ० प्रतिपालसिंह बीसवीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) के महाकाव्य पृ० १०२

गयी थी उसका परिमाजन उत्कृष्ट कोटि की चरित्र सृष्टि द्वारा हो गया है। प्रियप्रवास के चरित्र विश्लेषण म हरिऔधजी न निश्चय ही मौलिक सूझ बूझ का परिचय दिया है।

प्रमुख पात्र

श्रीकृष्ण—श्रीकृष्ण इस काव्य के नायक ह। उनका यक्तित्व महाकाव्य के नायक की गरिमा और महिमा के पूणत अनुरूप है। भारतीय धम सस्कृति और साहित्य साधना के मूल म श्रीकृष्ण की स्थिति बहुत महत्त्वपूण रहा है। हिदी कृष्ण-का य की सुदीघ परम्परा के वाहक के रूप म उनका महत्त्व किसी से छिपा नही है। कृष्ण शब्द की प्राचीनता को विद्वाना न मुक्तकण्ठ स स्वीकार किया ह। वदिक काल स आज तक कृष्ण शब्द का निरन्तर प्रयोग मिलता है। ऋग्वद म कृष्ण का ऋषि रूप म उल्लख है।[४] महाभारत म कृष्ण का अनक रूपा म चित्रण हुआ है। वहाँ उन्ह वीर राजनीतिज्ञ विद्वान एव परोक्ष रूप म दवी अवतार भी स्वीकार किया गया है। डा द्विवदी का कथन है कि— श्रीकृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक म व यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न ह वीर है राजा है कसारि है दूसर म व गोपाल ह गोपीजनवल्लभ है राधाधर सुधापानशील वनमाली है। प्रथम रूप का पता बहुत पुरान ग्रथा स चल जाता है पर दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है। धीरे धीरे यह दूसरा रूप ही प्रधान हो गया है और पहला रूप गौण।[४१] सच तो यह है कि कृष्ण उतन ही प्राचीन है जितनी कि भारतीय साधना मे अवतारवाद की विचारधारा। अवतारा म भी राम और कृष्ण दो प्रमुख अवतार रह है। इनम भी कृष्णावतार की कल्पना पुरानी भी है और व्यापक भी।[४२] वदोत्तर वाङ्मय म कृष्ण का उल्लख ई० पू० चौथी शताब्दी स तो स्पष्ट रूप स मिलने लग जाता है। पाणिनी (चौथी सदी ई पू०) मगस्थनीज (तीसरी ई पू०) एव पतजलि (१५० वर्ष ई पू०) आदि ग्रथा और लेखा म वासुदव और कृष्ण की स्पष्ट चर्चा मिलती है।[४३] इस समय तक कृष्ण को आय जाति के दवता या धार्मिक नता के रूप म ही माना जाता था। प्राचीन काल स

---

[४] ऋग्वेद अष्टम मण्डल सूत्र स० ८५ ८६ ८७ तथा दशम मण्डल सूत्र स० ४२ ४३ ४४

[४१] डा हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धम साधना पृ १२६

[४२] वही पृ १२६

[४३] डा रामधारीसिंह दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६२

पुराण काल तक कृष्ण सम्बन्धी जो उल्लेख एवं विवरण मिलता है उसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य है कि वह एक ही कृष्ण हैं। डा० भण्डारकर प्रभृति विद्वान 'गोविन्द' शब्द की व्युत्पत्ति 'गोविन्द' से मानते हैं और कर्षिविमूल्न को भी इन्द्र का ही विशेषण मानते हैं। उनका मत है कि पहले यह विशेषण इन्द्र के लिए प्रयुक्त होते थे और बाद में श्रीकृष्ण के साथ जोड़ दिये गये हैं।[44] इस सम्बन्ध में डा० हरवंशलाल शर्मा का मत उपयुक्त जान पड़ता है— इन मन्त्रों में (ऋग्वेद के मन्त्रों में) जो नाम आये हैं उनका यद्यपि गोपाल कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वैदिक कृष्ण का सम्बन्ध महाभारत के कृष्ण से जोड़ दिया गया है उसी प्रकार इन सभी नामों का उपयोग पौराणिक युग में कृष्ण से सम्बद्ध कर दिया गया है।[45] कृष्ण सम्बन्धी मान्यताओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके दो रूप थे— एक तो ऐतिहासिक और दूसरा पौराणिक। डा० दिनकर का कथन है कि—

कृष्ण ऐतिहासिक पुरुष हैं इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं दीखती और वे अवतार के रूप में पूजित भी बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। उनका सम्बन्ध पशुओं और गायों से था यह भी विदित बात है। प्राचीन ग्रन्थों में उनके साथ जो प्रेम-कथाएँ नहीं मिलतीं उनसे यह भी प्रमाणित होता है कि वे कोरे प्रेमी और हल्के जीव नहीं बल्कि देश और धर्म के कर्णधार थे।[46] विष्णु के अवतार के रूप में कृष्ण का उल्लेख पौराणिक काल से ही मानना चाहिए। कृष्ण की जिन विभिन्न लीलाओं, क्रीड़ाओं और कार्यों को लेकर आगे साहित्य रचना हुई वे कृष्ण पुराण काल की ही देन हैं। पुराणों में श्रीमद्भागवत, महापुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और हरिवंश पुराण में कृष्ण की लीलाओं का सविस्तार वर्णन हुआ है। इनके अतिरिक्त अन्य पुराणों (जैसे—वायु पुराण, पद्म पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण आदि) में भी कृष्ण चरित सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख है। इन सब पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण की कथा ही सबसे अधिक विस्तृत एवं व्यवस्थित है।

कृष्ण काव्य रचना के विकास-क्रम की दृष्टि से जयदेव का 'गीत गोविन्द' (१२वीं शताब्दी) संस्कृत की प्रथम रचना है।[47] इसके अनन्तर

---

[44] डॉ० भण्डारकर वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स पृ० ५१

[45] डॉ० हरवंशलाल शर्मा सूर और उनका साहित्य पृ० १६१

[46] डॉ० रामधारीसिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृ० ६२

[47] हिन्दी साहित्य कोश कृष्णकाव्य पृ० २४०

१४वीं १५वीं शती में विद्यापति की पदावली में कृष्ण चरित की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। हिन्दी कृष्ण काव्य परम्परा को विकसित करने का श्रेय भक्ति-काल के वैष्णव कवियों को है। अष्टछाप के कवियों ने (जिनमें सूरदास प्रमुख थे) कृष्ण काव्य की धारा को प्रवाहित किया। यही धारा रीति-काल और आधुनिक काल के कवियों की काव्य रचना की प्रेरणा स्रोत बनी। भक्ति-काल के कवियों ने कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति को लेकर प्रेम-तत्त्व की व्यंजना बड़ी तन्मयता से की। अष्टछाप के कवियों ने श्रीकृष्ण के माधुर्य रूप की सुन्दर झाँकी अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत की। रीति-काल के कवियों ने श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के शृंगार पक्ष के उद्घाटन में अपनी काव्य मेधा का प्रदर्शन किया। आधुनिक काल में हरिऔध से पूर्व तक कृष्ण चरित के भक्ति भावना, हास विलास, शृंगार माधुर्य एवं भगवत् ऐश्वर्य सम्बन्धित पक्ष ही हमारे समक्ष आते हैं। श्रीकृष्ण के व्यापक एवं महान व्यक्तित्व की रूप रेखा ऐतिहासिक दृष्टि से हरिऔधजी के समक्ष थी। एक महाकाव्यकार के रूप में हरिऔधजी का दायित्व श्रीकृष्ण चरित के महत् रूप को युग-जीवन की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप प्रस्तुत करना था। उन्होंने अपने गुरुतर दायित्व को सक्षमता से वहन किया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रियप्रवास की रचना से पूर्व तक हिन्दी कृष्ण काव्य की परम्परा में श्रीकृष्ण के चरित्र के दो पक्ष उपस्थित किये गये थे। एक पक्ष तो वह था जिसमें भक्तिकालीन कवियों ने उन्हें परम ब्रह्म का अवतार मानकर दैवी शक्तियों एवं गुणों का समूह सिद्ध किया था। साथ ही उनके बाल और किशोर रूप की लीलाओं का चित्रण किया था। श्रीकृष्ण के चरित्र का दूसरा पक्ष वह था जिसमें रीति-काल के परवर्ती कवियों ने कृष्ण और राधा की सामान्य नायक नायिका के रूप में परिकल्पना करके अनुचित प्रेम की उद्भावना की तथा प्रेमी कामुक एवं विलासी कृष्ण का रूप अंकित किया। हरिऔधजी कृष्ण चित्रण के इन रूपों से पूर्णतः परिचित थे। प्रियप्रवास की रचना से पूर्व उन्होंने श्रीकृष्ण शतक, प्रेमाम्बुवारिधि, प्रेमाम्बुप्रस्रवण और प्रेमाम्बुप्रवाह नामक काव्यों तथा रुक्मिणी परिणय और प्रद्युम्न विजय नामक दो नाटकों एवं रसकलश के बहुत से छन्दों की रचना की थी जिसमें श्रीकृष्ण को परम ब्रह्म, अवतारी आदि रूपों में चित्रित किया था। इन रचनाओं में कवि की कृष्ण के प्रति प्रारम्भिक भावना का परिचय मिलता है। प्रियप्रवास की कृष्ण भावना में कवि का सर्वथा नवीन दृष्टिकोण दिखायी देता है। प्रियप्रवास की भूमिका में कवि ने लिखा है कि— मैंने श्रीकृष्णचन्द्र को इस ग्रन्थ में

एक महापुरुष की भांति अंकित किया है ब्रह्म रूप में नहीं। अवतारवाद के संबंध में मैं श्रीमद्भागवत गीता का यह श्लोक मानता हूं— यद्यद् विभूतिमत सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्। अतएव जो महापुरुष है उसका अवतार होना निश्चित है।[48] स्पष्ट है कि प्रियप्रवासकार ने श्रीकृष्ण को महापुरुष के रूप में अंकित किया है न कि ब्रह्म के रूप में। प्रियप्रवासकार की यह विचारणा समय के अनुरूप भी थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बुद्धिवाद के आविर्भाव, वैज्ञानिक शिक्षा के विकास एवं ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि धार्मिक आन्दोलनों के कारण नवीन चिन्तनधारा का सूत्रपात हो चुका था जिसके कारण कृष्ण का अवतारी रूप मान्य न रह गया था। यूरोपीय शिक्षा एवं संस्कृति के सम्पर्क ने जहां रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं का उन्मूलन किया वहीं चिंतन के क्षेत्र में नवीन बौद्धिक एवं तार्किक दृष्टिकोण दिया। प्राचीन आस्थाओं के स्थान पर नये विश्वासों और नवीन मानवीय मूल्यों की स्थापना हुई। इसीलिए हरिऔधजी ने स्पष्ट लिखा था कि— मैंने कृष्ण चरित्र को इस प्रकार अंकित किया है जिससे आधुनिक लोग भी सहमत हों।[49] इस प्रकार कृष्ण चरित्र के निरूपण में कवि ने आधुनिक युग की वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि का उपयोग किया है। इसीलिए प्रियप्रवास के कृष्ण आदर्श मानव किंवा अनुकरणीय चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। प्रियप्रवास के प्रथम सर्ग में श्रीकृष्ण का मनोहर एवं चित्ताकर्षक रूप है।[50] श्रीकृष्ण का रूप-सौन्दर्य ही ब्रजवासियों के आकर्षण का कारण था। कृष्ण की सुरम्य मूर्ति शील गुण से सम्पन्न भी थी।[51] श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व जितना आकर्षण का केन्द्र था उतना ही उनका व्यवहार भी सुखद मृदु एवं सुखकारी था

नवल सुन्दर श्याम शरीर की
सजल नीरद सी कल-कान्ति थी।
अति समुत्तम अंग समूह था
मुकुर मंजुल और मन भावना।
सतत थी जिसमें सुकुमारता
सरसता प्रतिबिम्बित हो रही॥'

---

[48] प्रियप्रवास भूमिका पृ० २० (नवम संस्करण)
[49] वही पृ० २१
[50] वही सर्ग १/१५–१८
[51] वही सर्ग ४/४

श्रीकृष्ण सम्पूर्ण मानवीय गुणों के निधान थे

'वाते थे जो सरस थे करते विहारी
छोटे थे जो सरल वा प्रिय चाहते थे।
अत्यन्त प्यारे गये थे मिलते सबों से
वे थे सहायक बड़े दुख के दिनों में॥
जो देखते कलह शुष्क विवाद होता
तो शांत श्याम उसको करते सदा थे।
कोई बली निबल को यदि था सताता
तो वे तिरस्कृत करते उसे थे॥
× × × ×
थे राजपुत्र उनमें मद था न तो भी
वे दीन के सदन थे अधिकांश जाते।
× × × ×
रोगी दुखी विपद आपद में पड़े की
सेवा अनेक करते निज हस्त से थे।

कृष्ण के चरित्र में सौन्दर्य शक्ति और शील का समन्वय था। अपनी शक्ति और सामर्थ्य से ही कृष्ण ने ब्रजजनों को अनेक संकटों एवं आपदाओं से बचाया था। महावृष्टि के समय गोवर्धन पर्वत के संरक्षण में कृष्ण ने एक स्वयं सेवक के रूप में कार्य किया। यमुना से कालियनाग को निकाला दावानल की ज्वाला में भस्म होते ग्वाल गायों की सहायता की। शकटासुर अघासुर बकासुर व्योमासुर केशी कंस आदि भयंकर राक्षसों का वध किया। जाति समाज और देश की मर्यादा के लिए श्रीकृष्ण ने सब प्रकार के कार्य किये। परोपकार की भावना कृष्ण के चरित्र की महत्वपूर्ण विशेषता थी। उनके सभी कार्यों के मूल में जाति समाज और देशोत्थान की भावना काम कर रही थी। इन्हीं गुणों के कारण वे अत्यन्त लोकप्रिय थे। उनके कार्यों का स्मरण करके ब्रज के आबाल वृद्धजन शोक निमग्न हो जाते थे। कृष्ण के मथुरागमन की सूचना ब्रजजनों पर वज्रप्रहार के समान थी। उक्त अवसर पर एक आभीर वृद्ध का यह कथन उनकी भावना का प्रतीक है

सच्चा प्यारा सकल ब्रज का वंश का है उजाला
दीनों का है परम धन और वृद्ध का नेत्र तारा
बालाओं का प्रिय स्वजन और बंधु है बालकों का
ले जाते हैं सुरतरु कहाँ आप ऐसा हमारा॥ [४२]

---

[४२] प्रियप्रवास, सर्ग ५ २८

जहां तक उनके प्रेमी रूप का प्रश्न है—प्रियप्रवास के कृष्ण प्रेमी हैं किन्तु कर्तव्यपरायण पहले हैं। राधा और गोपियों के प्रेमाकर्षण में वे जनहित की भावना और कर्तव्य को विस्मृत कर ब्रज में लौटकर न आ सके। उद्धव के द्वारा राधा को भेजे गये सन्देश में श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा कि मैं कठिन पथ का पथिक हो रहा हूं जिससे मिलन की आशा दूर हो रही है। अस्तु मधुर सुख भोग की लालसाओं का छोड़कर जगतहित और लोकसेवा के कार्यों में लीन हो जाना चाहिए। इसी से लोकोत्तर शान्ति एवं श्रेय की प्राप्ति होती है।[43] गोपियों को प्रबोधन करते हुए उद्धव ने श्रीकृष्ण की प्रकृति का परिचय दिया है

> वे जी में हैं जगत जन के सर्वथा श्रेयकामी
> प्राणों से हैं अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा।
> स्वार्थों को औ विपुल सुख को तुच्छ देते बना हैं
> जो आ जाता जगत हित है सामने लोचनों के॥

इसी के साथ श्रीकृष्ण के हृदय की विह्वलता एवं मानवोचित स्वभाव दौर्बल्य का चित्रण भी उद्धवजी के निम्न शब्दों में दिखायी देता है

> प्यारा वृन्दाविपिन उनको आज भी पूर्व सा है
> वे भूले हैं न प्रिय जननी औ न प्यारे पिता को।
> वैसी ही हैं सुरति करते श्याम गोपांगना की
> वैसी ही है प्रणय प्रतिमा बालिका याद आती॥
> प्यारी बातें कथन करके बालिका बालकों की
> माता की औ प्रिय जनक की गोप गोपांगना की।
> मैंने देखा अधिकतर है श्याम को मुग्ध होते,
> उच्छ्वासों से व्यथित उर के नेत्र में वारि लाते॥
> गायें प्यारी प्रति पल सदा है उन्हें याद आती
> गात में भी अवनि ब्रज की स्वप्न वे देखते हैं।
> कुंजों में हो मन मधुप सा सर्वदा घूमता है,
> देखा जाता तन भर वहीं मानिनी मूर्ति का है॥

श्रीकृष्ण के हृदय और मस्तिष्क का मनोविकारों और बुद्धि का अनुराग और विवेक का यह संघर्ष बड़ा ही सुन्दर है और उससे भी अधिक आनन्दप्रद

[43] प्रियप्रवास, सर्ग १६/२६-४६

यद्यपि उतना ही कठोर है श्रीकृष्ण का अपनी मानवोचित दुर्बलता पर विजय लाभ।[४४]

प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण ब्रज के प्राण शील की सुरम्य मूर्ति मानवता के पुजारी कठिन पथ के पान्थ और कर्तव्यपरायण लोकप्रिय नेता है।[४५] प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण ने उद्धव के द्वारा जो सन्देश ब्रजजनो को प्रसारित किया उसमे योग और ज्ञान का उपदेश नही वरन् कर्तव्य पालन की शिक्षा है। श्रीकृष्ण का चरित्र एक कर्तव्यनिष्ठ लोकसेवक एव आदर्श महापुरुष का चरित्र है। इसीलिए विद्वानो ने प्रियप्रवास के चरित्र विश्लेषण की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। प्रियप्रवास मे कृष्ण अपने शुद्ध मानव रूप मे विश्व कल्याण-कार्य मे निरत एक जन नेता के रूप मे अंकित किये गये।[४६] प्रियप्रवास के कृष्ण चरित्र की सबसे बडी विशेषता उनका मानवोचित वृत्तियो से सम्पन्न होना है। प्रियप्रवासकार ने बडे कौशल से कृष्ण के इशावतारी रूप को छोडकर भी उनकी महिमा को अक्षुण्ण रखा है। प्रियप्रवास के नायक श्रीकृष्ण मे न तो भक्ति कालीन आध्यात्मिकता है न रीतिकालीन वासनात्मकता। उसमे एक ऐसी नवीनता है जो प्राचीन श्रद्धा भावना को विकसित और कामुकता को खण्डित करती है।[४७] प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व साहित्यिक लोकप्रियता की दृष्टि से गाधीजी के समान प्रख्यात दिखायी देता है। प्रियप्रवास के कृष्ण का चित्रण बरबस महात्मा गाधी की याद दिला देता है। ऐसा दिखता है मानो इस काव्य का निर्वृत्त समय कवि की मानस रगभूमि के नेपथ्य मे महात्मा गाधी की मूर्ति झिलमिल झिलमिल झाँकती रही हो और वह महात्मा श्रीकृष्ण के वाड़्मय के रूप मे प्रतिमूर्ति हो उठी हो।[४८] इसके अतिरिक्त कृष्ण चरित्र की लौकिकता सिद्ध करने के लिए कवि ने अलौकिक घटनाओ और अस्वाभाविक कार्यों को भी स्वाभाविक ढग से निरूपित करने का प्रयास किया। जैसे गोवर्द्धन धारण प्रसग कालियदमन तथा दावानल आदि प्रसगो के अवसर पर। किन्तु इस दृष्टि से हरिऔधजी को आशिक सफलता ही प्राप्त हुई है। कुछ घटनाओ

---

[४४] श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश महाकवि हरिऔध पृ० १८६

[४५] डा द्वारिकाप्रसाद प्रियप्रवास मे काव्य सस्कृति और दर्शन पृ० १११ ११४

[४६] श्री शिवदानसिंह चौहान हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष पृ ४६

[४७] डा० श्यामनन्दन किशोर आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान पृ० २१२

[४८] डा० धर्मेन्द्र शास्त्री महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास पृ ६४

म जैसे 'कुवलयासममत्त गजेन्द्र' को एक बालक द्वारा पछाड़ते दिखाते समय या एकाध अन्य स्थान पर भूत प्रेत म भय प्रदर्शन जैसे अविश्वासो म प्राचीनता के प्रभाव को वे दूर नही कर पाये है। किन्तु यह नगण्य त्रुटियाँ हैं। वस्तुतः प्रियप्रवास के कवि ने कृष्ण के प्रसिद्ध अतिमानुषिक कार्यों का एक देश और समाजसेवक के स्वाभाविक और मानुषिक कार्यों के रूप म प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।[४६] यही नही हरिऔधजी ने कृष्ण की सामाजिक मर्यादा और महापुरुषोचित गौरव गरिमा की रक्षा करने के लिए चीरहरण एव गोपिकाओ के साथ की गयी असगत हास्य विनोदपूर्ण लीलाओ को भी प्रियप्रवास म स्थान नही दिया। प्रियप्रवास की रासलीलाओ म श्रीकृष्ण के साथ केवल गोपियाँ ही नही वरन गोप भी दिखायी देते है।

इस प्रकार प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण का चरित्र महाकाव्योचित गरिमा से सर्वथा सम्पन्न दिखायी देता है। कृष्ण चरित्र की स्थापना म हरिऔधजी ने क्रातिकारी एव मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है। वैदिक काल से पुराण युग और भक्ति काल से आधुनिक युग तक कृष्ण चरित का जो निरूपण हुआ है उसम प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण का अभिनव और गौरवान्वित रूप देखने को मिलता है। इस काव्य के श्रीकृष्ण युग जीवन की आकाक्षाओ का प्रतिनिधित्व करने म सक्षम हैं। वे मानवतावादी पृष्ठभूमि पर स्थापित होने के कारण जन जन की प्रेरणा के स्रोत एव अभिनन्दनीय भी है। प्रियप्रवास के श्रीकृष्ण प्राचीन और नवीन पौराणिकता और आधुनिकता महानता और नम्रता शील और शक्ति प्रेम और मोह त्याग और सयम ओज और औदार्य के अद्भुत समन्वयात्मक प्रतीक है।

राधा— राधा शब्द का सर्वप्रथम आविर्भाव कब, कहा और किसके द्वारा हुआ इस सम्बन्ध म ऐतिहासिक प्रमाण आज भी अनुपलब्ध है। यद्यपि हाल की 'गाथा-सप्तशती तथा 'पचतत्र म राधा का उल्लेख अवश्य मिलता है किन्तु उसमे कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता क्योकि यहाँ राधा कृष्ण की सहचरी नही हैं। कुछ विद्वानो ने अनुमान लगाया है कि राधा मध्य एशिया से आने वाली आभीर जाति की उपास्य देवी है। किन्तु सर्वप्रथम पौराणिक काल म ब्रह्मवैवर्त पुराण म राधा का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इस प्रकार प्रस्तुत पुराण म राधा नाम की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बतायी गयी है

४६ डॉ० श्रीकृष्णलाल आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० ४६

पदावली में भी राधा का विरहिणी के रूप में ही चित्रण मिलता है। किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि—'चण्डीदास की राधा में मानस सौन्दर्य अपनी चरम सीमा तक पहुँचता है। विद्यापति की राधा में शरीर सौन्दर्य उसी प्रकार अपनी परिणति पर पहुँचा है।'[६७]

इन सभी कवियों की कल्पना से पृथक चित्र सूरदास की राधा का मिलता है जिन्होंने राधा के संयोग और वियोग दोनों का ही मर्मान्तिक चित्रण किया है। सूर के अनन्तर तीन चार सौ वर्षों के ब्रज साहित्य में राधा का चित्रण सामान्यतः सभी कवियों ने अपने ढंग से किया है। ब्रजभाषा काव्य में राधा कृष्ण कवियों की भाव साधना के प्रतीक बन गये थे। इसलिए बिना किसी को छोड़कर सभी कवियों ने राधा-कृष्ण के चित्रण द्वारा अपनी लेखनी को धन्य किया। ब्रजभाषा काव्य के प्रारम्भ काल में राधा और कृष्ण इतिहास या तत्त्व की चीज नहीं रह गये थे। वे सम्पूर्णतः भाव जगत की चीज हो गये थे।[६८] यही कारण है कि वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवियों ने श्री वल्लभाचार्य द्वारा राधा का उल्लेख न होने पर भी उसका सभी कवियों ने अपने काव्य में निरूपण किया है। राधा सम्बन्धी भक्ति भावना का मत अष्टछाप के कवियों ने विट्ठलनाथजी से ग्रहण किया था। डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है— श्री वल्लभाचार्यजी ने गोपियों के प्रकार बताते हुए राधा नाम की स्वामिनी स्वरूपा गोपी का उल्लेख नहीं किया उन्होंने अन्य किसी ग्रन्थ में राधा का उल्लेख नहीं किया। राधा नाम का समावेश श्री विट्ठलनाथजी ने अपने सम्प्रदाय में किया था। अष्टछाप के कवियों ने गोस्वामी विट्ठलनाथजी के मत को इस सम्बन्ध में ग्रहण किया।[६९] सूरदास और नन्ददास आदि कवियों ने भक्तिकाल में राधा-कृष्ण की जिस माधुरी का चित्रण प्रारम्भ किया था उसमें भक्ति और शृंगार का सुन्दर सामंजस्य था। आगे चलकर रीतिकालीन कवियों ने दरबारी वातावरण तथा कतिपय अन्य कारणों से राधा को नायिका के रूप में चित्रित करना प्रारम्भ किया। रीतिकालीन राधा के रूप में ऐन्द्रिय शृंगार भावना के कारण विकृति आ गयी क्योंकि रीतिकाल के कवियों ने कलुष शृंगार में डूबो कर राधा की काव्य रचना

---

६७ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्म साधना पृ० १८३

६८ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी सूर साहित्य पृ० २१

६९ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ४०८

का विषय बनाया था। आधुनिक काल में पुनः भारतेन्दु से राधा के रमणीय रूप का सयत चित्रण प्रारम्भ होता है।

हरिऔधजी ने राधा के चरित्र विश्लेषण में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रियप्रवास की राधा जहाँ परिणय की प्रतिमा है वहाँ लोक सेविका भी है। उनके चरित्र का विकास प्रेम और कर्तव्य की पवित्र भूमि पर हुआ है। उन्हें आदर्श भारतीय नारी का रूप प्राप्त है।

राधा प्रियप्रवास महाकाव्य की नायिका है। कृष्ण यदि प्रियप्रवास की रीढ़ की हड्डी हैं तो राधा अस्थिपंजर को भी जीवित प्राणी के रूप में प्रस्तुत करने वाली प्राण वायु है जिसके अभाव में काव्य का सारा सौन्दर्य कपूर की भाँति उड़ जाता है।[०] प्रियप्रवास की रचना में राधा का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रियप्रवास के चतुर्थ सर्ग में सर्वप्रथम राधा के दर्शन एक अपूर्व छविमयी बालिका के रूप में होते हैं। उनकी रूपमाधुरी का चित्राकन करते हुए कवि ने लिखा है

> रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना
> तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।
> शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीलामयी
> श्री राधा मृदु भाषिणी मृग दृगी माधुर्य सन्मूर्ति थी॥ [०१]

इस सर्ग में राधा के नखशिख सौन्दर्य का चित्राकन बड़े कलात्मक ढंग से हुआ है। कवि ने राधा को कलासम्पन्न सुकुमार कमनीय एवं सद्गुण अलंकृता बाला के रूप में चित्रित किया है। इस चित्रण में कवि ने श्रीराधा के परम्परित लावण्यमय एवं आकर्षक व्यक्तित्व को भी सजाया है जिसके चित्रण में जयदेव विद्यापति चण्डीदास सूरदास एवं रीतिकालीन कवि अपनी प्रतिभा का परिचय दे चुके थे। किन्तु फिर भी प्रियप्रवास की राधा का रूप सर्वथा नवीन है क्योंकि वह जयदेव की विलासिनी प्रेम विह्वला नारी विद्यापति की यौवनोन्मत्त मुग्धा नायिका चण्डीदास की परकीया नायिका सूर की मर्यादा संयुक्त नारी नन्ददास की तार्किक और रीतिकाल की अल्हड़ किशोरी सी बनी जान पड़ती है।[०२] जयदेव की राधा के समान उनमें मुग्ध

---

[०] गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश महाकवि हरिऔध, पृ० १८६

[०१] प्रियप्रवास सर्ग ४४

[०२] दुर्गाशंकर मिश्र हिन्दी काव्य मन्थन, पृ० २७१

कौतूहल और अनभिज्ञ प्रेम लालसा नहीं है। चण्डीदास की राधा के समान उनमें अधीर कर देने वाली गद्गदास्पद भावुकता भी नहीं है पर कोई सहृदय इन सभी बातों को उनमें एक विचित्र मिश्रण के रूप में अनुभव कर सकता है।[७३] प्रियप्रवास में राधा के प्रेममय व्यक्तित्व का क्रमिक एवं समुचित विकास चित्रित किया गया है। कृष्ण और राधा दोनों के पिता में स्नेह सम्बन्ध था।[७४] इसीलिए दोनों का प्रेम बाल्यावस्था से ही विकसित हुआ था।

> वह अलौकिक बालक बालिका
> जब हुए कल क्रीडन योग्य थे।
> परम तन्मय हो बहु प्रेम से
> तब परस्पर थे मिल खेलते।[७५]
> × × × ×
> युगल का वय साथ स्नेह भी
> निपट नीरवता सह था बढ़ा।
> फिर यही वर बाल स्नेह ही
> प्रणय में परिवर्तित था हुआ।।[७६]

राधा-कृष्ण के प्रेम का प्रसार बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ था। अतः राधा के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम भाव दृढ़तर होता गया। यौवनावस्था तक पहुंचते पहुंचते दोनों का स्नेह भाव प्रणय में परिवर्तित हो गया। राधा के मनमानस में कृष्ण की माधुरी मूर्ति बस गयी।[७७] यहां हम राधा का प्रणयिनी रूप पाते हैं। प्रणय भाव की तीव्रता में वे कृष्ण को पतिरूप में वरण करना चाहती हैं

> मम पति हरि होवें चाहती मैं यही हूं।

कृष्ण के मथुरागमन से राधा की आकांक्षाओं पर तुषारापात होता है। वे पवनदूत के द्वारा अपना विरह सन्देश कृष्ण तक भिजवाती हैं। यहीं से राधा का विरहिणी रूप दिखायी देता है। उनके मानस पर कृष्ण की रूप छवि अंकित हो गयी थी। किन्तु यह विरह वेदना ही राधा के व्यक्तित्व का उन्मेष करती है। कृष्ण के विरग होने पर राधा के उर में उदात्त भावों की उत्पत्ति होती

---

[७३] हरिऔध अभिनन्दन ग्रन्थ पृ ४६१
[७४] प्रियप्रवास, सर्ग ४ छन्द ६
[७५] वही छन्द १०
[७६] वही छन्द १६
[७७] वही सर्ग ४ छन्द १७ १८

है। उन्हें सम्पूर्ण जगत कृष्णमय प्रतीत होता है। कालिन्दी के जल में उन्हें कृष्ण के गात की आभा दिखाई देती है। सरोवरों में खिले कमलों में कृष्ण के कर तथा पग दिखाई देते हैं।[७८] तारों से खचित नभ में और मेघों में मुक्ति बक पंक्ति में उन्हें श्याम का मुक्ता लसित उर दिखाई देता है।[७९] ऊँचे शिखरों में कृष्ण के चित्त की उच्चता[८०] फूलों में परमप्रिय की कान्ति रंजना में श्याम के तन का रंग[८१] मृग बालिका में अलक-सुषमा मृगों में आँखों की छवि[८२] गगनतल में श्यामगात की नीलिमा भू में शोभा[८३] और खग कूजन में उन्हें श्याम की मोहिनी वंशी की धुन सुनाई देती है।[८४] अन्ततः वे श्याम को विश्वमय देखने लगती हैं

> हो जाने से हृदय तल का भाव ऐसा निराला
> मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये।
> मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा
> मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में॥ [८५]

अब राधा विश्व प्रेमिका और लोक-सेविका हो गयी। उनका हृदय विशाल उदार और मानवीय प्रेम से पूरित हो गया। उन्होंने पीड़ित पतितों और असहायों की सेवा का व्रत लिया। राधा ने भगवान की भक्ति को भी नवीन रूप ग्रहण किया। नवधा भक्ति की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की। डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा के शब्दों में— कृष्ण से वियोग होने पर राधा के प्रेम का उदात्तीकरण मानव जाति एवं समस्त लोक के प्रति प्रेम की भावना के रूप में हो जाता है और वे प्रत्येक प्राणी एवं प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में कृष्ण के ही रूप का दर्शन करती हैं।[८६] कृष्ण के अभिन्न बन्धु उद्धव के आगमन पर प्रियप्रवास की राधा उन्हें व्यंग्य या उपालम्भ नहीं देती। न ही मान मानी होकर विरह-वेदना

---

[७८] प्रियप्रवास सर्ग १६, छन्द ७६
[७९] वही, सर्ग १६ छन्द ८०
[८०] वही, सर्ग १६ छन्द ८२
[८१] वही सर्ग १६ छन्द ८४
[८२] वही सर्ग १६ छन्द ८५
[८३] वही सर्ग १६ छन्द ८७
[८४] वही सर्ग १६ छन्द ८८
[८५] वही सर्ग १६, छन्द १०४
[८६] हिन्दी साहित्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० १६१

म प्रलाप करती है । वे शिष्टतापूर्ण ढंग से उद्धव का स्वागत करके धैर्यपूर्वक श्रीकृष्ण का सन्देश सुनती है तदनन्तर अपने उर के भावों संवेदनाओं और जीवनादर्शों को स्पष्ट रूप म उद्धव से कह देती हैं । अपनी मर्मव्यथा को व्यक्त करने म वे अपनी दुर्बलता भी स्वीकार करती है

मैं नारी हू तरल उर हूँ प्यार से वंचिता हू
जो होती हू विकल विमना व्यस्त वैचित्र्य क्या है ? [८७]

राधा ने स्पष्ट कहा है कि यद्यपि मैं नित्य संयत और निर्लिप्त भाव से रहती हू फिर भी श्याम की याद आते ही व्यथित हो जाती हू । प्रियलाभ की लालसा मेरे उर म जितनी प्रबल है उतनी जगत हित की इच्छा नहीं ।[८८] प्रियानुराग एव लोकानुराग का यह द्वन्द्व राधा म बराबर बना रहता है ।[८९] यहा कवि ने बड कौशल से मानव मनोविज्ञान का चित्रण किया है । वस्तुत इस मानसिक संघर्ष ने ही राधा की चरित्र सृष्टि का महान और महत्त्वपूर्ण बनाया है । अन्तत वे लोक सेवा म ही समर्पित हो जाती है । तभी तो यह कहने म समर्थ होती है

प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें । [९०]

अस्तु राधा काव्य के अन्तिम सर्ग मे सच्ची लोकसेविका बन जाती हैं । ब्रजजनों के कष्ट निवारण म सब प्रकार से जुट जाती है । वे माता यशोदा को सान्त्वना देती है गोपजनों को कर्मठ और परिश्रमी बनने का उपदेश देती हैं खिन्नमन गोपिकाओं को कृष्ण की मधुर कथाए सुनाकर एव सदुपदेश देकर प्रसन्न करने का प्रयत्न करती हैं । तभी तो कवि ने कहा है कि

कगालों की परम निधि थी औषधि पीडितों की
दीनों की थी बहिन जननी थी अनाश्रितों की
आराध्या थी ब्रज अवनि की प्रेमिका विश्व की थी ।। [९१]

परमार्थ सेवाभावना के कारण राधा अपने दु ख की अपेक्षा ब्रजवासियों के दु ख से दु खी थी और उन्हीं के निमित्त कृष्ण का ब्रजागमन भी चाहती थी

[८७] प्रियप्रवास सर्ग १६ छन्द ५
[८८] वही सर्ग १६/५६
[८९] डा० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यो मे नारी चित्रण, पृ० १०२
[९०] प्रियप्रवास १६/९८
[९१] वही १७/५०

मैं ऐसी हूँ न निज दुःख से कष्टिता शोक मग्ना
हा ! जैसा हूँ व्यथित ब्रज के वासियों के दुःखों से।
गोपों गोपी विकल ब्रज की बालिका बालिकों को
आके पुष्पानुपम मुखड़ा प्राण प्यारे दिखावें।
बाधा यदि कोई न प्रिय के चारु कर्तव्य में हो
तो वे आके जनक जननी की दशा देख जावें॥ [६२]

अपने लिये तो उनकी यही कामना है कि

'आशा भूलूँ न प्रियतम को विश्व के काम आऊँ।
मेरा कौमार व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे॥ [६३]

इस प्रकार 'प्रियप्रवास' की राधा हिन्दी कृष्ण काव्य परम्परा की अद्भुत सृष्टि है जिसके निर्माण में कवि ने युग चेतना और नवीन भावनाओं की पूर्ण रक्षा की है। प्रियप्रवास की राधा में हमारे युग की नारी चेतना की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है। उनके व्यक्तित्व में प्रेम, कर्तव्य, त्याग, निष्ठा, शील, सौजन्य, सेवा भाव आदि गुणों का सुन्दर समाहार हुआ है। प्रियप्रवास की राधा भारतीय नारी की समस्त विभूतियों को आत्मसात् करती हुई हमारे सामने आती है। वह समाज और देश की एक सच्ची सेविका है जो व्यष्टि को समष्टि में अन्तर्निहित कर देती है। [६४] राधा की चरित्र-कल्पना के द्वारा निश्चय ही हरिऔध ने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रणय, विरह और त्याग की त्रिवेणी से स्नात 'प्रियप्रवास' की राधा का चरित्र भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमा है।

यशोदा—प्रियप्रवास में राधा के अनन्तर यशोदा सबसे महत्त्वपूर्ण नारी पात्र है। उनका चरित्र करुणा, वात्सल्य और ममता की विभूति है। उनकी चरित्र योजना में भारतीय जननी की आदर्श प्रतिमा साकार हो उठी है। प्रियप्रवास में यशोदा के दर्शन सर्वप्रथम तृतीय सर्ग के २८वें छन्द में होते हैं। यहाँ यशोदा कृष्ण की शय्या के समीप बैठी आँसू बहा रही है क्योंकि उनके मन में आशंकाएँ व्याप्त हैं। कृष्ण प्रातः कंस के यहाँ चले जायेंगे। वह अत्याचारी कंस न जाने क्या बाधा उपस्थित कर दे। यशोदा अपने करुण क्रन्दन की घोर

---

[६२] प्रियप्रवास १६/१२२-२३
[६३] वही १६/१२५
[६४] डॉ० गोविन्दराम, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० १४४

धीरे यत्न कर रही है। उन्हें यह भी भय है कि कहीं कृष्ण की नींद में बाधा न पड़े

> हरि न जाग उठें इस सोच से
> सिसकती तक भी वह थी नहीं।
> इसलिए उनका दुःख वेग से
> हृदय था शतधा अब हो रहा॥ [६४]

किन्तु जब उनका दुःख न घटा तो सिर झुकाकर चुपचाप श्याम की कुशलता के लिए देवता की आराधना करने लगीं।[६६] यद्यपि कृष्ण लोक सेवा एवं जनहित के लिए जी रहे थे किन्तु भोले स्वभाव एवं मातृत्व प्रेम के कारण ये बातें यशोदा को प्रभावित नहीं करतीं। अन्त में बिदाई बेला के समय उनके वात्सल्य का स्रोत फूट पड़ता है। वे अनेक प्रकार से समझा बुझाकर नन्द के साथ बालकों को भेजती हैं। मार्ग में इन बालकों को दुःख न हो इसके लिए सभी प्रकार की प्रार्थना नन्द से करती हैं। वे कहती हैं कि इन्हें मधुर फल खिलाना नाना दृश्य दिखाना प्यास लगने पर मधुर जल पिलाना आदि।[६७] यशोदा कृष्ण के क्षणिक वियोग की वेदना सहने में भी अक्षम थीं किन्तु यह वियोग जब सदैव के लिए हो गया तो उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। नन्द का मथुरा से अकेले ही लौटकर आने पर यशोदा के धैर्य का बाँध ही टूट जाता है। वे छिन्नामूला लता की भाँति महाखिन्नमना होकर नन्द के पैरों पर गिर पड़ती हैं।[६८] वे विकल भाव से आँसू बहाती हुई नन्द से पूछती हैं

> प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है
> दुःख जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है।
> अब तक जिसको देखकर मैं जी सकी हूँ
> वह हृदय हमारा नेत्र तारा कहाँ है? [६९]

विरहावेग में वे प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं। वे कहती हैं कि वृद्धा के

---

६४ प्रियप्रवास सर्ग /२३
६ वही / ८८
६७ वही ५/४६ ६२
६८ वही ७/१
६९ वही ७/११

नैन का तारा, दुख जलधि मे डूबी हुई का सहारा दुखिया माँ का जीवन कहाँ है ?[१००] पुत्र के अभाव म यशोदा मरने को उद्यत हो जाती है

इस कुशिन हमारे गात को प्राणत्यागी।
बन विवश नहीं तो नित्य रो रो मरूँगी॥
हा ! वृद्धा के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहारे,
हा ! प्राणो के परमप्रिय हा ! एक मेरे दुलारे
हा ! शोभा के सदन सम हा ! रूप लावण्य वाले,
हा ! बेटा हा ! हृदय धन हा ! नेत्र तारे हमारे॥

× × ×

हा ! जीऊँगी न अब पर है वेदना एक होती
तेरा प्यारा वदन मरती बार मैने न देखा।[१०१]

इस प्रकार अश्रु धारा प्रवाहित करते करते वे सज्ञा शून्य होने लगी। उनकी करुणाद्र दशा को देख सभी खिन्न थे।[१०२] नन्द ने यशोदा को सांत्वना दी कि कृष्ण दो दिन म आ जायेगे। तत्पश्चात यशोदा कृष्णागमन की प्रतीक्षा करने लगी। उनके वियोग म माता का शरीर जीर्ण शीर्ण हो गया था। वे प्रतिदिन द्वार पर आकर बैठती और प्रतीक्षा म ही दिन बिता देती। आने वाले पथिको से पूछती देवताओ को मनाती और ज्योतिषियो से कृष्णागमन के विषय म पूछती थी। बहुत दिवस व्यतीत होने पर भी कृष्ण नहीं आये। उन्होने उद्धव के साथ सदेश भेजा। इस समय यशोदा की दशा बड़ी दयनीय हो गयी थी

आवेगो से विपुल विकला शोप काया कृशांगी
चिन्ता-दग्धा व्यथित हृदया शुष्क-आस्या अधीरा
आसीना थी निकट पति के अम्बु नेत्रा यशोदा
खिन्ना दीना विनत-वदना मोह मग्ना मलीना।[१०३]

ऐसी दशा म यशोदा बड़े व्यथित भाव से कृष्ण के लालन-पालन करने म उठाये कष्टो की कथा कहती है। साथ ही ब्रज की व्यथा का वर्णन भी करती

---

[१००] प्रियप्रवास ७/१२ १४
[१०१] वही, सर्ग ७/२५ २७
[१०२] वही १०/५८
[१०३] वही १०/६

हैं।[१४] नन्द गृह में बैठ उद्धव रात्रि भर यह सारी कथा सुनते रहे। प्रात होने पर उद्धव नन्द सहित सद्म से चले गये। उद्धव के गृहत्याग से ही वन्दन की कथा परिसमाप्त हुई किन्तु यह कथा उद्धव के हृदय पर सदा के लिए अंकित हो गयी।[१५]

इन्हीं वियोगजन्य परिस्थितियों में जहाँ हम यशोदा के चरित्र में वन्दना के दर्शन होते हैं वहाँ उनके चरित्र का उदात्त रूप भी हमारे सामने आता है। एक ओर वे कहती हैं

ऊधो कोई न कल छल से लाल ले ले किसी का।[१६]

यहाँ व्यंजना से संकेत देवकी की ओर है। उनके हृदय में जहाँ एक कसक सी उठती है कि

हो जाती हूँ मृतक सुनती हाय जो यों कभी मैं
होता जाता मम-तनय भी अन्य का लाड़िला है।[१७]

वहाँ उनका मातृत्व यह कह उठता है

मैं रोती हूँ हृदय अपना कूटती हूँ सदा ही
हा! ऐसी ही व्यथित अब क्यों देवकी को करूँगी
प्यारे जीवें पुलकित रहें औ बनें भी उन्हीं के
धाई नाते बदन दिखला एकदा और देवें।[१८]

इन पंक्तियों में यशोदा सच्ची माता भी है जो स्वार्थ भावना से उठकर केवल अपने लाल को पुलकित देखना चाहती है। वे देवकी को भी अपनी तरह व्यथित करना नहीं चाहती। उन्हें धाय कहलाने में ही संतोष है। यही भाव उन्हें विश्व में श्रेष्ठ और उच्चतम पद प्रदान करने के लिए पर्याप्त है और इसीलिए वह और श्लाघनीया है।[१९] इस प्रकार यशोदा माता की दृष्टि से प्रियप्रवास तो क्या सम्पूर्ण हिन्दी काव्य रचना में एक अनुपम चरित्र सृष्टि है। प्रियप्रवास में करुणा की जो सरिता बही है उसमें सबसे पृथक धारा यशोदा के शोक की है।[११] सूरसागर की यशोदा से अनुप्राणित होकर

---

१४ प्रियप्रवास १०/२० ८५
१५ वही १०/८६ ८७
१६ वही १ /६६
१७-१८ वही १०/६५
१९ डा प्रतिपालसिंह बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य पृ० १ ८
११ विश्वम्भर मानव खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ

भी प्रियप्रवास की यशोदा माता की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्यों में एक अद्वितीय स्थान रखता है।[111]

डा० द्वारिकाप्रसाद ने उन्हें वीर प्रसूता माताओं की कोटि में मानते हुए लिखा है कि— "जब कृष्ण की विशालता एवं उदारता के कारण यशोदा माता वीर प्रसूता माताओं की कोटि में भी जा पहुँचती है। यद्यपि कृष्ण उनके औरस पुत्र नहीं हैं तथापि वे उन्हें औरस से भी अधिक मानती हैं और उन्हें लोक हित एवं लोक-सेवा के कार्यों में लीन देखकर अतीव हर्ष प्रकट करती हैं। वास्तव में भारतीय जननी की यही आदर्श रहा है। वह ममता एवं वात्सल्य से परिपूर्ण होकर भी अपने पुत्र को लोक हित एवं लोक सेवा के लिए सदैव अग्रसर करती रही है। इस दृष्टि से यशोदाजी कुन्ती विदुला सुभद्रा आदि वीर प्रसूती माताओं से किसी प्रकार कम नहीं दिखायी देतीं।"[112]

इस प्रकार यशोदा का चरित्र पर्याप्त मौलिकता ग्रहण किये हुए है। हरिऔध ने कृष्ण और राधा की भाँति यशोदा के चरित्र निर्माण में सहृदय काव्यात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। यशोदा का चरित्र अविस्मरणीय रूप से पाठक के मन मस्तिष्क पर अंकित हो जाता है। यह प्रियप्रवास की सबसे बड़ी सफलता है।

अन्य पात्र

नन्द—प्रियप्रवास में नन्द के चरित्र के दो रूप मिलते हैं—पिता और पति। तृतीय सर्ग में कंस द्वारा कृष्ण को बुलाने एवं अक्रूर आगमन से उनका मन विचलित हो जाता है। यथा

> सिर हुए अपने मुख लाभ को, कर रहे दृग व्यजक भाव से।
> विपम संकट बीच पड़े हुए बिलसते चुपचाप व्रजेश थे॥[113]

किन्तु व्रजधराधीश होने के कारण उनमें गम्भीरता दूरदर्शिता एवं धैर्य भी था। अपनी मर्म व्यथा को दबाये, भग्न हृदय एवं आसक्ति से वे कृष्ण को लेकर अक्रूर के साथ मथुरा जाते हैं। वहाँ कृष्ण को लोक हित में रत छोड़कर वे दुःखी मन एवं उदार हृदय पिता की भाँति खाली ही लौट आते हैं। इस अवसर पर नन्द एक सफल पति की भाँति कृष्ण के पुनरागमन का आश्वासन देकर

---

111 डा० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण पृ० १३८
112 डॉ० द्वारिकाप्रसाद प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० १२१
113 प्रियप्रवास सर्ग /२१

रचना शिल्प

भावपक्ष (वर्णन कौशल)

१ प्रकृति वर्णन—प्रियप्रवास म प्रकृति चित्रण कवि न मनोयोग किया है। प्रकृति के अनक रूपा की सुन्दर झांकियाँ काव्य म आद्यान्त चित्रित है। काव्य का प्रारम्भ ही सध्या वर्णन स हुआ है

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा॥ [११]

प्रियप्रवास क अधिकाश सर्गों का आरम्भ प्रकृति वर्णन स ही हुआ है। नीचे सर्ग क्रमानुसार प्रत्येक सर्ग की प्रथम पंक्ति उद्धृत की जा रही है

सर्ग १ दिवस का अवसान समीप था।
सर्ग २ 'गत हुई अब थी द्विघटी निशा।
सर्ग ३ समय था सुनसान निशीथ का।
सर्ग ५ तारे डूब तम टल गया छा गयी व्योम लाली।
सर्ग ७ 'ऐसा आया यक दिवस जो था महामर्म भेदी।
सर्ग १० त्रिघटिका रजनी गत थी हुई।
सर्ग ११ यदुनन्दन छविशाली अकजा कूल वाली।
सर्ग १२ सरस सुन्दर सावन मास था। (द्वितीय पद्य)
सर्ग १४ कालिन्दी के पुलिन पर थी एक कुजातिरम्या।
सर्ग १५ छायी प्रात सरस छवि थी पुष्प औ पल्लवो म।
सर्ग १७ विमुग्ध कारी मधु मजु मास था।

प्रकृति और मानव का आदि सम्बन्ध है। मानवीय भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति स अधिक आवश्यक माध्यम क्या हो सकता है। प्रियप्रवासकार न प्रकृति चित्रण इस प्रकार किया है कि मानवीय भावनाओ की सफल अभिव्यक्ति भी हुई है और प्रकृति सुन्दरी का रूपांकन भी। प्रकृति चित्रण की प्राय समस्त प्रणालियाँ प्रस्तुत काव्य मे देखी जा सकती है।

(अ) आलम्बन रूप मे—आलम्बन रूप म प्रकृति चित्रण दो प्रकार से किया जाता है—एक स्वतन्त्र रूप म जिसके अन्तर्गत बिम्ब ग्रहण प्रणाली का आश्रय लेकर प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र अंकित किये जाते है। दूसरे अर्थ ग्रहण

[११] प्रियप्रवास प्रथम सर्ग, पृ० १ (सवत् २०१३ सस्करण)

प्रणाली जिसमें प्राकृतिक वस्तुओं के नामों की केवल गणना मात्र ही करा दी जाती है। हरिऔधजी ने दोनों ही प्रकार से प्रकृति चित्रण किया है। बिम्ब ग्रहण प्रणाली द्वारा उन्होंने प्रकृति के भव्य और भयंकर दोनों रूप चित्रित किये हैं जैसे

> अचल के शिखरों पर जा चढ़ी
> किरण पादप शीश विहारिणी।
> तरणि बिम्ब तिरोहित हो चला,
> गगन मण्डल मध्य शनैः शनैः ॥[१२]
>
> तिमिर लीन कलेवर को लिये
> विकट-दानव पादप थे बने।
> भ्रममयी जिनकी विकरालता
> चलित थी करती पवि चित्त को ॥ [१२१]

परिगणन शैली का उदाहरण निम्न प्रकार है

> जम्बू अम्ब कदम्ब निम्ब फलसा जम्बीर औ आंवला
> लीची दाडिम नारिकेल इमिली औ शिंशपा इंगुदी।
> नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी
> श्रेणी-बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े ॥ [१२२]

हरिऔधजी ने आलम्बन रूप में ही ऋतुओं का भी सजीव वर्णन किया है जिनमें ग्रीष्म वर्षा शरद और वसन्त ऋतुओं के वर्णन प्रमुख हैं। ग्रीष्म वर्णन एकादश सर्ग में ५६ से ६४ तक वर्षा वर्णन द्वादश सर्ग में छन्द २ से ७१ तक शरद वर्णन चतुर्दश सर्ग में छन्द ७० से १६१ तक और वसन्त वर्णन षोडश सर्ग में छन्द १ से २८ तक।

(आ) उद्दीपन रूप में—प्रियप्रवास में वियोग की प्रधानता होने के कारण कवि ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में भी चित्रित किया है। कृष्ण वियोग में राधा की वेदना को प्रकृति और भी अधिक उद्दीप्त करती है। इसी प्रकार वसन्त आदि की शोभा भी ब्रज के लिए प्रतिकूल प्रभाव डालती है

> वसन्त शोभा प्रतिकूल थी बड़ी।
> वियोग मग्ना ब्रज भूमि के लिए।

---

[१२] प्रियप्रवास पृ० २

[१२१] वही, तृतीय सर्ग पृ० २३

[१२२] वही, नवम सर्ग पृ० १००

बना रही थी उसको व्यथामयी
विकास पाता वन-पादपावली ॥ [१२३]

(इ) वातावरण निर्माण रूप में—कवि ने आने वाली परिस्थितियों की पृष्ठभूमि के रूप में भी प्रकृति का चित्रण किया है। तृतीय सर्ग के प्रारम्भ का प्राकृतिक वातावरण व्रजमण्डल में व्याप्त होने वाली निराशा एवं वेदना का ही सूचक है

समय था सुनसान निशीथ का
अटल भूतल में तम राज्य था।
प्रलय-काल समान प्रसुप्त हो
प्रकृति निश्चल नीरव शान्त थी ॥ [१२४]

(ई) संवेदनात्मक रूप में—व्रजजनों के दुःख में प्रकृति को भी दुःखी चित्रित किया गया है। जिस प्रकार गोपियों के पास कृष्ण नहीं आते उसी प्रकार चम्पा के पास भ्रमर नहीं आता

चम्पा तू है विकसितमुखी रूप औ रंग वाली
पाई जाती सुरभि तुझ में एक सत्पुष्प सी है।
तो भी तेरे निकट न कभी भूल है भृंग आता
क्या है ऐसी कसर तुझ में न्यूनता कौन सी है ॥ [१२५]

(उ) मानवीकरण रूप में—प्रियप्रवास में अनेक स्थलों पर प्रकृति को मानवोचित व्यापारों से युक्त करके चित्रित किया गया है। व्रज के गोवर्द्धन पर्वत को निम्न प्रकार से चित्रित किया गया है

ऊंचा शीश सगर्व उन्नत करके था देखता व्योम को।
या होता अति ही स-गर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से।
या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद संसार में।
मैं हूं सुन्दर मानदण्ड व्रज की शोभा-मयी भूमि का ॥ [१२६]

(ऊ) आलंकारिक रूप में—कवि ने प्रकृति के उपमानों को कृष्ण के रूप सौन्दर्य के प्रतिमान बनाकर चित्रित किया है। उदाहरण के लिए उनके रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्हें 'जलदतन' पुष्प श्याम जैसे गात वाले वपुष

---

१२३ प्रियप्रवास पञ्चम सर्ग पृ० ६

१२४ वही तृतीय सर्ग पृ० २१

१२५ वही पञ्चदश सर्ग पृ० २१६

१२६ वही नवम सर्ग पृ० ५८

जस सजील कथा से यक्त कलभ कर जसी भुजाओं वाले कम्बुकण्ठ है सुशोभित, तारागण के बीच मे चन्द्र की भाँति सुसज्जित कहा है।[127]

उपयुक्त प्रमुख प्रकृति चित्रण की प्रणालियों के अतिरिक्त हरिऔधजी ने दूत दूती रूप म[128] उपदेशिका रूप म[12] रहस्यात्मक एव प्रतीकात्मक रूप म[13] तथा दार्शनिक रूप म[131] भी प्रकृति चित्रण किया है। प्रियप्रवास के प्रकृति चित्रण की विशेषता यह है कि उसके द्वारा कथानक-क्षीणता दूर हुई है तथा कवि ने प्रकृति वर्णन की विविध शलियों को अपनाकर चित्रण की अनेकरूपता का भी परिचय दिया है। यद्यपि चित्रण की शलियाँ अधिकांशत प्राचीन और परम्परित है किन्तु जहाँ जहाँ कवि ने मानवोचित व्यापारों और भावनाओं के माध्यम के रूप मे प्रकृति का निरूपण किया है वहा नवीनता और यथानुरूपता भी दिखायी देती है। प्रियप्रवास के प्रकृति चित्रण का एक दोष यह है कि कवि ने प्रकृति चित्रण के लिए ही प्रकृति चित्रण न करके अनेक सर्गों म स्थानापूर्ति और काव्य की कलेवर वृद्धि के लिए भी यह प्रयत्न किया है। दूसरे अधिकांश स्थलों पर कवि ने प्रकृति का बाह्य भौतिक एव स्थूल रूप ही अंकित किया है। उसम कवि के सूक्ष्म निरीक्षण एव अन्तरंगदर्शन के परिज्ञान का परिचय नहीं मिलता। वृन्दावन का वर्णन करते समय कवि ने कल्पना के आधार पर ही नारीकेल सागौन शाल आदि के वृक्षों का वर्णन कर दिया है किन्तु करील के कुञ्जों की चर्चा नहीं की है फिर भी प्रकृति के अनेक रूपों का विभिन्न प्रणालियों द्वारा कवि ने जो निरूपण किया है वह निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। प्रकृति चित्रण के कारण प्रियप्रवास के महाकाव्यत्व की महिमा वृद्धि भी हुई है। डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के शब्दों म— नवयुग खडी बोली हिन्दी काव्य के क्षेत्र म मानवेतर प्रकृति के चित्रण और निरूपण की दृष्टि से हरिऔध अग्रदूत समझे जायेंगे और प्रियप्रवास की गणना नवयुग हिन्दी साहित्य के इतिहास म एक महत्त्वपूर्ण मील स्तम्भ के रूप म होगी।[132] प्रियप्रवास म प्रकृति के विराट रूप को चित्रित करने का जो महत्त्वपूर्ण प्रयास

[127] प्रियप्रवास पचम सग छ० ५६ ६०
[128] वही, षष्ठ सग पृ० ६४
[129] वही, नवम सग, पृ० १०१
[13] वही, द्वितीय सग पृ० २०
[131] वही षोडश सग पृ० २५५ ५६
[132] डा धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी महाकवि हरिऔध, पृ० ६७ ६८

हरिऔधजी ने किया वह छायावादी कविता के लिए भी अधिकाधिक मार्ग दर्शक सिद्ध हुआ।[133]

२ मनोवैज्ञानिक निरूपण—हरिऔधजी ने प्रियप्रवास में यथास्थान मनोवैज्ञानिक ढंग से भी मानवीय मनोवृत्तियों का निरूपण किया है। प्रिय प्रवास के अंतिम सर्गों में राधा की वेदना का परिष्कार होकर उसकी व्यष्टि चेतना समष्टि का रूप ग्रहण कर लेती है। राधा का सारा भाव नारायण सेवा में परिणत हो जाता है और वह व्यक्तिगत दुख को भूलकर समाज में दुखी जनों के उद्धार में लग जाती है। राधा की वृत्तियाँ इतनी उदात्त हो जाती हैं कि प्रकृति के प्रत्येक उपादान में एवं सृष्टि के कण-कण में उसे प्रियतम का स्वरूप दिखायी देने लगता है। उसे कालिन्दी में प्रियतम के गात की श्यामता रजनी में श्याम तन का रंग आदित्य में वरवदन का ओप, खंजना और मृगों में आँखों की सुछवि दाडिमों में दाँतों की झलक पुष्पों में मुस्कान की सी नर्तित सुषमा दृष्टिगोचर होती है। वह सम्पूर्ण विश्व की वस्तुओं में अपने प्यारे कृष्ण के ही अमित रूप रंग को देखती है

भू में शोभा सुरस जल में वह्नि में दिव्य-आभा।
मेरे प्यारे कुँवर वर सी प्रायशः है दिखाती॥ [134]

और इसी कारण उसके हृदय में विश्व का प्रेम जाग्रत होता है।[135] इस प्रकार राधा की मानसिक वृत्तियों और शोकाकुल भावनाओं का परिष्कार करके जिस उदात्त रूप में उन्हें अंकित किया गया है वह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ही कहा जायेगा। इस परिवर्तन को भी कवि ने आकस्मिक रूप से प्रस्तुत न कर परिस्थितियों एवं वातावरण के सन्दर्भ में स्वाभाविक ढंग से उपस्थित किया है।

३ रस परिपाक और भाव चित्रण—प्रियप्रवास विप्रलम्भ शृंगार रस प्रधान महाकाव्य है। काव्य का मुख्य विषय राधा की विरह-व्यथा का ही निरूपण है। अन्य रसों में संयोग शृंगार करुण भयानक वीर रौद्र अद्भुत रसों एवं वात्सल्य भाव का भी सुन्दर व्यंजना काव्य में प्रसंगानुकूल हुई है।

---

[133] डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० १५३

[134] प्रियप्रवास षोडश सर्ग पृ० २५१

[135] वही षोडश सर्ग पृ० २५४

राधा की विरह दशा का वर्णन करते हुए कवि ने विप्रलम्भ शृंगार का सुंदर चित्र अंकित किया है।

रो रो चिंता सहित दिन को राधिका थी बिताती।
आँखों को थी सजल रखती उन्मना थी दिखाती।
शोभा वाले जलद-वपु की हो रही चातकी थी।
उत्कण्ठा थी परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थी॥ [136]

राधा के अतिरिक्त अन्य गोपियों की भावनाओं के निरूपण में भी विप्रलम्भ शृंगार का चित्रण हुआ है।[137]

काव्य के आरम्भ में ही संयोग शृंगार के सुन्दर दृश्य कवि ने अंकित किये हैं। उदाहरण के लिए —

बहु विनोदित थीं व्रज बालिका।
तरुणियाँ सब थीं तृण तोड़ती।
बलि गयी बहु बार वयोवती।
छवि विभूति विलोक व्रजेन्दु की। [138]

इसी प्रकार गोकुल ग्राम की जन मण्डली मुदित मन होकर कृष्ण की मुख छवि को इस प्रकार निरखती थी जैसे तृषित चातक घन की घटाओं को देखता है।[139] कृष्ण की बाल-लीलाओं में वात्सल्य रस का सुन्दर वर्णन हुआ है

ठुमुकते गिरते पड़ते हुए
जननि के कर की उँगली गहे।
सदन में चलते जब श्याम थे।
उमड़ता तब हृद्-पयोधि था॥ [140]

वात्सल्य रस का सजीव एवं मार्मिक चित्रण उस समय हुआ है जब नन्द मथुरा से अकेले लौट आते हैं तथा यशोदा विलाप करती हुई कहती हैं

प्रिय पति वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है
दुख जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है। [141]

---

[136] प्रियप्रवास, षष्ठ सर्ग पृ० ६०
[137] वही पंचदश सर्ग, पृ० २२५ २६
[138] वही प्रथम सर्ग पृ० ६
[139] वही, पृ० ५
[140] वही, पृ० ६१
[141] वही, सप्तम सर्ग, पृ० ७५

कृष्ण के लोकोपकारक उत्साहपूर्ण कार्यों म वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। कवि न उन्हें युद्धवीर दयावीर दानवीर और धर्मवीर के रूप म चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त कालियनाग-दमन दावानल शमन गोवर्द्धन धारण प्रसग व्योमासर आदि राक्षसों के संहार की घटनाओं म वीर रस का ही निरूपण हुआ है। कालियनाग के दमन म रौद्र रस की भी अभिव्यक्ति हुई है। त्रयोदश सग म भयानक सर्प को देखकर गोपमण्डली का भयभीत होन म भयानक रस है।[142] यशोदा के शोकाकुल हृदय की व्यजना म करुण रस की निष्पत्ति हुई है। कृष्ण के लौटन की आशा न देख यशोदा शोक म डूब जाती –

एसी आशा लतिक लतिका हो गई शुष्क प्राय।
सारी शोभा सु छविजनिता नित्य है नष्ट होती।
जो आवेगा न अब व्रज म श्याम-सत्कान्ति शाली।
होगी हो के विरस वह तो सवथा छिन्न मूला।[143]

इस प्रकार प्रियप्रवास म वियोग शृगार की प्रधानता होते हुए भी अन्य रसों का निर्वाह अपेक्षित रूप म यथास्थान हुआ है।

कलापक्ष

नामकरण— प्रियप्रवास के नामकरण के सम्बन्ध म हरिऔधजी न लिखा है कि— मैंने पहले इस ग्रन्थ का नाम व्रजांगना विलाप रखा था किन्तु कई कारणों से मुझको यह नाम बदलना पड़ा जो इस ग्रन्थ के समग्र पढ़ जान पर आप लोगों को स्वय अवगत होंगे।[144] वस्तुत व्रजांगना विलाप नाम महाकाव्योचित नहीं है। इस नाम से ध्वनित होता है कि मानो काव्य म व्रज की किसी अगना के ही विलाप का वणन होगा। दूसरे इस शीर्षक से रीतिकालीन काव्य विषयों की व्यजना ही अधिक होती है। प्रियप्रवास नाम अपेक्षाकृत व्यापक और जिज्ञासावद्धक भी है। सम्भवत काव्य का प्रियप्रवास नामकरण होन के कारण ही कवि को कृष्णजन्म से लेकर प्रवास काल तक की समस्त घटनाओं का वणन करना पड़ा है जिसके कारण विषय-वस्तु व्यापक बन गयी है। अस्तु वण्य विषय से सम्बन्धित एव आकषक होन के कारण प्रियप्रवास का नामकरण सवथा उपयुक्त है।

सग सयोजन— प्रियप्रवास म १७ सग हैं। यद्यपि सर्गों का सयोजन कथा

---

[142] प्रियप्रवास त्रयोदश सग पृ० १७८
[143] वही, दशम सग पृ० १३२
[144] वही भूमिका पृ० २

विकास की दृष्टि से किया गया है किन्तु 'कामायनी' या 'कृष्णायन' की भाँति सर्गों का नामकरण नहीं हुआ है। प्रथम से पंचम सर्ग तक की कथा का सम्बन्ध गोकुल से है जिसके अन्तर्गत अक्रूर कृष्ण को लेकर मथुरा चल जाते हैं और ब्रजवासी वियोग में डूब जाते हैं। षष्ठ सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक ब्रज जनों के वियोग की दशा का मार्मिक वर्णन है। चतुर्दश से अन्तिम अर्थात् सप्तदश सर्ग तक उद्धव द्वारा कृष्ण के सन्देश का प्रसारण है। कथानक के सूत्रों और कथा विकास की गति को समायोजित करने की दृष्टि से प्रियप्रवास की सर्ग-योजना सफल रही है। प्रत्येक सर्ग में पूर्वापर अन्विति विद्यमान है।

भाषा शैली— प्रियप्रवास खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य होने के नाते भाषा की दृष्टि से उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। प्रियप्रवास के अनुकरण पर ही खड़ी बोली को अपनाया गया है। जिन वर्णिक वृत्तों में काव्य लिखा गया है, उसके लिए संस्कृत निष्ठ खड़ी बोली ही उपयुक्त भी थी। भाषा के इस रूप को अपनाने में हरिऔधजी का विशिष्ट दृष्टिकोण भी था जिसे स्वयं भूमिका में स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि— कुछ संस्कृत वृत्तों के कारण और अधिकतर मेरी रुचि से इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृतगर्भित है क्योंकि अन्य प्रान्त वालों में यदि समादर होगा तो ऐसे ही ग्रन्थों का होगा। भारतवर्ष भर में संस्कृत भाषा आदृत है।[१४४] स्पष्ट है कि 'प्रियप्रवास' की भाषा के स्वरूप निर्माण के पीछे एक महत् उद्देश्य और निश्चित विचारधारा कार्यरत रही है।

वास्तव में प्रियप्रवास की भाषा के दो रूप हैं— एक तो शुद्ध संस्कृत निष्ठ रूप और दूसरा साधारण बोलचाल की भाषा का रूप। प्रथम उदाहरण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है

> रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय-कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
> तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली।
> शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य-लीला-मयी।
> श्रीराधा मृदु भाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी।[१४५]

इन पंक्तियों में दीर्घ समासमयी और संधियुक्त पद-योजना के कारण भाषा का रूप सहज एवं बोधगम्य नहीं। इस प्रकार की समास बहुला क्लिष्ट पदावली के प्रयोग के कारण भाषा के स्वाभाविक रूप को आघात भी पहुँचा

---

१४४ प्रियप्रवास भूमिका पृ० ६

१४५ वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ३६

है। किन्तु ऐसे स्थल काव्य में बहुत कम हैं। अधिकतर स्थलों पर भाषा का रूप सहज एवं बोधगम्य है। यथा—

सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही।
अब तक न कहीं भी लाडिले हैं पधारे।
मधुर फल खिलाना दृश्य नाना दिखाना।
कुछ पथ-दुख मेरे बालकों को न होवे।[१४७]

भाषा का यह रूप सरल सहज एवं बोलचाल के अनुरूप है। भाषा को सरस एवं रोचक बनाने के लिए हरिऔधजी ने सभी प्रयास किये हैं। मुहावरे एवं लाकोक्तियों के प्रयोग से भी भाषा में पर्याप्त सरसता आयी है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

१ हा! हा! मेरे हृदय पर यों साँप क्यों लोटता है।
२ प्रियतम! अब मेरा कंठ में प्राण आया।
३ जी होता है विकल मुँह को आ रहा है कलेजा।
४ मैं आऊँगा कुछ दिन गये बात होगी न बाँकी।

इसके अतिरिक्त भाषा को शक्ति प्रदान करने के लिए सुभाषितों और सूक्तियों का भी प्रयोग किया गया है। प्रियप्रवास की भाषा में लोक प्रचलित उर्दू फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जैसे—गरीबिन जुदा ताव आदि। ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग कम नहीं है। कहीं-कहीं संस्कृत वृत्तों के उपयुक्त संगठन के लिए कवि ने शुद्ध शब्दों को तोड़ा मरोड़ा भी है। जैसे मम का मरम समय का सम और यद्यपि का यदपि आदि। छंद आयोजन के लिए दीर्घान्त शब्दों को ह्रस्व और ह्रस्व को दीर्घ तो अनेक स्थानों पर किया गया है।

प्रियप्रवास की शैली प्रवाहपूर्ण है। संस्कृतमयी शैली होने के कारण कहीं-कहीं दुरूहता और कृत्रिमता अवश्य आ गयी है। किन्तु प्रियप्रवास की शैली कहीं भी समासबहुला होने के कारण व्यंजना शक्ति में अक्षम नहीं है। संप्रेषणीयता तो इस काव्य की शैली का विशेष गुण है। प्रियप्रवास में काव्य शैलियों के तीन रूप मिलते हैं—सरल शैली अलंकृत शैली और गुम्फित शैली। अंतिम शैली में अवश्य कहीं-कहीं जटिलता दिखायी देती है किन्तु शब्द शक्तियों की समुचित व्यंजना भाषा के सुन्दर प्रयोगों एवं मुहावरेदार पदावली आदि के कारण शैली आकर्षक एवं प्रवाहपूर्ण बनी रही है।

इस प्रकार भाषागत कतिपय दोषों के होते हुए भी प्रियप्रवास भाषा

---

[१४७] प्रियप्रवास पंचम सर्ग पृ० ५३

शैली की दृष्टि से सफल एवं सक्षम रचना है। प्रियप्रवास की भाषा का माधुर्य और लावण्य पाठक को बरबस आकर्षित कर लेता है। चित्रोपमता व्यंजना प्रसंगानुकूलता सम्प्रेषणीयता आदि प्रियप्रवास की भाषा शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं।

अलंकार विधान— प्रियप्रवास में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग हुआ है। कवि ने अधिकतर प्राचीन अलंकारों का ही प्रयोग किया है। अलंकार प्रयोग में कवि कहीं भी प्रयत्न-साध्य दिखायी नहीं देता। इसके अतिरिक्त अलंकारों के प्रयोग से काव्य के भाव-सौंदर्य में कहीं भी व्याघात उत्पन्न नहीं हुआ है। हरिऔधजी की अलंकार योजना काव्य की सरसता एवं स्वाभाविकता के रक्षण में विशेष सहायक रही है। विशेष रूप से अनुप्रास यमक श्लेष उपमा उत्प्रेक्षा रूपक आदि अलंकारों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं

अनुप्रास—

विमुग्धकारी मधु मंजु मास था।
वसुंधरा थी कमनीयता मयी।
विचित्रता-साथ विराजिता रही।
वसन्त वासन्तिकता वनान्त में॥ [१४८]

यमक—

विलसित उर में जो है सदा देखता सा।
वह निज उर में ठौर भी क्या न देगा।
नित वह कलपाता है मुझे कान्त हो क्या।
जिस बिन कलपाते हैं नहीं प्राण मेरे।

यहाँ कलपाता और कलपाते शब्द समान होते हुए भी भिन्न अर्थों के द्योतक हैं।

उपमा—

'नील फूले कमल दल सी गात की श्यामता है।

रूपक—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्रायः कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कल हासिनी सुरसिका क्रीडा-कला पुत्तली। [१४९]

---

[१४८] प्रियप्रवास षोडश सर्ग पृ० २३७

[१४९] वही, चतुर्थ सर्ग पृ० २६

उत्प्रेक्षा—

क्षितिज निकट कसी लालिमा दीखती है ?
वह रुधिर रहा है कौन-सी कामिनी का ?
विहग विकल हो हो बोलने क्या लगे है ?
सखि ! सकल दिशा म आग सी क्या लगी है ? [१५]

अपह्नुति—

विपुल नीर बहाकर नेत्र से।
मिस कालिंद कुमारी प्रवाह के।
परम कातर हो रह मौन ही।
रुदन थी करती व्रज की धरा।

इसी प्रकार स्मरण दृष्टान्त सन्देह भ्रान्तिमान प्रतीप परिकर निदशना व्यतिरक आदि अलकारो के प्रयोग भी प्रियप्रवास म हुए ह। अलकारो के प्रयोग से प्रियप्रवास म कलात्मक सौन्दय की अभिवृद्धि ही हुई है।

छन्द योजना—प्रियप्रवास वर्णिक छन्दो म लिखा अतुकान्त एव अन्त्यानुप्रासहीन काय है। प्रियप्रवास म विशेष रूप से द्रुत विलम्बित मालिनी मन्दाक्रान्ता बसन्ततिलका वशस्थ और शिखरणी आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। छन्द विधान की दृष्टि से हरिऔधजी की सबसे बडी सफलता यह है कि उन्होने वर्णिक वृत्तो की दुरूहता को उपयुक्त प्रसगो के अनुरूप प्रयुक्त करके सुगम बनाया है। सस्कृत वृत्तो म एक सफल महाकाव्य की रचना हरिऔधजी ने ही की है अन्य कोई हिन्दी का कवि इस दिशा म बढने का साहस हो नही कर सका। छन्दो का प्रथम और द्वितीय सर्गों के अतिरिक्त सर्गान्त म छन्द परिवतन भी हुआ है जो प्राचीन काव्यशास्त्रीय लक्षणो के अनुरूप है।

निष्कर्ष रूप म प्रियप्रवास का काव्य शिल्प महाकाव्य के अनुरूप है। वणन-कौशल प्रकृति चित्रण रस परिपाक भाषा शैली अलकार विधान छन्द योजना आदि सभी दृष्टियो से प्रियप्रवास का शिल्प समुन्नत है।

जीवन दशन

१ महत उद्देश्य और सजन प्रेरणा

महाकाव्य के स्थायी तत्वो म सवप्रमुख स्थान महान उद्देश्य और महती

१५ प्रियप्रवास चतुर्थ सग पृ० ४४

प्ररणा का है। [141] आलकारिको न महाकाव्य का उद्देश्य चतुवग की प्राप्ति कहा है। किन्तु धम अथ काम मोक्ष आदि की प्राप्ति ही आज महत्त्वपूर्ण नही है। प्रत्येक महाकाव्य की रचना के मूल म कोई-न-कोई महत् प्रेरणा कायरत रहती है जो सम्पूर्ण महाकाव्य के कलेवर म प्राण शक्ति के समान आदि स अन्त तक परिव्याप्त रहती है। प्रियप्रवास की रचना विश्वबन्धुत्व का भावना और लोक-सेवा के आदश की स्थापना का लक्ष्यगत करके हुई है। स्वय काव्य की भूमिका म प्रियप्रवास की रचना के सम्बन्ध म विभिन्न उद्देश्यो का उल्लेख किया गया है। सवप्रथम इस महाकाव्य की रचना खड़ी बोली म महाकाव्य लेखन की अभावपूर्ति के रूप म हुई। जैसा कि कवि न स्वय कहा है— खडी बोली म छोटे छोटे कई ग्रन्थ अब तक लिपिबद्ध हुए हैं परन्तु उनम म अधिकाश सौ दो सौ पद्यो म ही समाप्त हैं। इसलिए खडी बोलचाल म मुझको एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता दीख पडी जो महाकाव्य हो अतएव मैं इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कुछ साहस के साथ अग्रसर हुआ और अनवरत परिश्रम करके इस प्रियप्रवास नामक ग्रन्थ की रचना की। [142] इसके अतिरिक्त मातृ भाषा हिन्दी की सेवा के लिए भी कवि ने इस काव्य का प्रणयन किया। [143] प्रियप्रवास की रचना का एक उद्देश्य यह भी था कि हिन्दी के कवि और लेखक मातृ भाषा हिन्दी को महाकाव्यो की रचना म सम्पन्न करें। हरिऔधजी न स्वय यह स्पष्ट किया है कि— महाकाव्य का आभासस्वरूप यह ग्रन्थ १७ सर्गों म इस उद्देश्य स लिखा गया है कि इसको देखकर हिन्दी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ सुकवियो और सुलेखको का ध्यान इस त्रुटि के निवारण करने की ओर आकर्षित हो। [144] प्रियप्रवास की रचना के द्वारा हरिऔधजी न इस तथ्य का भी स्पष्टीकरण किया है कि संस्कृतमयी खडी बोली ही राष्ट्र भाषा बनने के योग्य है। उन्होंने काव्य की भूमिका म सतर्क प्रमाणित किया है कि संस्कृतगर्भित भाषा भारतवर्ष के अहिन्दी भाषी प्रान्तो के लिए सहज सुगम है क्योंकि भारतवर्ष भर म संस्कृत शब्द आदृत है। बगला मरहठी गुजराती वरन् तमिल और पजाबी तक म संस्कृत शब्दो

[141] डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० २८४
[142] प्रियप्रवास भूमिका काव्य भाषा पृ० २
[143] वही, भूमिका विचार सूत्र पृ० १
[144] वही, पृ० ४

का बाहुल्य है।[१४४] हरिऔधजी के इस कथन से स्पष्ट है कि वे प्रियप्रवास जैसे ग्रन्थ की रचना द्वारा खड़ी बोली को राष्ट्र भाषा के गौरव से सम्मानित करना चाहते थे। प्रियप्रवास के कवि की इच्छा यह भी थी कि संस्कृत वृत्तों में खड़ी बोली के माध्यम से काव्य की रचना की जाय।[१४६] इन सब कारणों के अतिरिक्त प्रियप्रवास की रचना पौराणिक कथाओं की बौद्धिक व्याख्या के लिए भी हुई। पुराणों में वर्णित जिन कथाओं और अवतारों को लोग कपोल कल्पित कहकर त्याज्य मानते थे उन्हें कवि ने तर्कसम्मत एवं बुद्धि ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करके तथा श्रीकृष्ण को महापुरुष के रूप में अंकित करके पौराणिकता की रक्षा की है।[१४७] उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'प्रियप्रवास' की रचना खड़ी बोली के गौरव की प्रतिष्ठा, राष्ट्र भाषा प्रेम पौराणिकता के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण और कृष्ण के महत्व को महापुरुष के रूप में अंकित करने की दृष्टि से हुई है।

प्रियप्रवास की रचना के जिन कारणों का ऊपर उल्लेख किया गया वे स्थूल एवं बाह्य हैं। वस्तुतः महाकाव्य की रचना महान् सांस्कृतिक अनुष्ठान के रूप में होती है। प्रत्येक महाकाव्य किसी महत् उद्देश्य की प्राप्ति अथवा किसी महत्त्वपूर्ण सन्देश के प्रसारण के लिए होता है। प्रियप्रवासकार का मूल उद्देश्य वर्तमान मानव के रिक्त एवं आस्थाहीन हृदय को चरित्र एवं विश्वास का बल प्रदान कर सामाजिक जीवन के मूल्यगत संक्रमण और पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों का लोक-कल्याण परक नीति एवं कर्तव्यनिष्ठा की भावना द्वारा विरोध करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कवि ने एक ओर कृष्ण और राधा के पौराणिक स्वरूप का यथेष्ट रूप में परिमार्जन करके उन्हें लोकोपकारक एवं लोक सेविका के रूप में अंकित किया है तो दूसरी ओर राष्ट्र प्रेम जातीय गौरव लोक मंगल विश्व-कल्याण एवं उत्सर्ग से पूर्ण युग की उन्नत विचार धाराओं एवं जीवन पद्धतियों का निरूपण भी किया है। व्यक्ति के स्वार्थों को समाज के लिए बलिदान कर देने की भावना विश्वबन्धुत्व के महान आदर्श एवं स्वजातीय गौरव की जिन भावनाओं से अनुप्रेरित होकर प्रियप्रवास का सृजन हुआ है वे निश्चय ही काव्य के महत् उद्देश्य एवं यथार्थ सृजन प्रेरणा की द्योतक हैं।

---

१४४ प्रियप्रवास भूमिका भाषा शैली पृ० ६

१४६ वही पृ० ५

१४७ वही भूमिका ग्रन्थ का विषय पृष्ठ २९ ३०

२ सन्देश

प्रियप्रवास मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा और युगीन जीवनादर्शों की स्थापना के आग्रहों को पूर्ण करने के प्रयास में लिखा गया है। प्रियप्रवास के कवि ने बौद्धिकता की अति से आक्रान्त स्वार्थी विपयग्रस्त अनास्थावान एवं स्वच्छन्द मानव समाज को पर हित परोपकार आस्था संयम कर्तव्यनिष्ठा एवं स्वदेश प्रेम का सन्देश दिया है। काव्य में स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को भोगों की अपेक्षा त्याग को व्यक्तिगत हित की अपेक्षा जातीय एवं राष्ट्रीय हितों को श्रेयस्कर बनाया गया है। कृष्ण और राधा की चरित्र-सृष्टि के माध्यम से आत्म प्रेमी महत्त्व लोक सेवा एवं कर्तव्यपरायण व्यक्तियों की महानता का प्रतिपादन किया गया है। प्रियप्रवास के सन्देश को प्रमाण्य काव्य की नायिका राधा के मुख से कवि ने षोडश सर्ग की निम्न पंक्तियों में कराया है

> "हो जाने से हृदयतल का भाव ऐसा निराला
> मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये।
> मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा
> मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में॥ [१४८]

राधा के हृदय का यह उदात्त भाव विश्व प्रेम का जनक है। इस भावना के कारण राधा के समान मानव की आन्तरिक वृत्तियाँ इतनी दिव्य और महान् बन जाती हैं कि प्राणी मात्र में उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होने लगता है। इस उदात्त भावना के फलस्वरूप रूपोपासना एवं भक्ति विषयक आदर्शों में परिवर्तन हो जाता है। संसार के प्राणिमात्र को विश्व-आत्मा का रूप समझकर उनका मनपूर्वक सम्मान एवं सेवा ही भक्ति हो जाती है। इस प्रकार प्रियप्रवास के कवि ने समाज-कल्याण जातीय हित, राष्ट्रीय-गौरव एवं विश्व मंगल की भावना का शाश्वत सन्देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया है।

३ सांस्कृतिक निरूपण

महत् उद्देश्य शाश्वत सन्देश एवं युगवर्ती प्रेरणा से अनुप्राणित होने के कारण प्रियप्रवास की रचना का सांस्कृतिक महत्त्व भी कम नहीं है। जिन व्यापक मान्यताओं, युगीन जीवनादर्शों चिरन्तन मानव मूल्यों पौराणिक आस्थाओं और आध्यात्मिक निष्ठाओं को लेकर प्रियप्रवास की रचना हुई है

---

[१४८] प्रियप्रवास, षोडश सर्ग पृ० २५४

नन्द-नृप के घर आ रही था।[१६४] इन वर्णनों में भारतीय संस्कृति का उत्सव पूर्ण एवं उल्लासमय रूप बड़ी सजीवता से वर्णित किया गया है।

पारलौकिक दृष्टि से सत्य और अहिंसा की स्वीकृति की गयी है। प्रियप्रवास के कृष्ण हिंसा को निन्दनीय मानते हैं। वे मनुष्यता वध एवं हिंसाविरोध के वध को भी उचित नहीं मानते।[१६६] किन्तु उनकी यह भी धारणा है कि

समाज उत्पीड़क धर्म विप्लवी। स्व जाति का शत्रु दुरन्त पातकी।
मनुष्य द्रोही भव प्राणि पुञ्ज का। न है क्षमा योग्य वरंच वध्य है॥
क्षमा नहीं है खल के लिए भली। समाज उत्सादक दण्ड योग्य है।
कु कर्मकारी नर का उबारना। सुकर्मियों को करता विपन्न है॥[१६७]

प्रियप्रवास के कृष्ण सत्य और नीति के सर्वत्र समर्थक रहे हैं। वे अनीतिपूर्ण कार्य से खिन्न रहते थे और छोटे बड़ों का सच्चे सदाचरण की ही शिक्षा देते थे।[१६८] अपरिग्रह और त्याग की महिमा का तो हरिऔधजी ने काव्य में सर्वत्र ही आख्यान किया है। राधा का जीवन तो अपरिग्रह का आदर्श ही है। इसके अतिरिक्त प्राचीन सांस्कृतिक विश्वासों यथा भाग्यवाद[१६९] और शकुन[१७०] आदि का भी यथास्थान उल्लेख हुआ है।

भारतीय संस्कृति में परिवार और समाज को विशेष महत्त्व दिया गया है क्योंकि सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षण यही संस्थाएं अनादि काल से करती रही है। प्रियप्रवास में व्रजधराधिप नन्द का परिवार छोटा होते हुए भी आदर्श है। नन्द-परिवार के सदस्य हैं—माता यशोदा और पुत्र कृष्ण। कवि ने माता पिता और पुत्र के स्नेह-सौजन्यपूर्ण सम्बन्धों की सुन्दर व्याख्या की है। माता पिता का पुत्र के प्रति स्नेह और कृष्ण की माता पिता के प्रति पूज्य भावना का सुन्दर रूप चित्रित है। व्रजमण्डल के समाज का स्वरूप भी मधुर सम्बन्धों और पारस्परिक सम्मान एकता एवं समानता की भावना पर आधारित दिखाया गया है। व्रज समाज के कर्णधार कृष्ण हैं। गायें चराकर लौटते कृष्ण को देखकर

१६४ प्रियप्रवास, अष्टम सर्ग पृ० ६ १६
१६६ वही नियादश सर्ग पृ० ७८ ७६
१६७ वही १३/८० ८१
१६८ वही १२/८४ ८५
१६९ वही १ /२१
१७० वही सर्ग ६ छन्द ८

उछलते शिशु थे अति हर्ष से युवक थे रस की निधि लूटते।
जरठ को फल लोचन का मिला निरख के सुषमा सुख मूल की॥
रथ विलोकि भी व्रज बालिका तरणियाँ सब थी तृण तोड़ती।
बलि गयी बहु बार वयोवती छवि विलोक व्रजेन्द्र कुमार की॥ [101]

इस प्रकार हरिऔधजी ने भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप को अंकित करने के लिए प्रियप्रवास में सभी प्रसंगों एवं प्रभावना को सफलता से जुटाया है।

नवीन संस्कृति (मानवतावादी सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना)

प्रियप्रवास की रचना उस समय हुई जब भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन की प्रभुसत्ता थी। अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क एवं प्रभाव से भारतीय सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में पुनरुत्थानवादी विचारधारा का सूत्रपात हो चुका था। प्राचीन विश्वासों, आस्थाओं एवं परम्पराओं को नयी दृष्टि से देखने का प्रयास प्रारम्भ हो गया था। उस समय भारतवर्ष में आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसफीकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन जैसी अनेक सांस्कृतिक संस्थाएं अनेक सुधारवादी आन्दोलनों एवं विचार परम्पराओं को जन्म दे चुकी थी। हरिऔधजी का इन संस्थाओं से एक सजग साहित्यकार एव बुद्धिजीवी होने के कारण प्रत्यक्ष परोक्ष सम्बन्ध अवश्य था। निस्सन्देह तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक क्रान्तियों ने भी अप्रत्यक्ष रूप से उन पर प्रभाव डाला। हरिऔधजी पर उस समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ा। [102] अस्तु 'प्रियप्रवास' में उस नवीन संस्कृति की योजना भी हुई है जिसका निर्माण पाश्चात्य विचारधाराओं से प्रभावित होकर हुआ है। इसे मानवतावादी संस्कृति कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि नवीन संस्कृति के निर्माता उद्देश्यों एवं प्रमुख विचारधाराओं का सम्बन्ध किसी कल्पित अज्ञात सत्ता या शक्ति से न होकर मानव से है।

जिन नवीन सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना प्रियप्रवास में हुई है वे हैं—समता, लोक-सेवा, लोक हित, ब्रह्म से अधिक मानव महत्त्व की स्वीकृति, नारी की महत्ता, राष्ट्र हित की भावना और राष्ट्रीयता आदि। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नवीन मानवतावादी संस्कृति के जिन आधारभूत सिद्धान्तों एवं आदर्शों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनका भारतीय संस्कृति में कभी

[101] प्रियप्रवास, प्रथम सर्ग २८–२९

[102] डॉ० मुकुन्ददेव शर्मा हरिऔध और उनका साहित्य पृ० २२१

यही तात्त्विक भेद अवश्य है किन्तु विरोध कहीं भी नहीं है। उदाहरण के लिए— भारतीय संस्कृति में राम को बारह कलाओं का और कृष्ण को सोलह कलाओं का पूर्ण अवतार कहा जाता है।[103] कृष्ण को विष्णु का अवतार प्राचीन भारतीय एवं हिन्दू संस्कृति के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। किन्तु नवीन सांस्कृतिक आदर्शों के अनुसार कृष्ण पुरुष हैं व उन्हें महापुरुष अवश्य कहा जा सकता है। इस प्रकार के नवीन सांस्कृतिक आदर्शों का प्रभाव हरिऔधजी पर पड़ा भी है। उन्होंने स्वीकार किया है कि— "जब से मेरी दृष्टि व्यापक हुई मैं सोचने विचारने और शास्त्र के सिद्धान्तों का मनन करने लगा। उसी के फलस्वरूप मेरे पश्चाद्वर्ती और आधुनिक विचार हैं। भगवान कृष्णचन्द्र में मुझको श्रद्धा है किन्तु वह श्रद्धा अब सर्वज्ञता सर्वदर्शिता और अकर्मण्यतादि दोष दूषिता नहीं है। मानवता का चरम विकास ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है—यही अवतारवाद है। अवतारों की सम्बल मानवता का आदर्श ही था अतएव उसको उसी रूप में देखने की आवश्यकता है जो उसका मुख्य रूप है और यही कारण है कि आजकल का मेरा परिवर्तित मत यही है।"[104] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि अवतारवाद के सम्बन्ध में कवि ने नवीन सांस्कृतिक किंवा मानवतावादी दृष्टिकोण को ही अपनाया है। प्रियप्रवास में नवीन सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना कवि के व्यापक एवं प्रगतिशील सांस्कृतिक दृष्टिकोण की परिचायक है।

प्रियप्रवास में भाग्यवाद के स्वर के साथ साथ कर्मवाद अर्थात् कर्तव्य परायणता का कथन भी विस्मृत नहीं किया गया है। अपने मित्र उद्धव को ब्रज भेजते हुए कृष्ण यही कहते हैं कि मैं कार्य ग्रस्त हूँ

> मेरे जीवन का प्रवाह पहले अत्यन्त उन्मुक्त था।
> पाता हूँ अब मैं नितान्त उसको आबद्ध कर्तव्य में॥'[105]

राधा ने भी उद्धव से कृष्ण के प्रति सन्देश भेजते हुए यही कहा है कि

> प्यारे जीव जगहित कर गेह चाहे न आवें।[106]

---

[103] डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० २६२

[104] गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश महाकवि हरिऔध पृ० १७३ ७४

[105] प्रियप्रवास नवम सर्ग पृ ३

[106] वही षोडश सर्ग पृ० ६८

इस प्रकार लोक हित एवं लोक-सेवा की भावनाओं को काव्य में सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। कृष्ण ने भी स्पष्ट कहा है कि

जी से प्यारा जगत हित औ लोक सेवा जिसे है।
प्यारी सच्चा अवनितल में आत्मत्यागी वही है।[१७७]

प्रियप्रवास में नारी की सत्ता को भी स्वीकार किया गया है। यशोदा और राधा के चरित्र माध्यम से क्रमशः मातृत्व और पत्नीत्व रूप की व्यंजना हुई है। काव्य के अंतिम सर्ग में नारी के समाज-सेविका, विश्व प्रेमिका, दया मूर्ति, मंगलकारिणी आदि अनेक रूपों का चित्रण किया गया है। राधा जैसी सामान्य नारी को हरिऔधजी ने नवी गुणों से मण्डित करके उसका चरित्रांकन किया है। प्रियप्रवास की राधा परम्परा से भिन्न एक प्रगतिशील विचारों की नारी के रूप में चित्रित हुई है।

नवधा भक्ति के स्वरूप निरूपण में जाति उत्पीड़ितों की सहायता, पतितों के उन्नयन, गिरती जातियों के उत्थान, कंगालों, विवश विधवाओं और अनाथाश्रितों की त्राण देने की जो बात कही गयी है वह भी नवीन दृष्टिकोण का परिचायक है। आत्म निवेदन भक्ति प्रकार का विवेचन करते हुए राधा ने कहा है कि

विपद सिन्धु पड़े नर वृन्द के।
दुख निवारण औ हित के लिए।
अरपना अपने तन प्राण को।
प्रथित आत्म निवेदन भक्ति है॥[१७८]

इस प्रकार नवीन सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का काव्य में पूर्ण आग्रह दिखायी देता है। प्रियप्रवास की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्राचीन और अर्वाचीन विचारधाराओं एवं मान्यताओं से पुष्ट है। उसमें भारतीय संस्कृति के पुरातन और नवीन दोनों रूपों का सुन्दर चित्रण हुआ है।

दार्शनिक पृष्ठभूमि

प्रियप्रवास की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण मानवतावादी जीवन दर्शन की मान्यताओं से प्रेरित होकर हुआ है। हरिऔधजी ने किसी विशिष्ट दार्शनिक मतवाद या दर्शन प्रणाली का काव्य में साग्रह प्रतिपादन नहीं किया है। यद्यपि प्रियप्रवास में उद्धव एवं गोपिकाओं के संवाद में सूरदास, नन्ददास

---

१७७ प्रियप्रवास, षोडश सर्ग पृ० ४२

१७८ वही, षोडश सर्ग, पृ० २५७

आदि मे भ्रमरगीत प्रसगो की भाँति विशिष्ट दार्शनिक मान्यताओ की स्थापना का पर्याप्त अवकाश था किन्तु हरिऔधजी ने ऐसा नही किया है। उन्होने भारतीय दर्शन की उन्ही विचारधाराओ को काव्य मे प्रतिपाद्य रूप मे स्वीकार किया है जो मानव जीवन के मगल विधान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

ब्रह्म की परिकल्पना और कृष्ण

वेदान्त दर्शन मे ब्रह्म एक है। वह निर्विशेष तत्व के रूप मे सर्वव्यापी और सचेतन है। ब्रह्म की सिद्धि के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नही क्योकि वह स्वयसिद्ध एव स्वप्रकाशमय है। चैतन्य को ही आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। समस्त अज्ञानो से अविच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है।[१७६] हरिऔधजी भी भारतीय दर्शन की अद्वैतवादी परम्परा से प्रभावित थे। इसलिए उन्होने ब्रह्म को अत्यन्त व्यापक रूप मे ग्रहण किया। उन्होने एक स्थान पर लिखा है कि— ईश्वर एकदेशीय नही है वह सर्वव्यापक और अपरिच्छिन्न है उसकी सत्ता सर्वत्र वर्तमान है प्राणी मात्र मे उसका विकास है— सर्व खल्विद ब्रह्म नेह ना नास्ति किंचन।[१८०] प्रियप्रवास मे उनकी इसी धारणा का निरूपण हुआ है। षोडश सर्ग मे राधा उद्धव से कहती है कि शास्त्रो मे प्रभु के असख्य शीश और लोचनो की बात कही गयी है। यह भी कहा गया है कि ब्रह्म मुख नेत्र नासिका आदि इन्द्रियो से रहित होकर भी छूता खाता श्रवण करता देखता और सूघता है। तात्त्विक दृष्टि से इसका रहस्य यह है कि ससार के सारे प्राणी इसी ब्रह्म की मूर्तियाँ हैं। इसलिए अखिल जगत के असख्य प्राणियो के नेत्र आदि उसी विश्व आत्मा की इन्द्रियाँ हैं। सम्पूर्ण ससार के इन्द्रियजन्य कार्य ब्रह्म द्वारा ही परिचालित होते है। तारागण सूर्य अग्नि विद्युत नानारत्नो और विविध मणियो मे उसी ब्रह्म की विभा प्रकाशमान है। पृथ्वी पवन जल आकाश पादपो और खगो मे उसी ब्रह्म की प्रभुता व्याप्त है।[१८१] निष्कर्ष रूप मे राधा ने यही कहा है कि ब्रह्म विश्वरूप है

वे वार्ते है प्रकट करती ब्रह्म है विश्वरूपी।
व्यापी है विश्व प्रियतम मे विश्व मे प्राण प्यारा।[१८२]

इस प्रकार हरिऔधजी ने ब्रह्म की व्यापक से व्यापक परिकल्पना की है।

---

[१७६] डा उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० २५६

[१८०] गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश महाकवि हरिऔध पृ १७३

[१८१] प्रियप्रवास षोडश सर्ग छन्द १०७ ११

[१८२] वही पृ २५५

प्रियप्रवास' म कृष्ण को ब्रह्म नही माना गया है। कवि न उन्हे मानव क रूप म ही चित्रित किया है। पुराणो म कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। किन्तु प्रियप्रवास म उन्हे महापुरुष अथवा आदर्श मानव के रूप म ही अंकित किया गया है। श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश के शब्दो म—
प्रियप्रवास म हरिऔधजी ने श्रीकृष्ण की ईश्वरता को तो अस्वीकार किया है—कम-स कम परब्रह्म रूप म तो उन्हे ग्रहण नही किया।[१६३] इस प्रकार कवि न ब्रह्म क सम्बन्ध म एक व्यापक और मानव कल्याणकारी आदर्श स्थापित किया है।

जीव

शरीर के बन्धन स युक्त आत्मा को भारतीय दर्शनो म जीव की संज्ञा दी गयी है। यह जीवात्मा अपन कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न शरीर धारण करता है। मृत्यु क पश्चात स्थूल शरीर क समाप्त हो जान पर भी सूक्ष्म शरीर से अपन कर्मों का फल भोगता है। जीवात्मा की बन्धन मुक्ति के लिए मोक्ष नाम की स्थिति का उल्लेख किया गया है। जीव को मोक्ष की स्थिति तत्त्वज्ञान का बोध हो जान पर प्राप्त होती है। वेदान्त दर्शन के अनुसार जीव और ब्रह्म म कोई भेद नहीं है। ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जान पर जीव और ब्रह्म म कोई भेद नही रहता। जीवात्मा और परमात्मा म भेद का कारण सांसारिकता का बन्धन है। अपने पाप कर्मों क कारण ही जीव बन्धनो म जकड़ा रहता है। प्रियप्रवास म हरिऔधजी न पापात्मा और परमात्मा दोनो जीवो का निरूपण किया है। कंस व्योमासुर अघासुर केशि पूतना आदि एस ही जीव हैं जो अपन पाप कर्मों द्वारा समाज को पीड़ित करत रहते हैं और अंतत दुर्गति को प्राप्त होत हैं। इसके विपरीत कृष्ण और राधा पुण्य आत्मा है जो अपन सत् कर्मों द्वारा समाज जाति और विश्व का कल्याण करत हुए अनन्त सुख और शान्ति को प्राप्त करत हैं।

जगत

शंकराचार्य न ब्रह्म और जीव की एकता की स्थापना करत हुए भी जगत को मायामय कहा है। वे ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या सिद्धान्त क समर्थक थ। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से जगत की सत्ता को वे भी अस्वीकार नहीं कर सके थ। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि शंकर न जगत की सत्ता को व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मानकर दुःख स बचन क लिए अनेक विधान

---

[१६३] गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश महाकवि हरिऔध पृ० १३४

प्रचलित किया ।[१८४] हरिऔधजी ने विश्व को विश्वात्मा का ही रूप माना है। उन्होंने संसार को परिवर्तनशील तो कहा है किन्तु उसके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया है । वास्तव में प्रियप्रवासकार के जगत विषयक विचारों का सार यह है कि वे संसार को वेदान्तियों की भाँति नश्वर, मिथ्या, क्षणभंगुर या असत्य नहीं मानते वरन् अच्छे कार्यों द्वारा संसार में जीवन को सुखमय बनाने की बात कहते है ।

मोक्ष

भारतीय दर्शन में मोक्ष का अर्थ जीवात्मा का शारीरिक बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाना अर्थात् आत्म-साक्षात्कार करना ही माना है । मोक्ष के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा सांसारिक मोह है । यह मोह इतना प्रबल है कि मनुष्य वासनाओं में डूबा हुआ अपने वास्तविक स्वरूप को कभी भी जान नहीं पाता है ।[१८५] मोह से निवृत्ति पाने के लिए हरिऔधजी ने आत्म त्याग की बात कही है । आत्म-त्याग की भावना का विकास तभी सम्भव है जब व्यक्ति सम्पूर्ण विश्व में विश्वात्मा का दर्शन करता हुआ सर्वभूतहित के कार्यों में निरत रहे । वास्तव में हरिऔधजी ने जीवन का चरम उद्देश्य मोक्ष नहीं वरन् लोक हित माना है । अन्त में मोक्ष प्राप्ति का अर्थ ब्रह्म का साक्षात्कार ही तो है । प्रियप्रवासकार ने उस ब्रह्म दर्शन के लिए लोक हित को ही सर्वोत्तम मार्ग माना है । प्रियप्रवास में लोक हित की भावना को जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धि के रूप में स्वीकृत किया गया है ।

भक्ति साधना

प्रियप्रवास में निष्काम भक्ति को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है

शास्त्रों में है लिखित प्रभु की भक्ति निष्काम जो है

सो न्यारी है मनुज तन की सर्व संसिद्धियों से ।[१८६]

निष्काम भक्ति द्वारा ही मनुष्य जगत के जीवन और प्राणियों के वास्तविक स्वरूप को पहचान सकता है । भक्ति ही माता पिता, गुरु एवं प्रियजनों के कल्याण-साधन की प्रेरणा जाग्रत करती है ।[१८७]

---

१८४ डा विश्वम्भरनाथ उपाध्याय हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० ११३

१८५ प्रियप्रवास षोडश सर्ग छन्द ६३

१८६ वही छन्द ११३

१८७ वही छन्द ११४

प्रियप्रवासकार ने भक्ति का परम्परित स्वरूप प्रतिपादित न करके उसकी युगानुरूप व्याख्या प्रस्तुत की है। शास्त्रों में श्रवण, कीर्तन, वन्दन, दासता, स्मरण, आत्म-निवेदन, अर्चना, सख्य भाव एवं पदसेवन भक्ति के नव प्रकार कहे गये हैं। किन्तु प्रियप्रवासकार ने किसी कल्पित ईश्वर की मूर्ति बनाकर उसकी वन्दना, अर्चना आदि को भक्ति नहीं माना है। उनके अनुसार सम्पूर्ण जगत के प्राणिमात्र में विश्वात्मा व्याप्त है। ऐसी स्थिति में उसी की यत्न-सम्मानपूर्वक सेवा-सुश्रूषा करना सर्वोत्तम भक्ति है।[188] उदाहरण के लिए, भक्ति में अर्चना रूप का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि

सत्रस्तों को शरण मधुरा शांति संतापितों को
निर्बोधों को सुमति विविधा औषधी पीड़ितों को
पानी देना तृषित जन को अन्न भूखे नरों को
सर्वात्मा भक्ति अति रुचिरा अर्चना संज्ञका है।[189]

नवधा भक्ति की नवीन कल्पना प्रियप्रवास की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। षोडश सर्ग में कवि ने भक्ति-दर्शन का उदार, व्यावहारिक एवं युगानुरूप निरूपण किया है जो मानव-जीवन के मंगल-विधान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

विश्वबन्धुत्व की भावना

विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास मानवतावादी जीवन-दर्शन की विशेषता है। विश्व के महान् से महान् दार्शनिकों एवं दर्शनशास्त्रों का अन्तिम उद्देश्य मानव का कल्याण और जगत हित ही रहा है। प्रियप्रवास की दार्शनिक विचारधाराओं की अन्तिम परिणति विश्वबन्धुत्व की भावना की स्थापित करने में ही हुई है। प्रियप्रवासकार ने कृष्ण और राधा के चरित्रों को इसी भावना के अनुरूप विकसित किया है। ये दोनों पात्र कुटुम्ब, जाति, समाज और वर्ग की संकुचित सीमाओं से निकलकर सर्वभूत हित एवं लोक कल्याण में अपना जीवन को समर्पित कर देते हैं। राधा की भावनाओं का इतना उदात्तीकरण हुआ है कि वह अपने स्वार्थों और चिन्ता को भूलकर यही कामना करती है कि— प्यारे जीवें जग हित करें गेह चाहे न आवें।

विश्वबन्धुत्व भाव की प्राप्ति के लिए कवि ने निष्काम कर्म, सात्त्विक जीवन, परमार्थ एवं आत्मत्याग को प्रथम साधना के रूप में निरूपित किया

---

[188] प्रियप्रवास, षोडश सर्ग छन्द ११७

[189] वही, छन्द १४

है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श भारतीय जीवन दर्शन का प्राचीनतम उपपत्ति रही है। प्रियप्रवासकार ने इस आदर्श को व्यावहारिक रूप से चरितार्थ किया है।

इस प्रकार प्रियप्रवास की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण नवीन एवं प्राचीन भारतीय एवं विश्वजनीन दार्शनिक मान्यताओं द्वारा हुआ है। प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति एवं मानवतावादी जीवन दर्शन की वह महत् भूमिका प्रतिष्ठित की गयी है जिस पर आसीन होकर मानव जाति कल्याण एवं अभ्युदय के पथ पर अग्रसर हो सकती है। निष्कर्ष रूप में प्रियप्रवास का महत् उद्देश्य, महत्त्वपूर्ण जीवन संदेश, सांस्कृतिक उन्नयन एवं लोकहित की भावना से सम्पृक्त जीवन दर्शन निश्चय ही उसे महाकाव्य के साथ साथ महान् काव्य भी बनाते हैं।

साकेत

साकेत

कथासार

साकेत महाकाव्य की रचना १२ सर्गों में हुई है। साकेत के प्रथम सर्ग का समारम्भ सरस्वती वन्दना से होता है। साकेत नगरी (अयोध्या) का वर्णन करता हुआ कवि लक्ष्मण उर्मिला के प्रमालाप और वाग्विनोद की सुन्दर झाँकी देता है। यहीं दोनों के वार्तालाप से राम के राज्याभिषेक की सूचना मिलती है जिसकी पुरवासी बड़ी लगन एवं उत्साह से तैयारी कर रहे हैं। द्वितीय सर्ग में मन्थरा नाम की दासी कैकेयी के पास जाकर महाराजा दशरथ के विपरीत कुमन्त्रणा देती है कि भरत की अनुपस्थिति में राम का अभिषेक हो रहा है। रानी के मन में यह बात पक्की हो जाती है कि—भरत से सुन पर भी सन्देश बुलाया तक न उसे जा गए। कैकेयी कुपित हो राजा दशरथ से पूर्वसंचित दो वरदान माँग लेती है जिसमें भरत को राज्य तथा राम को चौदह वर्षों का वनवास। सत्यप्रतिज्ञ दशरथ पुत्र विरह की कल्पना में मूर्च्छित हो जाते हैं। तृतीय सर्ग में राम पितृ-वन्दना के लिए प्रातः जब आते हैं तो दशरथजी की दशा को देखकर माता कैकेयी से सब वृत्तान्त सुनकर वन गमन को उद्यत हो जाते हैं। लक्ष्मण आवेश में आकर कैकेयी के प्रति अपशब्द तक कह जाते हैं। राम उन्हें वर्जित करते हैं। चतुर्थ सर्ग में राम माता कौशल्या से वन गमन की आज्ञा लेते हैं। सुमित्रा लक्ष्मण का भी राम के साथ वन जाने में गौरवान्वित मानती है। सीता भी बहुत समझाने-बुझाने के उपरान्त राम के साथ ही वन जाने में अपना कर्तव्य-कर्म और पतिव्रत धर्म मानती है किन्तु उर्मिला लक्ष्मण के मार्ग की बाधा न बन विरह वेदना और शोक भार को पा जाती है। उसकी स्थिति बड़ी करुण और दारुण है। पंचम सर्ग में गुरु वशिष्ट एवं प्रजाजनों से विदा ले राम लक्ष्मण और जनकनन्दिनी सीता वन-गमन के लिए प्रस्थान करते हैं। पहली रात्रि वे तमसा नदी के तट पर बिताते हैं। फिर शृंगवेरपुर में गुहराज से मिलकर गंगा तट पहुँचते हैं। यहाँ वे सुमन्त्र को सन्देश दे विदा करते हैं। गंगा पार कर भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचते हैं। फिर प्रयाग में भारद्वाज से विदा हो चित्रकूट आते हैं जहाँ लक्ष्मण निवास

के लिए पर्णकुटी बनाते हैं । षष्ठ सर्ग में राम माता के विरह में राजा दशरथ कौशल्या सुमित्रा उर्मिला आदि शोक सिन्धु में डूबे हुए हैं । उसी समय सुमन्त्र खाली रथ ले आते हैं । राम के न लौटने पर महाराज दशरथ प्राण त्याग देते हैं । भीषण हाहाकार मच जाता है । महामुनि वशिष्ठ सभी को सान्त्वना देकर भरत को ननिहाल से बुलाने के लिए दूतों को भेजते हैं । सप्तम सर्ग में भरत शत्रुघ्न ननिहाल से अयोध्या आते हैं । पितृ निधन से वे व्याकुल हो जाते हैं फिर राम सीता लक्ष्मण का वन गमन सुन हतचेतन हो जाते हैं । कैकयी से स्वयं राज्यसिंहासन का दान सुनकर उसे ही कोसते हैं । गुरु की आज्ञा से पिता का दाह संस्कार कर राम को वन से लौटाने के लिए साकेत के जन समूह सहित चित्रकूट प्रस्थान करते हैं । गुरु आदि के अत्यधिक कहने पर भी वे अयोध्या का राज्य स्वीकार नहीं करते । अष्टम सर्ग में सीता राम के सानन्द सामान्य चित्रकूट निवास का वर्णन है । सीता के लिए पर्णकुटी राजभवन है । भरत साकेतवासियों सहित चित्रकूट पहुँचते हैं । लक्ष्मण दूरस्थ मातादि को देखकर उनकी कुटिल मति पर क्रोधित होते हैं । राम के समझाने पर चुप रहते हैं । अन्त में भरत के भ्रातृ प्रेम को देख स्तंभित और संकुचित हो जाते हैं । यहीं सबका मिलन होता है । कैकयी अपने पूर्व कृत्य पर पश्चात्ताप कर क्षमायाचना करती है । भरत सहित सभी राम से अयोध्या लौटने का अनुनय विनय और आग्रह करते हैं किन्तु राम सभी को सस्नेह समझा बुझाकर दृढ प्रतिज्ञ रहते हैं । भरत राम की चरण पादुकाएं लेकर सेवक रूप में राज्य की देखरेख के लिए राम की आज्ञा शिरोधार्य करते हैं । यहीं सीता के चातुर्य से पर्णकुटी में लक्ष्मण-उर्मिला की क्षणिक एकान्त भेंट भी हो जाती है । नवम सर्ग में उर्मिला की विरह वेदना की भावपूर्ण और तलस्पर्शी व्यंजना है । विरह की सभी दशाओं का मार्मिक वर्णन है । दशम सर्ग में उर्मिला सरयू को अपनी सखी मानकर स्मृति रूप में बीती हुई घटनाओं—स्वजन्म रघुकुल वैभव सीता स्वयंवर आदि—का वर्णन करती है । एकादश सर्ग में प्रथम तो भरत और माण्डवी के तपस्वी जीवन का चित्र है तत्पश्चात लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनुमानजी जो संजीवनी बूटी लेने जा रहे थे भरत के बाण से गिर पड़ते हैं । सचेत होकर वे भरतजी को दण्डकारण्य में मारीच आदि के वध सीताहरण राम सुग्रीव मैत्री लंकादहन विभीषण भेंट कुम्भकरण वध लक्ष्मण मेघनाथ युद्ध और लक्ष्मण को शक्ति लगने तक की समस्त घटनाओं का विवरण देते हैं । संजीवनी भरतजी से ही लेकर तदुपरान्त चले जाते हैं । द्वादश सर्ग में सीताहरण एवं लक्ष्मण शक्ति का

समाचार सुन साकेतवासी रावण के विरुद्ध युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। उर्मिला का नारीत्व भाव जागता है। वह स्वयं युद्धोद्यत हो जाती है। तभी वशिष्ठ मुनि अपने योगबल से तथा दिव्य दृष्टि प्रदान कर लंका के राम रावण युद्ध का दृश्य दिखाते हैं जिसमें राम विजयी होते हैं। तब गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से सब साकेतवासी सरयू स्नान कर लौट आते हैं। फिर वह दिन आता है जब श्री राम सीता लक्ष्मण सुग्रीव विभीषण सहित अयोध्या लौट आते हैं। भरत राम का स्नेह मिलन तथा लक्ष्मण उर्मिला के भाव मिलन के साथ साकेत काव्य की कथावस्तु समाप्त होती है।

कथानक समीक्षा

कथानक आधार

साकेत महाकाव्य का वस्तु विन्यास सुप्रसिद्ध रामकथा के आधार पर हुआ है। कृष्ण की भाँति राम भी भारतीय जन-जीवन के आराध्य और उपास्यदेव रहे हैं। राम का चरित्र साहित्यकारों की सृजन प्रेरणा के लिए अजस्र स्रोत रहा है। रामकथा पर संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी भाषा में विपुल साहित्य सृजन हुआ। विभिन्न धर्म सम्प्रदायों और देशों के साहित्य में रामकथा का स्वरूप प्राप्य है। हिन्दी में रामकाव्य की सुदीर्घ और समृद्ध परम्परा वर्तमान है। साकेत से पूर्व हिन्दी में रामकथा को लेकर तुलसीकृत रामचरित मानस जैसे अमर ग्रन्थ का सृजन हो चुका है। साकेतकार ने भी उसी राम कथा रूपी प्रख्यात वृत्त को अपने महाकाव्य का माध्यम बनाया है। किन्तु कथा चयन में परम्परा विनियोजित होते हुए भी श्री मैथिलीशरण गुप्त ने मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं की हैं जो कवि की कल्पनाशक्ति एवं काव्यकौशल की परिचायक है।

रामकथा के पौराणिक स्रोतों का विकास

रामकथा की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में पाश्चात्य और पौवात्य विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। डा० वेबर ने रामकथा का आदि स्रोत बौद्ध दशरथजातक को माना है जब कि श्री एच० याकोबी एवं ए० ए० मैकडानल ने रामकथा को वेदों से उद्भूत कहा है। ई० हापकिन्स और डॉ० दिनेशचन्द्र सेन आदि विद्वान रामकथा का आधार वैदिक आख्यानों को ही मानते हैं। स्वदेशी विद्वानों में श्री भल्लआनन्द कौसल्यायन का मत है कि रामायण लेखन का आधार जातक कथाएं हैं। श्री आर० जी० भण्डारकर का मत है कि रामायण की रचना पतंजलि के बाद हुई होगी क्योंकि उनके महाभाष्य में राम का नाम नहीं आया है।

की कथा आयी भी है किन्तु साकेतकार की राम के प्रति अटूट निष्ठा और आराध्य भाव के कारण राम-सीता की कथा भी साथ साथ चली है। साकेत का कवि राम का अनन्य उपासक है। इसलिए उसने रामकथा को आराध्यदेव की गाथा के रूप में प्रथमतः स्वीकार किया है[६] और उर्मिला के चित्रण के लिए द्वितीयतः। इसके अतिरिक्त रामभक्त होने के कारण रामकथा में भी कवि की पूज्य भावना बराबर रही है जिसके कारण कवि ने रामकथा में मौलिकता लाने या उर्मिला के चरित्र को उभारने के लिए कहीं भी कथानक को लघु नहीं किया है। उनकी स्वयं की धारणा यह है कि— किसी कथानक में आवश्यकतानुसार फेरफार करने का अधिकार कवियों को है पर आदर्श को विकृत करने का अधिकार किसी को नहीं।[७] कथा के विषय में इस आदर्शोन्मुख दृष्टिकोण के कारण गुप्तजी उर्मिला की कथा को किसी अत्यधिक नवीन रूप में प्रस्तुत न कर सके। दूसरे शब्दों में उर्मिला के कथावृत्त की परिकल्पना रामकथा के परम्परित स्वरूप से बहुत मुक्त न हो सकी। उर्मिला का वृत्त विधान कवि का अपना होते हुए भी ऐसा है उसमें कवि-कल्पना का उन्मुक्त विलास नहीं है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में— ये शास्त्रीय और ऐतिहासिक परम्परा पालन साकेत के लिए हानिकारक ही हो गये। मैथिलीशरणजी को इतिहास पुराण आदि की अपेक्षा इस अवसर पर अपनी कल्पनाशक्ति की ख्याति जगानी थी। पर यहाँ भी उन्होंने लीक नहीं छोड़ी। फलतः उन्हें साकेत में चित्र के दो पहलू (रामवृत्त और लक्ष्मण उर्मिला प्रेमाख्यान) लिखकर महाकाव्य का अंग निर्माण करना पड़ा।[८] साकेत की कथा के दो पहलुओं ने साकेत समालोचकों को भी भ्रम में डाल दिया है। प्रो० त्रिलोचन पाण्डेय तो कहते हैं कि— असल में साकेत रामकथा है ही नहीं। आरम्भ वर्णन उद्देश्य किसी भी दृष्टि से नहीं है। मूल व प्रधान कथा है लक्ष्मण उर्मिला के जीवन की।[९] इस सब विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि

---

६ राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।

—साकेत—(मुख पृष्ठ)

७ माइकेल मधुसूदनदत्त कृत मेघनाद वध (काव्यानुवाद) गुप्तजी द्वारा द्वितीय संस्करण पृ० ७२

८ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी पृ० ५३

९ प्रो० त्रिलोचन पाण्डेय साकेत दर्शन पृ० ७

१ साकेत-सृजन की मूल प्रेरणा उर्मिला का चरित्र निर्देशन होते हुए भी कवि का लक्ष्य आराध्यत्व की गुणगाथा भी रहा है।
२ साकेत की रामकथा और उर्मिला-लक्ष्मण कथा साथ-साथ चलती है। राय का दृष्टि से उर्मिला लक्ष्मण की कथा ही प्रमुख है किन्तु वणन और विधान की दृष्टि से अधिकारिक और प्रासंगिक कहना मुश्किल है।
३ राम के प्रति अनन्य निष्ठा काव्यकला और कल्पना की दृष्टि से उर्मिला की चरित्र यजना म साधक सिद्ध नहीं है।
४ यह उर्मिला की कथा होने पर भी रामकाव्य है।[1]

साकेत की कथा रामायणी और पौराणिक होते हुए भी गुप्तजी द्वारा सवथा नवीन एव मौलिक ढग से प्रस्तुत हुई है। क्योंकि साकेत के प्रबन्ध शिल्प म प्राचीन महाकाव्यो का इतिवृत्तात्मक शैली का अनुसरण नहीं किया गया है।[11] गुप्तजी ने साकेत का समारम्भ वाल्मीकि और तुलसी के काव्यो की भाँति वणनात्मक ढग से नहीं किया है। उन्होने लक्ष्मण उर्मिला प्रमालाप से कथानक प्रारम्भ किया है जो नाटकीय एव नवीन है। कथात्मक संयोजन म भी गुप्तजी ने मौलिक प्रसगोद्भावनाएँ की हैं। वे इस प्रकार हैं

१ लक्ष्मण उर्मिला के प्रेम जीवन की समस्त कथा।
२ कैकयी का चरित्राकन मनोवैज्ञानिक ढग से।
३ नवम सर्ग म उर्मिला का विरह निवेदन।
४ साकेतपुरी को ही समस्त रामकथा का मगम-स्थल रखा है। इसी सन्दभ म हनुमानजी की संजीवनी बूटी की भरतजी के पास से प्राप्त हो जाती है।
५ लक्ष्मण शक्ति और राम रावण युद्ध समाचार सुनकर समस्त साकेत समाज का रणोद्यत होना तथा उर्मिला का वीरत्व।
६ वशिष्ठजी का योग शक्ति के द्वारा अयोध्यावासियो को राम रावण युद्ध का दृश्य दिखाना।

शास्त्रीय विवेचन

साकेत की कथा महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। क्योंकि वह इतिहास पुराण प्रसूत अर्थात् प्रख्यात है। कथानक म कार्यान्विति और प्रभावान्विति होना है। यद्यपि कथा के दो बन्धुओ के कारण साकेत म काय की द्वंद

[1] डॉ० नगेन्द्र साकेत एक अध्ययन

[11] वही पृ० ६

सर्वांगीण साकेत की कथा योजना सफल ही कही जायगी। कवि ने राम कथा को युगीन आवश्यकताओं के अनुसार सांस्कृतिक परिवेश प्रदान किया है। राम-कथा की उपेक्षिता उर्मिला पर काव्य रचना कर हिन्दी प्रबन्धकाव्य परम्परा को भी विकसित किया क्योंकि आगे चलकर राम-कथा के अन्य उपेक्षित पात्रों पर प्रबन्ध रचना हुई जैसे बालकृष्ण शर्मा नवीन कृत उर्मिला बलदेव प्रसाद कृत साकेत संत (भरत) आदि। डा० पाठक के शब्दों में— साकेत का वस्तु शिल्प नया और साहित्यिक क्रान्ति का परिचायक है।[२१]

चरित्र विश्लेषण

प्रियप्रवास की भाँति साकेत भी चरित्र प्रधान काव्य है।[२२] यद्यपि गुप्तजी ने साकेत में कथाचयन-कौशल का परिचय कथानक की मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं प्रस्तुतिकरण एवं घटनावलि के द्वारा दिया है किन्तु साकेत के संक्षिप्त कथानक का विस्तार घटनाओं के घटित रूप में न होकर पात्रों के चरित्र विश्लेषण द्वारा कथित रूप में ही अधिक हुआ है। इसलिए साकेत को घटना प्रधान काव्य न कहकर चरित्र प्रधान काव्य कहना ही अधिक समीचीन है।[२३] वस्तुतः साकेत चरित्र प्रधान कथा सृष्टि है। कथा विकास तो उसका पृष्ठाधार मात्र है।[२४] साकेत की चरित्र सृष्टि का आधार राम-कथा के ही लोकप्रसिद्ध पौराणिक पात्र हैं। साकेतकार के चरित्र चित्रण-कौशल का परिचय इस बात में मिलता है कि उसने देवी और राजवंशीय पात्रों के देवत्व और कौलीन्य को प्रत्याख्यान करके उन्हें मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया है। केवल राम का चरित्र एक सीमा तक इस कथन का अपवाद हो सकता है। राम कवि के आराध्य देव हैं अतः उनके चरित्र को वे सामान्य मानव की कोटि तक चित्रित नहीं कर सकते थे। इसीलिए राम के चरित्र में दैवी गुणों का ही प्राधान्य है फिर भी राम चरित्र का असाधारण एवं आदर्श रूप कवि की आराध्य देव के प्रति पूज्य भावना का ही परिणाम है। अन्य सभी पात्रों के चरित्र विवेचन में कवि ने प्रसंगानुकूल अमानवीय एवं मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा की है। साकेत की चरित्र योजना में राम-कथा के सभी

---

[२१] डा० कमलाकान्त पाठक मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ ४२०

[२२] डा० नगेन्द्र साकेत एक अध्ययन पृ० १०२

[२३] डा० द्वारिकाप्रसाद साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० १३६

[२४] डा० कमलाकान्त पाठक मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, पृ ४४३

पात्र किसी-न किसी रूप में आ गये हैं। इनमें महत्त्व की दृष्टि से उर्मिला लक्ष्मण राम, सीता भरत कैकेयी और दशरथ एवं अन्य पात्रों में कौशल्या सुमित्रा माण्डवी मन्थरा रावण एवं हनुमानादि उल्लेखनीय हैं।

उर्मिला—साकेत महाकाव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र उर्मिला है। वही इस काव्य की नायिका है। साकेत का सृजन प्रेरणा के मूल में काव्योपेक्षिता उर्मिला का ही चरित्र चित्रण है। साकेत की सम्पूर्ण कथा की गति प्रसार एवं सवहन में उर्मिला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डा० नगेन्द्र का मत है कि चरित्र प्रधान काव्य की सफलता के लिए यह वांछित है कि उसके सभी पात्र मुख्य पात्र के चरित्र पर घात प्रतिघात द्वारा प्रभाव डालें तथा कभी परिस्थिति और कभी पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित होकर उसका प्रकाश में लायें।[25] इस दृष्टि से साकेत का चरित्र चित्रण पूर्णतः सफल कहा जायगा। इसके सभी पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उर्मिला के चरित्र विकास में सम्बन्धित हैं। उर्मिला के सम्पूर्ण चरित्र का अध्ययन तीन रूपों में किया जा सकता है

१ आरम्भिक जिसमें हम उसे नव-परिणिता राजवधू एवं आदर्श गृहिणी के रूप में पाते हैं।

२ उर्मिला के चरित्र का द्वितीय रूप विरहिणी का है।

३ तृतीय सर्वगुणसम्पन्न आदर्श नारी।

साकेत के प्रथम सर्ग में ही हम उर्मिला के दर्शन होते हैं जहाँ उसे अतिशय-सौन्दर्यशालिनी स्निग्ध गुणसम्पन्न नव परिणीता राजवधू के रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है। गुप्तजी ने मूर्तिमती उषा सजीव सुवर्ण की नयी प्रतिमा विधि के हाथों रची कल्प शिल्प की कला कहकर उर्मिला की मनोरम स्वाकृति का चित्र अंकित किया है।[26] उर्मिला को कवि ने स्वर्ग का सुमन कहकर सम्मानित किया है

स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही उर्मिला।[27]

इसी सर्ग में लक्ष्मण-उर्मिला का पारस्परिक हास्य विनोद चित्रित है जिसमें उर्मिला की परिहासवृत्ति आत्म सन्तोष एवं शुद्ध गम्भीर प्रेम का परिचय मिलता है। उर्मिला का रमणी हृदय आह्लाद उत्साह और उमंग से भरा है। वह विनोद-प्रवीण वाक्पटु विनयशील और पति की स्वरूप में बस्

25 डॉ० नगेन्द्र साकेत एक अध्ययन पृ० १०२
26 साकेत, स० १ पृ० २६
27 वही पृ० २८

करने वाली रमणी है।[२८] उर्मिला का हास्य-व्यंग्य विनोदवार्ता एवं पति परायणता के साथ स्वाभाविक सौन्दर्य प्रथम सर्ग में ही पाठक के हृदयपटल पर उसके व्यक्तित्व की अमिट रूप छवि अंकित कर देता है।

राम के राज्याभिषेक की चर्चा लक्ष्मण के कथन प्रिय निज आय का अभिषेक है मन बड़ा आनन्द का अतिरेक है [२९] इस वाक्य में आ मिल जाती है। द्वितीय सर्ग में हो मन्थरा की कुमन्त्रणा से कैकयी द्वारा राम के वन गमन का वरदान माँगना उर्मिला के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप बन जाता है। लक्ष्मण राम के साथ वन जाने को उद्यत हो जाते हैं। सीता भी पति के साथ जाती है किन्तु उर्मिला अपने पति के साथ वन जाने का आग्रह न कर अपने महान् धैर्य एवं त्याग का परिचय देती है। उर्मिला अपने मन को प्रिय पथ का विघ्न नहीं बनने देती। वह अपने स्वार्थ का त्याग कर अनुराग को विराग पर बलि दे देती है। वह अपने मन को विकार एवं शोक भार में भी चूर्ण नहीं होने देना चाहती

कहा उर्मिला ने—हे मन !
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन
आज स्वार्थ है त्याग भरा
हो अनुराग विराग भरा
तू विकार से पूर्ण न हो
शोक भार से चूर्ण न हो।[३०]

उर्मिला के इस कथन में बड़ा विचित्र मनोवैज्ञानिक संघर्ष है। यही उसके प्रेम और कर्त्तव्य की कसौटी बनता है। यहाँ हम उर्मिला को त्यागमयी देवी के रूप में पाते हैं। पति वियोग की वेदना में वह लावण्यमूर्ति उर्मिला कुम्हलाई लता के समान कृशकाया पीली मुखकान्ति एवं अशान्त नीली आँखें लिये मूर्च्छित मौन पड़ी दिखायी देती है।[३१] उर्मिला की दशा बड़ी दयनीय हो जाती है। दशरथ का उसे रघुकुल की असहाय बहू [३२] कहना उचित ही है। उर्मिला का चरित्र करुणा की साक्षात् प्रतिमा बन जाता है और उसकी

---

[२८] साकेत पृ० ३
[२९] वही पृ० ३३
[३०] वही, सर्ग ४ पृ० ११
[३१] वही सर्ग ६ पृ० १६० ६१
[३२] वही सर्ग ६ पृ० १६८

विरह वेदना के उच्छ्वास नवम सर्ग के छन्दों में करुणा का स्रोत बनकर फूट पड़ते हैं। साकेत का नवम सर्ग उर्मिला के विरह विषाद का चरम निदर्शन है। प्रिय के वियोग में अम्बु, अवनि, अम्बर में स्वच्छन्द रहने वाली पुनीत स्वच्छ क्रीड़ा अवधि चित्त-पीड़ा सी हो जाती है।[33] भोग रोग हो जाते हैं और उसके हृदय की विरहाग्नि तालवृन्त से धधक उठती है। प्रिय के वियोग में वह उपवन को वन बनाती है, कुल कलश को अश्रु जल से धोती है[34] तथा अपने मन मन्दिर में प्रिय की प्रतिमा स्थापित कर सम्पूर्ण भोगों का त्याग कर अपना जीवन योगमय बना लेती है:

मानस मन्दिर में सती पति की प्रतिमा थाप,
जलती थी उस विरह में बनी आरती आप।
आँखों में प्रिय मूर्ति थी भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।[35]

स्वामी के ध्यान में वह आत्मविस्मृत सी हो जाती है। काम वासना से वह पीड़ित नहीं वरन कामदेव को शिव के तृतीय नेत्र के सदृश अपनी सिंदूर बिन्दु दिखाकर भयभीत कर देती है। वह प्रोषित पतिकाओं के दुःख में सम दुखिनी भी होना चाहती है।[36] वह विरह के साथ अभिसार भी स्वीकार करती है। विरह में भी उसे कर्तव्य ज्ञान का विचार रहता है।[37] प्रकृति के उपादानों के प्रति उर्मिला के मन में अब भी आकर्षण है, वितृष्णा नहीं। सूरदास की विरहिणी गोपिकाओं की भाँति वह यह नहीं कहती कि

मधुबन तुम कत रहत हरे।
विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे।।

वरन् उर्मिला सभी ऋतुओं का स्वागत करती है:

हँसो हँसो हे शशि फूलो फूलो।
हँसो हिंडोरे पर बैठ झूलो।
यथेष्ट मैं रोने के लिए हूँ।
झड़ी लगा दूँ इतना पिये हूँ।[38]

---

[33] साकेत सर्ग ९ पृ० ३००
[34] वही पृ० २६८
[35] वही पृ० २६६
[36] वही, पृ० २७५
[37] वही पृ० २८०
[38] वही, पृ० २६६

यहाँ वहाँ अपने देश की दशा और प्रजा के बारे में उर्मिला शत्रुघ्न से समय समय पर पूछती है। विरह की अग्नि में तपकर उर्मिला प्रेम की सात्विक मूर्ति बन जाती है। विरह की कठोर परिस्थितियों में भी उसका यही विश्वास है कि—प्रेम की ही जय जीवन में यही आता है ध्यान में।[38] हृदय की उदारता और सहनशीलता ही उर्मिला के चरित्र को ऊँचा उठाती है।

उर्मिला के चरित्र का तृतीय पक्ष वह है जब हम उसे अदम्य विश्वास से पूरित वीर क्षत्राणी के रूप में पाते हैं। लक्ष्मण को शक्ति लगने का समाचार पाकर उर्मिला क्षत्राणी वेश में आकर शत्रुघ्न के समीप उपस्थित हो गयी। वह कार्तिकेय के निकट भवानी[40] लग रही थी। उसके आनन पर सौ अरुणों का तेज फूट रहा था। उसके माथे का सिंदूर सजग अंगार सदृश था।[41] उसके दायें कर में विकट शूल था और वह गर्जना कर रही थी कि

> धारो धन का आज ध्यान में भी मन लाओ
> जाते हो तो मान हेतु ही तुम सब जाओ।
> ×   ×   ×
> विन्ध्य हिमालय भाल भला झुक जाय न धीरो
> चन्द्र सूर्य कुल-कीर्ति कला रुक जाय न वीरो।
> ×   ×   ×
> ठहरो यह मैं चलूँ कीर्ति सी आगे आगे
> भागें अपने विषम कर्म फल अधम अभागे।[42]

उर्मिला के उक्त कथन में कितना प्राणवान उद्बोधन है। देश प्रेम की ज्वाला है पराक्रम और साहस का अद्भुत वेग है। शत्रुघ्न के इस कथन पर कि

क्या हम सब मर गये हाय जो तुम जाती हो।

वह वीरों के घाव धोने को ही जाना चाहती है जिसमें उसकी सेवा भावना झलकती है। वियोगिनी उर्मिला का ओजमयी वीर क्षत्राणी एवं सेवा भाव पूरित नारी का यह स्वरूप ही श्लाघनीय है। इसीलिए अन्त में भी राम का उर्मिला की गुण गीता गानी पड़ी

[39] साकेत पृ० २४
[40] वही सर्ग १२ पृ ४७
[41] वही पृ ४७३
[42] वही पृ० ४७४ ७५

तून तो यह धर्मचारिणी के भी ऊपर
धर्म स्थापन किया भाग्यशालिनी इस भू पर। [४३]

अन्त में प्राणप्रिय लक्ष्मण से मिलकर वह यही कहती है कि

'स्वामी स्वामी जन्म जन्म के स्वामी मेरे। [४४]

वास्तव में उर्मिला का लौकिक चरित्र स्वर्गिक गुणों से सम्पन्न है। उसके चरित्र में नारी स्वभाव की दुर्बलताएँ भी हैं और जातिगत विशेषताएँ भी। उर्मिला के चरित्र का विकास परिस्थितिजन्य सन्दर्भों में हुआ है। उसके व्यक्तित्व में एक ओर रूप का आकर्षण एवं सौन्दर्यजन्य का सम्मोहन है तो दूसरी ओर साहस शौर्य स्वाभिमान एवं स्वदेश प्रेम का गौरव भी है। वह विरहिणी है किन्तु कर्तव्यनिष्ठ एवं संयमशील। यद्यपि विरहिणी को लेकर हिन्दी के समीक्षकों में उसके चारित्रिक औदात्त के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है किन्तु उर्मिला के समष्टि चरित्र का अनुशीलन यह स्वीकार करने को बाध्य करता है कि हिन्दी काव्य जगत की वह अद्भुत चरित्र सृष्टि है। "काव्य की यह चिर उपेक्षिता साकेत में हो गयी हिन्दी महाकाव्यों की चरित्र भूमि में प्रथम बार जिस वेष में प्रकट होती है वह वेष अश्रुविगलित होकर भी आत्ममय आत्म प्रदान होकर भी स्वाभाविकता के निकट एवं दैवी गुणों से मण्डित होकर भी नारी सुलभ है। [४५] डा० सत्येन्द्र ने उर्मिला के चरित्र को तुलसी दीपशिखा से व्यक्त करते हुए लिखा है— उर्मिला पर में जलाये गये उस आशापूर्ण दिव्य दीपशिखा की भाँति प्रज्वलित है जो दूरदेशगामी पुरुषों को प्रकाश प्रदान करने की कामना का प्रतीक है। उर्मिला में जितना रोना है उतना ही गाना है जितनी अवरुद्ध है उतना ही मुक्त है जितनी छिपी है उतनी ही प्रकट है। फिर भी उसमें वीर रमणीत्व न तो एक अलौकिक दीप्ति उपस्थित कर दी है। उर्मिला का दीपक घर घर में जलाया जा सकता है। [४६] इस प्रकार उर्मिला के चरित्र में महाकाव्य के नायकत्व पद के निर्वाह की पूर्ण क्षमता है।

साकेत का नायकत्व—काव्यशास्त्रीय दृष्टि से साकेत के नायकत्व का प्रश्न कुछ उलझा हुआ है। साकेत के समीक्षक जहाँ उर्मिला को एकमत से

---

[४३] साकेत पृ० ४६५

[४४] वही, पृ० ५००

[४५] डॉ० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण, पृ० १०६

[४६] डॉ० सत्येन्द्र गुप्तजी की कला पृ० १,२ ७४

नायिका स्वीकार करते हैं वहाँ नायक के सम्बन्ध में भी उनमें मतैक्य नहीं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी भरत को नायक मानते हैं।[४७] प्रो० त्रिलोचन पाण्डेय[४८] और विश्वम्भर मानव[४९] के अनुसार राम साकेत के नायक हैं। डा० प्रतिपालसिंह के अनुसार लक्ष्मण इस (साकेत) काव्य के नायक हैं।[५०] डा० कमलाकान्त पाठक के मतानुसार— मैं समझता हूँ साकेत के नायक लक्ष्मण है। यद्यपि लक्ष्मण सर्वत्र राम के पार्श्ववर्ती रहे अप्रधान रहे पर साकेत की कथावस्तु के केन्द्र में भी है। प्राधान्य की दृष्टि से वास्तविक नायकत्व उर्मिला का है और औपचारिक नायकत्व लक्ष्मण का।[५१] गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश के अनुसार— साकेतकार ने लक्ष्मण को साकेत का नायक तो बनाया है किन्तु साथ ही पग-पग पर उन्हें रामचन्द्रजी का आश्रित बना दिया है।[५२] डा० श्यामनन्दन किशोर ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि— नायक के गुणों का विस्तार न तो पूर्णतः उर्मिला में कर सके हैं न लक्ष्मण में और न राम में कई उद्देश्यों के जाल में नायकत्व उलझ कर रह गया है।[५३] वास्तव में साकेत में नायकत्व की समस्या उत्पन्न इसलिए हुई कि एक ओर साकेतकार राम के प्रति अपनी पूज्य भावना के कारण उन्हें काव्य में सर्वोपरि स्थान देने से वंचित नहीं रख सका और दूसरी ओर उर्मिलापति के रूप में लक्ष्मण को नवीन रूप में उभारने तथा मुख्य कथा संचालक की स्थिति प्रदान करने का लोभ संवरण भी नहीं कर सका। साकेत की रंगस्थली पर लक्ष्मण और उर्मिला काव्यारम्भ से प्रविष्ट होते हैं और काव्यान्त भी उन्हीं के संवादों से होता है। सम्पूर्ण कथा की संचालन विधि में लक्ष्मण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः साकेत के नायक लक्ष्मण और नायिका उर्मिला सिद्ध होते हैं।

लक्ष्मण—साकेत में लक्ष्मण का चरित्र परम्परित रामकाव्यों की अपेक्षा अधिक उन्नत बन पड़ा है। काव्यारम्भ में लक्ष्मण सुकुमार प्रकृति के विनोद-प्रिय एवं ललित नायक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उर्मिला के साथ

[४७] नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ९८
[४८] त्रिलोचन पाण्डेय साकेत दर्शन पृ० ९५
[४९] विश्वम्भर मानव खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ
[५०] डा० प्रतिपालसिंह बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य पृ० १३४
[५१] डा० कमलाकान्त पाठक मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० ४४५
[५२] डा० गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश गुप्तजी की काव्यधारा पृ० १४०
[५३] डा० श्यामनन्दन किशोर आधुनिक हिन्दी काव्यों का शिल्प विधान पृ० २२४

हास्यपूर्ण वार्तालाप में लक्ष्मण सौम्य-स्वभाव व हास विलासप्रिय राजकुमार चित्रित किये गये हैं। यह उनके चरित्र का कोमल रूप है।

लक्ष्मण के उग्र रूप का चित्रण तृतीय सर्ग में दृष्टिगत होता है जब वन गमन की सूचना से वे क्रोधित होकर कैकयी और महाराज दशरथ को कटु-से कटु वचन कहते हैं

'अरे मातृत्व तू अब भी जताती ठसक किसको भरत की है बताती।
भरत को मार डालूं और तुझको नरक में भी न रक्खूं ठौर तुझको।

× × ×

बुला ले सब सहायक शीघ्र अपने कि जिनके देखती है व्यर्थ सपने।

× × ×

भला वे कौन हैं जो राज्य देवें पिता भी कौन हैं जो राज्य देवें। [४४]

इस अवसर पर वे राम के समझाने पर भी शान्त नहीं होते। यहाँ तक कि कैकयी को 'नागिनी', 'हतभागिनी', 'स्पृहजा' तक कह देते हैं। अन्ततः राम के आग्रह से संयमित होते हैं। लक्ष्मण की सेवा भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण उनका अग्रज राम-सीता के साथ साग्रह वन गमन है। लक्ष्मण का त्याग और तपस्या भाव महान् है। एक ओर वे राम के सच्चे अनुयायी हैं तो दूसरी ओर उर्मिला के स्वामी भी। तभी तो लक्ष्मण कहते हैं

पत्नि मैंने निज वधु उर्मिला ही को जाना। [४५]

उर्मिला के प्रति सच्चा स्नेह भाव होते हुए भी लक्ष्मण सच्चे सीता की सेवा में धीरव्रता बनकर रहते हैं। लक्ष्मण की चारित्रिक गरिमा का प्रमाण युद्ध क्षेत्र में मिलता है जहाँ वे समान-पराक्रमी मेघनाद को पाकर प्रसन्न होते हैं सच्चे योद्धा की भाँति मेघनाद के वध को प्रशंसा करके युद्ध का आह्वान करते हैं। लक्ष्मण में वीरत्व और ओज का भाव साकेत में स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होता है। सीताहरण के अवसर पर उनका निम्न वचन श्लाघनीय है

पच सकता है रश्मिराशि क्या संग्राम के तम में भी।
आये उगलवा तुरंत अपना आया हूं मैं यम में भी। [४६]

इस प्रकार युद्धोपरान्त लक्ष्मण से राम जब विश्राम के लिए कहते हैं तो उनका उत्तर बड़ा ओजपूर्ण है

---

४४ साकेत, सर्ग ३ पृ० ७६ ७७
४५ वही सर्ग १२ पृ० ४८८
४६ वही, एकादश सर्ग पृ० ४२६ २७

हायहाय ! त्रियाम ? प्रभु अब भी है जाना
कारागृह म पत्नी हमारा त्या मीता।
× ×
यदि वरा का मार न मुत लक्ष्मा का पाऊँ
ता मरा यन माप मु। मैं गुगति न पाऊँ।

एव अ य अवसर पर भरत का सन्य-दल सहित चित्रकूट आते देख उनका अभिमान जाग्रत हा उठता है

आय हाग भरत यदि कुमतिवश वन म
ता यह नवरत्न किया है मैंने मन म
उनका इस शर का लक्ष्य चुनूगा क्षण म
प्रतिषध आपका भी न सुनूगा रण म। [४७]

इस प्रकार लक्ष्मण के चरित्र म स्नेह सवमन्तानता भक्ति भाव साहस वाक्य पराक्रम आदि गुणा का अद्भुत समन्वय हुआ है। समष्टि रूप म लक्ष्मण के चरित्र के दो पक्ष है—एक ता वीरवता का और दूसरा भावक एव प्रमा पति का। जहा एक पक्ष म जहाँ उनकी स्वभावगत चचलता के कारण कठोरता। उग्रता आया है वहा सयम सवा भाव साधना एव तपस्यापूर्ण जीवन के कारण उनके चरित्र का दूसरा पक्ष उज्ज्वल बना है। कुछ समीक्षका का मत है कि गुप्तजी के रामानुवर्ती हान के कारण लक्ष्मण के चरित्र का पूर्ण विकास नहा हो पाया है। दूसर शास्त्रीय दृष्टि स नायक म जिन उदात्त गुणा की आवश्यकता हाती है उनका सवथा अभाव लक्ष्मण म दिखायी देता है। इसके अतिरिक्त नायक म सम्पूर्ण पात्रा का नतृत्व करन की जा अपूर्व क्षमता होती है वह भी लक्ष्मण म दृष्टिगाचर नहीं हाती। यहाँ लक्ष्मण राम के अनुज और अनुयायी है। राम जसी प्रेरणा दत है उस अपन जीवन का लक्ष्य बनात है।[४८] लक्ष्मण के चरित्र के सम्बध म उपयुक्त विचार उचित नहा जान पडत। प्रथम आधुनिक युग म नायक विषयक आदर्शों म आमूल परिवतन हो गया है। दूसर जिस रूप म साकतकार न लक्ष्मण का प्रस्तुत किया है उसम लक्ष्मण के पूर्ण चरित्र विकास की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। तीसर साकेत म नायकत्व भार का वहन उर्मिला न किया है। उर्मिलापति होन के कारण ही

---

[४७] साकत सग ८ पृ २३७
[४८] डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सना साकेत मे काव्य संस्कृति और दशन पृ० १४, ४४

लक्ष्मण साकेत के नायक हैं। फिर भी गुप्तजी ने लक्ष्मण के चरित्र में नवीनता लाने का प्रयास किया है। लक्ष्मण का स्वभावगत आवेश और चापल्य उन्हें मानवीय बनाता है यही कवि की सफलता है। गुप्तजी ने परिवर्तन यथेष्ठ किया, किन्तु लक्ष्मण का मनुष्योचित रूप ही चित्रित किया। उसमें हम इस धरती के मनुष्य की प्रवृत्तियाँ झाँकती हुई मिलती हैं।[५९]

राम—राम साकेतकार के आराध्य देव हैं अतः उनका चरित्रांकन करते समय कवि की पूज्य भावना सर्वत्र बाधक रही है। राम को आदर्श मानव या महापुरुष के रूप में ही कवि चित्रित कर सका है। रामभक्त परिवार की माता और संस्कारजन्य निष्ठा के कारण गुप्तजी ने एक ओर राम को ईश्वर माना है तो दूसरी ओर युग के प्रभाव और बौद्धिक दृष्टिकोण ने उन्हें मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया है। कवि ने स्वयं कहा है कि—राम तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?[६०] और

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है॥[६१]

यहाँ नहीं गाँधीजी को लिखे गये पत्र में गुप्तजी ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि साकेत में मुझे राम को प्रभु कहते ही बना है।[६२] गुप्तजी के राम निश्चित रूप से भगवान हैं।[६३] यद्यपि कवि ने विश्राम के क्षण पर उन्हें अवतार माना है। पर बुद्धिवाद के प्रभाव के कारण उन्हें मानव ही रखा है।[६४]

वस्तुतः राम के चरित्र में आदर्श मानवोचित गुण हैं। वे माता पिता के भक्त एवं आज्ञाकारी हैं। कर्तव्यपरायणता त्याग क्षमा और विनय उनके चरित्र के प्रमुख गुण हैं। वनवास की आज्ञा मिल जाने पर भी भरत और कैकयी के प्रति उनके मन में कोई दुर्भाव पैदा नहीं होता। विषम-से विषम परिस्थितियों में भी वे अटूट धैर्य धारण किये रहते हैं। साकेत के राम मानवता के लिए जो सन्देश प्रदान करते हैं वह अद्भुत है

---

[५९] प्रो० त्रिलोचन पाण्डेय साकेत दर्शन, पृ० ६१
[६०] साकेत मुखपृष्ठ
[६१] साकेत, सर्ग ५ पृ० १५
[६२] डॉ० कन्हैयालाल सहल साकेत के नवम सर्ग का काव्य वैभव पृ० १४२
[६३] डॉ० उमाकान्त गोयल मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता पृ० १६६
[६४] डॉ० कमलाकान्त पाठक मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य पृ० ४५९

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख शान्ति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया।
× × ×
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥[६५]

राम शक्ति और तेज के निधान हैं, किन्तु उनका उपयोग वे दलितों के बर्बर शोषकों के मद को चूर करने के लिए करते हैं। वे ऋक्ष और वानरों के समान वन मानवों तक को आश्वासन देने वाले हैं:

बहु जन वन में हैं बने ऋक्ष वानर से
मैं दूंगा अब आर्यत्व उन्हें निज कर से॥[६६]

परिवारजनों के प्रति स्नेह और औदार्य का भाव स्थान-स्थान पर उनके कथनों में प्रकट होता है। वे सच्चे अर्थों में आदर्श मानव हैं। साकेत में वे मानवता की साकार मूर्ति बनकर अवतीर्ण हुए हैं। वे एक उच्च कोटि के मानव हैं।[६७] राम की प्रतिमा में साकेतकार ने भी अनन्त शील, अनन्त शक्ति और अनन्त सौन्दर्य का समावेश किया है—परन्तु उसमें मानवत्व कुछ अधिक है—साथ ही कुछ नवीनता भी है।[६८] जो भी हो, यह तो कहना ही पड़ेगा कि साकेत के राम वाल्मीकि और तुलसी के राम से भिन्न हैं। उनके चरित्र में युग की सम्भावनाएँ साकार हुई हैं। साकेत के राम हमारे युग के राम हैं।

सीता—साकेत में सीता का चित्रण भी नवीनता लिए है। सीता एक ओर भारतीय आदर्श नारी हैं, जिनमें पतिपरायणता, त्याग, सेवा, शील और सौजन्य है तो दूसरी ओर वे युग जीवन की मर्यादा के अनुरूप श्रमसाध्य जीवन-यापन में गौरव का अनुभव करने वाली नारी हैं। उन्हें वन में राज्यवैभव का सुख प्राप्त है, वे आत्मनिर्भर और स्वावलम्बन में विश्वास रखती हैं

---

[६५] साकेत, सर्ग ८ पृ० २३४-३५
[६६] वही सर्ग ८ पृ० २३५
[६७] डा० द्वारिकाप्रसाद : साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० १६२
[६८] डा० नगेन्द्र : साकेत एक अध्ययन पृ० ११२

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारिविन्दुफल स्वास्थ्यशुक्ति फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।
तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥[६९]

काव्यारम्भ में हम सीता को एक कुल-वधू के रूप में पाते हैं। रघुवंश परिवार में वे एक आदर्श गृहिणी दिखायी देती हैं। परिवारजनों में (विशेषकर लक्ष्मण और उर्मिला से) हास-परिहास एवं व्यंग्य विनोद में उनका सहज व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। तदनन्तर राम के वन-गमन की सूचना पाकर पति के साथ ही वन जाने में अपने को धन्य मानती हैं। सीता सतीत्व की साकार मूर्ति हैं। अपहरण हो जाने के पश्चात् रावण जब उन्हें रानी बनाने का प्रलोभन देता है तो वे उसे बुरी तरह फटकारती ही नहीं हैं वरन् अपने सतीत्व बल के प्रभाव से उसे तेजहीन कर देती हैं। उनकी राम के प्रति जो सच्ची आस्था और प्रेम है उसी के बल पर उन्होंने पति वियोग की वेदना को सहा है। सीता पतिपरायणा गृहस्थ धर्म का पालन करने वाली आदर्श भारतीय नारी का रूप हैं।

भरत— साकेत के भरत 'रामचरितमानस' के भरत से बहुत भिन्न नहीं हैं। उनकी चरित्र-सृष्टि का आधार परम्परित विशेषताएँ ही हैं। साकेत में सर्वप्रथम उनके दर्शन उस समय होते हैं जब वे ननिहाल से लौटकर आते हैं। पितृ-मरण और राम-वन-गमन की सूचना से वे स्तम्भित रह जाते हैं। अपने राज्याभिषेक की सूचना पाकर वे 'हा हतोऽस्मि' कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं। सचेत होने पर वे कैकयी को पापिनी और निर्मम कहकर उसके कुकृत्य की निन्दा करते हैं। मातृ-स्नेह से विमुख होकर वे आवेश में राज-पद का तिरस्कार करते हुए कहते हैं—

राज-पद ही क्यों न अब हट जाय।
लोभ मद का मूल ही कट जाय।
भर गये कोई न रूप न दम्भ।
सब जगत में हो नया आरम्भ॥[७०]

[६९] साकेत सर्ग ८ पृ० २२३
[७०] वही सर्ग ७ पृ० २०[illegible]

वे चाहते है— विदा हो सम्पत्ति रा ज मान । इस प्रकार यहाँ भरत समाजवाद और समाता के आदर्श का क्रान्तिकारी ढंग से प्रतिपादन करते हुए दिखायी देते है । इस अवसर पर भरत जिस प्रकार ग्लानि का अनुभव करके अपने हृदय की अभिव्यक्ति करते है वह अवर्णनीय है । तदनन्तर शंकित हृदय से अपराधी के समान भरत माता कौशल्या के पास जाते है

तुम हो हा अम्ब माता अम्ब
पति विहीना पुत्र हीना अम्ब ।
भरत अपराधी भरत है—प्राप्त
दो उसे आदेश अपना आप्त । [71]

भरत स्वयं को षड्यन्त्रकारी अधम अपराधी एवं कलंकी का मूल कहकर क्षमायाचना करते है । किन्तु माता कौशल्या यह कहकर

मिल गया मेरा मुझे तू राम तू वही है भिन्न केवल नाम ।

भरत के हृदय को शान्त करती है ।

भरत राज्यसिंहासन को ठुकराकर राम को लेने चित्रकूट पहुँचते है और राम के चरणों से लिपटकर अपने आँसुओं से उनके चरण पखारते हैं । भरत के लिए राम इष्टदेव तुल्य है । चित्रकूट की सभा में मुनि वशिष्ठ राम एवं अन्य सभासद भरत के शील एवं स्वभाव की भूरि भूरि प्रशंसा करते है । भरत के कारण ही राम और सभासद भरत के शील एवं स्वभाव की सराहना करते हुए कहते है कि— सौ बार धन्य वह एक लाल की माई इस अवसर पर सभी भरत की धीरता गम्भीरता मातृ प्रेम विनम्रता सहायता आदि गुणों की सराहना करते है । भरत राम की चरण पादुकाएँ लेकर लौट आते है और उन्हें सिंहासन पर स्थापित कर एक भक्त की भाँति चौदह वर्षों तक कठोर साधना तप एवं संयम का जीवन बिताते है । वे नन्दिग्राम में तपस्वियों की भाँति जीवन बिताते हुए भी राज्य-व्यवस्था का विधिवत् संचालन करते है ।

भरत के अद्भुत व्यक्तित्व का परिचय तब मिलता है जब वे हनुमान के मुख से सीताहरण एवं लक्ष्मणशक्ति का समाचार पाकर क्षत्रिय धर्म पालन हेतु वीरत्व भाव को धारण करते है । वे वीरता के रूप में हुंकार कर उठते है

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में
सिन्धु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में

---

[71] साकेत सर्ग ७ पृ० २ ४

बैठा हूँ मैं भण्ड साधुता धारण करके
अपने मिथ्या भरत नाम को धारण करके।

× × ×

मरू अपने जन्मी भून जीवन का तेजा।
उठा दसा भण गूर करा मना की सज्जा।

× × ×

सज अभी साकेत बज हो जय का डंका।
रह न जाय अब यहीं किसी रावण की शंका। [७२]

भरत-चरित्र की यह विशेषता साकेतकार की निजि सूझ का परिचायक है। राम काव्य की परम्परा में इस रूप में भरत पहली बार चित्रित किये गये हैं। इस प्रकार भरत का चरित्र मानवीय गुणों की महिमा से मण्डित है। स्वयं राम का यह कथन—

हे भाई तुझ सका न तुमसे राम सगा है।
तेरा पलड़ा भारी भूमि पर आज लगा है। [७३]

भरत के चरित्र की महत्ता को स्पष्ट करता है। वे तपस्वी हैं और त्यागी हैं इसीलिए सारा विश्व उनकी महत्ता को स्वीकार करता है। कितना निस्वार्थी और भ्रातृ प्रेमी। क्या कोई देश ऐसा व्यक्ति सम्मुख उपस्थित कर सकता है [७४] भरत का चरित्र साकेत की सबसे महत्त्वपूर्ण सृष्टि है—यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी।

कैकयी—साकेत के पात्रों में कैकयी के चरित्र निरूपण में गुप्तजी सबसे अधिक सफल हुए हैं। राम-कथा के पात्रों में कैकयी के कलंकित एवं तिरस्कृत चरित्र को गुप्तजी की लेखनी ने धोय दिया है। सर्वप्रथम साकेत के द्वितीय सर्ग में हम कैकयी को सौजन्य से पूर्ण माता के रूप में पाते हैं जिसे राम के राज्याभिषेक की प्रसन्नता है क्योंकि राम और भरत उसके लिए समान हैं। मंथरा की कुमन्त्रणा से उसके मन में सन्देह विष-बीज वपन हो जाता है। मन्थरा का निम्न कथन उसे मर्मान्तक आघात पहुँचाता है

७२ साकेत सर्ग १२, पृ० ४५८
७३ वही, सर्ग १२ पृ० ४६७
७४ डा० प्रतिपालसिंह बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, पृ० १ ३

गुप्तजी का साकेत अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है किन्तु उसकी महत्ता का सबसे बड़ा कारण उसका सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्व है।

दार्शनिक मान्यताएं

साकेत एक जीवन काव्य है। साकेत का मूल विषय जीवन मानव जीवन का निरूपण करना है। इसलिए साकेत में कवि की ओर से किन्हीं विशिष्ट सिद्धान्तों एवं आदर्शों की स्थापना का आग्रह न होकर मानवतावादी जीवन मूल्यों का अभिव्यक्ति का सहज प्रयास है। मानवतावादी दृष्टिकोण की अभिव्यंजना में भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी यत्किंचित् विचार भी साकेत में स्थान पा गये हैं। न तो हम साकेत को भक्तिपरक ग्रन्थ कह सकते हैं और न दर्शन सम्बन्धी विचारों का वहन करने वाला दार्शनिक काव्य ही मान सकते हैं। कवि ने तो मानवों के जीवन को सम्मुन्नत बनाने के लिए अथवा उनके अभ्युदय के लिए जिन भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी विचारों को उचित समझा है उनको ही यहाँ स्थान दिया है। अतएव कवि का स्वस्थ मानवतावादी दृष्टिकोण साकेत में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। यहाँ कवि की ईश्वर भक्ति मानव भक्ति में परिणत हो गयी है उसका ईश्वर प्रेम स्वदेश प्रेम में परिणत हो गया है और उसकी ईश्वर सेवा जन जन की सेवा-सुश्रुषा में बदल गयी है।[१६] इस प्रकार साकेत वास्तव में दार्शनिक या भक्ति प्रधान काव्य न होकर वस्तुतः मानव जीवन और मानवीय जीवन से ही सम्बोधित सहज भक्ति-दर्शन का काव्य है। साकेत की मानवतावादी जीवन दर्शन सम्बन्धी पृष्ठभूमि का निर्माण दो आधारों पर हुआ है जो निम्न प्रकार हैं

१ साकेत का कथात्मक आधार प्राचीन परम्परा प्रसिद्ध पौराणिक राम-कथा एवं गुप्तजी की वैष्णव भावना के कारण राम भक्ति के सम्प्रदायगत दार्शनिक विचार काव्य में स्वमेव आ गये हैं। अतः साकेत की दार्शनिक पृष्ठभूमि भक्ति एवं दर्शन समन्वित है।

२ साकेत की जीवन-दर्शन विषयक धारणाओं के निर्माण में युग की प्रचलित विचारधाराओं मान्यताओं एवं विश्वासों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

सम्प्रदायगत दार्शनिक विचार

१ भक्ति विषयक—साकेत में वैष्णव भक्ति की विचारधारा का

---

[१६] डा० द्वारिकाप्रसाद साकेत में काव्य दर्शन और संस्कृति पृ० ३८८

प्रतिपादन हुआ है। वैष्णव भक्ति का सम्बन्ध उस पद्धति से है जिसके अन्तर्गत भगवान विष्णु को पूर्ण ब्रह्म मानकर उनके साक्षात्कार प्राप्ति, सान्निध्य एवं सायुज्य के लिए वैष्णव भक्त विष्णु के अनेक अवतारों की पूजा, अर्चना, चिन्तन, कल्पना आदि करते हैं। पौराणिक साहित्य में अवतारवाद की परिकल्पना के विकास के साथ साथ विष्णु के अवतारों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी। महाभारत के नारायणीयोपाख्यान के अनुसार भगवान विष्णु (वासुदेव) के छः अवतार माने गये—वराह, नृसिंह, वामन, भार्गवराम, दशरथ पुत्र राम और कृष्ण। इसके पश्चात् महाभारत में ही इनके अतिरिक्त चार और अवतारों के नाम जोड़कर इनकी संख्या दस मानी गयी। ये चार हैं—हंस, कूर्म, मत्स्य, कल्कि। वायु पुराण में इन अवतारों की संख्या बारह हो गयी और उपर्युक्त इन नामों के साथ-साथ दत्तात्रेय तथा वेदव्यास दो नाम और जोड़ दिये गये। श्रीमद्भागवत पुराण में इन अवतारों की संख्या प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में बाईस उल्लिखित है और द्वितीय स्कन्ध के सातवें अध्याय में यह संख्या तेईस हो जाती है। विष्णु के अवतारों में संख्या की निरंतर अभिवृद्धि को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु की भक्ति की महत्ता जैसे-जैसे बढ़ती गयी, वैसे वैसे अवतारों की संख्या में भी अभिवृद्धि होती गयी। राम विष्णु के ही अवतार हैं। सम्पूर्ण अवतारों में राम और कृष्ण ही दो ऐसे अवतार हैं जिनके आधार पर अवतारवाद की कल्पना आज तक जीवित है। वास्तव में राम और कृष्ण ही आज विष्णु के अवतार के प्रतीकमात्र बन गये हैं। इन दोनों अवतारों में भी राम का चरित्र सम्पूर्ण दैवी गुणों एवं आदर्शों से परिपुष्ट होने के कारण युगों से मानव जाति की प्रेरणा का अक्षय स्रोत रहा है। राम के चरित्र को लेकर आदि कवि के महाकाव्य से आज तक विभिन्न काव्यों की अनन्त सरिता प्रवहमान रही है। वैष्णव भक्त राम का चरित्र गायन आराध्यदेव की उपासना एवं गुणगाथा के रूप में भी करते रहे हैं। गुप्तजी की साकेत की काव्य रचना में एक उद्देश्य निज प्रभु अर्थात् राम का गुणगान भी रहा है जिस पर साकेत की सृजन प्रेरणा एवं उद्देश्य शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से विचार किया जा चुका है। गुप्तजी निस्सन्देह एक वैष्णव भक्त एवं कवि हैं। अस्तु, साकेत में वैष्णव भक्ति का विचारधारा और तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिफलित हो जाना स्वाभाविक ही है।

राम को गुप्तजी अपना इष्टदेव मानते हैं। साकेत के सम्पूर्ण कलेवर में राम के प्रति कवि का पूज्य भाव प्रधान रहा है। उन्होंने राम को सर्वव्यापक

एव परब्रह्म के रूप में माना है। साकेत के आरम्भ में कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि राम ने ही मानव के रूप में संसार का पथ दिखाने एव भू भार दूर करने के लिए अवतार लिया है

हो गया निर्गुण सगुण साकार है ले लिया अखिलेश ने अवतार है।

किस लिए यह खेल प्रभु ने है किया मनुज बनकर मानवी का पय पिया।

पथ दिखाने के लिए संसार को दूर करने के लिए भू भार को।[161]

यही नहीं साकेत के मुखपृष्ठ पर छपी हुई पक्तियों में भी कवि ने यह प्रश्न किया है कि—राम मानव ही हैं और ईश्वर नहीं है तथा सम्पूर्ण विश्व में रम हुए हैं। कवि की आस्तिक भावना का परिचय भी वहां मिल जाता है जबकि वह कहता है कि उसका मन राम में रमा रहे

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या ?

विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या ?

तब मैं निरीश्वर हूँ ! ईश्वर क्षमा करे

तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे॥

इन पक्तियों में वैष्णव भक्ति की वह विशेषता स्पष्ट दिखायी देती है जिसमें भक्त भगवान के प्रति अनन्यता का भाव धारण किये रहता है।

वैष्णव भक्तों ने भक्ति को ही जीवन का सर्वस्व माना है। यहाँ तक कि मुक्ति से अधिक भक्ति ही भक्त के लिए महत्त्वपूर्ण है। साकेत में इस प्रकार की विचारधारा भी मिल जाती है। वस्तुत साकेतकार का दृष्टिकोण भक्ति और मुक्ति को ऊंचा या नीचा न बताकर उनका समन्वय करने की ओर रहा है। लक्ष्मण गुहराज निषाद को भक्ति और मुक्ति के समन्वय का उपदेश देते हैं

सखे समन्वय करो भक्ति का मुक्ति से।[162]

वैष्णवों के लिए भक्ति भवसागर से पार होने का एक साधन है। साकेत के राम स्वयं यह बात कहते हैं कि

पर जो मेरा गुण कर्म स्वभाव धरेंगे

वे औरों को भी तार पार उतरेंगे।[163]

---

[161] साकेत प्रथम सर्ग पृ १८

[162] वही पंचम सर्ग पृ० १४२

[163] वही अष्टम सर्ग पृ० २३५

वष्णव भक्त अपने उपास्यदेव की लीलाओं और महान् कार्यों का गुणगान किया करते हैं। गुप्तजी ने भी काव्य के अष्टम सर्ग में अपने इष्टदेव राम के महत् गुणों का उल्लेख किया है। उनके राम आर्यों का आदर्श बताने वाले, सुख शान्ति हेतु क्रान्ति मचाने वाले, विश्वासी का विश्वास बचाने वाले, तापित शापित बहाल दीन का उद्धार करने वाले, समाज में मर्यादा स्थापित करने वाले, नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने वाले और भूतल को स्वर्ग बनाने वाले हैं।[164] इसके अतिरिक्त वष्णव भक्ति के अन्तर्गत भगवान के नाम स्मरण की महिमा और समर्पण भाव की भावना को भी गुप्तजी ने साकेत में अभिव्यक्त किया है। भक्ति को युगानुरूप बनाने के लिए गुप्तजी ने युगानुरूप उदार दृष्टि का भी परिचय दिया है। साकेत के राम गुहनिषाद, वानरों आदि से भी बन्धु भाव का व्यवहार करते हैं। वष्णव भक्तों के लिए गुरु का जो महत्त्व है वह वशिष्ठजी के प्रति राम द्वारा व्यक्त की गयी श्रद्धा भावना में स्पष्ट दिखायी देता है। इस प्रकार साकेत में गुप्तजी की वष्णव भक्ति भावना पूर्णतः अभिव्यक्त हुई है। भक्त में जो भावना पूज्यभाव, आराध्य देव के प्रति श्रद्धा और समर्पण होना चाहिए वह सब साकेत में उपलब्ध है।

(अ) ब्रह्म का स्वरूप और राम—गुप्तजी ने साकेत के प्रथम सर्ग में प्रारम्भ में ही यह स्वीकार किया है कि ब्रह्म निर्गुण एवं सगुण दो रूपों में होता है। वही अविनाश ब्रह्म भू भार दूर करने के लिए निर्गुण से सगुण होता है।[165] साकेत के अष्टम सर्ग में भी राम को ब्रह्म का सगुण स्वरूप कहा गया है। ईश्वर के सभी अनन्त गुण उनमें विद्यमान हैं। ब्रह्म की शक्ति के समान सीता को भी जगत की सृष्टिकारिणी माया के रूप में कवि ने चित्रित किया है

उस सीता को निज मूर्ति मति माया को
प्रणय प्राणों को और कान्तकाया को।[166]

साकेत के राम पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं। वे जड़ को भी चेतन करने की सामर्थ्य रखते हैं।[167] वे सत्य शिव सुन्दरम् की साकार प्रतिमा हैं।[168] वे सर्वज्ञ

---

[164] साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २३४ ३५
[165] वही प्रथम सर्ग पृ० १८
[166] वही अष्टम सर्ग पृ० २२१
[167] वही पंचम सर्ग पृ० १४६
[168] वही सप्तम सर्ग पृ० २१८

और अन्तर्यामी है।[१६६] उनकी इच्छापूर्ति म ही सम्पूर्ण जगत का श्रय है।[२] इस प्रकार गुप्तजी क राम म ब्रह्म क सम्पूर्ण गुण हैं। जहाँ तक राम के सम्प्रदायगत दार्शनिक स्वरूप का प्रश्न है य विशिष्टाद्वैतवाद क सन्निकट हैं। ब्रह्म की इस कल्पना क मूल म गुप्तजी क पारिवारिक संस्कार भी सहायक रहे है। डॉ० उमाकान्त गोयल न लिखा है कि— रामानुजाचार्य की परम्परा म रामानन्द द्वारा प्रचारित एवं संशोधित श्री सम्प्रदाय स इनके परिवार का सर्वाधिक सम्बन्ध रहा है।[२१] इसलिए गुप्तजी ब्रह्म क विषय म विशिष्टाद्वैतवाद की मान्यताओ क समर्थक दिखायी दत हैं।

(ब) जीव—विशिष्टाद्वैत के अनुसार जीव ब्रह्म का अंश है। गोस्वामी तुलसीदास न भी कहा है कि ईश्वर अंश जीव अविनाशी (रामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा संख्या ११६ के पश्चात)। साकेत की उर्मिला भी कहती है उर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नया।[२२] विशिष्टाद्वैतवादी जहाँ ब्रह्म को स्वतन्त्र व सर्वज्ञ मानते हैं वहाँ जीव को परतन्त्र और अंश। साकेत म भरत भी यही कहते है

हा! अमर भी मृत्यु कम्पित जीव
मुक्त होकर भी अधीन अतीव।[२३]

जीव की कर्मानुसार गति है और वह पूर्व जन्म क अनुसार ही संसार म सुख दुःख भोगता है। साकेत क लक्ष्मण भी कहते है कि

सब भाग्य का ही भोग है
किन्तु भाग्य भी पूर्व कर्म का योग है।[२४]

इस प्रकार जीव के बन्धन सांसारिक दुःख भोग की प्रवृत्ति एवं ब्रह्म म अभिन्नता का वर्णन गुप्तजी ने विशिष्टाद्वैतवाद के दर्शन स प्रभावित होकर ही किया है।

(स) जगत—विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जगत को सत्य और ईश्वर को अभिन्न अंश माना गया है। साकेतकार न भी जगत को कर्म क्षेत्र कहते हुए निरंतर स्थित रहने वाला बताया है। गुरु वशिष्ठ के शब्दों म

---

१६६ साकेत अष्टम सर्ग पृ० २५२

२ वही नवम सर्ग पृ० ३४०

२१ डा० उमाकान्त गोयल मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता पृ ४१६

२२ साकेत नवम सर्ग पृ० ३२५

२३ वही सप्तम सर्ग पृ० १६४

२४ वही पंचम सर्ग पृ० १५३

सन्त कर्म क्षेत्र है नर लोक । [२०४]

जगत का नियंता ब्रह्म है जो संसार के काम व्यापारों का संचालन करता है । गुप्तजी ने भी कहा है

ईश के इंगित के अनुसार हुआ करते हैं सब व्यापार । [२०५]

संसार के दुःखमय स्वरूप की ओर कवि ने निम्न शब्दों में संकेत किया है

इस भव पर है अमित विनाश तना सदा
जिसके नभ में दुःख शोक भय आपदा ॥ [२०७]

सृष्टि की रचना ब्रह्म की लीला और क्रीडा के लिए होती है । साकेतकार ने भी यही कहा है—लोकेश लीला धाम ने संसार को पथ निर्माण के लिए ही यह खेल किया है । [२०८]

विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार माया जीव और ब्रह्म में भेद उत्पन्न किया करती है । साकेत में इसी का वर्णन करते हुए लक्ष्मण गुहनिषाद से कहते हैं कि

जीव और प्रभु मध्य अड़ी माया बड़ी
यह दुरत्यया और शक्तिशाली बड़ी । [२०९]

इस प्रकार जीव जगत सृष्टि माया और ब्रह्म विषयक साकेतकार के दार्शनिक विचारों को देखने से यही प्रतीत होता है कि साकेत की दार्शनिक पृष्ठभूमि के निर्माण में विशिष्टाद्वैतवाद का प्रमुख स्थान रहा है ।

साकेत महाकाव्य की भक्ति और दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने साकेतिक रूप में ही दार्शनिक प्रणालियों को काव्य में यत्र-तत्र स्थान दिया है । साकेत का दर्शन वस्तुतः दर्शन नहीं, जीवन-दर्शन है । क्योंकि साकेत जैसा कि पहले कहा गया जीवन काव्य है । युग की प्रमुख प्रचलित विचारधाराओं से प्रभावित होकर इसके जीवन-दर्शन का निर्माण हुआ है । एक शब्द में साकेत के जीवन-दर्शन को मानवतावादी कहा जा सकता है । मानवतावाद वर्तमान युग की वह विचारणा है जिसके निर्माण में युग के उस सम्पूर्ण उन्नत चिन्तनबोध का योगदान रहा है जो मानव के मंगल विधायक तत्वों से अनुप्राणित है ।

---

[२०४] साकेत, सप्तम सर्ग पृ० २१२
[२०५] वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ५६
[२०७] वही, पंचम सर्ग पृ० १४१
[२०८] वही, प्रथम सर्ग पृ० १८
[२०९] वही, पंचम सर्ग पृ० १४२

जीवन दर्शन पर युगीन विचारधाराओं का प्रभाव

१ गांधीवादी विचारधारा—जिस समय साकेत की रचना हुई थी उस समय गांधीजी के व्यक्तित्व और विचार दर्शन का प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय जन जीवन और चेतना पर व्याप्त था। यद्यपि गांधीजी ने कभी भी यह नहीं कहा कि उन्होंने किसी नयी दार्शनिक या वचारिक परम्परा को जन्म दिया है जो गांधीवाद कहलाये तो भी उनका व्यक्तित्व इतना महान् था कि उन्होंने जिन जन जीवनादर्शों और व्यापक मानवीय विश्वासों को अपनाया और आचरण के रूप में स्वीकार किया वे ही कालान्तर में गांधीवाद की संज्ञा पा गये। गांधीवाद के दार्शनिक आधार हैं—सत्य अहिंसा आस्तिकता नीतिमूलक धार्मिक आचरण सामाजिक दृष्टि से समभाव और सुधारवाद (जिसके अन्तर्गत अछूत अस्पृश्य जातियों का उद्धार सम्मिलित है) आर्थिक दृष्टि में सर्वोदय और समान वितरण और राजनीतिक दृष्टि में रामराज्य के आदर्शों का साकार करना गांधीवादी विचारधारा की प्रमुख विशेषताएं हैं। गुप्तजी के साहित्य में यह विचारधारा पूर्ण रूप से पायी जाती है। साकेत में गांधीवाद के प्रायः सभी आदर्श किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं। साकेत की सीता गांधीजी के आदर्शों के अनुरूप कोल भिल्ल बालाओं को नीची जाति के होते हुए भी प्रेमपूर्वक अपनाकर उन्हें कातना बुनना सिखाती है (अष्टम सर्ग)। साकेत में राम वन गमन कर रहे हैं और जब प्रजाजन उनको रोकने के लिए रथ के आगे लेट जाते हैं तो उनकी भावना में गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन की स्पष्ट छाप दिखायी देती है (पंचम सर्ग)। साकेत के राम गांधीजी की भांति शोषित और पीड़ितों का दुःख दूर करने के लिए हैं। उनमें अपरिग्रह की भावना विद्यमान है। वे कहते भी हैं—मैं यहां जोड़ने नहीं बांटने आया।[२१]
इसी प्रकार साकेत में गांधीवाद की अन्य सामाजिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएं भी मिलती हैं। गुप्तजी पर गांधीवाद का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था है—वैज्ञानिक पदार्थवादी नास्तिकता के विरुद्ध आध्यात्मिकता और आस्तिकता गांधीवाद के प्रधान लक्षण हैं भक्ति उसमें व्याप्त है समस्त गांधीवाद बौद्धिक मानव का आध्यात्मिक परिष्कार करता है और वह आर्थिक मूल्यों के स्थान पर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है।[२११] गांधीवाद की

---

२१ साकेत अष्टम सर्ग पृ २३४

२११ डा० सत्येन्द्र समीक्षात्मक निबन्ध, पृ १४४

उपर्युक्त सम्पूर्ण विशेषताएं गुप्तजी ने स्वीकार की है और उनका व्यावहारिक रूप साकेत में प्रतिपादित भी किया है।

२ साम्यवादी विचारधारा—साकेत पर साम्यवादी विचारधारा के आधारभूत सिद्धान्तों का भी प्रभाव दिखायी देता है। साम्यवादी समाज में जिस समानता आर्थिक समता और वर्गहीनता का समर्थन है साकेत में गुप्तजी ने उसका न्यूनाधिक रूप में समर्थन किया है। साकेत के सामाजिक जीवन में सभी वर्ग के लोगों का समान महत्त्व है। एकादश सर्ग में शत्रुघ्न भरत के समक्ष राज्य की व्यवस्था का वर्णन करते हुए सामाजिक जीवन के सम विकास की चर्चा करते हैं।[२१२] साकेत के राम निम्न वर्ग के लोगों को (वन में रहने वाले लोग जो रीछ और वानरों की तरह रहते हैं) सामाजिक समानता का अधिकार प्राप्त कराते हैं।[२१३] साकेत का कवि समाज के लिए व्यक्ति बलिदान को महत्त्व देता है। साकेत के राम कहते हैं—हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।[२१४] वास्तव में साकेतकार साम्यवाद की राजनीतिक विचारधारा या क्रान्तिकारी साधनों द्वारा लक्ष्य प्राप्ति का समर्थक नहीं है। साकेतकार ने साम्यवाद के उग्र नहीं वरन् सहज और स्वाभाविक सिद्धान्तों को ही स्वीकार किया है।

३ राष्ट्रवादी विचारधारा—गुप्तजी राष्ट्रीय कवि हैं। राष्ट्रीयता की भावना उनके काव्य में सर्वत्र दिखायी देती है। विश्वबन्धुत्व की भावना से अनुप्रेरित होकर भी स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय गौरव को कभी भी नहीं भूले, किन्तु उनकी राष्ट्रीयता सकुचित मनोवृत्तियों का परिणाम न होकर व्यापक सांस्कृतिक विश्वासों से पूर्ण है। गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना के जो सूत्र साकेत में बिखरे हुए हैं वे निम्न प्रकार हैं

१ भारतीय अतीत के गौरव का आख्यान

२ मातृभूमि के प्रति सम्मान का भाव,

३ स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष।

'साकेत में भारत की गौरवपूर्ण परम्पराओं, राष्ट्रीय महत्त्व के प्रतीकों (जैसे हिमालय सरयू आदि) के प्रति सम्मान की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। साकेत की उर्मिला युद्ध के लिए आह्वान करती हुई कहती है कि

---

२१२ साकेत एकादश सर्ग पृ० ४०६ ४०७

२१३ वही, अष्टम सर्ग पृ० २५

२१४ वही अष्टम सर्ग पृ० २३१

हिमालय का भाल नहीं झुकना चाहिए गंगा जमुना सिन्धु और सरयू के पानी की मर्यादा कम नहीं होनी चाहिए

विन्ध्य हिमालय भाल भला झुक जाय न धीरा
चन्द्र सूर्य कुल की रीत कला रह जाय न वीरा।
चढ़ कर उतर न जाय सुनो कुल मौक्तिक माना
गंगा यमुना सिन्धु और सरयू का पानी॥ [२१५]

साकेत में गुप्तजी ने राम और रावण के युद्ध को भी राष्ट्रीय युद्ध का रूप दिया है। सीता का हरण भारतीय कुल लक्ष्मी का हरण कहा गया है

राक्षसियों से घिरी हमारी देवी सीता
बन्दीगृह में बाट जोहती खड़ी हुई है।
× × ×
पर धर इस भूमि पर पामर पापी
कुल लक्ष्मी का हरण करे वे सहज सुरापी
भरना उनका रुधिर करलो उनका तरपण॥ [२१६]

भरत भी उसी प्रकार के उद्गार व्यक्त करते हैं

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में
सिन्धु पार वह विलख रही है व्याकुल मन में। [२१७]

वस्तुत साकेत के रचनाकाल में भारतवर्ष परतन्त्र था व्यंजना से उपयुक्त पंक्तियों में गुप्तजी ने सीता के रूप में भारतमाता के बंधन की ही बात कही है। जहाँ तक परतन्त्रता की भावना का सम्बन्ध है साकेतकार ने राष्ट्रीय प्रेम के कारण भी आर्य संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ कहा है। राम रावण युद्ध भी एक प्रकार से आर्य और कौणप संस्कृतियों का युद्ध था जिसमें आर्य संस्कृति ही विजयी हुई। इस प्रकार साकेत में गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना पूर्णत व्यक्त हुई है।

४ **मानवतावादी विचारधारा**—साकेत के जीवन-दर्शन को प्रभावित करने वाली सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विचारधारा मानवतावाद की है। सम्पूर्ण काव्य में जिस जीवन दर्शन को कवि ने स्वीकार किया है वह मानव-कल्याण और विश्वबंधुत्व की भावनाओं से अनुप्राणित है। सर्वप्रथम गुप्तजी ने अपने इष्टदेव राम को ही मानव कहा है। साकेत के राम मानव की महत्ता का

---

[२१५] साकेत द्वादश सर्ग पृ० ४७४ ७५
[२१६] वही पृ ४७१ ७२
[२१७] वही पृ० ४५४

स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हैं। प्रभु का अवतार भी मानवता की रक्षा के लिए ही हुआ है। साकेत में कवि का हृदय ईश्वर के गुणगान में इतना तल्लीन नहीं दिखाई देता जितना कि वह मानवता के प्रेम में निमग्न है, उसकी प्रशंसा में लीन है तथा उसकी उन्नति के लिए प्रयत्नशील है।[२१८] गुप्तजी ने राम के चरित्र में भी मानव के ईश्वरत्व का निरूपण किया है। राम का चरित्र मानवीय सद्गुणों के कारण महत्त्वपूर्ण है। साकेत के राम अवतार होने के कारण हमारी श्रद्धा के पात्र नहीं वरन उस सन्देश के कारण हैं जिसमें वे नर को ईश्वरता प्राप्त कराकर भूतल को ही स्वर्ग बनाने के लिए कृतसंकल्प हैं। श्री वाजपेयी जी के शब्दों में— साकेत में प्रथम बार मानव का उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर ईश्वर के समकक्ष लाकर रखा गया है जो मध्य युग में किसी प्रकार सम्भव न था। साकेत इसी कारण हिन्दी की प्रथम मानवतावादी या आत्म मानवतावादी रचना है।[२१९]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गुप्तजी का मानवतावाद एक विशिष्ट कोटि का है। उसमें मानव महिमा की स्वीकृति है, मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा का आग्रह है और मानवता के मंगल विधान का प्रयास भी है, किन्तु मानव की सर्वोपरिता के प्रति गुप्तजी आश्वस्त नहीं हैं। मानवतावाद की नवीन विचारधारा के अनुसार मानव ही सर्वोपरि है। वह सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मनुष्य किसी कल्पित सत्ता या शक्ति के अधीन नहीं, वह स्वयं अपने भाग्य का विधाता और निर्माता है। प्रकृति की सम्पूर्ण उपलब्धियों पर उसका एकछत्र साम्राज्य है किन्तु गुप्तजी इस प्रकार के मानवतावादी दृष्टिकोण को साकेत में स्वीकृत नहीं कर सके हैं। वे मानव में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करके भी ईश्वर को नहीं भुला सके हैं, मनुष्य के पुरुषार्थ के प्रति आस्थावान होकर भी भाग्य और प्रारब्ध के निर्णय को नहीं छोड़ सके हैं। अस्तु गुप्तजी का मानवतावादी दृष्टिकोण नितान्त नवीन और युगीन नहीं कहा जा सकता। उसमें बौद्धिकता के स्थान पर भावुकता की प्रधानता है। वास्तव में गुप्तजी भागवतीय मानवतावाद के प्रतीक कवि हैं।[२२] पारिवारिक एव संस्कारगत

---

[२१८] डॉ० नगेन्द्रप्रसाद साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० ८०

[२१९] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ६७

[२२] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत—भूमिका में—डॉ० कमलाकान्त पाठक द्वारा प्रणीत ग्रन्थ में—मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता भूमिका पृष्ठ क

प्रभावों के कारण गुप्तजी से वस्तुतः मानवतावादी जीवन-दर्शन के इसी रूप की अपेक्षा की जा सकती थी।

इस प्रकार साकेत की दार्शनिक भित्ति के निर्माण में प्राचीन और नवीन विभिन्न विचारधाराओं का योगदान रहा है। साकेत के जीवन-दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसमें कवि ने समन्वयवादी पद्धति को अपनाकर वेदान्त से लेकर गांधीवाद तक प्रचलित महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्तों का सफलता से समाहार किया है।

कामायनी

कामायनी

कथानक समीक्षा

कथासार—देव सृष्टि के अत्यधिक विलास की प्रतिक्रियास्वरूप महाप्रलय होती है जिसमें समस्त देव जाति का विनाश होता है। केवल मनु (देव जाति के ध्वंसावशेष) बचते हैं जो एक नौका में बैठे हुए हैं। प्रलयकाल का दृश्य बड़ा भयंकर है—जिसमें घनगर्जन, झंझा का ताण्डव नर्तन, चपलाओं का क्रन्दन, ज्वालामुखियों का विस्फोट, पंचभूतों का भैरव नृत्य और समुद्र का मर्यादा उल्लंघन कर समस्त पृथ्वी को जल निमग्न कर देना है। मनु की नाव महामत्स्य के एक थपेड़ से एक गिरि शिखर के किनारे जा लगती है।

प्रथम (चिन्ता) सर्ग में मनु हिमगिरि के उत्तुंग शृंग पर बैठे हुए चिन्ता निमग्न हैं। वे देव सृष्टि के ध्वंस और प्रलय के उपरान्त जलप्लावन के दृश्य को देखकर कातर हैं। द्वितीय (आशा) सर्ग में आशा नामक प्रवृत्ति का उदय उनके हृदय में होता है। उधर सूर्य की किरणों के उदय से कालरात्रि पराजित होकर जल में अन्तर्निहित हो जाती है। मनु एक गुहा में अग्निहोत्र के कार्य में निरत होकर कर्ममयी संस्कृति का अभ्युदय करने का उपक्रम करते हैं। मनु के मन में अपार वेदना है जिसकी चोट हृदय को कचोटती है। जीवन की आशा निराशा का द्वन्द्व उनके हृदय को आन्दोलित किये है। तृतीय (श्रद्धा) सर्ग में मनु की कामकन्या कामायनी अर्थात् श्रद्धा से भेंट हो जाती है। श्रद्धा उन्हें दया, माया, ममता और सहानुभूति समर्पित करती है। श्रद्धा के सामीप्य से मनु के मन का एकाकीपन का दुःख समाप्त हो जाता है और वे भविष्य की मधुरिम कल्पना करते हैं। चतुर्थ (काम) सर्ग में अनंग की ध्वनि मनु स्वप्न में सुनते हैं जहाँ कामदेव मनु को कहते हैं कि वह अपने को श्रद्धा के योग्य बनावें और दोनों के संयोग से नवीन सृष्टि का विधान होगा। पंचम (वासना) सर्ग में मनु के मन में वासना का अभ्युदय होता है और वे कामकन्या श्रद्धा के रूप सौन्दर्य पर आसक्त हो आत्मविस्मृत हो जाते हैं। षष्ठ (लज्जा) सर्ग में श्रद्धा के नारी व्यक्तित्व में लज्जा भाव का जागरण होता है जिसके कारण मनु के प्रति आत्मसमर्पण में उसे संकोच होता है। अन्ततोगत्वा वह मनु के जीवन विकास

की गर्भिणी बन जाती है। सप्तम (कर्म) सर्ग में मनु यज्ञनिरत होते हैं। वे प्रलय रात्रि से बचे आकुलि और किलात नामक पुरोहितों की सहायता से यज्ञ करते हैं जिसमें श्रद्धा द्वारा पालित पशु की बलि दी जाती है। मनु की हिंसक प्रवृत्ति से श्रद्धा के मन में क्षोभ उत्पन्न होता है। किन्तु मनु विनय भाव से श्रद्धा को सन्तुष्ट कर लेते हैं। अष्टम (ईर्ष्या) सर्ग में गर्भिणी श्रद्धा आगन्तुक (होने वाले शिशु) की भावना से कुटिया बनाती है तथा तकली से सूत कातकर वस्त्र बनाती हुई व्यस्त रहती है। श्रद्धा का उपेक्षा भाव मनु को असह्य हो जाता है। वे भावी शिशु से ईर्ष्या करने लगते हैं और यहाँ तक कि श्रद्धा को अकेली छोड़ चले जाते हैं। नवम (इड़ा) सर्ग में मनु को प्रथम तो काम का स्वर सुनायी देता है जिसमें कहा गया है कि तुम श्रद्धा को भूल गये। फिर वे सारस्वत प्रदेश में आते हैं। वहाँ इड़ा उनका स्वागत-सम्मान करती है। वे सारस्वत प्रदेश के शासक बन जाते हैं। दशम (स्वप्न) सर्ग में श्रद्धा अपने पुत्र मानव के साथ एकान्त और उदास जीवन बिताती है। एक दिन स्वप्न में श्रद्धा देखती है कि मनु सारस्वत प्रदेश में इड़ा के अधीन हो वहाँ के शासक बने हैं। मनु इड़ा पर मोहित हो उसे पाना चाहते हैं तभी प्रजा विद्रोह कर देती है। श्रद्धा स्वप्न से भयभीत हो जाती है। एकादश (संघर्ष) सर्ग में श्रद्धा का स्वप्न साकार हो जाता है। मनु की स्वच्छाचारिता प्रजा के अत्यधिक क्षोभ का कारण बन जाती है। आकुलि और किलात जो प्रजा के नेता हैं से मनु युद्ध में घायल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं। द्वादश (निर्वेद) सर्ग में इड़ा के मन में ग्लानि भाव पैदा होता है। श्रद्धा मनु को ढूँढ़ती हुई वहीं आ जाती है जहाँ मनु मूर्च्छित हैं। वह करुणा से आप्यायित होकर मनु को सहलाती है। श्रद्धा के कुसुम कोमल स्पर्श से मनु जागते हैं किन्तु श्रद्धा से लज्जित एवं इड़ा के प्रति विरक्ति के कारण वे भाग जाते हैं। त्रयोदश (दर्शन) सर्ग में श्रद्धा मानव को इड़ा को सौंपकर मनु की खोज में चल देती है। मनु उसे सरस्वती नदी के तट पर एक गुहा में मिल जाते हैं। मनु पश्चात्ताप प्रकट करते हैं। श्रद्धा का पुनर्मिलन उन्हें आनन्दित भी करता है। श्रद्धा के सम्मुख गुहा के निविड़तम में वह नर्तित नटेश के दिव्य रूप का दर्शन कर विमुग्ध हो जाते हैं। चतुर्दश (रहस्य) सर्ग में श्रद्धा के साथ मनु आनन्द की खोज में चल देते हैं। श्रद्धा उन्हें विविध लोक दिखाती हुई त्रिपुर में ले जाती है जहाँ वे निराधार स्थित हैं। मनु के पूछने पर श्रद्धा (इच्छा, ज्ञान और कर्मलोक) नाम त्रिपुरा का रहस्य समझाती है कि तीनों के पृथक्-पृथक् रहने के कारण ही मन की इच्छा पूर्ण नहीं होती। तभी श्रद्धा के स्मित हास्य से महाज्योति

से ऐसा निकालकर ताना बिन्दुओं को लय कर देती है। संसार में निर्वाण पूरित हो जाता है। श्रद्धा और मनु आनन्द की भूमिका पर स्थित हो जाते हैं। पश्चात् (आनन्द) सर्ग में इडा कुमार मानव और प्रजा सहित वहाँ पहुँच जाती है। वहाँ समरसता की भाव महिमा के आगे अवनत हो कृतज्ञता प्रकट करती है। मानव भी श्रद्धा की गोद में ही शांति पाता है। मनु समरसता का उपदेश देते हुए आनन्द की भूमा में लीन हो जाते हैं।

कथात्मक आधार

कामायनी की यह अत्यल्प वस्तु सम्पूर्ण महाकाव्य को आबद्ध किये हुए है। कथा के प्रमुख सूत्रों का सम्बन्ध मनु, श्रद्धा तथा इडा नामक पात्रों से है जिनके कथात्मक सूत्र भारतीय वाङ्मय के विभिन्न ग्रन्थों में बिखरे पड़े हैं। वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत एवं अनेक सम्प्रदायगत ग्रन्थों में मनु की कथा मिलती है। प्रसादजी ने कथा संयोजन के लिए सभी ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन करने के उपरान्त कामायनी की काव्य-वस्तु का संयोजन किया है। कामायनी महाकाव्य के आमुख में कवि ने कथा संयोजन सूत्रों का स्पष्ट और सप्रमाण उल्लेख किया है। प्रसादजी ने कहा है कि—

आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहास में बिखरा हुआ मिलता है। मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध इन्हीं के वंशज हैं।[1] स्पष्ट है कि कवि ने मनु के व्यापक आख्यान को कामायनी का कथात्मक आधार बनाया है। साथ ही कथा शृंखला और काव्यात्मक औचित्य के लिए उसने कल्पनाशक्ति का भी समुचित उपयोग किया है। "मैं कामायनी की कथा शृंखला को मिलाने के लिए कहीं-कहीं थोड़ा बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार नहीं छोड़ सका हूँ।"[2]

वस्तु के स्रोत

कामायनी में मनु से सम्बन्धित निम्नांकित कथाएँ हैं

१ जलप्लावन की घटना

२ मनु और श्रद्धा का मिलन

---

[1] कामायनी, आमुख पृ० १० (प्रथम संस्करण)

[2] वही, " " "

मनु और इडा का मिलन (सारस्वत प्रदेश में)
४ आनन्द की खोज में कैलाश भ्रमण।

१ जलप्लावन की घटना

इस घटना का उल्लेख स्थान विशेष के विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रकार से मिलता है। पुराणों में इस घटना का उल्लेख प्रलय के रूप में हुआ है। वहाँ प्रलय का अर्थ समस्त सृष्टि का ध्वंस, विनाश या समाप्ति है। विष्णु पुराण में नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक नाम से तीन प्रलयों का वर्णन है।[३] इसका उल्लेख ब्रह्म पुराण में भी है।[४] अग्नि पुराण[५] तथा श्रीमद्भागवत पुराण[६] में भी नैमित्तिक प्रलयों का उल्लेख है। मत्स्य पुराण[७] में इस कथा का विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त भविष्य पुराण[८] में मनु का नौका बनाकर प्रलय काल में रक्षा करने का उल्लेख है। जलप्लावन की घटना का वर्णन अन्य पुराणों में भी है।[९] महाभारत में जलप्लावन की घटना का बड़ा सुन्दर वर्णन प्राप्त है। वहाँ प्रथम तो महाप्रलय की भयंकर स्थितियों का वर्णन है तत्पश्चात मनु, सप्तर्षि और समस्त बीजों के बीच एक नौका में बच जाते हैं। ब्रह्मा के कथनानुसार मनु सृष्टि रचना करते हैं।[१०] डा० द्वारिकाप्रसाद ने अपने शोध प्रबन्ध में संसार के विभिन्न देशों और धर्मग्रन्थों की जलप्लावन सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन किया है और बतलाया है कि किस प्रकार बाइबिल और कुरान की कथाओं का शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थों से साम्य है।[११] किन्तु जलप्लावन की घटनाओं तथा कामायनी में उल्लिखित एतद् विषयक वर्णनों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कामायनीकार ने पूर्णतः भारतीय ग्रन्थों को ही आधार बनाया है।

मनु से सम्बन्धित घटनाएँ भी भारतीय ग्रन्थों से ही ली गयी हैं। मनु का

---

३ विष्णु पुराण ६।३।१-२
४ ब्रह्म पुराण २३१।१
५ अग्नि पुराण २।८।२
६ श्रीमद्भागवत पुराण ८।२४।७
७ मत्स्य पुराण १।१०।३४
८ भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व ३।४।१-५४
९ पद्म पुराण १।३६, स्कन्द पुराण (वैष्णव खण्ड), वायु पुराण सृष्टि प्रकरण अध्याय ६६
१० महाभारत वनपर्व १८७।२-५५
११ डा० द्वारिकाप्रसाद, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ५८-६३

उल्लेख वेद में भी हुआ है। पुराणों में चौदह मन्वन्तरों की कल्पना है। प्रत्येक में एक एक मनु अर्थात् स्वयंभू, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, ववस्त, सावर्णि, भौत्य, रौच्य तथा चार सस्मावर्ण नामक मनुओं का उल्लेख है।[12] वेदों तथा अन्य ग्रन्थों में भी मनु के अनेक रूपों का उल्लेख है। वास्तव में भारतीय साहित्य में मनु के दो रूप मिलते हैं—एक तो प्रजापति मनु और दूसरे स्मृतिकार मनु। विद्वानों में इस मत पर वभिन्न है कि प्रजापति और स्मृतिकार मनु एक हैं या नहीं। शंभु श्रीमती महादेवी वर्मा के अनुसार—'वह मैं मनु की स्थिति की परीक्षा के उपरान्त यह मानने के लिए बहुत अवकाश रह जाता है कि मनुस्मृति के प्रणेता और मन्वन्तर के प्रवर्तक भिन्न हो सकते हैं।'[13] इस सम्बन्ध में प्रसादजी का मत यह है कि— मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गयी है। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानना ही उचित है।[14]

कामायनी का कथा विधान प्रसादजी के कल्पनाविलास का परिणाम है। पुराणों में इतिहास का तत्त्व अवश्य है किन्तु अतिरंजित या अलौकिक रूप में। डा० शम्भुनाथसिंह का यह कथन ठीक ही है कि—'पौराणिक कथाओं में ऐतिहासिक सत्य छिपा रहता है। अतः प्रसादजी ने पुराणों में वर्णित कथाओं को तर्क के आधार पर ऐतिहासिक सत्यों के रूप में स्वीकार किया है।[15] इसका प्रमाण यह है कि जलप्लावन एवं मन्वन्तर को उन्होंने पुराण कथाओं से भिन्न रूप में लिया। अतः कथा-संयोजन में प्रसादजी का दृष्टिकोण पौराणिक न होकर ऐतिहासिक और वैज्ञानिक था।[16]

२ श्रद्धा और मनु का मिलन

श्रद्धा मनु की कथा का आधार वह पुराण है। मनु की भाँति श्रद्धा के विषय में भी वैदिक ग्रन्थों में भिन्न भिन्न उल्लेख हैं। प्रसादजी ने कामायनी के आमुख में श्रद्धा विषयक विभिन्न स्रोतों को उद्धृत किया है। ऋग्वेद के कामगोत्रज सूक्त में श्रद्धा को दुहिता तपन कहकर श्रद्धा को सूर्य की पुत्री

[12] संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक (कल्याणांक) पृ० २८३

[13] गंगाप्रसाद पाण्डेय, कामायनी : एक परिचय भूमिका पृ० १

[14] कामायनी आमुख पृ० १

[15] डॉ० शम्भुनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ६६८-६६९

[16] वही, पृ० ५७

३ मनु और इड़ा का मिलन (सारस्वत प्रदेश में)
४ आनन्द की खोज में कैलाश गमन।

१ जलप्लावन की घटना

इस घटना का उल्लेख स्थान विशेष के विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रकार से मिलता है। पुराणों में इस घटना का उल्लेख प्रलय के रूप में हुआ है। वहाँ प्रलय का अर्थ समस्त सृष्टि का ध्वंस, विनाश या समाप्ति है। विष्णु पुराण में नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक नाम के तीन प्रलयों का वर्णन है।[3] इसका उल्लेख ब्रह्म पुराण में भी है।[4] अग्नि पुराण[5] तथा श्रीमद्भागवत पुराण[6] में भी नैमित्तिक प्रलयों का उल्लेख है। मत्स्य पुराण[7] में इस कथा का विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त भविष्य पुराण[8] में मनु का नौका बनाकर प्रलय काल में रक्षा करने का उल्लेख है। जलप्लावन की घटना का वर्णन अन्य पुराणों में भी है।[9] महाभारत में जलप्लावन की घटना का बड़ा सुन्दर वर्णन प्राप्त है। यहाँ प्रथम तो महाप्रलय की भयंकर स्थितियों का वर्णन है तत्पश्चात मनु, सप्तर्षि और समस्त विप्रों के बीच एक नौका में बच जाते हैं। ब्रह्मा के कथनानुसार मनु सृष्टि रचना करते हैं।[10] डा० द्वारिकाप्रसाद ने अपने शोध प्रबंध में संसार के विभिन्न देशों और धर्मग्रंथों की जलप्लावन सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन किया है और बतलाया है कि किस प्रकार बाइबिल और कुरान की कथाओं का शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थों से साम्य है।[11] किन्तु जलप्लावन की घटनाओं तथा कामायनी में उल्लिखित एतद् विषयक वर्णनों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कामायनीकार ने पूर्णतः भारतीय ग्रन्थों को ही आधार बनाया है।

मनु से सम्बन्धित घटनाएँ भी भारतीय ग्रन्थों से ही ली गयी हैं। मनु का

---

३ विष्णु पुराण ६।३।१२
४ ब्रह्म पुराण २३१।१
५ अग्नि पुराण २।८।२
६ श्रीमद्भागवत पुराण ८।२४।७
७ मत्स्य पुराण १।१०।३४
८ भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व ३।४।१ ५४
९ पद्म पुराण १ ३६, स्कन्द पुराण (वैष्णव खण्ड), वायु पुराण, सृष्टि प्रकरण अध्याय ६६
१० महाभारत वनपर्व १८७।२ ५५
११ डा० द्वारिकाप्रसाद : कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० ५८–६३

उल्लेख वेदों में भी हुआ है। पुराणों में चौदह मन्वन्तरों की कल्पना है। प्रत्येक में एक एक मनु अर्थात स्वयंभू स्वारोचिष उत्तम तामस रैवत चाक्षुष वैवस्वत, सावर्णि भौत्य रौच्य तथा चार सम्भावण्य नामक मनुओं का उल्लेख है।[12] वेदों तथा अन्य ग्रन्थों में भी मनु के अनेक रूपों का उल्लेख है। वास्तव में भारतीय साहित्य में मनु के दो रूप मिलते हैं—एक तो प्रजापति मनु और दूसरे स्मृतिकार मनु। विद्वानों में इस मत पर वभिन्य है कि प्रजापति और स्मृतिकार मनु एक हैं या नहीं। [illegible] श्रीमती महादेवी वर्मा के अनुसार—'वेद में मनु की स्थिति की परीक्षा के उपरान्त यह मानने के लिए बहुत अवकाश रह जाता है कि मनुस्मृति के प्रणेता और मन्वन्तर के प्रवर्तक भिन्न हो सकते हैं।[13] इस सम्बन्ध में प्रसादजी का मत यह है कि— मन्वन्तर के अर्थात मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गयी है। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानना ही उचित है।[14]

कामायनी का घटना विधान प्रसादजी के कल्पनाविलास का परिणाम है। पुराणों में इतिहास का तत्त्व अवश्य है किन्तु अतिरंजित या अलौकिक रूप में। डा० शम्भुनाथसिंह का यह कथन ठीक ही है कि— पौराणिक कथाओं में ऐतिहासिक सत्य छिपा रहता है। अतः प्रसादजी ने पुराणों में वर्णित कथाओं को तर्कों के आधार पर ऐतिहासिक सत्यों के रूप में स्वीकार किया है।[15] इसका प्रमाण यह है कि जलप्लावन एवं मन्वन्तर का उत्थान पुराण कथाओं से भिन्न रूप में लिया। अतः कथा-संयोजन में प्रसादजी का दृष्टिकोण पौराणिक नहीं ऐतिहासिक और वैज्ञानिक था।[16]

२ श्रद्धा और मनु का मिलन

श्रद्धा मनु की कथा का आधार वेद पुराण है। मनु की भाँति श्रद्धा के विषय में भी वैदिक ग्रन्थों में भिन्न भिन्न उल्लेख हैं। प्रसादजी ने कामायनी के आमुख में श्रद्धा विषयक विभिन्न स्रोतों को उद्धृत किया है। ऋग्वेद के वार्तिग्नीय सूक्त में श्रद्धा या कहीं लक्ष्य करके श्रद्धा को सूर्य की पुत्री

---

[12] संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक (कल्याणांक) पृ० २८३

[13] गंगाप्रसाद पाण्डेय कामायनी एक परिचय, भूमिका, पृ० १

[14] कामायनी आमुख, पृ० १

[15] डॉ० शम्भुनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ५६८ ६९

[16] वही पृ० ५७

कहा गया है।[१७] यजुर्वेद[१८] एवं शतपथ ब्राह्मण[१९] में भी श्रद्धा को सूर्य की दुहिता कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में श्रद्धा को काम की पुत्री तथा काम की माता कहा गया है।[२०] पुराणों में श्रद्धा को दक्ष प्रजापति की पुत्री माना गया है।[२१] श्रीमद्भागवत महापुराण में मानवोत्पत्ति मनु और श्रद्धा से ही मानी गयी है।[२२] जहाँ तक श्रद्धा के काम की पुत्री होने का प्रश्न है इसके लिए प्रसादजी ने ऋग्वेद को आधार रूप में ग्रहण किया है। श्रद्धा को अनुक्रमणिका में उसके कामगोत्र में उत्पन्न होने के कारण कामायनी कहा गया है।[२३] श्रद्धा और मनु के विवाह के विषय में भी भिन्न भिन्न मत हैं। कहीं वह सत्य की पत्नी और कहीं धर्म की पत्नी मानी गयी है।[२४] इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत पुराण का उल्लेख अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि वहाँ स्पष्ट रूप से श्रद्धा को वैवस्वत मनु की पत्नी कहा गया है।[२५] और प्रसादजी ने भी इसी दृष्टिकोण को अपनाया है। इसी पुराण में यह भी कहा गया है कि श्रद्धा और मनु के संयोग से दस पुत्र हुए।[२६] प्रसादजी ने भी मानव सृष्टि का विकास श्रद्धा और मनु से ही बताया है। स्पष्ट है कि प्रसादजी ने इन्हीं पौराणिक आधार पर श्रद्धा मनु के मिलन प्रसंग की सृष्टि की है।

[१७] ऋग्वेद ९।१।६

[१८] यजुर्वेद १९।४

[१९] शतपथ ब्राह्मण १२।७।३।११

[२०] श्रद्धा देवा प्रथमजा ऋतस्य। तैत्तिरीय ब्राह्मण ।१२।१ २
श्रद्धा कामस्य मातरम्। तैत्तिरीय ब्राह्मण २।८।८।८

[२१] मार्कण्डेय पुराण, ५०।१९।२० विष्णु पुराण १।७

[२२] ततो मनुः श्रद्धादेव संज्ञायामास भारत।
श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रान् स आत्मवान्॥ भागवत स्कन्ध, ९।१।११

[२३] काम गोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका तथा चानुक्रम्यते। श्रद्धया श्रद्धा कामायनी श्राद्धमानुष्टुप् भर्त्विति। ऋग्वेद १०।१५६ (अनुक्रमणिका)

[२४] ऐतरेय ब्राह्मण ७।२।१०

[२५] मार्कण्डेय पुराण, ५०।२१ विष्णु पुराण १।७

[२६] श्रीमद्भागवत पुराण ९।१।१४

[२७] ततो मनुः श्रद्धादेव संज्ञायामास भारत।
श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रान् स आत्मवान्॥
श्रीमद्भागवत पुराण, ९।१।११

इसके अनन्तर निर्जन प्रदेश में सृष्टि के पुनरारम्भ के लिए श्रद्धा और मनु मिलकर प्रयत्नरत होते हैं। इसी बीच आकुलि और किलात नाम के दो असुर पुरोहितों से मनु का साक्षात्कार होता है जिनके परामर्श पर मनु पशु यज्ञ करते हैं जिसमें श्रद्धा द्वारा पालित पशु की बलि दे दी जाती है। इन घटनाओं का पुराणों में विवेचन नहीं क्योंकि इनका आधार यजुर्वेद ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं।

मनु के पशु-बलि-कर्म से श्रद्धा का रूठ जाना गर्भवती होना और तदनन्तर भावी सन्तति के लिए ऊनी वस्त्र एवं सुन्दर कुटीर आदि का निर्माण करना कवि-कल्पना प्रसूत है। इन वर्णनों का आधार पौराणिक या ऐतिहासिक नहीं है।

३ मनु और इड़ा मिलन (सारस्वत प्रदेश में)

मनु के मन में वासना की अग्नि प्रदीप्त होती है। वे श्रद्धा की गर्भावस्था से खिन्न रहते हैं। गर्भस्थ शिशु के प्रति मन में ईर्ष्या भाव जाग्रत होता है। एक दिन वे गर्भवती श्रद्धा को छोड़कर उजाड़ सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं जहाँ की रानी इड़ा मनु को नगर का शासक नियुक्त करती है। मनु के प्रयासों से नगर समृद्ध एवं सम्पन्न बन जाता है। मनु इड़ा से अपनी वासना तृप्ति का प्रयास करते हैं जिसके कारण सारस्वत प्रदेश की जनता विद्रोह कर देती है। संघर्ष में मनु घायल होते हैं। उपर्युक्त घटनाओं में सारस्वत प्रदेश की स्थिति का ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधार प्राप्त होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से सरस्वती नदी का तटवर्ती प्रदेश सारस्वत प्रदेश है। ऋग्वेद में इस नदी का उल्लेख भी है। आधुनिक विद्वान पंजाब में बहने वाली नदी को सरस्वती मानते हैं किन्तु प्रमाणों से सम्पूर्णानन्द जी ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि सरस्वती नदी पश्चिमी अफगानिस्तान के पास गान्धार में बहती थी जहाँ सप्त सिन्धु प्रदेश था। अस्तु कधार के समीप स्थित प्रदेश को ही सारस्वत प्रदेश माना है।[२८]

जहाँ तक पुराणों का सम्बन्ध है वहाँ सरस्वती नदी का उल्लेख अवश्य है किन्तु सारस्वत प्रदेश का वर्णन नहीं है। पद्म पुराण में सरस्वती नदी की प्रशंसा मिलती है।[२९] स्कन्द पुराण में सारस्वत प्रदेश की द्वारावती नगरी नाम प्राप्त है।[३०] अन्य कुछ पुराणों में इलावृत वर्ष का उल्लेख मिलता है।[३१]

---

२८ कोशोत्सव-स्मारक संग्रह पृ० १७२ ७३

२९ पद्म पुराण सरस्वती आख्यान सृष्टि खण्ड अध्याय १८

३० स्कन्द पुराण, ब्रह्माण्ड धर्मारण्यमाहात्म्य अध्याय १८

३१ मार्कण्डेय पुराणांक (कल्याण) पृ० २०७ मत्स्य पुराण (हिन्दी अनुवाद) पृ० ९० वायु पुराण (हिन्दी) पृ० ११४ अग्नि पुराण अध्याय १०७ ८

जिसस प्रतीत होता है कि यह नाम न्द्रा स सम्बन्धित है। मनु न इडा के साथ जो अनीतिपूर्ण आचरण करन का उद्योग किया उसका वणन यहा म तो नहीं किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण स यथासाम्य रखता है। सारस्वत प्रदेश म जो जन विद्रोह चित्रित किया गया है यह रुद्री कोप का प्रतीक है

धूम कतु स चला रुद्र नाराच भयकर
लिय पूंछ म ज्वाला अपनी अति प्रलयकर
अतिरिक्ष म महाशक्ति हुकार कर उठी
सब शस्त्रो की धारें भीषण वग भर उठी।[32]

इस जनक्रान्ति का नतृत्व करत हुए असुर पुरोहित आकुलि और किलात को दिखाया गया है जिन्ह मनु धराशायी कर देत है यह प्रसग प्रसादजी की निजी कल्पना पर आधृत है। अन्त म मनु ही रुद्र बाण क प्रहार स मूर्छित हो जात है। मनु इडा मिलन और सारस्वत प्रदेश स सम्बन्धित कथा खण्ड म इडा और मनु का मिलन तथा मनु का इडा पर स्वच्छन्द प्रम आरोपित करन का प्रयत्न और दवी प्रकोप शतपथ ब्राह्मण के आधार पर और सारस्वत नगर म मनु का इडा को मार्गप्रदर्शन आदि ऋग्वेद पर आधारित घटनाए हैं। कवि न वन्कि आख्यान को कल्पना स सवारने का सुन्दर प्रयास किया है।

४ श्रद्धा-मनु का पुर्नमिलन और आनन्द की खोज मे कलाश भ्रमण

कामायनी महाकाव्य की कथा-वस्तु का अतिम अश प्रसादजी की दार्शनिक एव तत्त्व चिन्तक दृष्टि पर निर्मित हुआ है। यहां ऐतिहासिक तथ्यो का प्राय लोप है। इस कथाभाग म मनु नटराज शिव का ताण्डव करत हुए देखते हैं। उन्हे इच्छा ज्ञान और क्रिया के त्रिकोण की वस्तुस्थिति का परिज्ञान होता है। कलाश म ही इडा श्रद्धा पुत्र मानव और सारस्वत प्रदेश की प्रजा पहुँच जाती है और सब मिलकर एक सयुक्त परिवार क रूप म बस जात है। मनु को अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है।

शिव के ताण्डव नृत्य का वणन पुराणो म प्राप्त है।[33] शिव के ताण्डव नृत्य पर सस्कृत भाषा म एक शिव-ताण्डव स्तोत्र की भी रचना हुई है। शिव महिमा स्तोत्र क अनुसार शिव का ताण्डव नृत्य विश्व क कल्याण के लिए है।[34] प्रसादजी ने भी शिव क ताण्डव नृत्य को आनन्दमयी भूमिका पर प्रस्तुत किया है

---

[32] कामायनी सघष सग पृ० २०२ (दशम सस्करण)

[33] माकण्डय ब्रह्मपुराण अक (कल्याण) प० ३४२ ४४ लिंग पुराण २०६ २५ २८

[34] शिव महिम्न स्तोत्र १६ ३३

"आनन्द पूर्ण ताण्डव सुन्दर
झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर।[34]

इसी कथा में त्रिपुर या त्रिकोण का भी वर्णन मिलता है। त्रिपुर कल्पना भारतीय वाङ्मय की प्राचीन स्पर्श है जिसका उद्गम वैदिक एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी विस्तारसहित मिलता है। शिव पुराण[35] लिंग पुराण[37] मत्स्य पुराण[38] श्रीमद्भागवत पुराण[39] महाभारत[40] आदि में त्रिपुर कथा का उल्लेख इस रूप में हुआ है कि असुरों ने नाद चाँदी और स्वर्ण के तीन पुरों का निर्माण देवताओं से सुरक्षित होने के लिए किया जिनका ध्वंस शिव द्वारा किया गया। शैवागमों[41] में त्रिपुर रूपक वर्णन भिन्न रूप में किया गया है। वहाँ त्रिपुर के तीन कोण इच्छा ज्ञान और क्रिया माने गये हैं। ये तीनों कोण तीन शक्तियों में परिव्याप्त हैं जिन्हें इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति कहते हैं। इनमें इच्छाशक्ति सृष्टि रचना की कामना उत्पन्न करके मनुष्य को सामाजिक कर्मों में लीन कराती है। इस त्रिकोण को ही त्रिलोक या संसार कहते हैं। इस त्रिकोण की शासिका त्रिपुरा देवी मानी गयी है जो ब्रह्मा विष्णु एवं शिवस्वरूपा है। यह देवी इच्छा ज्ञान एवं क्रियाशक्ति से युक्त होकर चन्द्रमा रूप में सृष्टि के कार्य करती है अग्नि रूप से संहार करता है और रवि रूप से संसार की स्थिति का कार्य करती है। जब तक ये तीनों पुर पृथक्-पृथक् बने रहते हैं संसार का रूप उपाधियुक्त रहता है। इनके समाप्त अर्थात् समरस होने ही यह आनन्द रूप में परिणत हो जाता है। त्रिपुर रहस्य के अनुसार श्रद्धा को ही त्रिपुर देवी माना गया है। वही अपनी अनन्तशक्ति द्वारा त्रिपुरा का ध्वंस करती है।[42]

कामायनी के मनु कैलाश पर पहुँचकर अखण्ड आनन्द की अनुभूति करते हैं। उन्हें नटराज शिव के चरणों में ही अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है।[43]

---

[34] कामायनी, रहस्य सर्ग पृ० २५
[35] शिव पुराण रुद्र संहिता युद्ध खण्ड ५।१ १०
[37] लिंग पुराण अध्याय ७१
[38] मत्स्य पुराण अध्याय १२६ ४०
[39] श्रीमद्भागवत पुराण, ७।१०।५३।७०
[40] महाभारत कर्ण पर्व अध्याय २३ ३४
[41] तन्त्रालोक, भाग २ पृ० १०४
[42] त्रिपुरारहस्य ज्ञान खण्ड अध्याय ६
[43] कामायनी रहस्य सर्ग पृ० २७२ ७३ (प्रथम संस्करण)

कैलाश पर्वत का जो वर्णन कामायनीकार ने किया है उसका उल्लेख भी पुराणों में मिलता है। कैलाश गिरि की जिस अनुपम शोभा एवं मानसरोवर के जिस दिव्य रूप का वर्णन पुराणों में हुआ है उसी के अनुसार प्रसादजी ने भी कामायनी में कैलाश प्रदेश का चित्र अंकित किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त आधार ग्रन्थों का अनुशीलन करने पर स्पष्ट दिखायी देता है कि इस कथा भाग की निर्मिति में प्रसादजी की कल्पनाशक्ति का ही अधिक योग रहा है। उन्होंने वेद ब्राह्मण ग्रन्थों शतपथ पुराण आदि ग्रन्थों में विकीर्ण कथा-सामग्री को लेकर कामायनी के कथानक का भव्य निर्माण किया है।

कथावस्तु में रूपक तत्त्व की प्रतिष्ठा

कामायनी महाकाव्य के आमुख में प्रसादजी ने लिखा है— यदि श्रद्धा और मनु अर्थात मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में सहायक हो सकता है।[४४] एक अन्य स्थान पर प्रसादजी ने लिखा है कि यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात मन के दोनों पक्ष-हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमश श्रद्धा और इडा से भी सरलता से लग जाता है इन्हीं सबके आधार पर कामायनी की कथा-सृष्टि हुई है।[४५]

प्रसादजी के उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि कामायनी की ऐतिहासिक कथा में रूपक तत्त्व का भी समन्वय है। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि मूलत कामायनी ऐतिहासिक काव्य ही है। हाँ गौण रूप में रूपक तत्त्व का भी कामायनी की कथा में समावेश है। कामायनी की कथा में रूपक तत्त्व की व्यंजना मुख्यत तीन प्रकार से हुई है

१ प्रमुख पात्रों के मनोवैज्ञानिक रूप चित्रण में
२ कथानक के सर्गों के नामकरण एवं क्रम में
घटनाओं की अप्रस्तुत अर्थ-संयोजना में।

कामायनी के कथानक की रूपकात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रसादजी ने

---

४४ कामायनी, आमुख पृ० ९ १०
४५ वही पृ० ६

काव्य के प्रमुख पात्रों के एतिहासिक व्यक्तित्व के साथ-साथ उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप में भी चित्रित किया है। कामायनी के मनु मन के श्रद्धा हृदय की और इडा बुद्धि की प्रतीक है। कामायनी की कथा से स्पष्ट होता है कि मनु श्रद्धा के सान्निध्य से ही आनन्द की प्राप्ति करते है। इडा मनु को भौतिकता के संघर्ष में उलझाकर उनका जीवन दुःखमय बना देती है। इस प्रकार यदि मात्र बुद्धि का आश्रय ग्रहण कर मनुष्य का मन (मनु) सुख की प्राप्ति करना चाहे तो संघर्षों में पड जाता है। मन (मनु) हृदय (श्रद्धा) अर्थात रागात्मिका वृत्ति का आश्रय प्राप्त करके ही आत्मविश्वास के साथ जीवन-पथ पर अग्रसर होता हुआ अखण्ड आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। कामायनी के अन्य पात्रों में आकुलि और किलात नामक पुरोहित आसुरी वृत्तियों के प्रतीक है जो मानव के मन (मनु) को पाप कर्म (हिंसा यज्ञ) में प्रवृत्त करते हैं श्रद्धा मनु का पुत्र कुमार नव मानव का प्रतीक है।[४६] डा० नगेन्द्र ने तो कामायनी में उल्लिखित देव श्रद्धा के पशु वृषभ सोमलता आदि के क्रमशः इन्द्रियाँ अहिंसा धर्म और भोग सात्विक अर्थ माने हैं।[४७]

पात्रों के अतिरिक्त कामायनी की कथा की रूपकात्मकता सर्गों के नामकरण एवं क्रम से भी स्पष्ट है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण मानवीय प्रवृत्तियों के आधार पर चिन्ता, आशा श्रद्धा काम वासना आदि रूप में किया गया है। सबसे बड़ी विशेषता इन सर्गों के विकासक्रम की ही है। इन सर्गों को उसी प्रकार चित्रित किया गया है जिस प्रकार यह वृत्तियाँ मानव हृदय में उदित होकर विकसित होती हैं। चिन्ता मानव मन की आरम्भिक वृत्ति है। अभाव के कारण मनुष्य के मन में चिन्ता का उदय होता है तभी मनुष्य की चिन्ता ग्रस्त मन अशान्ति से निवृत्ति पाने के लिए व्यग्र होता है कि आशा का भाव उदय होता है। आशा मन को शान्त करती है तभी श्रद्धा का विकास होता है जो मानव के चंचल मन को आस्था और विश्वास का सबल प्रदान करती है। तत्पश्चात काम और वासना नामक वृत्तियाँ जाग्रत होती हैं। वासना के आवेग को रोकने के लिए लज्जा की उत्पत्ति होती है। वासना की साधना तृष्णा के रूप में परिणित होकर मानव को कर्म में प्रवृत्त करता है। कर्मप्रवृत्त मन अहंभाव के कारण ईर्ष्यालु हो जाता है और श्रद्धा की अवहेलना करके बुद्धि अर्थात् इडा का आश्रय लेता है। बुद्धि (इडा) आश्रित मन भौतिक

---

[४६] डॉ० नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्याएं पृ० ४५

[४७] वही, पृ० ४६

सम्पन्नता के लिए नय-नये स्वप्न देखता है। वह बुद्धि पर विजय पाने के लिए सघर्षरत भी होता है। सघर्ष में असफल होने पर मनुष्य के मन में निर्वेद (वैराग्य) की भावना का उदय होता है। चोट खाकर मनुष्य का मन पुन श्रद्धा की ओर उन्मुख होता है और श्रद्धा के सहयोग से उसे आत्म-साक्षात्कार (दर्शन) होता है। तभी मानव मन अपनी पराजय का रहस्य समझता है। अन्तत मानव मन इच्छा ज्ञान और क्रिया आदि वृत्तियों का समन्वय (समरसता) करके अखण्ड आनन्द की प्राप्ति करता है। इस प्रकार सर्गों के विकासक्रम में एक सुन्दर रूपक की योजना हुई है।

इसी प्रकार जलप्लावन त्रिपुर मानसरोवर कैलाश आदि घटित घटनाओं के सार्वतिक एव प्रतीक अर्थ भी भारतीय दार्शनिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि में मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए कामायनी की प्रस्तुत कथा में मानसरोवर की यात्रा मनोमय कोष में स्थित जीव की आनन्दमय कोष में स्थित होने के लिए साधना ही है। यह आनन्दमय कोष ही कैलाश है। त्रिपुर इच्छा ज्ञान और क्रिया का त्रिकोण है जिनका समन्वय श्रद्धा के द्वारा होता है।

इस प्रकार कामायनी की प्रस्तुत कथा में मानवता के विकास का सुन्दर रूपक सयोजित किया गया है। जहाँ तक रूपक तत्त्व के सफल निर्वाह और सगति का प्रश्न है विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। एक लेखक के शब्दों में— पूरे आमुख के परिशीलन से यह ज्ञात हो जाता है कि कथा के इतिहासानुमोदित होने के आग्रह के साथ रूपक तत्त्व का निर्वाह ही उनको अधिक अभीष्ट है।[४८] किन्तु यह दृष्टिकोण पूर्णत उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। क्योंकि कामायनी में प्रस्तुत कथा प्रधान है और अप्रस्तुत कथा गौण है। दूसरे रूपक तत्त्व के पूर्ण निर्वाह के लिए कवि अपनी ओर से विशेष प्रयत्नशील नहीं रहा है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि कथा में सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति भी दिखायी पड़े तो मुझे (प्रसादजी) कोई आपत्ति नहीं। स्पष्ट है कि कामायनी में रूपक तत्त्व की प्रतिष्ठा कवि को अधिक अभीष्ट नहीं। इस कथा के रूपक में कुछ असगतियाँ भी हैं। जैसे जब मनु मानव मन अथवा मनोमय कोष में स्थित जीव का प्रतीक हैं तो उसके पुत्र कुमार को नव मानव का प्रतिनिधि मानकर भी सगति नहीं क्योंकि इस तरह पिता-पुत्र में लगभग एक ही प्रतीकार्थ की

---

४८ श्री ज्ञानचन्द्र जैन कामायनी पर प्रबोधचन्द्रोदय का प्रभाव (साहित्य सन्देश अप्रैल १९६२ अक १ भाग २४)

पुनरावृत्ति हो जाती है।[४९] इस प्रकार की असंगतियों के सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का विचार है कि— प्रस्तुत कथा को पूरी तरह अप्रस्तुत से ढक देना ठीक नहीं है। आखिर प्रस्तुत कथा को थोड़ा सा तो स्वतन्त्र अवकाश देना चाहिए।[५०] निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कामायनी की कथा में इतिहास और रूपक-तत्त्व का अद्भुत समन्वय हुआ है जो अभूतपूर्व है।

कथानक की अन्य विशेषताएं

कामायनी की कथा-वस्तु की अन्य विशेषताओं का विवेचन नाटकीय कथा विधान, नवीन प्रसंगों की उद्भावना, मौलिकता एवं कल्पनाशक्ति के प्रयोग की दृष्टि से किया जा सकता है।

१ प्रसादजी ने कामायनी के कथा विधान में जहां एक ओर ऐतिहासिकता और पौराणिकता की रक्षा करते हुए कथावस्तु को प्रामाणिक बनाया है वहीं दूसरी ओर मौलिक प्रसंगोद्भावनाएं भी की हैं। वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों आदि प्राचीन ग्रन्थों में बिखरे कथानक को कल्पना और काव्योक्ति द्वारा अभिनव ढंग से सम्पादित कर महाकाव्योचित गरिमा से मण्डित किया है।

२ कामायनी के कथानक में निम्नांकित घटनाएं कवि की सर्वथा मौलिक उद्भावनाएं हैं

(अ) श्रद्धा के पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव के कारण मनु के मन में ईर्ष्या की उत्पत्ति और परिणामस्वरूप श्रद्धा को अकेला छोड़कर मनु का सारस्वत प्रदेश चला जाना।

(आ) सारस्वत प्रदेश में मनु के विरुद्ध जनक्रान्ति। राजनीतिक दृष्टि से यह घटना कथानक की युगानुरूपता का भी प्रतिपादन करती है।

(इ) श्रद्धा के स्वप्न की घटना।

(ई) मनु और श्रद्धा की कैलाश यात्रा, इड़ा और मानव का परिणय सम्बन्ध एवं सारस्वत प्रदेश वासियों सहित इड़ा और मानव का कैलाश प्रस्थान।

(उ) इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे स्थल एवं प्रसंग हैं जिनमें कवि ने परिवर्तन-परिवर्द्धन किया है। जैसे मनु की पुत्रोत्पत्ति के लिए

---

४९ डॉ० कन्हैयालाल सहल और डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : कामायनी दर्शन पृ० १४१

५० डॉ० नगेन्द्र : कामायनी के अध्ययन की समस्याएं पृ० ४२

नहीं वरन् देव प्रवृत्ति के कारण यज्ञ करना इडा का मनु की पालिता पुत्री के रूप में चित्रित न करना मनु के केवल एक पुत्र का होना आदि।

शास्त्रीय कथा विधान की दृष्टि से कामायनी की कथा वस्तु में सन्धियों एव अर्थ प्रकृतियों की सफल योजना तो हुई है साथ ही पाश्चात्य दृष्टि से विचार करें तो प्रारम्भ विकास चरम सीमा, निगति और अन्त आदि कार्यावस्थाएं भी देखी जा सकती हैं।

४ कामायनी के कथानक की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास का पुन मूल्याकन है। भारतीय इतिहास का जितना महिमामय और गौरवमय आयोजन कामायनी के इतिवृत्त में हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कामायनी में इतिहास और रूपक तत्त्व का भी अद्भुत समन्वय हुआ है।

५ कामायनी की कथा वस्तु घटना विरल है। यद्यपि महाकाव्यों की कथा-योजना में घटनाओं की प्रधानता मिलती है। कामायनी की घटना इतनी विस्तृत नहीं। वह इंगितों के द्वारा आगे बढ़ती है। उसमें दीर्घता की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक है।[४१] कामायनी के कथानक में धारावाहिकता के अभाव में भी एक ऐसी अविच्छिन्नता विद्यमान है जिसके कारण विभिन्न प्रसंगों में सफल सम्बन्ध निर्वाह हुआ है। इसके अतिरिक्त कथानक यद्यपि तीव्रगति से विकसित नहीं होता एव कहीं कहीं उसमें शैथिल्य भी दिखायी देता है फिर भी घटनान्विति काव्य में सर्वत्र बनी हुई है।

इस प्रकार कामायनी महाकाव्य के कथा निर्माण में प्रसादजी ने इतिहास मनोविज्ञान और कल्पना के प्रयोग से मानवता के विकास का अद्भुत रूपक प्रस्तुत किया है।

चरित्र विश्लेषण

कामायनी की पात्र सृष्टि इतनी अल्प है कि उसे चरित्र प्रधान काव्य नहीं कहा जा सकता। कामायनी में कुल ८ पात्र हैं जिनमें प्रमुख तीन हैं—मनु श्रद्धा और इडा। इनके अतिरिक्त तीन अन्य पात्रों में असुर पुरोहित आकुलि किलात और मनु श्रद्धा का पुत्र कुमार मानव है। काम और लज्जा अशरीरी पात्र हैं जिनका कथा विकास और घटनाचक्र को प्रभावित करने की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है।

---

[४१] डा प्रेमशंकर प्रसाद का काव्य पृ ३१७

प्रमुख पात्र

मनु—मानवता के जनक मनु कामायनी महाकाव्य के नायक हैं। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से महाकाव्य के नायक में जो धैर्य, कौशल, शौर्य, साहस, पराक्रम और अदम्य उत्साह होना चाहिए उसका उनके चरित्र में अभाव है। फिर भी सम्पूर्ण काव्य के कथा-संचालन और उद्देश्य (फल) की प्राप्ति में वे आद्योपान्त कार्यरत चित्रित किये गये हैं। मनु का चरित्र इतिहास और कल्पना की समन्वित पृष्ठभूमि पर अंकित किया गया है। कामायनी में मनु के अनेक रूप दिखायी देते हैं। डा० फतहसिंह ने तीन रूपों[५२], डा० द्वारिकाप्रसाद ने चार रूपों[५३] और डा० श्यामनन्दन किशोर ने मनु के पाँच रूपों[५४] की प्रधानता स्वीकार की है। मनु के सम्पूर्ण चरित्र विकास का अध्ययन निम्नांकित चार रूपों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

१. प्रलय-काल के अनन्तर देव-सृष्टि के ध्वंसावशेष के रूप में बचे हुए मनु जो पुष्ट शारीरिक गठन एवं देव अंशीय व्यक्तित्व धारण किये हुए चिन्ताग्रस्त दिखायी देते हैं।

२. श्रद्धा को जीवनसंगिनी बनाकर गृहस्थ निर्माण करते हुए मनु जो वासनातिरेक में अविवेकी बनकर श्रद्धा को निर्जन प्रदेश में छोड़कर चले जाते हैं।

३. सारस्वत प्रदेश में इड़ा के सम्पर्क में प्रजा पालन करते हुए मनु जो कालान्तर में विलास प्रवृत्ति के कारण असफल हो जाते हैं।

४. श्रद्धा के पुनर्सम्पर्क से आनन्द की खोज में रत मनु जिन्हें सफलता मिलती है।

कामायनी का प्रारम्भ मनु के ही अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के निरूपण से होता है। उनके व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं—एक ऐतिहासिक और दूसरा सांकेतिक।

---

५२ मनु का पहला प्रजापति रूप है दूसरा वैदिक कर्मकाण्डी ऋषि का रूप है मनु का एक तीसरा रूप और भी जो मनु इस युग के अन्त होने पर आनन्द पथ की खोज करते हुए मन में देखा जा सकता है।
डा० फतहसिंह, कामायनी सौन्दर्य पृ० १६७

५३ डा० द्वारिकाप्रसाद, कामायनी काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० १०५ से १०८ तक (अ) ऋषि मनु (आ) गृहस्थ मनु (इ) प्रजापति मनु (ई) आनन्द के अधिकारी मनु।

५४ डा० श्यामनन्दन किशोर, आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान पृ० ३२८ (अ) तरुण तपस्वी (आ) चिन्तक (इ) गृहस्थ (ई) बुद्धिवादी (उ) आनन्द तत्त्वदर्शी।

ऐतिहासिक दृष्टि से मनु का चरित्र वैदिक वाङ्मय एवं पौराणिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। वहाँ वैवस्वत मनु को प्रजापति, वृषापति, श्रद्धापति, प्रथम-दाता, यज्ञकर्ता एवं सृष्टिकर्ता आदि कहा गया है। सांस्कृतिक दृष्टि से मनु को मन का प्रतीक मानकर उन्हें इन्द्रियों का स्वामी, सत्य विज्ञानशील, बलिष्ठ, शान्त एवं अभीष्ट काम का सम्पादनकर्ता बताया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में मनु का चरित्र अत्यन्त व्यापक एवं विशद रूप में अंकित किया गया है। प्रसादजी ने कामायनी के मनु का निर्माण करते समय ऐतिहासिक मनु का आंशिक रूप ही ग्रहण किया, शेष चरित्र विकास उनकी निजी कल्पना पर आधारित है। काव्यारम्भ में ही मनु के सम्पुष्ट शरीर-गठन का परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व में स्वकीय अंश की अवतारणा की गयी है —

> अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ,
> ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,
> स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का
> होता था जिनमें संचार।[४४]

पौरुष और यौवन से ओतप्रोत होकर भी मनु चिन्तातुर हैं।[४५] उनकी चिन्ता का कारण अकस्मात् ही जल-प्लावन द्वारा सम्पूर्ण देव सृष्टि का ध्वंस है। मनु देव जाति के विनाश के कारणों की चिन्ता में डूबे हुए सोचते हैं —

> आज अमरता का जीवित हूँ
> मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,
> आह सर्ग के प्रथम अंक का
> अधम पात्र मय-सा विष्कम्भ।[४७]

इस स्थिति में श्रद्धा के सम्पर्क से मनु के हृदय में आशा का संचार होता है। मनु श्रद्धा पर आसक्त हो जाते हैं। श्रद्धा नारी का समर्पण भाव लेकर उनके जीवन में प्रविष्ट होती है। श्रद्धा और मनु प्रणय-सूत्र में बंध यज्ञादि कर्मों को सम्पन्न करते हुए गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होते हैं। यहाँ हम मनु को चंचल, कामुक, वासनाप्रिय, हिंसक एवं स्वार्थी व्यक्ति के रूप में देखते हैं। वे आकुलि और किलात के परामर्श से श्रद्धा के पालित पशु की बलि दे देते हैं। इन

---

४४ कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० ४
४५ वही, पृ० ८
४७ वही, पृ० १८

कार्यों में श्रद्धा का प्रतिरोध उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे गर्भवती श्रद्धा से अपनी उद्दाम काम वासना की तृप्ति चाहते हैं। मनु कहते हैं

'तुच्छ नहीं है अपना सुख भी श्रद्धे ! वह भी कुछ है
दो दिन के इस जीवन का तो वही चरम सब कुछ है।[४८]

मनु इन्द्रियजन्य अभिलाषाओं की तृप्ति को ही जीवन का ध्येय मान लेते हैं। श्रद्धा के भावी संतति के प्रति प्रेम के कारण उनके मन में ईर्ष्या भाव उत्पन्न होता है और एक दिन 'तो चला आज मैं छोड़ यहीं संचित संवेदन भार पुंज'[४९] कहते हुए श्रद्धा को निर्जन प्रांत में अकेली छोड़कर चले जाते हैं।

श्रद्धा से विमुख होकर मनु सारस्वत प्रदेश पहुंचते हैं। वहीं इड़ा के रूप सौन्दर्य पर रीझकर सारस्वत प्रदेश के शासन का संचालन करते हैं। किन्तु यहाँ भी इड़ा पर एकाधिकार की भावना उन्हें संकटपूर्ण स्थिति में डाल देती है। इड़ा पर निरंकुश अधिकार की कामना से मनु बलात्कार करने का प्रयत्न करते हैं परिणामस्वरूप सारस्वत प्रदेश की प्रजा विद्रोह कर देती है और मनु घायल हो जाते हैं। इस प्रसंग में युद्ध करते हुए यद्यपि मनु का प्रजापति योद्धा एवं कुशल प्रशासक का रूप भी हमारे समक्ष आता है किन्तु इन्द्रिय लिप्सा कामुकता एवं अतृप्त वासना से वे यहाँ भी मुक्त नहीं हो पाते हैं।

श्रद्धा के पुनरागमन से मनु के चरित्र में आपातिक परिवर्तन आ जाता है। मनु संसार से पराङ्मुख होकर आनन्द की खोज में चल पड़ते हैं। श्रद्धा के पुनः सम्पर्क से उनके वासनापूर्ण जीवन की इति हो जाती है। सारस्वत प्रदेश के कटु अनुभवों के कारण उनका सम्पूर्ण अहंकार और मिथ्याडम्बर समाप्त हो जाता है। काव्य के प्रारम्भ से जिस मनु का रूप स्वार्थी इंद्रिय लिप्सु भौतिकताप्रिय स्पर्धालु पाते हैं वे अब निवृत्तिमार्गी होकर अखण्ड आनन्द की खोज में चल देते हैं। अपने पुत्र कुमार और इड़ा को सारस्वत प्रदेश में छोड़कर श्रद्धा के साथ हिमालय प्रस्थान करते हैं। वहाँ नटराज-नर्तन (शिव ताण्डव) के दर्शन से उनका हृदय पवित्र हो जाता है तभी मनु पुकार उठते हैं

यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल उन चरणों तक दे निज सम्बल
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल, पावन बन जाते हैं निर्मल
मिटते असत्य से ज्ञान लेश समरस अखण्ड आनन्द वेश।[५०]

---

[४८] कामायनी कर्म सर्ग, पृ० १ ०

[४९] वही ईर्ष्या सर्ग, पृ० १५४

[५०] वही दर्शन सर्ग, पृ० २५४

हालिक दृष्टि से मनु का चरित्र वैदिक साहित्य एवं पौराणिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। वहाँ वैवस्वत मनु को प्रजापति पूर्वाधिपति अर्थात् प्रथम पारायणकर्ता एवं सृष्टिकर्ता आदि कहा गया है। पौराणिक दृष्टि से मनु को मन का प्रतीक मानकर उन्हें इन्द्रियों का स्वामी, सत्य विवेकशील, बलिष्ठ, चंचल एवं अभीष्ट कार्य का सम्पादनकर्ता बताया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में मनु का चरित्र अत्यन्त व्यापक एवं विशद् रूप में अंकित किया गया है। प्रसादजी ने कामायनी के मनु का निर्माण करते समय ऐतिहासिक मनु का आंशिक रूप ही ग्रहण किया। शेष चरित्र विकास उनकी निजी कल्पना पर आधारित है। काव्यारम्भ में ही मनु के सम्पुष्ट शरीर-गठन का परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व में दर्शाया अंश की अवतारणा की गयी है

अवयव की दृढ़ मांस पेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिराएँ स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार। [४४]

पौरुष और यौवन से ओतप्रोत होकर भी मनु चिन्ताकातर हैं।[४५] उनकी चिन्ता का कारण अकस्मात् ही जलप्लावन द्वारा समग्र देव सृष्टि का ध्वंस है। मनु देव जाति के विनाश के कारणों की चिन्ता में डूबे हुए सोचते हैं

आज अमरता का जीवित हूँ
मैं वह भीषण जर्जर दम्भ
आह सर्ग के प्रथम अंक का
अधम पात्र मय-सा विष्कम्भ। [४७]

इस स्थिति में श्रद्धा के सम्पर्क से मनु के हृदय में आशा का संचार होता है। मनु श्रद्धा पर आसक्त हो जाते हैं। श्रद्धा नारी का समर्पण भाव लेकर उनके जीवन में प्रविष्ट होती है। श्रद्धा और मनु प्रणय-सूत्र में बँधे यज्ञादि कर्मों को सम्पन्न करते हुए गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होते हैं। यहाँ हम मनु को चंचल, कामुक, वासनाप्रिय, हिंसक एवं स्वार्थी व्यक्ति के रूप में देखते हैं। वे आकुलि और किलात के परामर्श से श्रद्धा के पालित पशु की बलि दे देते हैं। इन

---

[४४] कामायनी चिन्ता सर्ग पृ० ४

[४५] वही पृ० ४

[४७] वही, पृ० १८

श्रद्धा मनु को इच्छा, ज्ञान और क्रिया प्रदेशों का भ्रमण कराती हुई अपनी स्थिति भाव से विराग की एकाकार कर अर्थात् समरसता का सचार कर उस अभेद स्थिति का बोध कराती है। उसी मनु का अहम् भाव इदम् में समाविष्ट हो जाता है। उसे सम्पूर्ण विश्व अखण्ड चेतना का विलास प्रतीत होता है। मनु को अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार कामायनी के नायक मनु का चरित्र यथार्थ और आदर्श की समन्वित भूमिका पर अवतरित हुआ है। मनु के चरित्र में उत्थान-पतन की सभी रेखाएँ उभरी हैं। मनु के चरित्र विकास में प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का पूर्ण परिचय दिया है। मनु के चरित्र में जिस चिन्ता, निराशा, वासनाजन्य तृष्णा, अहम्वादिता और पराजयवादी प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है उनके कारण वे यथार्थ की भूमिका पर आसीन होकर सामान्य मानव की श्रेणी में आते हैं। इन्हीं दुर्बलताओं के कारण मनु का चरित्र यथार्थानुरूप और अनुकरणीय बनता है। उनके चरित्र का दूसरा पक्ष वह है जिसमें उन्हें निवृत्तिमार्गी शिव आनन्द पथ के यात्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। काव्य के अन्तिम तीन सर्गों में मनु ऐतिहासिक और पौराणिक परिसन्दर्भों के अनुरूप उदात्त एवं महान व्यक्ति दिखाये गये हैं। मनु का यह रूप समस्त शापों का परिष्कार करके उन्हें महत् चारित्रिक गरिमा प्रदान करता है। मनु के चरित्र का एक अन्य पक्ष भी है वह है मनोवृत्तिमूलक। मनु को मन का प्रतीक मानकर उनके कार्य-व्यापार एवं गतिविधियों का अध्ययन किया जाय तो कोई असंगति नहीं मिलती। मनु का चरित्र जहाँ एक ओर मन की अहंकारजन्य व्यक्तिवादी और वासना लिप्सु प्रवृत्तियों का प्रतीक है वहीं दूसरी ओर संयम और आनन्दवादी और विवृत्तिमूलक स्थितियों का सुन्दर रूपक प्रस्तुत करता है। चरित्र का मूल व्यंजना यह है कि बुद्धि के वशीभूत होकर मानव जीवन में संघर्ष, विप्लव एवं अतृप्त आकांक्षाओं के इतिहासों का जन्म होता है।[११]

महाकाव्य के नायक की दृष्टि से विचार करें तो कामायनी में चित्रित मनु चरित्र को हम पूर्ण विकसित महाकाव्य के अनुरूप चरित्र नहीं कह सकते। प्रसाद ने मनु के जिस रूप को प्रस्तुत किया है वह समर्थ एवं सफल नायक की परिभाषा में पूरी तरह नहीं आता है।[१२] प्रथम तो मनु के चरित्र में नायक के अनुरूप गुणात्मक उत्कर्ष का अभाव है। वे सर्वत्र ही श्रद्धा के सम्पर्क

---

[११] डॉ० शिवकुमार मिश्र : कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा, पृ० ५६

[१२] डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : कामायनी दर्शन, पृ० १५५

सान्निध्य से उत्थानमूलक गति को प्राप्त करते हैं। दूसरे काव्य के मुख्य फल (अखण्ड आनन्द) की प्राप्ति के लिए भी अपनी पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य से प्रयत्नशील नहीं होते हैं। उनके चरित्र में न तो स्वसम्भूत उदात्त भावनाओं का उत्कर्ष हुआ है और न सत्त्व शील, त्याग संयम समर्पण आदि मानवीय गुणों की सफल प्रतिष्ठा हो पायी है। काव्य के आरम्भ में मनु चतुर्दिक् वातावरण के प्रभाव से चिन्ताग्रस्त हैं मध्यभाग में जीवन की विकृतियों से आक्रान्त हैं और अन्तिम भाग में समाज की विडम्बनाओं और संघर्षों से विमुख होकर कल्पित आनन्द (?) की खोज में रत हैं। मानव सभ्यता के संस्थापक के रूप में मनु के चरित्र में जिस पौरुष विराटत्व और उत्थानमूलक चारित्रिक गरिमा की अपेक्षा थी उसे प्रसादजी कामायनी के मनु में नहीं भर पाये हैं। वास्तव में महाकाव्य के ऐतिहासिक नायक के रूप में उन्हें (मनु) हम एक महान् चरित्र नहीं कह सकते।[63]

श्रद्धा—श्रद्धा कामायनी का सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र-सृष्टि है। उसे काव्य की नायिका मानने में कोई आपत्ति नहीं है। काव्य की सभी प्रमुख घटनाएँ उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर परिचालित होती हैं। कामायनी महाकाव्य के फल (आनन्द) की प्राप्ति में वही मनु की सहायक होती है। नायकत्व के अधिकांश गुणों का सधान श्रद्धा का चरित्र है। श्रद्धा के चरित्र में नारीत्व के आदर्श की सम्पूर्ण उदात्त कल्पनाओं का सुन्दर समाहार हुआ है।

काव्य में श्रद्धा का आगमन तृतीय सर्ग में होता है। यहाँ श्रद्धा को उदार हृदय की बाह्य अनुकृति कहा गया है जिसकी उन्मुक्त लम्बी काया गान्धार देश के नील रोम वाले मेषों के चर्म के बीच यौवन की निज छवि से दीप्त होकर विश्व की करुण कामना की मूर्ति सी दिखायी दे रही है।[64] श्रद्धा का शरीर रूप के आकर्षण से पूर्ण है। वह जड़ में भी स्फूर्ति संचार करने की क्षमता रखती है।[65] श्रद्धा के मन में ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने का नवीन उत्साह है जिसके कारण वह गन्धर्वों के देश में आकर हिमालय पर इधर उधर भटकने लगती है और तभी मनु से श्रद्धा का साक्षात्कार होता है।[66] श्रद्धा अपने अभिलाषाओं का अनुमान करके हृदय से वह मनु के जीवन

---

[63] डॉ० गोविन्दराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ८६२

[64] कामायनी, श्रद्धा सर्ग पृ० ४६ ४७

[65] वही, पृ० ५१ ५२

[66] वही पृ० ५३

में प्रवेश करके भविष्य में आजाता और काम में लिप्त रहे मनु को एक दिव्य सन्देश देती हुई कहती है कि

> काम मंगल से मण्डित श्रेय ?
> सर्ग इच्छा का है परिणाम
> तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
> बनाते हो असफल भवधाम। [६७]

श्रद्धा मनु को आश्वस्त करते हुए कहती है कि जिसे तुम अभिशाप समझ रहे हो वही ईश्वर का वरदान है।[६८] तदनन्तर वह दया माया ममता मधुरिमा और अगाध विश्वास सहित अपने रत्ननिधि स्वच्छ हृदय को मनु के समक्ष समर्पित कर देता है। श्रद्धा का यह समर्पण भारतीय नारीत्व की गरिमा का परिचायक है। श्रद्धा मनु को शक्तिशाली और विजयी बनने के लिए भी उत्साहित करती है।

मनु के जीवन में श्रद्धा का प्रवेश उनके जीवन की निराशा कुण्ठा और चिन्ता को दूर कर देता है। श्रद्धा और मनु गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होते हैं। यहाँ से श्रद्धा का नारीत्व और मातृत्व रूप विकसित होता है। वह एक पति परायणा आदर्श पत्नी के रूप में दिखायी देती है। उसमें नव-परिणीता-वधू की लज्जा का पूर्ण भाव है। छवि के भार से दबी श्रद्धा लज्जा और उल्लास का आकर्षण है। ऐसी श्रद्धा को पाकर मनु की काम-वासना उद्दीप्त होती है। किन्तु श्रद्धा मनु की वासनाजन्य प्रवृत्तियों का अन्धानुकरण नहीं करती। श्रद्धा को मनु के सोमपान और हिंसा कार्यों (यज्ञ में पशु बलि आदि) में भी अरुचि है। सुखी जीवन व्यतीत करने के लिए वह मनु से कहती है कि

> औरों को हँसते देखो मनु
> हँसो और सुख पाओ।
> अपने उर को विस्तृत कर लो
> सब को सुखी बनाओ। [६९]

इन वचनों में श्रद्धा की उदात्त भावना प्रकट हुई है।

श्रद्धा के चरित्र में नारी का मातृत्व रूप भी सुन्दर ढंग से अंकित हुआ है। गर्भिणी श्रद्धा का भावी सन्तति के लिए कुटीर बनाना पशुओं की ऊन से वस्त्र

---

६७ कामायनी पृ० ५४

६८ वही पृ० ५६

६९ वही, कर्म सर्ग पृ० १३२

के लिए तकली पर सूत कातना, पुआलों का छाजन और बेतसी लता के झूले का निर्माण करना श्रद्धा के नारीसुलभ मातृ रूप का प्रमाण है। श्रद्धा गृहलक्ष्मी है जिसके गृह विधान को देखकर मनु चकित हो जाते हैं।[10] श्रद्धा के मन में भावी शिशु के मुख चूमने, धूल पर चुटकी लेने, मीठा हँसना और मधुर बातें सुनने की लालसाएँ हैं जिन्हें वह हृदय में सजाये कुशल गृहिणी की भाँति गर्भावस्था में केतकी सा पीला मुख, आँखों में अलस स्नेह और मातृत्व बोझ से झुके पाँव पसारे बैठी गृह कार्यों में लीन रहती है।

भावी सन्तति के प्रति ईर्ष्यालु होकर मनु श्रद्धा को निर्जन प्रदेश में अकेला छोड़कर चले जाते हैं। इस परित्यक्तावस्था में भी वह मातृत्व का भार सहन करती है। वियोग और वात्सल्य के दुःख-सुख को सहती हुई श्रद्धा बड़ी व्यग्र दिखायी देती है। वह प्रश्न करती है

जीवन में सुख अधिक या कि दुख मन्दाकिनि कुछ बोलोगी?

× × ×

यह छोटा प्रतिबिम्ब एक है इस रहस्य को खोलोगी।[11]

इसी अवस्था में श्रद्धा एक दिन स्वप्न देखती है जिसमें मनु की दुर्दशा का चित्र दिखायी देता है। प्रिय के अनिष्ट की आशंका से व्यग्र होकर पुत्र सहित वह मनु की खोज में चल देती है और मनु को घायल अवस्था में पाकर उनका समुचित उपचार करती है। मनु जिन्होंने उसे त्याग दिया था, के प्रति भी श्रद्धा के मन में घृणा या क्रोध का भाव उत्पन्न नहीं होता। श्रद्धा यहाँ पतिपरायणा एक सात्त्विकी नारी का परिचय देती है जिसकी चरित्र महिमा के सम्मुख इड़ा और मनु दोनों नतमस्तक हो जाते हैं। मनु कहते हैं कि

तुम अजस्र वर्षा सुहाग की और स्नेह की मधु रजनी
चिर अतृप्ति जीवन यदि था तुम उसमें संतोष बनी।
कितना है उपकार तुम्हारा आश्रित मेरा प्रणय हुआ।[12]

क्षमायाचना करती हुई इड़ा कहती है कि

'हे देवि! तुम्हारा स्निग्ध राग,
× × ×
दो क्षमा न दो अपना विराग।'[13]

---

१० कामायनी, ईर्ष्या सर्ग, पृ० १५०
११ वही, स्वप्न सर्ग, पृ० १७६
१२ वही निर्वेद सर्ग पृ० २ ६
१३ वही, दर्शन सर्ग, पृ० २४०

श्रद्धा इडा से भी ईर्ष्या नहीं करती। वह मानवता के भावात्मक एवं समरसता के प्रसार के लिए मानव को इडा के पास छोड़कर मनु के साथ अखण्ड आनन्द की उपलब्धि के लिए कैलाश की ओर प्रस्थान करती है। अन्त में श्रद्धा मानव आनन्द पथ की प्रदर्शिका बनकर उन्हें भगवान शिव के ताण्डव नृत्य का ध्यान कराती है और इच्छा ज्ञान व क्रिया के त्रिपुर का समन्वय करके मनु को अखण्ड आनन्द की प्राप्ति कराती है। त्रिपुर समन्वय के कारण समरसता के सात्विक भाव का संचार मनु के हृदय में होता है। वह उन्हें संसार से मुक्त कर सच्चे सुख की प्राप्ति कराता है।

इस प्रकार कामायनी की श्रद्धा नारी आदर्श की साकार प्रतिमा बनकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। उनके चरित्र में भारतीय नारीत्व की अपूर्व व्यंजना हुई है। कन्या माया ममता आदि गुणों की साकार मूर्ति है सच्ची प्रेमिका आदर्श पत्नी मातृत्व की अनुपम विभूति प्रेम और त्याग की अनुपम आदर्श देवी है। श्रद्धा की चरित्र रचना प्रसादजी की नारी कल्पना के उच्चतम सांस्कृतिक आदर्श को व्यंजित करने के लिए ही हुई है। प्रसादजी के मन में भी नारी जाति के प्रति श्रद्धामिश्रित भावना थी। अतः सांस्कृतिक चेतना और पुनरुत्थान के महान् आदर्श की स्थापना तथा राष्ट्रीय भावना के विकास को भी नारी चरित्रों के माध्यम से ही व्यक्त किया है। नारी का सांस्कृतिक निरूपण उनकी साहित्यिक साधना का मुख्य विषय बना है।[७४] इसलिए श्रद्धा पात्र में निस्सन्देह हम प्रसादजी की नारी सौन्दर्य सम्बन्धी भावना आदर्श नारी सम्बन्धी विचारधारा एवं नारी सौन्दर्य के चित्रण की कला का स्वरूप देख सकते हैं।[७५] कामायनी में प्रसादजी ने श्रद्धा के सम्बन्ध में उचित ही कहा है कि

> नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो।
> विश्वास रजत नग पग तल में
> पीयूष स्रोत सी बहा करो
> जीवन के सुन्दर समतल में।[७६]

प्रसाद ने श्रद्धा के व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि में जहाँ ऐतिहासिक प्रमाणों की पुष्टता प्रदान की है वहाँ श्रद्धा के चरित्र की प्रतीकात्मक व्यंजना में भी

---

[७४] डा० देवेश ठाकुर प्रसाद के नारी चरित्र पृ० ४०८

[७५] डा० द्वारिकाप्रसाद कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० ११७

[७६] कामायनी, लज्जा सर्ग पृ १०६

वे सफल रहे हैं। प्रतीक रूप श्रद्धा नारी हृदय की सम्पूर्ण उदात्त वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। 'कामायनी' के अप्रस्तुत पक्ष में हृदय का सच्चा प्रतिनिधित्व करने की उसमें (श्रद्धा) पूर्ण क्षमता है। विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति रूपी श्रद्धा का जैसा विकास 'कामायनी' में हुआ है प्रसाद के किसी अन्य नारी चरित्र में नहीं हुआ।[७७] श्रद्धा के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उसका लोक कल्याणकारी स्वरूप है। मनु ने स्पष्ट स्वीकार किया है

हे सर्वमंगले! तुम महती
सबका दुख अपने पर सहती
कल्याणमयी वाणी कहती
तुम क्षमा निलय में हो रहती।[७८]

कवि ने स्वयं कामायनी को व्याख्यान में जगत की मंगलकामना कहा है

वह कामायनी जगत की मंगलकामना अकेली।[७९]

इस प्रकार नारी के आदर्श रूप में जितने प्रिय गुणों की कल्पना की जा सकती है श्रद्धा के चरित्र में वे सभी सहज रूप में प्राप्य हैं। हिन्दी के महाकाव्यों की चरित्रसृष्टि में श्रद्धा का व्यक्तित्व और मनोभावों के अन्तर्गत व्यक्त उसका स्वरूप अपने आप में अद्वितीय है।[८०] प्रसाद काव्य के एक समीक्षक का मत है कि हिन्दी का साहित्यिक परम्परा में कामायनी का यह उदात्त महान् विधान एक नवीन प्रयोग है।[८१] कामायनी की श्रद्धा उस आदर्शमयी शाश्वत नारी का प्रतीक है जो युगों तक नारी जाति की प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

इडा—कामायनी महाकाव्य के घटनाचक्र में इडा का प्रवेश यद्यपि नवम सर्ग से होता है तथापि महत्त्वपूर्ण कथा-सूत्रों के विकसित करने में उसका योगदान उल्लेखनीय है। इसीलिए इडा कामायनी का प्रमुख पात्र-सृष्टि के अन्तर्गत ही समाहित की जाती है। मनु और श्रद्धा की भांति इडा का भी ऐतिहासिक एवं प्रतीकात्मक व्यक्तित्व है। सांकेतिक दृष्टि से वह बुद्धि तत्त्व की प्रतीक है। इडा के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की पुष्टि के लिए प्रसादजी ने

[७७] डॉ० विजयेन्द्र स्नातक कामायनी दर्शन पृ० १६७
[७८] कामायनी दर्शन सर्ग पृ० २४६
[७९] वही आनन्द सर्ग पृ० २८०
[८०] डॉ० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण पृ० १०८
[८१] डॉ० प्रभाकर प्रसाद का काव्य पृ० ४०८

कामायनी के आमुख में महत्त्वपूर्ण माना गया है। ऋग्वेद के अनुसार वह प्रजापति मनु की पथ प्रदर्शिका मनुष्यों का शासन करने वाली कहा गयी है। ऋग्वेद में इडा को धी बुद्धि का साधन करने वाली मनुष्य को चेतना प्रदान करने वाली कहा है। बुद्धि का विकास राज्य स्थापना इत्यादि इडा के प्रभाव से ही मनु ने किया।[८२] किन्तु कामायनी के आमुख में प्रसाद ने इसके (इडा) ऐतिहासिक अस्तित्व का परिचय देने के लिए शतपथ ब्राह्मण ऋग्वेद तथा अमर कोश के जो संकेत दिए हैं उनका उपयोग इडा के चरित्र विकास में उन्होंने नहीं किया है। ये संकेत केवल इडा के अस्तित्व का इतिहास से सम्बन्ध मात्र जोड़ते हैं इनके सिवाय उनकी और कोई उपयोगिता नहीं।[८३] वास्तव में प्रसादजी ने इडा के चरित्र में आधुनिक युग की बौद्धिक क्षमता से युक्त एक ऐसी सजग नारी का व्यक्तित्व खड़ा किया है जो आज के वैज्ञानिक युग की समस्त शक्तिमत्ता एवं दुर्बलता का एक साथ पूरा-पूरा आभास देने में समर्थ है आधुनिक युग की नारी जिसे हम अल्ट्रा-माडर्न के विशेषण से विभूषित करते हैं और जो अपनी बौद्धिक पूर्णता के साथ पुरुष के साथ रहकर चलना करती है इडा के व्यक्तित्व में कुछ-कुछ ऐसी ही लगती है।[८४] इडा का बुद्धिवादी रूप नारी श्रद्धा के चरित्र का एक प्रकार से पूरक भी है। इडा के चरित्र में नारी का यथार्थ रूप अंकित हुआ है।

इडा सारस्वत प्रदेश की रानी है। वह नयन महोत्सव की प्रतीक एवं अम्लान नलिन की नवमाला के समान दृष्टिगोचर होती है।[८५] उसकी तर्क जाल सी बिखरी अलकें शशिखण्ड के समान स्पष्ट भाल अनुराग विराग ढालते पद्म पलाश चषक के समान दृग त्रिगुणात्मक त्रिवली चरणों की ताल भरी गति एवं वक्षस्थल पर एकत्र संसृति के सब विज्ञान ज्ञान उरोज आलोक वसन धारे वह एक ओर बुद्धिवाद के अतिरेक की प्रतीक है तो दूसरी ओर

---

[८२] कामायनी आमुख प० ८ ६
(अ) इडा मकृण्वन्मनुषस्य शासनीम। (ऋग्वेद १ ३१ ११)
(ब) सरस्वती साधयन्ती धियं न इडा देवी भारती विश्वमूर्तिः तिस्रो देवी स्वधया वर्हि रस्मदच्छिद्रम पान्तु शरणं निपद्य। (ऋग्वेद २।३।८)

[८३] डा विजयेन्द्र स्नातक कामायनी दर्शन, प १६३

[८४] डा० नन्दनाथ मन्तान द्वारा सकलित जयशंकरप्रसाद चिन्तन व कला प १ ३

[८५] कामायनी इडा सर्ग प० १६८

आधुनिका (नारी) के समान दिखायी देता है।[८६] इड़ा प्रतिमा प्रसन्न मुख से क्लेश सह रहे मनु का स्वागत करती हुई उन्हें सारस्वत प्रदेश का शासन प्रबन्ध सौंप देती है। वह मनु को बुद्धि और विज्ञान के द्वारा सारस्वत प्रदेश का शासन करने को कहती है

हो तुम हो हो अपने सहाय ?
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय
जितने विचार संस्कार रहे उनका न दूसरा है उपाय।

× × ×

सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता
तुम ही इसके निर्णायक हो, कहो विषमता या समता
तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय।[८७]

इड़ा ने केवल प्रदेश की भौतिक समृद्धि के लिए ही मनु को प्रेरित नहीं किया वरन आसव के चषक पिलाकर उसे विलासोन्मुख भी किया

इस नारी की वह आसव जिसकी बुझती प्यास नहीं
तृषित कंठ को पी पीकर भी जिसमें है विश्वास नहीं।[८८]

यहाँ तक हम इड़ा के चरित्र में बौद्धिकता का अतिरेक पाते हैं। उसके रूप सौन्दर्य से आकर्षित होकर अतृप्त विलासी मनु इड़ा पर बलात्कार करना चाहते हैं जिसके परिणामस्वरूप जन विप्लव हो जाता है। संघर्ष के पश्चात इड़ा ग्लानि से पूरित होकर विगत बातों पर विचार करने लगती है कि मनु का स्नेह उसके लिए अनन्य नहीं रह पाया।[८९] उपकारी मनु आज अपराधी हैं।[९०] इड़ा विचित्र उलझन में पड़ जाती है कि जिसे वह स्पष्ट देन बैठी है उसी की रखवाली कर रही है।[९१] इड़ा इसी मानसिक द्वन्द्व में पड़ी थी कि मनु को ढूँढती हुई श्रद्धा आ पहुँची। उसे देखकर इड़ा का हृदय भी द्रवीभूत हो गया

---

[८६] कामायनी, इड़ा सर्ग पृ० १६८
[८७] वही, पृ० १७१
[८८] वही स्वप्न सर्ग पृ० १८३
[८९] वही निर्वेद सर्ग पृ० २०८
[९०] वही पृ० २१०
[९१] वही, पृ० २११

इडा आज कुछ द्रवित हो रही दुखियों को देखा उसने।
पहुँची पास और फिर पूछा तुमको बिसराया किसने ? [६२]

यहाँ से इडा के चरित्र में नारी सुलभ स्वभाव परिवर्तन होता है। मनु के पुन चले जाने पर इडा अपने को सबसे अधिक अपराधी समझती है।[६३] श्रद्धा के जीवन को दुखमय बनाने में अपना योग मानकर वह दुखी होती हुई श्रद्धा से क्षमायाचना भी करती है

जिस पर मैंने छीना सुहाग। हे देवि ! तुम्हारा दिव्य राग
मैं आज अकिंचन पाती हूँ। अपने को नहीं सुहाती हूँ।

× × ×

दो क्षमा न दो अपना विराग सोई चेतनता उठे जाग॥ [६४]

इडा के जीवन में एक और परिवर्तन आता है। वह श्रद्धा के आदेश पर कुमार के साथ अपने हृदय में कोमल वृत्तियों का विकास करके सारस्वत प्रदेश के शासन-सूत्र को सम्भालकर नगर की अपूर्व वैभव वृद्धि करता है। अन्त में कुमार और प्रजा सहित श्रद्धा और मनु के दर्शनों के लिए वह कैलाश गिरि की यात्रा करती है। वहाँ पहुँचकर इडा वसुधैव कुटुम्बकम के भाव को ग्रहण करती है

था इडा शीश चरणों पर वह पुलक भरी गद्गद स्वर।
बोली—मैं धन्य हुई हूँ जो यहाँ भूल कर आयी।
हे देवि ! तुम्हारी ममता बस मुझे खींचती लायी।

× × ×

हम एक कुटुम्ब बनाकर यात्रा करने हैं आये। [६५]

वास्तविकता का ज्ञान होने पर इडा स्वार्थ और भौतिकता की संकुचित सीमाओं का अतिक्रमण कर आनन्द की अधिकारिणी बन जाती है।

इस प्रकार इडा के चरित्र में एक ओर विप्लव और संघर्ष है तो दूसरी ओर त्याग और प्रेम। श्रद्धा के सम्पर्क में आकर उसके चरित्र में निखार आ जाता है प्रतीकात्मक दृष्टि से इडा व्यवसायात्मिका बुद्धि का प्रतिनिधित्व करती है। इडा के चरित्र से प्रमाणित हो जाता है कि श्रद्धारहित बुद्धि संकट

---

[६२] कामायनी निर्वेद सर्ग पृ० २१३

[६३] वही पृ० २३०

[६४] वही दर्शन सर्ग पृ० २४

[६५] वही आनन्द सर्ग पृ० २८६ ८७

और संघर्ष में उलझती है। श्रद्धासमन्वित होने पर ही बुद्धि को सफलता मिलती है। इड़ा के चरित्र के माध्यम से कवि ने नारी चित्र की जिन रेखाओं को अंकित करना चाहा है वे पूर्णतः नहीं उभर पायी हैं क्योंकि इड़ा के व्यक्तित्व की पूर्ण योजना काव्य में नहीं हुई है। हाँ इड़ा के चरित्र में प्रसाद की इस भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति अवश्य मिल गयी है कि केवल प्रबुद्ध मस्तिष्क लेकर ही समाज की कल्याणमयी भूमिका की नींव सुदृढ़ नहीं की जा सकती।[६६] समष्टि रूप में प्रसाद जी ने इड़ा के चरित्र चित्रण में आधुनिक युग की बौद्धिक क्षमता से युक्त एक ऐसी सबल नारी का व्यक्तित्व खड़ा किया है जो आज के वैज्ञानिक युग की समस्त शक्तिमत्ता और दुर्बलता का एक साथ पूरा पूरा आभास देने में समर्थ है।[६७]

अन्य पात्र—श्रद्धा-मनु पुत्र कुमार (मानव) के दर्शन हमें स्वप्न सर्ग में होते हैं। उसके चरित्र का विशेष विस्तार कामायनी में उपलब्ध नहीं है। वह विपत्ति में माँ का अवलम्ब है। मूर्च्छित पिता को देखकर उसके रोएँ खड़े हो जाते हैं और वह माँ से पिता को पानी देने के लिए कहता है।[६८] कुमार के मन में अपनी माँ (श्रद्धा) के प्रति अनन्य प्रेम है। माँ की आज्ञा से वह इड़ा के साथ रहते हुए सारस्वत प्रदेश की श्री-सम्पन्नता को बढ़ाता है। मानव के चरित्र में पिता मनु की मननशीलता माता की रागात्मक वृत्तियों और इड़ा के सहवास के कारण वैज्ञानिकता एवं बौद्धिकता का अद्भुत सामंजस्य हुआ है। आकुलि और किलात असुर पुरोहित हैं जो प्रतीक रूप में आसुरी वृत्तियों के प्रतिनिधि हैं। कर्म सर्ग में वे मनु को असद् परामर्श देकर उनके द्वारा श्रद्धा के पालित पशु की बलि दिलवा देते हैं। संघर्ष सर्ग में ये दो पुरोहित सारस्वत नगर की जन क्रान्ति का प्रतिनिधित्व करते हुए मनु के विरुद्ध हो जाते हैं। मनु के द्वारा इनका वध होता है।[६९] कुमार आकुलि और किलात आदि पात्रों की चरित्र-योजना का पूर्ण विकास कामायनी में नहीं हो पाया है। कामायनी की ही पृष्ठभूमि में मानव (कुमार) के चरित्र विकास का सुन्दर प्रयत्न इसी युग के एक अन्य महाकाव्य में हुआ है।[१]

६६ डॉ० देवेश ठाकुर प्रसाद के नारी पात्र, पृ० २०६
६७ डॉ० विजयेन्द्र स्नातक कामायनी दर्शन, पृ० १६८
६८ कामायनी, निर्वेद सर्ग पृ० १५ १६
६९ वही संघर्ष सर्ग पृ० २०१
१ डॉ० रामगोपाल दिनेशकृत सारथी (महाराष्ट्र)

चरित्र विश्लेषण मूल्यांकन

१ कामायनी की चरित्र-योजना का समष्टि प्रभाव निश्चय ही पुरातन एवं शुभ है। कामायनी के मनु प्रथम बार स्वाभाविक ढंग से सहज मानव के रूप में चित्रित किये गये हैं। मनु के चरित्र में भारतीय काव्यशास्त्र में उल्लिखित नायकोचित गुणों का यद्यपि अभाव है किन्तु जिन मानवीय दुर्बलताओं और सबलताओं का समावेश उनके चरित्र में हुआ है उनके कारण वह युग की परिभाषा में एक प्रमुख पात्र अवश्य हैं। सहज मानव चेतना का प्रतीक होने के नाते मनु का चरित्र विकासशील है धीरोदात्त गुणों से समन्वित विकसित चरित्र की संगति न कामायनी के कथानक के साथ बैठ सकती है न उसके प्रतिपाद्य के साथ ही। अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण मनु अहंकार स्वार्थ इन्द्रियलिप्सा अस्थिरता आदि अनगढ़ मानव चेतना की हीनतर मानव प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं हो पाते थे किन्तु क्रमश दुर्गुणों पर विजय प्राप्त करके जहाँ वे पूर्णत समरस मानवत्व आध्यात्मिक शब्दावली में शिवत्व की सिद्धि करते हैं वहाँ धीरोदात्त स्थिति से भी ऊपर उठ जाते हैं।[1] श्रद्धा का चरित्र महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है।

२ कामायनी के चरित्र विश्लेषण का आधार मनोवैज्ञानिक होने के कारण काव्य के सभी प्रमुख पात्र (मनु श्रद्धा इडा) प्रतीक-अर्थ के स्पष्ट व्यंजक और कथानक के रूपक तत्त्व के सफल नियामक रहे हैं।

कामायनी के पात्रों में इतिहास-पुराण सम्मत व्यक्तित्व और प्रतीकात्मक चरित्र दोनों का सफल निर्वाह हुआ है। पौराणिक श्रद्धा और मनु को लोग भले ही कपोल-कल्पित कहें पर कामायनी की श्रद्धा और मनु को पढ़कर उनकी सत्ता में कोई अविश्वास नहीं कर सकता। प्रसाद ने श्रद्धा और मनु का नव निर्माण नहीं पुनर्निर्माण किया है परन्तु उनके पुनर्निर्माण से पात्रों की पौराणिकता नष्ट नहीं हुई है। हरिऔध ने प्रियप्रवास में कृष्ण को इतना आधुनिक बना दिया है कि उनकी पौराणिकता नष्ट हो गयी है पर प्रसादजी ने श्रद्धा मनु तथा इडा में नवयुग की चेतना भर कर भी उनकी पौराणिकता मिटने नहीं दी।[2]

४ कामायनी का चरित्र चित्रण आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी पद्धति पर किया गया है। श्रद्धा का चरित्र तो आद्यन्त आदर्शपूर्ण है किन्तु मनु और

---

[1] डा नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्याएं पृ० २०

[2] डा० रामनारायण कामायनी अनुशीलन पृ ७४

द्रष्टा यथार्थ जीवन गति से विकसित होते हुए भी अन्ततः आत्मा की उपलब्धि में ही अपने व्यक्तित्व की सार्थकता का परिचय देते हैं।

५. नारी चरित्र की पूर्ण महिमा के प्रतीक श्रद्धा और इड़ा के चरित्र हैं। कामायनी की श्रद्धा में नारीत्व का सम्पूर्ण विकास व्यंजित हुआ है। यह चरित्र युगों तक नारी-चेतना के इतिहास में प्रेरणा का अमर प्रतीक बनकर स्थित रहेगा।

रचना शिल्प

भाव पक्ष (वर्णन कौशल)

१. प्रकृति वर्णन— कामायनी छायावाद की एक महत्तम कृति है। छायावाद की एक प्रमुख विशेषता प्रकृति निरूपण है। प्रसादजी प्रकृति के चतुर चितेरे कलाकार हैं। यद्यपि प्रमुख चार छायावादी कवि चतुष्टय में पन्त को ही प्रकृति का कवि कहा जाता है किन्तु पन्त प्रकृति के कोमल और सुकुमार रूपों के ही कलाकार हैं क्योंकि उनका काव्य प्रकृति पर्यवेक्षण शक्ति, प्रतिभा, कल्पना तथा कोमलकान्त पदावली का मनोरम उद्यान है।[13] जबकि प्रसादजी प्रकृति के भव्य और भयंकर निर्माणकारी और विनाशकारी सूक्ष्म और विराट सभी क्षेत्रों के कवि हैं। वस्तुतः प्रकृति प्रसाद साहित्य की निजी सम्पत्ति है, लगता है जैसे उनका सारा साहित्य इसी प्रकृति सम्पत्ति से उद्भूत निकला हो।[14] कामायनी में प्रकृति चित्रण की काव्य प्रचलित सभी प्रणालियों के अतिरिक्त कवि ने जितने ही रूपों में भी प्रकृति ग्रहण किया है जो उनके मौलिक प्रकृति ज्ञान प्रस्थान का परिचायक है।

(अ) आलम्बन रूप में—आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण की दो प्रणालियाँ हैं—बिम्बग्रहण प्रणाली तथा नाम परिगणन प्रणाली। प्रसादजी ने कामायनी में प्रथम को ही अधिकांश ग्रहण किया है। आलम्बन रूप में उन्होंने प्रकृति के विकराल और रम्य दोनों रूप अंकित किये हैं। काव्य के प्रथम सर्ग में प्रकृति का भयंकर रूप अंकित हुआ है। यथा

> हा हा कार हुआ क्रन्दनमय
> कठिन कुलिश होते थे चूर
> हुए दिगन्त बधिर भीषण रव
> बार बार होता था क्रूर।

---

[13] जीवन प्रकाश जोशी साहित्यिक निबन्ध, पृ० २४८

[14] डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी दिग्दर्शन पृ० १८४

× × ×

उधर गरजती सि धु लहरियाँ
कुटिल काल के जालों सी
चली आ रही फेन उगलती
फन फैलाये व्यालों सी।
धसती धरा धधकती ज्वाला
-वाला मुखियो के निश्वास
और संकुचित क्रमश उसके
अवयव का होता था ह्रास॥[१४]

प्रकृति के सुरम्य रूप का चित्रण भी हुआ है

यह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से
वर्षा बीती हुआ सृष्टि मे
शरद विकास नये सिरे से
नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीडा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।[१६]

(आ) उद्दीपन रूप में

सध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे
शैल घाटियों के अचल को वे धीरे से भरते थे
तृण गुल्मो से रोमाचित नग सुनते उस दुख की गाथा
श्रद्धा की सूनी सासो से मिलकर जो स्वर भरते थे।[१७]

(इ) आलकारिक रूप मे

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अग
खिला हो ज्यो बिजली का फूल मेघ वन बीच गुलाबी रग।[१८]

---

[१४] कामायनी चिन्ता सर्ग पृ० १३ १४
[१६] वही आशा सर्ग पृ २३
[१७] वही स्वप्न सर्ग पृ १७६
[१८] वही श्रद्धा सर्ग पृ ४६

(ई) मानवीकरण रूप में

उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई
उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।[१०९]

(उ) उपदेश रूप में

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घनमाला में
सौदामिनी-संधि सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में ?[११०]

उपर्युक्त प्रमुख रूपों के अतिरिक्त प्रसादजी ने प्रकृति का संवेदनात्मक प्रतीकात्मक दार्शनिक रहस्यात्मक एवं पृष्ठभूमि के रूप में भी चित्रित किया है। कामायनी में रीतिकालीन रूढ़ि के अनुसार कवि ने न तो षट्ऋतु एवं बारहमासा के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है और न दूत-दूती के रूप में। आशा सर्ग के अन्त में केवल एक स्थल पर कवि ने अवश्य रजनी को सम्बोधित करते हुए कहा है कि— मेरा प्रेम भावना बनकर या भ्रान्ति तुम कहीं मिल जाय तो या हो मत लौटाना क्योंकि तुम भी तेरा भाग अवश्य मिलेगा।[१११]

साराश यह है कि कामायनी में प्रकृति का केवल सौन्दर्य निरूपण ही नहीं हुआ है वरन् प्रस्तुत और अप्रस्तुत विधान द्वारा कवि ने मानवीय चेतना और अनुभूति को भी प्रकृति के उपादान प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया है। काव्य का प्रारम्भ प्रकृति वर्णन से हुआ और उसका अन्त भी प्रकृति की गोद में ही होता है। काव्य के चरम उद्देश्य अर्थात आनन्द एवं समरसता की प्राप्ति भी प्रकृति के पुनीत प्रांगण कैलाश में ही हुई है।

२ सौन्दर्य चित्रण—प्रसादजी ने प्रकृति, पुरुष पदार्थ और आत्मा—सभी के सौन्दर्य की अनुभूति और चेतना की दृष्टि से देखा है। इसीलिए कामायनी में स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही दृष्टियों से सौन्दर्य का चित्रण हुआ है।

(अ) मानवीय रूप सौन्दर्य—जहाँ तक व्यक्ति सौन्दर्य का प्रश्न है प्रसादजी ने श्रद्धा और मनु के व्यक्तित्व चित्रण में बाह्य सौन्दर्य दृष्टि का परिचय दिया है। श्रद्धा के शारीरिक संगठन का वर्णन करते हुए प्रसादजी ने उसे हृदय की बाह्य अनुकृति कहा है। उसके मुखमण्डल की शोभा इस प्रकार दिखाया गया है जैसे सायंकाल के समय नीलम के पहाड़ की घाटी पर अम्बर की रजनी में एक लघु दीप जलता बाला ज्वालामुखी हो। श्रद्धा के लम्बे घुंघराले बालों का

[१०९] कामायनी, आशा सर्ग पृ० ७३
[११०] वही, चिन्ता सर्ग पृ० १६
[१११] वही आशा सर्ग पृ० ४० ४१

मुख पर बिखरा हुआ प्रतीत होता है जैसे नील मेघ शावक चन्द्रमा को सुधा का पान करने आये हों। उसकी मुस्कान बालारुण की उज्ज्वल रश्मि के समान विश्राम करती हुई प्रतीत होती है। इसी श्रद्धा ने इड़ा की आभा किरण और कामना दृष्टि कवि की कान्ति के समान कल्पना की स्निग्ध मेघ सी बनकर मानस की हलचल को शान्त कर दिया थी।[112] प्रसादजी ने श्रद्धा के सौन्दर्य निरूपण में आध्यात्मिक एवं अपार्थिव सौन्दर्य दृष्टि का भी परिचय दिया है। श्रद्धा का सौन्दर्य निरूपण हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। इस प्रकार मनु को भी पराक्रमी तेजस्वी बलिष्ठ रूप में अंकित किया है जो आदि मानव के आजमय रूप का परिचायक है।[113] मनु पुत्र मानव को भी कवि ने तेजस्वी किशोर के रूप में चित्रित किया है।[114]

(आ) प्राकृतिक रूप सौंदर्य—प्रकृति के रूप सौन्दर्य अंकित करते हुए प्रसादजी ने अनेक रम्य और संश्लिष्ट भाव चित्र खींचे हैं। चिन्ता सर्ग में सागर के प्रलय कालीन रूप का कुछ ही छन्दों में इसी क्रुद्ध रूप प्रसादजी ने अंकित किया है जो प्रकृति के विकराल स्वरूप को स्पष्ट करता है। सिंधु में लहरियाँ यान के समान फन फैलाये चली जा रही हैं। विलास के आवेग के समान जल प्रपात बढ़ने लगता है। यह कच्छप-सा धरणी झूम झूम कर विचलित हो जाती है। उदधि मर्यादाहीन होकर धरा को डुबो देता है। करुणा-क्रन्दन होता है और सम्पूर्ण सृष्टि में पंचभूत के ताण्डव नृत्य का दृश्य दिखायी देता है।[115]

इसी प्रकार का संश्लिष्ट चित्र आशा सर्ग में हिमालय पर्वत का कवि ने अंकित किया है। उसे विश्व कल्पना के समान उन्नत सुख शीतलता एवं सन्ताप को निरखने डूबती हुई अवनी का अवलम्बन और मणिरत्न निधान कहा है। उसके चरणों में नीरवता की विमल विभूति है झरनों की धारा में जीवन की अनुभूतियाँ बिखर रही हैं और पर्वत की शिला संधियों से टकराकर पवन गुञ्जार भर रहा है जो ऐसा प्रतीत होता है मानो चारण-कवियों की भाँति हिमालय की दुर्भेद्य अचल दृढ़ता का प्रचार कर रहा है। सायंकालीन घनमालाओं के बीच की गगनचुम्बी श्रेणियाँ ऐसी दिखायी देती हैं कि मानो वे पर्वतराज

[112] कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ० ४६ ५०
[113] वही चिन्ता सर्ग पृ० ४
[114] वही आनन्द सर्ग पृ० २७७
[115] वही पृ० १४ १५

हिमालय की रानियाँ है जो तुषारकिरीट धारण किये वाम्पों के छींट के वस्त्र ओढ़े हैं।[११६]

(६) भाव सौंदर्य—भाव सौन्दर्य का अंकन करने में भी क कलाकार है। इस दृष्टि से लज्जा का रूप विधान अन्यतम है। के अंतस के आवरण विकर्षण में युक्त प्रवृत्तिमूलक भाव है। चित्र अंकित करते हुए कवि ने कहा है कि—लज्जा के कारण का हिचक और स्पर्श समय पलकों पर आँखें झुक जाती है। पंि अधरों तक सहमकर रुक जाती है। ममता की भाषा बनकर परवशता के समान नारी के सौंदर्य पर नियन्त्रण करता है। कवि ने रति की प्रतिकृति तथा नारी के चंचल और विचार सरंभिका कहा है। यह चेतना का उज्ज्वल वरदान है। लज्जा क भावचित्र दृष्टव्य है

> लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन सी लगती
> कुंचित अलकों सी घुंघराली मन की मरोर बन कर जगती
> चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली
> मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली।

लज्जा के अतिरिक्त चिन्ता सर्ग में चिन्ता का और वासना सर्ग का चित्रांकन करते समय कवि ने भाव-सौन्दर्य चित्रण का अ प्रदर्शित किया है। इन सूक्ष्म अमूर्त भावों को सुंदर प्रतीकों द्वा मूर्त रूपों में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार व्यक्ति प्रकृति और का भव्य चित्र विधान कवि की सूक्ष्म-सौन्दर्य चेतना अनुभूति ए का परिचायक है।

३ मनोवैज्ञानिक निरूपण— कामायनी की कथा वस्तु में म प्रतिष्ठा होने के कारण काव्य के नायक मनु मन के, श्रद्धा हृदय बुद्धि की प्रतीक है। अत काव्य में पात्रों की मनोवृत्तियों के म करने तथा कथाक्रम को तदनुरूप संयोजित करने में कामायनी का विवेचन स्वाभाविक रूप से हो गया है। 'कामायनी' के निरूपण को निम्न रूपों में उल्लिखित किया जा सकता है

---

११६ कामायनी, आशा सर्ग पृ० ३६ ३०

११७ वही लज्जा सर्ग, पृ० १०८

१ सग क्रम म
पात्रो की मानसिक वृत्तियो क रूप म चित्रण
३ घटनात्मक नियोजन म ।

कामायनी क सम्पूर्ण सर्गों का नामकरण मानसिक वृत्तियो क आधार पर हुआ है। काव्य म उनका क्रम भी इसी प्रकार आयोजित है जिस प्रकार मानव के मन म वृत्तियो का जन्म होता है। प्रथम सग म प्रलय-काल का भयकर प्रतिक्रियाओ क कारण मनु का मन चिन्तित है। अन्तु इस सग का नाम चिन्ता रखा गया है। चिन्ता क पश्चात् हृदय म आशा नामक भाव का उदय होता है। आशा स जीवन म प्ररणा जाग्रत होती है और मन हृदय क प्रतीक रूप श्रद्धा का कामज वृत्ति क रूप म पाकर काम और वासना क अधीन होता है। हृदय की प्रतीक श्रद्धा वासनाजन्य उच्छखलता क कारण लज्जा का अनुभव करती है किन्तु वासना स उत्तजित मनु का मन वासना तृप्ति क लिए काम जगत म प्रवश करता है। मनु ईर्ष्यावश श्रद्धा को छोड बुद्धि (इडा) क पाश म बध जाते हैं। इस क पश्चात स्वप्न सग का आयोजन है जिसम श्रद्धा आपत्तिग्रस्त मनु की दशा को दखती है। यह हृदय क उस भाव का लक्षण है जिसम वह मन का साथ पूरी तरह नहीं छोड पाता। बुद्धि क विरोध क फलस्वरूप सघष उत्पन्न होता है। सघष म परास्त होन पर मनु क मन म निर्वेद भाव उत्पन्न होता है। श्रद्धा स पुन सम्पक स मनु का व्याकुल मन आनन्द नाथ क दशन हतु व्यग्र होता है। इच्छा ज्ञान और क्रिया क त्रिपुर रहस्य को समझ लन पर मनु को आनन्द की प्राप्ति होती है। सर्गों क नामकरण और उपयुक्त सयोजन क्रम से स्पष्ट है कि कवि न मनोवैज्ञानिक आधार पर ही सर्गों क शीर्षक और क्रम आयोजित किय हैं।

कामायनी क मुख्य पात्र हैं—मनु श्रद्धा और इडा। कामायनी क मनु मन क प्रतीक हैं। भारतीय विचारधारा क अनुसार मन का भौतिक रूप प्रदान किया गया है। उस चचल दृढ एव शक्तिशाली इन्द्रिय के रूप म भी माना गया है। वह सम्पूर्ण इन्द्रियो का राजा है जिसका काय सकल्प विकल्प का मनन करना है। भारतीय विचारानुसार शुद्ध शान्त एव नियन्त्रित मन ही आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। पाश्चात्य विचारधारा क अनुसार मन को एक ठोस द्रव्य माना गया है जो सम्पूर्ण सचेतन प्राणियो म विद्यमान रहता है। फ्रायड क अनुसार मन क चेतन व अचेतन दो रूप हैं। इनम अचेतन मन को ही अधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि उसक द्वारा काम नामक प्रवृत्ति

का संचालन होता है। संक्षेप में मन शरीर का संचालक नियामक एवं प्रेरक है। प्रसादजी ने कामायनी में मन के प्रतीक मनु के चरित्र को जिस रूप में विकसित किया है उसमें उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों का किसी-न-किसी रूप में समावेश होते हुए भी मन के सम्बन्ध में उनकी निजी धारणा रही है जो उनके साहित्य में (कामायनी के अतिरिक्त भी) व्यक्त हुई है।

भारतीय विचारधारानुसार प्रसादजी ने मन अर्थात् मनु को नाना पक्षों—हृदय और बुद्धि (श्रद्धा और इड़ा)—से संचालित माना है। मात्र बुद्धि का अनुसरण करके मन भटक सकता है। हृदय का सम्बल पाकर ही वह वास्तविक आनन्द की उपलब्धि कर सकता है। अतः मनु सम्पूर्ण संकल्प विकल्प से मुक्त होने के लिए श्रद्धा का संबल चाहते हैं

यह क्या ? श्रद्धे ! बस तू ले चल उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल पावन बन जाते हैं निर्मल ॥ ११८

श्रद्धा हृदय की प्रतीक है।[११९] इस दृष्टि से मन (मनु) पर उसका प्रभाव स्पष्ट हो है। वह मानसिक वृत्तियों के संचालन में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। इड़ा को कवि ने बुद्धि की प्रतीक माना है।[१२०] कामायनी की इड़ा के चरित्र में तर्क वितर्क और ज्ञान विज्ञान से सम्बन्धित भौतिक उपलब्धियाँ आदि जो भी मस्तिष्क या बुद्धि के गुण हैं विद्यमान हैं। मनु पुत्र कुमार नव मानव का और किलात-आकुलि तामसी वृत्तियों के प्रतीक हैं। इनके अतिरिक्त लज्जा और काम जैसी मनोवैज्ञानिक वृत्तियों को अशरीरी पात्रों के रूप में अंकित किया है। भारतीय ग्रन्थों में काम का विभिन्न रूपों में उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में काम का एक देवता के रूप में, उपनिषदों में आध्यात्मिक शक्ति, वात्स्यायन के कामसूत्र में जीवन की अनिवार्य प्रवृत्ति, पुराणों में वासना के प्रतीक एवं सप्तशती में सौन्दर्य एवं प्रेम के प्रतीक रूप में उल्लिखित किया गया है। प्रसाद ने काम का चित्रण किया है जो वासना की ही प्रतीक नहीं वरन् व्यापक प्रेम का भी प्रतीक है। संक्षेप में काम के तीन रूप मिलते हैं

१ आध्यात्मिक
२ सृजनात्मक
३ वासनात्मक।

---

११८ कामायनी दर्शन सर्ग पृ० २५४

११९ हृदय की अनुकृति बाह्य उदार। वही श्रद्धा सर्ग पृ० ४६

१२० बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल। वही इड़ा सर्ग पृ० १३८

प्रसादजी ने कामायनी में मुख्य रूप से गृहस्थगत काम का ही वर्णन किया है

> काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम
> तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भव धाम।[121]

इस प्रकार प्रसादजी की काम सम्बन्धी विचारधारा अत्यन्त व्यापक है क्योंकि यहाँ काम का स्वरूप अनाचारी नहीं धर्म अविरुद्ध है।

कामायनी के मनोव्यापार में फ्रायड के पाँच प्रमुख सिद्धान्त दृष्टव्य हैं

१ स्वप्न सिद्धान्त (थियरी आफ ड्रीम्स)
२ काम सिद्धान्त (थियरी आफ लिबीडो)
भूल सिद्धान्त (थियरी आफ स्लिप्स)
४ हास्य विनोद सिद्धान्त (थियरी आफ विट)
५ अहं सिद्धान्त (ईगो थियरी)।

फ्रायड ने स्वप्न को मानव की दमित इच्छाओं का प्रकाशन माना है। फ्रायड के मतानुसार मनुष्य की वे काम-वासनाएँ जो सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण दमित और कुण्ठित होकर अचेतन में स्थित रहती हैं निद्रा-काल में स्वप्न बनकर अभिव्यक्त होती हैं। कामायनी में दो स्थानों पर स्वप्न का वर्णन किया गया है। काम सर्ग में मनु श्रद्धा के प्रति आत्म समर्पित हो जाने के पश्चात अनिश्चय की अवस्था में रहते हैं कि श्रद्धा को ग्रहण किया जाय या नहीं। तभी उन्हें स्वप्न में काम का आदेश मिलता है जिसमें मनु का ध्यान मंगलमय भविष्य की ओर आकर्षित किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्वप्न सर्ग में श्रद्धा सारस्वत नगर में मनु का इड़ा के प्रति असमाजिक आचरण और उसके परिणामस्वरूप रुद्र के कोप का दृश्य देखती है।

काम सिद्धान्त के अन्तर्गत फ्रायड ने जिन ओडिपस काम्पलेक्स और इलेक्ट्रा काम्प्लेक्स की चर्चा की है वह कामायनी में भी मानव का श्रद्धा (अपनी माँ) के प्रति आकर्षण एवं मनु के मन में गर्भस्थ शिशु के प्रति ईर्ष्या का भाव जिसके कारण वे श्रद्धा को अकेली छोड़कर चले जाते हैं आदि प्रसंगों में दृष्टव्य है।

भूल सिद्धान्त का संकेत कामायनी की निम्न पंक्तियों में मिलता है

> मनन चेतना के कौशल का भूल जिसे कहते हैं
> एक बिन्दु जिसमें विषाद के नद उमड़े रहते हैं।[122]

---

[121] कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ० ५३
[122] वही कर्म सर्ग पृ० १२२

मूल के फलस्वरूप मनुष्य को अनेक विपदाओं एवं दुःखों से ग्रस्त होना पड़ता है।

आत्मविनाश-सिद्धान्त का कामायनी में अभाव है। उसके स्थान पर अन्य सिद्धान्त का प्रश्न है वह इड़ा और मनु की अहंकारमूलक भावनाओं में मिलता है।

इस प्रकार कामायनी में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रसाद जी ने बड़े कौशल से काव्य और मनोविज्ञान का समाहार किया है। प्रस्तुत काव्य में मनोविज्ञान का इतना सूक्ष्म एवं गूढ़ विवेचन है कि डॉ० नगेन्द्र प्रभृति विद्वान कामायनी को मनोविज्ञान का दृष्टान्त कहते हैं।[123] इस उक्ति में कामायनी की गहन दार्शनिकता और प्रगाढ़ मनस्तत्त्व की ही व्यंजना होती है। वस्तुतः कामायनी में मनोविज्ञान में काव्य और काव्य में मनोविज्ञान एक साथ दिखायी देते हैं। मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण और वास्तविक निरूपण हिन्दी में शायद पहली बार हुआ है। कामायनी में चित्रित मनोविज्ञान सुसंस्कृत एवं प्रौढ़ है।[124]

४ रस-परिपाक और भाव चित्रण—भारतीय साहित्यशास्त्रियों के अनुसार महाकाव्य में सभी रसों की निष्पत्ति होनी चाहिए और शृंगार, वीर एवं शांत रस में से किसी एक की प्रमुखता होनी चाहिए क्योंकि महाकाव्य की एक कसौटी रस सिद्धि भी होती है। कामायनी में इसका निरूपण लक्षण ग्रन्थों को आधार मान कर नहीं हुआ है। कामायनीकार ने जीवन के व्यापक धरातल को लेकर समस्याओं का समाहार करते हुए जहाँ भाव निरूपण किया है वहीं रस निष्पत्ति हुई है। कामायनी में शृंगार और शान्त दोनों रसों की प्रधानता दिखायी देती है। वास्तव में काव्य की प्रस्तुत कथा में शृंगार रस की एवं अप्रस्तुत कथा में शान्त रस की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त करुण, रौद्र, भयानक, वीर, अद्भुत आदि रसों की भी काव्य में योजना हुई है।

संयोग शृंगार—शृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों रूप कामायनी में मिलते हैं। श्रद्धा और मनु के मिलन प्रसंग में शृंगार रस के संयोग पक्ष की सुन्दर व्यंजना हुई है। यथा—

> और वह मुख पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घन श्याम,
> अरुण रवि-मंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम।

[123] डॉ० नगेन्द्र साकेत एक अध्ययन, पृ० १५६

[124] श्री नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ११०

प्रसादजी ने कामायनी म मन्मथ रूप म गृहस्थ काम का ही वणन किया है

काम मगल स मण्डित श्रय सग इच्छा का है परिणाम
तिरस्कृत कर उसका तुम भूल बनाते हो असफल भव धाम । [१२१]

इस प्रकार प्रसादजी की काम सम्बन्धी विचारधारा अध्यात्म है क्योंकि यहाँ काम का स्वरूप अशरीरी एव धम अविरुद्ध है ।

कामायनी के मनोविश्लेषण म फ्रायड के पाँच प्रमुख सिद्धान्त दृष्टव्य है

१ स्वप्न सिद्धान्त (वियोगी और डोंग्स)
२ काम सिद्धान्त (वियोगी और सावित्री)
भूत सिद्धान्त (वियोगी और मिलिग्न)
४ हास्य विनोद सिद्धान्त (वियोगी और विट)
५ अह सिद्धान्त (इगो वियोगी) ।

फ्रायड ने स्वप्न को मानव की दमित इच्छाओं का प्रकाशन माना है । फ्रायड के मतानुसार मनुष्य की व काम-वासनाएँ जो सामाजिक प्रतिरोधों के कारण दमित और कुण्ठित होकर अचेतन म स्थित रहती है निद्रावस्था म स्वप्न बनकर अभिव्यक्त होती है । कामायनी म दो स्थानों पर स्वप्न का वणन किया गया है । काम सग म मनु श्रद्धा के प्रति आत्म समर्पित हो जाने के पश्चात अनिश्चय की अवस्था म रहते है कि श्रद्धा को ग्रहण किया जाय या नहीं । तभी उन्हें स्वप्न म काम का आदेश मिलता है जिसम मनु का ध्यान मगलमय भविष्य की ओर आकर्षित किया जाता है । इसके अतिरिक्त स्वप्न सग म श्रद्धा सारस्वत नगर म मनु का इडा के प्रति असामाजिक आचरण और उसके परिणामस्वरूप रुद्र के कोप का दृश्य देखती है ।

काम सिद्धान्त के अतगत फ्रायड ने जिन आडिपस काम्प्लेक्स और इलक्ट्रा काम्प्लेक्स की चर्चा की है वह कामायनी म भी मानव की श्रद्धा (अपनी मा) के प्रति आकषण एव मनु के मन म गर्भस्थ शिशु के प्रति ईर्ष्या का भाव जिसके कारण व श्रद्धा को अकेली छोड़कर चले जाते है आदि प्रसगों म दृष्टव्य है ।

भूत सिद्धान्त का सकेत कामायनी की निम्न पक्तियों म मिलता है

स्मृतिन चेतना के कौशल का भूत जिसे कहते है
एक बिन्दु जिसम विषाद के नद उमडे रहते है । [१२२]

---

[१२१] कामायनी श्रद्धा सग पृ ५३
[१२२] वही कम सग पृ० १२२



× × ×

मधुर व्रीडा मिश्र चिन्ता साथ ले उल्लास
हृदय का आनन्द कूजन लगा करने रास।
गिर रही पलकें झुकी थी नासिका की नोक
भ्रूलता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल
खिला पुलक कदम्ब-सा था भरा गद्गद बोल।[१२४]

वियोग शृंगार—श्रद्धा को त्यागकर मनु जब चले जाते हैं तो उसके हृदय की आकुलता के निरूपण में विप्रलम्भ का वर्णन हुआ है। वह कहती है कि

वन बालाओं के निकुंज सब भरे वेणु के मधु-स्वर से
लौट चुके थे आने वाले सुन पुकार अपने घर से
किन्तु न आया वह परदेशी युग छिप गया प्रतीक्षा में
रजनी की भीगी पलकों से तुहिन बिन्दु कण-कण बरसे।[१२६]

वीर रस— संघर्ष सर्ग में सारस्वत प्रदेश की प्रजा के विद्रोह कर देने पर किलात और आकुलि नामक पुरोहितों से युद्ध करते समय मनु के वीरत्व भाव की व्यंजना हुई है

यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सम्हाला
देव आग ने उगली त्यों ही अपनी ज्वाला।
छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले
टूट रहे नभ धूमकेतु अति नीले पीले।
× × ×
जो फिर आओ क्या कम होता है बलि
रण यह यज्ञ पुरोहित ! ओ किलात औ आकुलि।
और धराशायी थे असुर पुरोहित उस क्षण
इड़ा अभी कहती जाती थी बस रोको रण।[१२७]

वीभत्स रस— कर्म सर्ग में मनु द्वारा श्रद्धापालित पशु की यज्ञ में बलि देने के अवसर पर वीभत्स का दृश्य मिलता है

---

[१२४] कामायनी वासना सर्ग पृ० ६४

[१२६] वही स्वप्न सर्ग पृ० १७८

[१२७] वही, संघर्ष सर्ग पृ० २००-२०१

यत्र समाप्त हो चुका तो भी धधक रही थी ज्वाला
दारुण दृश्य ! रुधिर के छींटे अस्थि खंड की माला।
वेदी की निर्मम प्रसन्नता पशु की कातरवाणी।
मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी। [128]

भयानक रस— स्वप्न सर्ग की निम्न पंक्तियों में भयानक रस दृष्टव्य है

आलिंगन फिर भय का क्रन्दन ! वसुधा जैसे काँप उठी।
वह अतिचारी दुर्बल नारी परित्राण पथ नाप उठी।
अन्तरिक्ष में हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल थी
अरे आत्मजा प्रजा ! पाप की परिभाषा बन शाप उठी॥ [129]

करुण रस— कामायनी के चिन्ता सर्ग के प्रारम्भ में देव जाति के विनाश को देखकर मनु की दशा का बड़ा करुणाजनक वर्णन हुआ है

निकल रही थी मर्म वेदना
करुणा विकल कहानी सी। [130]

चिन्ताग्रस्त मनु सोच रहे थे कि

चिन्ता करता हूँ मैं जितनी उस अतीत की उस सुख की।
उतनी ही अनन्त में बनती, जाती रेखाएँ दुख की। [131]

वात्सल्य रस— ईर्ष्या सर्ग में गर्भवती श्रद्धा भविष्य के सुन्दर स्वप्नों में उलझी हुई मातृत्व की प्रतिमूर्ति बनकर वात्सल्यपूर्ण भावों की व्यंजना करती है

मैं उसके लिए बिछाऊँगी फूलों के रस का मृदु फेन।
झूले पर उसे झुलाऊँगी दुलरा कर लूँगी वदन चूम
मेरी छाती से लिपटा इस घाटी में लेगा सहज घूम। [132]

शान्त रस—शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है। प्रसाद ने काव्य का बारहवाँ सर्ग (निर्वेद) इसी के लिए लिखा है। निर्वेद का सुन्दर उदाहरण मनु के निम्न कथन में दृष्टव्य है

---

१२८ कामायनी, कर्म सर्ग पृ० ११६
१२९ वही, स्वप्न सर्ग, पृ० १८५
१३० वही चिन्ता सर्ग, पृ० ४
१३१ वही पृ० ६
१३२ वही, ईर्ष्या सर्ग पृ० १५८

विश्व कि जिसमें दुख की आँधी पीड़ा की लहरी उठती,
जिसमें जीवन मरण बना था बुद्बुद की माया नचती।
वही शान्त उज्ज्वल मंगल सा दिखता था विश्वास भरा
वर्षा के कदम्ब कानन सा सृष्टि विभव हो उठा हरा।[133]

उपर्युक्त रसों के अतिरिक्त कामायनी में यत्र तत्र गौण रसों का रम्य और आनन्द सर्ग के त्रिपुर मिलन और नटराज शिव के ताण्डव नर्तन में अद्भुत रस का भी आभास मिलता है। हास्य रस का कामायनी में अभाव ही है। इसका कारण कवि का चिन्तनशील एवं गम्भीर स्वभाव है। इस प्रकार कामायनी में रस-गाम्भीर्य एवं उदात्त भाव सृष्टि का परिचय स्थान स्थान पर मिलता है। कामायनी की रस निष्पत्ति के लिए अनेक स्थलों पर तो विभाव अनुभाव संचारी भावों आदि रस अवयवों की कवि ने आवश्यकता का अनुभव नहीं किया है। प्रसादजी ऐसे रस सिद्ध कवि हैं कि अनेक स्थलों पर मात्र आलम्बन उद्दीपन आदि विभावों अथवा संचारी भावों की सम्यक् योजना से ही रसव्यंजना हो गयी है। उदाहरण के लिए लज्जा नामक संचारी भाव को कवि ने इतने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है कि वह अकेला ही रसोद्रेक में समर्थ दिखायी देता है। कामायनी की रस निष्पत्ति इतनी प्रखर और पुष्ट है कि कवि की अनुभूतियों में पाठकों का सहज में ही साधारणीकरण हो जाता है।

कलापक्ष

१ नामकरण—कामायनी का नामकरण पात्रगत आधार पर हुआ है। कामायनी महाकाव्य की नायिका श्रद्धा है। श्रद्धा काम की पुत्री होने के कारण कामायनी कही गयी है। जैसा कि प्रसादजी ने स्वयं लिखा है कामगोत्रजा श्रद्धा नामर्षिका। श्रद्धा कामगोत्र की बालिका है इसलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायनी भी कहा जाता है।[134] यद्यपि काव्य के नायक मनु हैं किन्तु उनके चरित्र को सामान्य व्यक्ति के एवं मानव के रूप में ही चित्रित किया गया है। श्रद्धा का चरित्र बहुत ऊँचा एवं भव्य है। वह मनु का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की प्रेरणा का स्रोत है। अस्तु श्रद्धा के चरित्र की प्रमुखता और महत्ता की दृष्टि से काव्य का नामकरण कामायनी सर्वथा उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त काव्य में सर्वत्र श्रद्धा शब्द का प्रयोग

---

[133] कामायनी निर्वेद सर्ग पृ० २२३

[134] वही, आमुख पृ ७

होते हुए भी कवि ने 'कामायनी' नामकरण इसलिए भी किया कि 'कामायनी' शब्द से श्रद्धा की अपेक्षा अधिक कमनीयता, रमणीयता और नवीनता का परिचय मिलता है। इस सम्बन्ध में प्रसादजी के पुत्र श्री रत्नशंकर प्रसाद ने लिखा है कि— कुछ लोग कहते हैं कि प्रसादजी ने इस काव्य का नाम पहले श्रद्धा रखा था, ऐसा नहीं। पाण्डुलिपि के मुखपृष्ठ पर 'कामायनी (श्रद्धा)' अंकित है। श्रद्धा के नाना स्वरूपों में उसका काम गोत्रीय स्वरूप ही कवि को अभिहित रहा, इसलिए यह गोत्रवाचक नाम कामायनी विवाहित हुआ। सृष्टिमूल काम के वृत्ति-संचार की समग्रता का निदर्शन-पर्यालोचन जैसा कि काव्य में हुआ है, कामायनी द्वारा ही घटित हो सकता था। अतः 'काम' काव्य का नाम 'कामायनी' कवि की दृष्टि में उसकी कल्पना के साथ ही साकार हुआ, किन्तु कामायनी की तत्त्वशक्ति श्रद्धा है अतएव कोष्ठक में श्रद्धा लिखा गया।[134] इस प्रकार काव्य का नामकरण पात्र एवं काव्य की मूल भावना पर आधृत होने के कारण सर्वथा उपयुक्त है।

२. सर्ग संयोजन—कामायनी की सम्पूर्ण कथा १५ सर्गों में विभक्त है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है, जैसे—चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द। कामायनी के सर्ग-क्रम की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके द्वारा कथानक के इतर तत्त्वों का विकास बड़ी सफलता से हुआ है। प्रत्येक सर्ग का मनोवैज्ञानिक आधार होते हुए भी कवि ने उनकी पूर्वापर अन्विति को बनाये रखा है। कथा का जो सूत्र एक सर्ग में समाप्त होता है उसी का विकसित रूप आगामी सर्गों में मिलता है। प्रवृत्तिमूलक विकास की दृष्टि से तो सर्गों का क्रम और भी अधिक उपयुक्त दिखायी देता है। सर्गों के नामकरण और संयोजन के प्रति कामायनीकार कितना सजग रहा है, इसका अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि कवि ने सर्गों के नाम निश्चित करने के उपरान्त भी उनमें परिवर्तन किया था। उदाहरण के लिए कामायनी के 'कर्म', 'संघर्ष' और 'निर्वेद' सर्गों के पूर्व नाम क्रमशः यज्ञ, युद्ध और स्वाहुति (संधि)।[135] इस परिवर्तन में निश्चय ही कवि का कुछ रहस्य रहा होगा। जैसे 'यज्ञ' शब्द

---

[134] जनभारती वर्ष १२ अंक १ सं० २०२१ पृ० ५

[135] जनभारती (त्रैमासिक) वर्ष १२ अंक १ में श्री रत्नशंकर प्रसाद का लेख 'कामायनी में सर्गों का नाम परिवर्तन' पृ० ४

[illegible] का आधार है और उसका एक सीमित अंश ही लगाया जा सकता है। अतः कवि ने दर्प के स्थान पर [illegible] भाव वाले [illegible] शब्द का प्रयोग किया। इसी प्रकार 'युद्ध' शब्द बाह्य व्यापार का ही परिचायक है जबकि संघर्ष शब्द के द्वारा अन्तर बाह्य दोनों प्रकार के संघर्षों की व्यंजना होती है। युद्ध की परिणति संघर्ष में होती है इसलिए सम्भवतः कवि ने इसकी स्वीकृति का संधि नाम रखा था, किन्तु कालान्तर में उसने सोचा होगा कि संघर्ष की समाप्ति के पश्चात् मानव जिस शान्ति भाव से पूरित होता है उसके आधार पर संधि की अपेक्षा निर्वेद नाम ही उपयुक्त है। कामायनी की सर्ग संख्या काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की दृष्टि से भी उचित है।

३ भाषा शैली— कामायनी में भाषा और शैली का उदात्त रूप मिलता है। कामायनी की भाषा सम्पूर्ण काव्य गुणों से अलंकृत और शास्त्रीय दृष्टि से सम्पन्न है। उसमें गम्भीर भावों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य है। कामायनी में प्रसादजी की भाषा का प्रौढ़तम रूप मिलता है। प्रसादजी ने शब्दों के सुन्दर चयन, अलंकारों के उचित प्रयोग, व्यंजनाशक्ति की सार्थक अभिव्यक्ति और शैली की रमणीयता आदि के द्वारा भाषा को सब प्रकार से सुन्दर और सशक्त किया है। प्रसादजी की भाषा की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं

कामायनी की भाषा का मुख्य गुण उसकी दार्शनिकता है। इसके अतिरिक्त ध्वन्यात्मकता, चित्रमयता, संगीतात्मकता, आलंकारिकता आदि अन्य विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। कामायनी की भाषा में मूर्त्त भावों के अमूर्त्त चित्र अंकित करने की अपूर्व क्षमता है। उदाहरण के लिए रजनी को इन्द्रजाल जननी, चिन्ता के लिए अभाव की चपल बालिका आदि विशेषणपूर्ण प्रयोग भाषा-सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। छायावादी भाषा पद्धति के अनुकूल प्रतीकात्मक प्रयोग भाषा की व्यंजनाशक्ति की अभिवृद्धि में सहायक हुए हैं। यथा

मधुमय वसन्त जीवन वन के, बह अन्तरिक्ष की लहरों में।
कब आये थे तुम चुपके से रजनी के पिछले पहरों में।
तुम्हें देखकर आते यों मतवाली कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आँखें खोली थीं। [१३०]

इन पंक्तियों में वसन्त यौवन का, रजनी का पिछला पहर किशोरावस्था

---

१३० कामायनी काम सर्ग पृ० ६३

का मतवाला यौवन सौन्दर्य का और कलियाँ प्रेम का प्रतीक है। चिन्ता और लज्जा के रूपचित्रों में भाषा की विचित्रमयता द्रष्टव्य है। आलंकारिक प्रयोग तो कामायनी में सर्वत्र प्राप्य है। कामायनी की भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुणों की ही प्रधानता है। किन्तु संघर्ष और स्पर्धा आदि सर्गों में ओजगुण भी दिखाई देता है। जहाँ तक शब्द चयन का सम्बन्ध है प्रसादजी ने संस्कृत वाली भाषा के तत्सम परिष्कृत और शुद्ध रूपों का ही प्रयुक्त किया है।

अधिकांश स्थलों पर प्रसादजी ने तत्सम शब्दों के स्थान पर ही यों को आँसू, स्वप्न को सपना, किरण को किरन, पानी को पार आदि प्रयोग किया है। परम्परागत साधारण बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जैसे—गोद, बयार, लाज, पिछला पहर, परछाईं आदि। कुछ शब्दों को मधुर बनाने के लिए उनके रूप को भी विकृत किया है जैसे—नाद को नाद, मुस्कान को मुस्क्यान, आलस्य को आलस और निर्जन को निर्जन आदि। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा में सजीवता उत्पन्न करने का कामायनीकार ने प्रयास किया है जैसे—जीवन की लाज हार बैठना, बीत गया खटका, मच जायगा फिर अधर, उसके गाल गड़े हुए, छू गया हाथ से आह तार आदि।

कामायनी में विदेशी शब्द प्रयोग का सर्वथा अभाव है। केवल आशा सर्ग में जीवन की छाता के लाग नामक पंक्ति में फारसी के लाग शब्द का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं कामायनी की भाषा क्लिष्ट भी हो गया है। क्लिष्ट वहाँ हुआ है जहाँ कवि को गूढ़ भावों की रहस्यमय अभिव्यक्ति के लिए नवीन और अपरिचित प्रतीकों का प्रयोग करना पड़ा है। कामायनी की भाषा का विशिष्ट गुण उसकी भाव सम्प्रेषण शक्ति है। सम्पूर्ण काव्य में कहीं भी भाषा शिथिल नहीं हुई है। कहीं-कहीं निरर्थक शब्दों का प्रयोग अवश्य है। जैसे हाँ कि गवरव में तुमने मा जो जितना जोड़ जुलाते। यहाँ कि शब्द निरर्थक है क्योंकि पादपूर्ति के अतिरिक्त इसका कोई सम्बन्ध नहीं। कामायनी की भाषा प्रसादजी की ही नहीं सम्पूर्ण छायावाद की भाषा शक्ति एवं सामर्थ्य का प्रतिनिधित्व करती है।

भाषा की भाँति कामायनी की शैली में भी छायावादी काव्य शैली की प्रायः सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। प्रसादजी की शैली में अलंकारों का बाहुल्य है किन्तु उनके कारण शैली कहीं क्लिष्ट नहीं हुई है क्योंकि स्वाभाविक प्रयोगों के कारण शैली में सजीवता आयी है और मधुर ध्वनि ने उसमें चमत्कार उत्पन्न किया है। जहाँ कहीं दूरारूढ़ कल्पना और नव प्रतीकों का कवि ने प्रयोग किया

है वहाँ शैली में विलक्षणता अवश्य आ गयी है। कहीं-कहीं कामायनी में गर्भित लम्बे-लम्बे एवं संयुक्त वाक्यों का भी प्रयोग है, जैसे—लज्जा सर्ग की ५० पंक्तियाँ मिलकर एक वाक्य का निर्माण करती हैं। ऐसे स्थलों पर अर्थ-बोध में बाधा उपस्थित होती है। प्रसादजी ने प्रसंगों के अनुरूप ही विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। चिन्ता सर्ग में यदि गुम्फित शैली है तो लज्जा सर्ग में अलंकृत और इड़ा सर्ग में शैली का रूप प्रतीकात्मक हो गया है। कामायनी की शैली की उल्लेखनीय विशेषता उसकी अभिव्यंजना प्रणाली है। कामायनीकार सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों और अन्तर्वृत्तियों को सरलता के साथ अभिव्यक्त कर सका है। इसी में कामायनी की भाषा-शैली की सफलता का रहस्य निहित है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कामायनी की भाषा-शैली प्रसादजी की स्वयं की शैली है। उन्होंने किसी परम्परागत काव्य-शैली या पद्धति का अनुसरण न करके अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य के बल पर शैली को भव्य, उदात्त एवं गरिमापूर्ण बनाया है। डा० प्रेमशंकर के शब्दों में—"भाषा-शैली सभी में कामायनी एक मौलिकता से अनुप्राणित है। उसकी काव्यात्मक शैली में छायावाद की समस्त विभूतियों को कवि ने एक महान् कलाकार की भाँति सम्प्रहित कर लिया। वह उस युग का प्रतीक बन गयी जो कला और जीवन के सामंजस्य में प्रयत्नशील रहा है।"[138]

४. अलंकार योजना—कामायनी की भाषा-शैली के प्रसाधन में अलंकारों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कामायनी में विभिन्न प्रकार के शब्दार्थालंकारों का प्रयोग हुआ है। कामायनीकार ने अलंकारों का प्रयोग केवल बाह्य सौन्दर्य की वृद्धि के लिए नहीं किया अपितु अपनी गूढ़ सौन्दर्यानुभूतियों की अभिव्यक्ति करने के लिए ही किया है। कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

अनुप्रास

क्षितिज भाल का कुंकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से,
कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मँडराती।[139]

यमक

तुम फूल उठोगी लतिका-सी कम्पित कर सुख-सौरभ तरंग।
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा वन-वन बन कस्तूरी-कुरंग।[140]

---

138. डा० प्रेमशंकर : प्रसाद का काव्य, पृ० ६२५
139. कामायनी : स्वप्न सर्ग, पृ० १७५
140. वही : [illegible] सर्ग, पृ० १५

श्लेष

इन्द्रनील मणि महा चषक था सोम रहित उल्टा लटका।
आज पवन मृदु साँस ले रहा जैसे बीत गया खटका। [141]

उपमा

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई। [142]

उत्प्रेक्षा

बार बार उस भीषण रव से कँपती धरती देख विशेष
मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष। [143]

रूपक

संध्या घनमाला की सुन्दर ओढ़े रंग बिरंगी छींट
गगन चुम्बिनी शैल श्रेणियाँ पहने हुए तुषार किरीट। [144]

विरोधाभास

लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन-सी लगती [145]

अथवा

जागृत था सौन्दर्य यदपि वह सोती थी सुकुमारी। [146]

मानवीकरण

मृत्यु अरी चिर निद्रे! तेरा अंक हिमानी-सा शीतल [147]

अथवा

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हँसने फिर से। [148]

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त सन्देह, दृष्टान्त, विषम, उदाहरण, वीप्सा आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग काव्य में हुआ है। मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त उपमान भी कामायनीकार ने प्रस्तुत किये हैं। कामायनी

---

१४१ कामायनी आशा सर्ग पृ० ४
१४२ वही आशा सर्ग, पृ० ७
१४३ वही चिन्ता सर्ग पृ० १४
१४४ वही आशा सर्ग, पृ० ३०
१४५ वही लज्जा सर्ग, पृ० १०३
१४६ वही, कर्म सर्ग, पृ० १२५
१४७ वही चिन्ता सर्ग पृ० १८
१४८ वही आशा सर्ग, पृ० २३

के अलकारों म कहा भी कृत्रिमता नहीं है। य रमणीय सरस और भावों के कला पक्ष की अभिवृद्धि म सहायक हैं।

५ छन्द विधान—कामायनी म प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्राचीन छन्दों म ताटक पादाकुलक रूपमाला सार रोला आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। कामायनी का सबसे प्रमुख छन्द ताटक है। चिन्ता आशा स्वप्न और निर्वेद सर्गों म इसी का प्रयोग हुआ है। श्रद्धा सग म शृगार तथा काम और लज्जा सग म पादाकुलक छन्दों का प्रयोग हुआ है। वासना म रूपमाला सघष म रोला तथा कम म सार छन्द का प्रयोग है। कुछ सर्गों म मिश्रित छन्दों का भी प्रयोग है। उदाहरण के लिए ईर्ष्या सग के प्रथम चरण म पादाकुलक और द्वितीय चरण म पद्धरि छन्द का प्रयोग हुआ है। पादाकुलक और पद्धरि दोनों म सोलह मात्राए होती है और दोनों के सयोग स प्रसादजी न मिश्रित छन्द का निर्माण किया है। जस

पल भर की उस चचलता ने खो दिया हृदय का स्वाधिकार।
श्रद्धा की अब वह मधुर निशा फलाती निष्फल अधकार।[१४६]

आनन्द सग म प्रसादजी के आँसू काव्य की भाँति एक संगीतात्मक छन्द का प्रयोग हुआ है। इसम कुल मिलाकर २८ मात्राए होती है जिनम १४ १४ के अन्तर पर विराम दिया जाता है। जस

चलता था धीरे धीरे वह एक यात्रियों का दल
सरिता के रम्य पुलिन म गिरि पथ स ले निज सम्बल।[१४]

कामायनी के छन्द विधान म प्रसादजी ने सामान्यत जिन प्राचीन मधुर छन्दों का प्रयोग भी किया है व केवल अन्तिम दो तीन सर्गों (रहस्य आनन्द तथा दर्शन) म दिखायी देते हैं। प्रसादजी न प्रत्येक सग के अन्त म छन्द परिवर्तन करने की शास्त्रीय पद्धति का अनुपालन नहीं किया। उनके छन्द विधान की विशेषता यह है कि वह भाषा भाव एवं विषयानुरूप है। आलंकारिक भाषा के कारण अनेक स्थलों पर छन्दों म संगीतात्मकता के गुण का भी समावेश हो गया है।

निष्कर्ष—निष्कर्ष रूप म कहा जा सकता है कि कला य शिल्प की दृष्टि स कामायनी सम्पूर्ण हिन्दी काव्यधारा की श्रेष्ठतम काव्यकृति है। कलात्मक

---

[१४६] कामायनी ईर्ष्या सग पृ० १३६
[१४] वही, आनन्द सग पृ २७७

उपलब्धियों की दृष्टि से उसे हिन्दी की ही भारतीय काव्यकृतियों में ही नहीं वरन् विश्वकाव्य की श्रेष्ठ कृतियों के साथ रखकर देखा-परखा जा सकता है। सर्ग-संयोजन, वस्तु-वर्णन, भाव चित्रण, सौन्दर्य निरूपण, प्रकृति चित्रण, भाषा शैली की रूप-सज्जा, मनस्तत्त्व की प्रतिष्ठा, अलंकार-योजना, छन्द विधान आदि सभी दृष्टियों से कामायनी के काव्यत्व का सुन्दर संगठन हुआ है। कलात्मक काव्य सौन्दर्य की व्यापकता और महत्ता के कारण कामायनी महाकाव्यों के इतिहास में एक सर्वथा नवीन एवं स्मरणीय अध्याय जोड़ती हुई विश्वकाव्य की सीमा में प्रवेश करती है।[141]

कामायनी का कला शिल्प इतना उन्नत और उदात्त है कि वह कभी भी धूमिल नहीं हो सकता। प्रसादजी ने काव्य की विस्तृत पट भूमि पर उस विराट् संघर्ष तूलिका से अपने (कामायनी के) चित्र आँके हैं जिनके रंग न कभी धुंधले हो सकते हैं और न कभी [illegible] हो मिट सकते हैं।[142]

काव्य एवं कला शिल्प की दृष्टि से कामायनी अद्वितीय कलाकृति है। उसके समान काव्य गौरव और कलात्मक गरिमा लेकर रची जाने वाली काव्य कृति की हिन्दी में आज भी प्रतीक्षा है।

जीवन-दर्शन

सृजन प्रेरणा और सन्देश

कामायनी वर्तमान युग की सर्वोत्कृष्ट काव्यकृति है। प्रत्येक श्रेष्ठ कला कृति का निर्माण किसी न किसी सद्प्रेरणा का परिणाम होता है। महाकाव्यों का निर्माण तो निश्चय ही महती सृजन प्रेरणा के परिणामस्वरूप होता है। कामायनी की काव्य-रचना और जीवन-दर्शन के सम्यक् रूप को देखकर यह स्पष्ट आभास होता है कि इस काव्य की रचना किसी बलवती सृजन प्रेरणा का ही परिणाम है। कामायनी के आमुख में कवि द्वारा दिये गये संकेतों से यह प्रतीत होता है कि कामायनी की सृजन प्रेरणा के मूल में प्रसादजी की प्राचीन भारतीय आर्य संस्कृति के प्रति अनन्य निष्ठा और प्राचीन इतिहास के प्रति प्रेम का भाव निहित है। यही नहीं कामायनी की रचना अन्य अनेक युगीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप भी हुई है। कामायनी का कवि एक व्यापक जीवन-दर्शन से प्रभावित था। भारतीय साहित्य, संस्कृति, इतिहास एवं दर्शन

१४१ गंगाप्रसाद पाण्डेय, बीसवीं शती की श्रेष्ठतम काव्यकृति कामायनी पृ० [illegible]५

१४२ [illegible] गुप्त, [illegible] पृ० ११६

के अपनाने द्वारा उनके जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण निर्मित किया है वह था— आनन्दवाद।

आनन्दवाद की प्रतिष्ठा द्वारा मानव कल्याण की भावना भी कामायनी की सृजन प्रेरणा कही जा सकती है। प्रसादजी भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप की भी कामायनी के माध्यम से अभिव्यक्ति देना चाहते थे। तत्कालीन जीवन संघर्ष, आस्थाहीन जीवन मूल्यों का उदय, यथार्थवादी दृष्टिकोण के अतिशय प्रचार एवं विज्ञान के अतिवादी प्रभावों के कारण उत्पन्न जीवन विषमताओं, विद्रूपताओं, विशृंखलताओं को दूर करने के लिए कवि एक मधुर सन्देश भी देना चाहता था। इसके अतिरिक्त प्रसादजी की प्रतिभा और कलात्मक अभिव्यक्ति का आग्रह भी कामायनी की सृजन प्रेरणा कहा जा सकता है। कामायनी की सृजन प्रेरणा का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण कवि की मानवतावादी जीवन-दृष्टि और मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति आस्था है। इसी आस्था से प्रेरित होकर कवि ने मानव हितार्थ कृति के रूप में कामायनी का सृजन किया है। वास्तव में कामायनी की प्रेरणाशक्ति भारतीय संस्कृति की उदार व्यापक एवं कल्याणाभिनिवेशी दृष्टि है जिसका केन्द्र बिन्दु समन्वय है। प्रसादजी के समूचे साहित्य में जो जीवन-दृष्टि दिखायी पड़ती है वह समन्वयात्मक है। उनकी प्रेरणा का स्रोत भारत का अतीत ज्ञान-गौरव और ऐश्वर्य-गरिमा ही है। फिर भी वे अतीतोन्मुख या पुनरुत्थानवादी नहीं थे। इसके विपरीत उन पर राष्ट्रीयता, वैज्ञानिकता और जनतन्त्रात्मक मानवतावाद का गहरा प्रभाव पड़ा है। इस तरह प्रसाद-साहित्य में प्राचीनता और नवीनता, आध्यात्मिकता और भौतिकता, यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का सुन्दर समन्वय हुआ है। किन्तु कामायनी में प्रसाद के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का और भी विकसित और पूर्ण रूप दिखायी पड़ता है। उसमें प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति को विश्व मानव संस्कृति में, राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता में, व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना में विलीन करके मानवतावाद का नवीन और आदर्श रूप उपस्थित किया है। यही समन्वयवाद, जो मानवतावाद का नवीनतम और आदर्श रूप है, कामायनी की प्रेरणाशक्ति है। यही महती प्रेरणा भारतीय संस्कृति के चिरन्तन तत्त्वों से पावन और जनतन्त्रात्मक मानवतावादी विचारधाराओं से अनुप्राणित है।[१४३]

कामायनी की महत् प्रेरणा के समान उसका उद्देश्य भी महान् है क्योंकि

---

[१४३] डा० शम्भूनाथसिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ५६६

महान कवियों की भांति प्रसाद का काव्य जीवन से अनुप्राणित है और जीवन की अभिव्यक्ति ही उसका उद्देश्य है।[१५४] वस्तुतः चिर प्रगतिशील वैज्ञानिक बुद्धि के साथ चिरस्थिर और चिरसंयमित श्रद्धा के कल्याणकारी संयोग की प्रतिष्ठा ही कामायनी के कवि का चरम लक्ष्य है।[१५५] काव्याचार्यों ने काव्य रचना का उद्देश्य चतुर्वर्ग फल (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) प्राप्ति बताया है। कामायनी का उद्देश्य आनन्द की उपलब्धि है। कामायनी के नायक मनु आनन्दमय लोक में पहुंचकर ही जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति करते हैं। कामायनी के कवि ने कहा था —

जीवन का उद्देश्य नहीं है शान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुंचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं
अथवा उस आनन्द भूमि पर जिसकी सीमा कहीं नहीं।

स्पष्ट है कि कामायनीकार ने जीवन के महानतम ध्येय मोक्ष (आनन्द) की प्राप्ति को लक्ष्य बनाकर ही प्रस्तुत काव्य की रचना की है। धर्म अर्थ और काम कामायनी में अपेक्षाकृत गौण रूप में वर्णित हुए हैं किन्तु उपेक्षित नहीं। धर्म और काम का तो विशिष्ट रूप कामायनी में चित्रित हुआ है। दया माया ममता प्रेम और अहिंसा आदि उदात्त आदर्शों को ही कवि ने युग धर्म के व्यापक सिद्धान्तों के रूप में श्रद्धा के माध्यम से प्रतिष्ठित किया है। अर्थ नामक फल की स्थापना स्वप्न और संघर्ष नामक सर्गों में दिखाया गया है। काम की प्रतिष्ठा मोक्ष के साधन रूप में हुई है। श्रद्धा काम वासना लज्जा और स्वप्न नामक सर्गों में काम का मनोवैज्ञानिक रूप में अंकन हुआ है। अस्तु उद्देश्य की दृष्टि से कामायनी तुलसीकृत रामचरितमानस की भांति की रचना सिद्ध होती है क्योंकि उसका अन्तिम लक्ष्य लोक मंगल ही है।

कामायनी महाकाव्य की सृजन प्रेरणा के मूल में भी लोक के मंगल की ध्वनि ही परिव्याप्त है। कामायनी महाकाव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण मान्यता वैज्ञानिकता और बौद्धिकता के अनिवार्य प्रभावों से आक्रान्त मानवता की समरसता के विचारस्थान द्वारा आनन्द की उपलब्धि कराना है। समरसता का सिद्धान्त यद्यपि शैवदर्शन की उपलब्धि है किन्तु प्रसाद ने कामायनी में

---

[१५४] डा० प्रभाकर प्रसाद का काव्य, पृ० ५६१

[१५५] गंगाप्रसाद पाण्डेय बीसवीं शती की श्रेष्ठतम काव्यकृति कामायनी— अपनी बात पृ० १

के अध्ययन द्वारा जिस जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण को स्थिर किया है वह था—आनन्दवाद।

आनन्दवाद की प्रतिष्ठा द्वारा मानव कल्याण की भावना भी कामायनी की सृजन प्रेरणा कही जा सकती है। प्रसादजी भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को भी कामायनी के माध्यम से अभिव्यक्ति देना चाहते थे। तत्कालीन जीवन-व्यापी भौतिकवादी जीवन मूल्यों की उपेक्षा, यथार्थवादी दृष्टिकोण के अतिशय प्रचार एवं विचार के अतिवादी प्रभावों के कारण उत्पन्न जीवन विषमताओं, विद्रूपताओं, विश्रृंखलताओं को दूर करने के लिए कवि एक समन्वय ला देना चाहता था। इसके अतिरिक्त प्रसादजी की प्रतिभा और कलात्मक अभिव्यक्ति का आग्रह भी कामायनी की सृजन प्रेरणा कहा जा सकता है। कामायनी की सृजन प्रेरणा का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण कवि की मानवतावादी जीवन-दृष्टि और मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति आस्था है। इसी आस्था से प्रेरित होकर कवि ने मानव हितार्थ कृति के रूप में कामायनी का सृजन किया है। वास्तव में कामायनी की प्रेरणाशक्ति भारतीय संस्कृति की उदार व्यापक एवं कल्याणभिनिवेशी दृष्टि है जिसका केन्द्र बिन्दु समन्वय है। प्रसादजी के समूचे साहित्य में जो जीवन-दृष्टि दिखायी पड़ती है वह समन्वयात्मक है। उनकी प्रेरणा का स्रोत भारत का अतीत कालीन-गौरव और ऐश्वर्य महिमा ही है। फिर भी वे अतीतोन्मुख या पुनरुत्थानवादी नहीं हैं। इसके विपरीत उन पर राष्ट्रीयता, वैज्ञानिकता और जनतन्त्रात्मक मानवतावाद का गहरा प्रभाव पड़ा है। इस तरह प्रसाद-साहित्य में प्राचीनता और नवीनता, आध्यात्मिकता और भौतिकता, यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का सुन्दर समन्वय हुआ है। किन्तु कामायनी में प्रसाद के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का और भी विकसित और पूर्ण रूप दिखायी पड़ता है। उसमें प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति को विश्व मानव संस्कृति में, राष्ट्रीयता को अन्तरराष्ट्रीयता में, व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना में विलीन करके मानवतावाद का नवीन और आदर्श रूप उपस्थित किया है। यही समन्वयवाद जो मानवतावाद का नवीनतम और आदर्श रूप है, कामायनी की प्रेरणाशक्ति है। यही महती प्रेरणा भारतीय संस्कृति के चिरंतन तत्त्वों से पोषित और जनतन्त्रात्मक मानवतावादी विचार धाराओं से अनुप्राणित है।[143]

कामायनी की महत् प्रेरणा के समान उसका उद्देश्य भी महान् है क्योंकि

[143] डा० शम्भूनाथसिंह : हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ५९६

'महान् कवियों की भांति प्रसाद का काव्य जीवन से अनुप्राणित है और जीवन की अभिव्यक्ति ही उसका उद्देश्य है।[१५४] वस्तुतः चिर प्रगतिशील वैज्ञानिक बुद्धि के साथ चिरस्थिर और चिरसंयमित श्रद्धा के कल्याणकारी संयोग की प्रतिष्ठा ही कामायनी के कवि का चरम लक्ष्य है।[१५५] काव्याचार्यों ने काव्य रचना का उद्देश्य चतुर्वर्ग फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) प्राप्ति बताया है। कामायनी का उद्देश्य आनन्द की उपलब्धि है। कामायनी के नायक मनु आनन्दमय लोक में पहुंचकर ही जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति करते हैं। कामायनी के कवि ने कहा भी है

जीवन का उद्देश्य नहीं है शान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुंचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं
अथवा उस आनन्द भूमि पर जिसकी सीमा कहीं नहीं।

स्पष्ट है कि कामायनीकार ने जीवन के महानतम ध्येय मोक्ष (आनन्द) की प्राप्ति का लक्ष्य बनाकर ही प्रस्तुत काव्य की रचना की है। धर्म, अर्थ और काम कामायनी में अपेक्षाकृत गौण रूप में वर्णित हुए हैं, किन्तु उपेक्षित नहीं। धर्म और काम का तो विशिष्ट रूप कामायनी में चित्रित हुआ है। दया, माया, ममता, प्रेम और अहिंसा आदि उदात्त आदर्शों को ही कवि ने युग धर्म के व्यापक सिद्धान्तों के रूप में श्रद्धा के माध्यम से प्रतिष्ठित किया है। अर्थ नामक फल की स्थापना इड़ा, स्वप्न और संघर्ष नामक सर्गों में दिखायी गई है। काम की प्रतिष्ठा मोक्ष के साधन रूप में ही हुई है। श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा और स्वप्न नामक सर्गों में काम का मनोवैज्ञानिक रूप में अंकन हुआ है। अस्तु, उद्देश्य की दृष्टि से कामायनी तुलसीकृत रामचरित मानस की कोटि की रचना सिद्ध होती है, क्योंकि उसका अन्तिम लक्ष्य लोक मंगल ही है।

कामायनी महाकाव्य की सृजन प्रेरणा के मूल में युग दर्शन के महत्त्व की ध्वनि भी परिव्याप्त है। कामायनी महाकाव्य की रचना के मूल में बढ़ती हुई वैज्ञानिकता और बौद्धिकता के अनियन्त्रित प्रभावों से आक्रान्त मानव की समस्याओं के विचारपूर्ण समाधान द्वारा आनन्द की प्रतिष्ठा करना है। आनन्द का सिद्धान्त यद्यपि चिरन्तन की उपपत्ति है किन्तु प्रसाद ने आधुनिक ...

---

१५४ डॉ० प्रभाकर प्रसाद का काव्य पृ० ४६३

१५५ गंगाप्रसाद पाण्डेय कामायनी की भूमिका, कामायनी का अध्ययन ... अपनी बात, पृ० १

व्यवहारवादी आदर्शवाद से अनुप्राणित होकर मानव जाति के प्रति एक शाश्वत संदेश के रूप में प्रमाणित किया है। कामायनी में जिस सामरस्य की बात कही गयी है उसका सम्बन्ध वर्तमान जीवन की असमानताओं एव विषमताओं को दूर करने से है। यह समरसता यदि मानव के अन्तर्जगत में हृदय और बुद्धि की है तो व्यवहार जगत में आदर्शवादिता एव व्यावहारिकता (यथार्थवादिता) मूल्यों के समन्वय की है। समन्वय की यह प्रक्रिया मनुष्य की इच्छा ज्ञान और क्रिया के सन्दर्भ में भी की गयी है। वर्तमान जीवन की विडम्बना ही तो यह है

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की॥ [१४६]

कामायनीकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि बुद्धि के शासन में प्रवर्तित होकर मानव-संघर्ष क्रान्ति विप्लव और युद्ध को ही जन्म देता है। बौद्धिक अतिवाद मानसिक अशान्ति को जन्म देता है। श्रद्धा (अर्थात् हृदय) या भाव जगत के सान्निध्य में रहकर ही मनुष्य जीवन के चरम लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। समरसता के अतिरिक्त प्रसाद जी ने नारी जाति के भी उत्थान सूचक सन्देश दिया है। श्रद्धा का चरित्र और कृतित्व नारी के लिए उच्चतम प्रेरक आदर्शों का प्रतीक है। कामायनी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सन्देश मानवता की जय विजय का है। मानवता की जय जीवन के शक्ति कणों में समन्वय स्थापित करने में ही निहित है

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय। [१४७]

कामायनी महाकाव्य की उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने जो सन्देश प्रसारित किया है वह सर्वकालीन और विश्वजनीन है। इस प्रकार महत् सृजन प्रेरणा एव महान् सन्देश से अनुप्राणित होने के कारण कामायनी अमर काव्यों की श्रेणी में निबद्ध होकर एक साथ ही महाकाव्य और महान् काव्य दोनों है।

सांस्कृतिक निरूपण

महाकाव्य में जातीय और राष्ट्रीय संस्कृति के निरूपण का प्रयत्न तो होता ही है विश्व महाकाव्यों में सम्पूर्ण मानव संस्कृति के निर्माण की भी चेष्टा रहती है। कामायनी में निरूपित संस्कृति का स्वरूप केवल जातीय एव राष्ट्रीय

---

[१४६] कामायनी रहस्य सर्ग पृ० २७२
[१४७] वही श्रद्धा सर्ग पृ० ५६

हो गया वरन विश्वजनीन हैं। कामायनी में सांस्कृतिक निरूपण की दृष्टि से उपर्युक्त विशेषताएँ स्पष्ट दिखायी देती हैं—

१ प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति के त्याग और मानवीय सेवा की प्रतिष्ठा करते हुए मानवीय संस्कृति को श्रेष्ठ बनाया है।

२ भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्तों तत्वों और आदर्शों का सम्यक निरूपण करते हुए दोनों की तुलना में भारतीय संस्कृति को पूर्ण एवं महान सिद्ध किया है।

देव संस्कृति

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में देव संस्कृति का निरूपण किया गया है। देवताओं का वर्णन मुख्य रूप से वेद-पुराणों में मिलता है। वेदों में उन देवताओं का वर्णन हुआ है जो मुख्यतः प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक हैं जैसे—प्रकाश का सूर्य और अग्नि जल का वरुण वायु का मरुत आदि। आदिकाल में प्राकृतिक शक्तियों को ही मनुष्य देवों के रूप में पूजने लगा। इन शक्तियों की संख्या बढ़ती चली गयी और वैदिक देव परिवार में इनकी संख्या ३३ तक मानी जाती है।[१४८] पुराण काल तक आते आते वैदिक देव देवता बन गये। कामायनी में जिस देव संस्कृति का निरूपण किया गया है वह अधिकांशतः वैदिक देव परिवार की संस्कृति है। संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित बतायी गयी हैं

१ अलौकिक शक्ति-सम्पन्नता।
२ अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति।
३ भव्य एवं विशाल भवनों में निवास।
४ गायनप्रियता।
५ अलंकारप्रियता।
६ सोम एवं सुधापान में रुचि।
७ यज्ञों में आस्था।
८ विलासप्रियता।
९ आमोद का प्रवृत्ति।
१० अमरता की भावना का प्रसार।[१४९]

कामायनी में देव संस्कृति की उपर्युक्त विशेषताओं का निरूपण किया

१४८ डॉ० सम्पूर्णानन्द हिन्दू देव परिवार का विकास पृ० ६२
१४९ डॉ० ... कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० १०८

राग में मिल जाता है। देव संस्कृति के रागात्मक मनु चिन्तित होकर जब देव सृष्टि के विनाश के कारणों पर विचार करते हैं तभी देव संस्कृति की विशेषताएँ हमारे सम्मुख आती हैं। प्रसाद जी ने बतलाया है कि देव जाति इतनी शक्तिसम्पन्न थी कि प्रकृति उनके पग तल में झुकी रहती थी और धरणी रचनाओं के चरणों से आक्रान्त होकर प्रतिक्षण काँपती रहती थी।[११०]
प्रसाद जी ने देवताओं को विलासिता प्रिय कहा है। उनके मुख सुरा से सुरभित एवं अरुण रहते थे और नव अनुराग के आनन्द में भरे रहते थे। वे अनंग की पीड़ाओं का अनुभव कर अंग भंगिमाओं का प्रदर्शन करते हुए नित्य ही अभिसार की क्रीड़ाएँ करते हुए मधुर उत्सव मनाया करते थे। यदि देव सृष्टि में देवता विलास कामना के प्रतिनिधि थे।[१११] कामायनी में मनु ने जिन यज्ञों का विधान किया है उनसे भी यही सिद्ध होता है कि यज्ञ में पशुओं की बलि दी जाती थी और सोमपान किया जाता था।[११२] इस प्रकार कामायनी में देव संस्कृति के जिस स्वरूप का निरूपण हुआ है वह भोग प्रधान विलासी रही है। प्रलय होने पर उस सृष्टि का अचानक ही ध्वंस हो गया और उसके एकमात्र जीवित प्रतिनिधि के रूप में मनु शेष रहे

आज अमरता का जीवित हूँ मैं वह भीषण जर्जर दम्भ
आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्र मय सा विष्कम्भ।[११३]

मानव संस्कृति

प्रलय के उपरान्त जिस नवीन संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ वही मानव संस्कृति के रूप में प्रसिद्ध है। भारतवर्ष की दृष्टि से इस संस्कृति को आर्य संस्कृति अथवा सीमित अर्थों में हिन्दू संस्कृति कहा जाता है। भारतीय संस्कृति का निर्माण अनेक जातीय संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ है जिनमें द्रविड़ आर्य

३ वर्णाश्रम धर्म,
४ यम नियमों की व्यवस्था
५ उपासना पद्धति का प्रचार
६ समन्वयवाद
७ नारी की महत्ता
८ विश्वमैत्री एवं विश्वबन्धुत्व
९ धर्म अर्थ काम और मोक्ष का महत्त्व
१० स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना।

भारतीय संस्कृति के दो रूप दिखाई देते हैं। एक प्राचीन और वैदिक जिसमें यज्ञ विधान कर्मकाण्ड उपासना वर्णाश्रम धर्म एवं यम नियमों की व्यवस्था पर बल दिया गया है। दूसरा नवीन और आधुनिक है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीयता की भावना विश्वबन्धुत्व समन्वयवाद आदि का महत्त्व दिया गया है। कामायनी में भारतीय संस्कृति के प्राचीन और नवीन दोनों रूपों का निरूपण हुआ है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का कर्मकाण्डी स्वरूप

कामायनी में यज्ञ संस्थाओं के स्थान पर मनु के पाक नित्य कर्मों का उल्लेख किया गया है। आशा सर्ग में मनु पाक यज्ञ करते हैं। अग्निहोत्र में अवशिष्ट अन्न को भी किसी जीवित प्राणी की प्राप्ति के लिए दूर रख आते हैं।[१६४] जहाँ तक संस्कारों का प्रश्न है कामायनी में श्रद्धा को ग्रहण करने में पाणिग्रहण संस्कार एवं गर्भाधान संस्कार का उल्लेख मिलता है। आनन्द की प्राप्ति में कैलाश प्रयाण में वानप्रस्थ और संन्यास आदि आश्रमों के संस्कारों का भी उल्लेख मिलता है। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का भी कामायनी में संकेत है। सारस्वत प्रदेश के लोग अपने अपने वर्ग बनाकर परिश्रम करते हुए जीवन बिताते हैं।[१६५] जहाँ तक आश्रम-व्यवस्था का सम्बन्ध है मनु के माध्यम से चारों आश्रमों की रूपरेखा मिल जाती है। काव्य के आरम्भ में हिमालय पर यज्ञादि करते हुए मनु ब्रह्मचर्य आश्रम के धर्मों का पालन करते हैं। श्रद्धा से मिलन के पश्चात् एवं सारस्वत प्रदेश में उनकी जीवनचर्या का स्वरूप गृहस्थाश्रमी का है। निर्वेद और दर्शन सर्गों में राज्य-व्यवस्था छोड़कर सरस्वती के तट पर मनु का तपस्या में लीन होना वानप्रस्थ का आर

---

१६४ कामायनी आशा सर्ग पृ० ३२
१६५ वही स्वप्न सर्ग पृ० १८१

सग म मिल जाता है। देव संस्कृति के कामायनीगत मनु निर्मित द्वारा जब देव सृष्टि के विनाश के कारणों पर विचार करते हैं तभी देव संस्कृति की विशेषताएं हमारे सम्मुख आती हैं। प्रसादजी ने बतलाया है कि देव जाति अपना शक्तिसम्पन्न थी कि प्रकृति उनके पग पग में रहती थी और वरुण देवताओं के चरणों में आकर प्रतिदिन शीश झुकाता रहता था।[१९]
प्रसादजी ने देवताओं को विलासिता कहा है। उनके मुख मुख में सुरभित एवं अरुण रहते थे और सब अनुराग के आलस्य में भरे रहते थे। वे अनंग की पीड़ाओं का अनुभव कर अंग भंगिमा का नाच करते हुए नित्य नव अभिसार का क्रीड़ा करते हुए मस्त उत्सव मनाया करते थे। यदि के शब्दों में देवता विलासवासना के प्रतिनिधि थे।[१६१] कामायनी में मनु ने जिन यज्ञों का विधान किया है उनसे भी यही सिद्ध होता है कि यज्ञ में पशुओं की बलि दी जाती थी और सोमपान किया जाता था।[१६२] इस प्रकार कामायनी में देव संस्कृति के जिस स्वरूप का निरूपण हुआ है वह भोग प्रधान दिखायी देती है। प्रलय होने पर उस सृष्टि का अचानक ही ध्वंस हो गया और उसके एकमात्र जीवित प्रतिनिधि के रूप में मनु शेष रहे

> आज अमरता का जीवित हूँ मैं वह भीषण जर्जर दम्भ
> आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्र मय सा विष्कम्भ।[१६३]

मानव संस्कृति

प्रलय के उपरान्त जिस नवीन संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ वही मानव संस्कृति के रूप में प्रसिद्ध है। भारतवर्ष की दृष्टि से इस संस्कृति को आर्य संस्कृति अथवा सीमित अर्थों में हिन्दू संस्कृति कहा जाता है। भारतीय संस्कृति का निर्माण अनेक जातीय संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ है जिनमें द्रविड़ आर्य शाक्य हूण पठान मुगल अंग्रेज आदि विभिन्न जातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं का योगदान प्रमुख है। भारतीय मानव संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं

१ पंच महायज्ञों का विधान
२ षोडश संस्कार

---

[१९] कामायनी चिन्ता सर्ग पृ० ६
[१६१] वही चिन्ता सर्ग पृ० १ ११
[१६२] वही कर्म सर्ग पृ० ११६
[१६३] वही चिन्ता सर्ग पृ १८

३ वर्णाश्रम धर्म
४ यम नियमों की व्यवस्था,
५ उपासना पद्धति का प्रचार
६ समन्वयवाद
७ नारी की महत्ता
८ विश्वमैत्री एवं विश्वबन्धुत्व
९ धर्म अर्थ काम और मोक्ष का महत्त्व
१० स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना।

भारतीय संस्कृति के दो रूप दिखायी देते हैं। एक प्राचीन और वैदिक, जिसमें यज्ञ विधान कर्मकाण्ड उपासना वर्णाश्रम धर्म एवं यम नियमों की व्यवस्था पर बल दिया गया है। दूसरा नवीन और आधुनिक है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीयता की भावना विश्वबन्धुत्व समन्वयवाद आदि को महत्त्व दिया गया है। कामायनी में भारतीय संस्कृति के प्राचीन और नवीन दोनों रूपों का निरूपण हुआ है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का कर्मकाण्डी स्वरूप

कामायनी में पंच महायज्ञों के स्थान पर मनु के पाक यज्ञ आदि कर्मों का उल्लेख किया गया है। आशा सर्ग में मनु पाक यज्ञ करते हैं। अग्निहोत्र से अवशिष्ट अन्न को भी किसी जीवित प्राणी की प्राप्ति के लिए दूर रख आते हैं।[114] जहाँ तक संस्कारों का प्रश्न है कामायनी में श्रद्धा का प्रसंग [illegible] में पाणिग्रहण संस्कार एवं गर्भाधान संस्कार का उल्लेख मिलता है। [illegible] की प्राप्ति में मनु के प्रयाण में वानप्रस्थ और संन्यास आदि आश्रमों के संस्कारों का भी उल्लेख मिलता है। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का [illegible] में मिलते हैं। सारस्वत प्रदेश के लोग अपने अपने वर्ग को बनाकर [illegible] हुए जीवन बिताते हैं।[115] जहाँ तक आश्रम-व्यवस्था का [illegible] माध्यम से चारों आश्रमों की रूपरेखा मिल जाती है। काम के [illegible] निमन्त्रण पर यज्ञादि करते हुए मनु ब्रह्मचर्य आश्रम के [illegible] हैं। श्रद्धा के मिलन के पश्चात् एवं सारस्वत प्रदेश में [illegible] स्वरूप गृहस्थाश्रम का है। किलात और आकुलि के [illegible] कर सारस्वती के तट पर मनु की तपस्या में [illegible]

---

[114] कामायनी आशा सर्ग पृ० ३२
[115] वही स्वप्न सर्ग पृ० १८१

संकेत करता है। आनन्द सर्ग में कैलाश पर्वत की उपत्यका में शिवाराधना करते हुए मनु संन्यास धर्म के पालन में तत्पर दिखाये गये हैं।[166] कामायनी में किलात और आकुलि आसुरी संस्कृति के प्रतीक हैं।

भारतीय संस्कृति का नवीन रूप

भारतीय संस्कृति के आधुनिक स्वरूप के निर्माण में प्राचीन संस्कृति के आदर्शों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। किन्तु उसके स्वरूप के निर्माण में आधुनिक युग की विचारधाराओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भारतीय संस्कृति की एक विशेषता समन्वयवादी प्रवृत्ति है। कामायनी में समन्वयवाद का समरसता के सिद्धान्त के अन्तर्गत सफल प्रयोग हुआ है। कामायनीकार ने केवल प्रवृत्तिमूलक समन्वय ही अंकित नहीं किया है वरन् व्यक्ति और समाज, अधिकृत और अधिकारी, पुरुष और स्त्री एवं व्यष्टि और समष्टि के समन्वय पर भी बल दिया है। कामायनी में नारी की महत्ता पर भी पर्याप्त बल दिया गया है। कामायनी की श्रद्धा का चरित्र नारी जाति की सम्पूर्ण विशेषताओं एवं गुणों का केन्द्र है। प्रसाद जी ने कामायनी में श्रद्धा के जीवन चरित्र को इतने दिव्य और महान रूप में अंकित किया है कि वह सम्पूर्ण नारी जाति से ऊपर एक पराशक्ति के रूप में दिखायी देती है। प्रस्तुत महाकाव्य में श्रद्धा का चरित्र इस प्रकार विकसित किया गया है कि वह सतत अपने स्व का त्याग परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के लिए करती जाती है। उसके चरित्र के विकास में जीवन के सभी प्रमुख मूल्यों की प्राप्ति का पथ दृष्टिगोचर होता है। इन विशेषताओं के कारण यदि हम श्रद्धा को राष्ट्र संस्कृति की आत्मा कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। भारतीय संस्कृति के सिवाय विश्व की कोई अन्य संस्कृति श्रद्धा जैसा चरित्र नहीं उत्पन्न कर सकती।[167]

विश्वबन्धुत्व की भावना कामायनी की सबसे महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विशेषता है। कामायनीकार ने मानवतावादी जीवन मूल्यों के आधार पर कामायनी के सांस्कृतिक भवन का निर्माण किया है। श्रद्धा मनु से प्रथम मिलन में ही मानवता की जय और विश्व के कल्याण की बात कहती है। वह किसी राष्ट्र या जातीय संस्कृति के अभ्युदय की बात न कहकर सम्पूर्ण विश्व के मंगल की कामना करती है। श्रद्धा चेतना के भाव सत्या से पूर्ण सुन्दर इतिहास को विश्व के हृदयपटल पर दिव्य अक्षरों से अंकित होने और मानवता की कीर्ति

---

१६६ कामायनी दर्शन सर्ग पृ० २५४

१६७ डा० रामलालसिंह कामायनी अनुशीलन पृ० २७०

को सबत्र फैलाने की बात कहकर विश्वबन्धुत्व की भावना का परिचय देती है।[१९८] कामायनी में कवि ने स्पष्ट शब्दों में मनु के द्वारा कहलाया है

हम अन्य न और कुटुम्बी हम केवल एक हमी हैं
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ कमी नहीं है।
शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है
जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि जहाँ है।[१९९]

कवि ने विश्वबन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम के साथ साथ स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना को भी विस्मृत नहीं किया है। कामायनी में स्थान स्थान पर पर्वतराज हिमालय कैलाश पर्वत मानसरोवर सारस्वत प्रदेश बन आदि के वर्णन में देश प्रेम की भावना को व्यक्त किया है। इस मग में कल्याण भूमि यह लोक यही कहकर स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना को ही प्रसादजी ने अभिव्यक्त किया है।

कामायनी में हृदयवादी भारतीय संस्कृति और बुद्धिवादी पाश्चात्य संस्कृति के संघर्ष का निरूपण करके भी प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति की ही श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। वस्तु कामायनी में जिन सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है वे विश्वजनीन हैं। कामायनी के पारिवारिक सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक नैतिक आध्यात्मिक मूल्य भारतवर्ष के लिए जितने उपयोगी हैं उतने ही विश्व के अन्य राष्ट्रों के लिए भी कामायनी में मानवता की भावनात्मक सत्ता हिन्दू जाति के लिए ही नहीं हिन्दुस्तान के लिए ही नहीं, वरन् सारी मानवता की रक्षा के लिए मुखरित हो उठी है। इसीलिए कामायनी भारतीय जीवन एवं भारतीय साहित्य की ही नहीं वरन् विश्व साहित्य तथा विश्व जीवन की एक अमूल्य सम्पत्ति बन गया है।[२००] प्रसादजी विश्वबन्धुत्व के उदात्त आदर्शों से प्रेरित होकर भी भारतीय आदर्शों से प्रभावित थे। भारतीयता की भावना उनकी सम्पूर्ण साहित्य चेतना को अनुप्राणित किए है। इस दृष्टि से विचार करें तो सभ्यता के जिस विकास को कामायनी में चित्रित किया गया है वह पाश्चात्य और पौर्वात्य सभ्यताओं का सम्मिलित रूप है किन्तु भारतीय सभ्यता और संस्कृति के त्यागमय, आध्यात्मिक धर्मनिष्ठ स्वरूप के सम्मुख पाश्चात्य सभ्यता की यान्त्रिक

[१९८] कामायनी, श्रद्धा सर्ग पृ० ५८ ५९
[१९९] वही आनन्द सर्ग पृ० ८७ ८८
[२००] डॉ० रामलालसिंह कामायनी अनुशीलन, पृ० ७८

भौतिक भोग प्रधान सभ्यता बहुत अधिक महत्वपूर्ण दिखायी नहीं देती है। किन्तु कामायनीकार ने दोनों संस्कृतियों के स्वस्थ समन्वय द्वारा जिस आदर्श की स्थापना की है वह निश्चय ही महत्वपूर्ण है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कामायनी में संस्कृति का स्वरूप समन्वयवादी होते हुए भी प्रसादजी की निष्ठा और आस्था भारतीय (आर्य) संस्कृति में प्रतिष्ठित है। कामायनी की सांस्कृतिक उपलब्धि उसका मानवतावादी स्वरूप है।

दार्शनिक पृष्ठभूमि

कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि का निर्माण प्रमुख रूप से शैवागमों के प्रत्यभिज्ञादर्शन तथा भारतीय दर्शन की अनेक महत्वपूर्ण विचारधाराओं के आधार पर हुआ है। इसके अतिरिक्त बौद्धों के दुःखवाद, क्षणिकवाद, शून्यवाद, न्याय वैशेषिक के परमाणुवाद, विज्ञान के भौतिकवाद, विकासवाद एवं उससे उद्भूत परिवर्तनवाद, मध्ययुगीन नियतिवाद एवं आधुनिक गांधीवाद की अहिंसामूलक विचारधाराओं का योगदान भी कामायनी की दार्शनिक भित्ति के निर्माण में स्पष्ट दिखायी देता है। इन सम्पूर्ण दार्शनिक सिद्धान्तों और विचारधाराओं के योग से प्रसादजी ने कामायनी में जो दार्शनिक उपपत्ति की है वह है समरसता का सिद्धान्त और आनन्दवाद। कामायनी की सम्पूर्ण दार्शनिक उपपत्तियों एवं प्रपत्तियों को इन्हीं दो शब्दों में आत्मसात किया जा सकता है।

कामायनी में जिस समरसताजन्य आनन्दवाद की उपलब्धि हुई है वह मूलतः शैवागमों में प्रतिपादित सामरस्य एवं आनन्दवाद से प्रभावित अवश्य है किन्तु उसकी पूर्णतः अनुकृति मात्र ही नहीं। कामायनी का आनंदवाद दार्शनिक सिद्धान्त या वाद की दृष्टि से प्रसादजी की अपनी मौलिक सृष्टि है जिसके निर्माण में उन्होंने मुख्य रूप से शैव दर्शन, बौद्ध दर्शन, वेदान्त दर्शन, उपनिषद् तथा वर्तमान युग की साम्यवादी प्रवृत्तियों का आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। किन्तु किसी एक मतवाद को पकड़कर उसकी अन्ध उपासना प्रसादजी को अभीष्ट न थी।[१०१]

प्रत्यभिज्ञादर्शन और कामायनी

भारत में शैवों के पाँच सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं—१. शैव सम्प्रदाय, २. पाशुपत सम्प्रदाय, ३. कालामुख सम्प्रदाय, ४. कापालिक सम्प्रदाय और ५. वीर शैव सम्प्रदाय।

---

१०१ डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : कामायनी दर्शन, पृ० १०२

इन सम्प्रदायों का विकास देश में भिन्न स्थानों पर और शिवाराधना की भिन्न भिन्न पद्धतियों को अपनाकर हुआ। शैव सम्प्रदाय मुख्यतः तमिल प्रदेश में, पाशुपत गुजरात में तथा वीर शैव मत का प्रचार कर्नाटक प्रदेश में हुआ। कालामुख और कापालिकों के विशेष विवरण उपलब्ध न होने से प्रतीत होता है कि इनकी क्रियाएं एवं सिद्धान्त इतने गुप्त थे कि आगे चलकर इनकी परम्पराएं नष्ट प्राय हो गयीं।[१७२]

श्री माधवाचार्य ने 'सर्वदर्शन संग्रह' नामक ग्रन्थ में चार शैव दर्शनों का उल्लेख किया है—नकुलीश पाशुपतदर्शन, शैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञादर्शन और रसेश्वरदर्शन।[१७३]

प्रत्यभिज्ञादर्शन का विकास काश्मीर में हुआ था, इसलिए यह काश्मीर शैवदर्शन नाम से भी प्रसिद्ध है। इसके मूल प्रवर्तक वसुगुप्त माने जाते हैं। वसुगुप्त के दो प्रधान शिष्य थे—कल्लट और सोमानन्द। कल्लट ने स्पन्द शास्त्र का और सोमानन्द ने प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का प्रवर्तन किया। इस शास्त्र का मूल ग्रन्थ 'शिवदृष्टि' है। अभिनव गुप्ताचार्य ने उन प्रत्यभिज्ञा सूत्रों पर 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' नामक टीका तथा 'तन्त्रालोक', 'तन्त्रसार', 'परमार्थसार' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे।[१७४] इन्हीं ग्रन्थों में प्रत्यभिज्ञादर्शन की दार्शनिक विचारधाराओं का विवेचन है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन पूर्णतः अद्वैतवादी दर्शन है जिसके अनुसार 'शिवोऽहम्' की स्थिति को प्राप्त करना जीव का अन्तिम लक्ष्य है। इस दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा दर्शन और शंकर के वेदान्तदर्शन का प्रतिपाद्य समान है। वेदान्त में 'अहम् ब्रह्मास्मि' की स्थिति को जीव का चरम लक्ष्य माना गया है। वस्तुतः 'ब्रह्म की प्रत्यभिज्ञा या पहचान हो जाने के कारण ही इसे प्रत्यभिज्ञादर्शन कहते हैं।[१७५]

१ आत्मा—प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार आत्मा को चैतन्य स्वरूप कहा गया है। वही आत्मा की शक्ति के नाम से भी सम्बोधित किया जाता

---

[१७२] डॉ० बलदेव उपाध्याय, आर्य संस्कृति के मूलाधार, पृ० २२६

[१७३] वही, सर्वदर्शन संग्रह, पृ० ७०-७८

[१७४] डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ४११

[१७५] डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २५५

है और उस परम शिव से अभिन्न माना जाता है। कामायनी में प्रसादजी ने प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार आत्मा को महाचिति कहा है जो लीलामय आनन्द करती है

कर रही लीलामय आनन्द महाचिति सजग हुई सी व्यक्त।
विश्व का उन्मीलन अविराम इसी में सब होते अनुरक्त॥ [१७६]

प्रसादजी ने आत्मा के लिए चेतना शब्द का भी प्रयोग किया है
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था। [१७७]

यह आत्मा ही परम्-तत्त्व और परम् शिव है। इसी शिवरूप आत्म-तत्त्व से अर्थात् शिव से (आत्मा की इच्छा से) विश्व का निर्माण होता है
काम मंगल से मण्डित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम। [१७८]

२ जीव—प्रत्यभिज्ञादर्शन में त्रिताप आबद्ध जीव पशु के नाम से सम्बोधित किया गया है।[१७९]

इस जीव की चार सत्ताएँ मानी गयी हैं—सकल प्रलयाकल विज्ञाना कल और शुद्ध।[१८०]

जीव को शुद्ध-स्वरूप की प्राप्ति शिवोऽहम् के ज्ञान पर होती है। 'कामायनी' में मनु जीव के प्रतीक हैं। उनका जीवन चिन्ताग्रस्त है भोग विलास की प्रवृत्ति भेद-बुद्धि ईर्ष्या स्वार्थ भावना आदि के कारण वे प्रथम सर्ग से लेकर निर्वेद सर्ग तक तीन प्रकार के मलों एवं काल कला नियति राग विद्यादि छः कंचुकों से घिरे हुए बन्धनग्रस्त रहते हैं। रहस्य सर्ग में श्रद्धा के संयोग से इच्छा क्रिया तथा ज्ञान के त्रिकोण मिलने पर शाम्भव स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसी के परिणामस्वरूप वे शिव रूप होकर अनन्त अखण्ड शिव की प्राप्ति करते हैं

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे॥ [१८१]

३ जगत—प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार सृष्टि या जगत चिति का

---

[१७६] कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ० ५३
[१७७] वही आनन्द सर्ग पृ० २६४
[१७८] वही श्रद्धा सर्ग पृ० ५०
[१७९] ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २ पृ० २२०
[१८०] तन्त्रालोक, भाग १ पृ० २१६
[१८१] कामायनी रहस्य सर्ग पृ० २७३

स्वरूप माना गया है जो अपनी इच्छा के अनुसार विश्व का उदय या उन्मेष करती है। कामायनी में प्रसादजी ने विश्व को चिति की इच्छा का परिणाम ही कहा है यह संसार महाचिति की लीलामय अभिव्यक्ति होने के कारण आनन्दमय है और आत्मा का संसार के प्रति अनुराग होना भी स्वाभाविक ही है। प्रसादजी ने जगत के प्रति मिथ्यात्व का दृष्टिकोण नहीं अपनाया

> अपने दुख सुख से पुलकित यह मूर्त विश्व सचराचर
> चिति का विराट वपु मंगल यह सत्य सतत चिर सुन्दर। [182]

इस प्रकार प्रसादजी ने कामायनी में आत्मा जीव और जगत की कल्पना प्रत्यभिज्ञादर्शन के सैद्धान्तिक आधार पर साकार की है।

तीन पदार्थ (पशु पशुपति और पाश)

सभी शैवदर्शनों की भाँति प्रत्यभिज्ञादर्शन में पशु पशुपति और पाश तीन पदार्थों को स्वीकार किया गया है। जीव ही पशु है जो जगत रूपी पाश में बंधा हुआ है। वह पशुपति (शिवत्व) को प्राप्त नहीं कर पाता। पशुपति की प्राप्ति उस शिवत्व बोध (शिवोऽहम्) अर्थात प्रत्यभिज्ञान होने पर होती है। कामायनी में मनु की स्थिति जीव की है। वे इच्छा के भौतिक आकर्षण में बंधकर भटकते हैं। किन्तु श्रद्धा के सम्पर्क से अन्ततः शिवत्व बोध पशुपति (नटराज) के दर्शन से होता है। उस स्थिति में उन्हें सम्पूर्ण संसार एक दिखायी देता है—वे अपने-पराये का भेद भूलकर आनन्दमय समरसतापूर्ण आनन्द की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

आनन्दवाद—कामायनी का मूल प्रतिपाद्य आनन्दवाद ही है। यह आनन्दवाद मानव की उस अवस्था का प्रतीक है जिसमें वह सम्पूर्ण भेदभाव भूलकर विश्वबन्धुत्व के उदात्त भाव से युक्त होता है। कामायनी में आनन्द के जिस रूप की प्रतिष्ठा है वह स्पष्टतः आत्मरूप है—बाह्य गोचर विषय रूप में प्रसरित आनन्द नहीं। यह आनन्द स्पष्टतः औपनिषदिक परम्परा से प्रभावित शैवागम—प्रतिपादित अभेदमय आत्मानन्द है जिसमें आत्म और परमात्म के भेद नहीं वरन् आत्म और जगत के भी पूर्ण ऐक्य की भावना निहित है। [183]

---

[182] कामायनी आनन्द सर्ग पृ० ८८

[183] डॉ० नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्याएं पृ० ५८-५९

कामायनी के आनन्द का स्वरूप जगत के भौतिक आनन्द से भिन्न है। संसार में जो मानुष तथा दाशनिक अनुभूति का भाव है वह तो वस्तुतः आनन्द की छायामात्र है। इस आनन्द के प्राप्त होने पर वासना का आकर्षण और अतृप्ति समाप्त हो जाती है। उसका स्वरूप सात्विक है। यह अगण्य है। इस आनन्द की उपलब्धि होने पर मानव अभेद की स्थिति का अनुभव करता है। विश्व के बाह्य द्वन्द्व—यथा सुख दुःख और जड चेतन स्थितियाँ समरसता के कारण समाप्त हो जाती हैं

सब भेद भाव भुलवाकर दुःख सुख को दृश्य बनाता

मानव कह रे ! यह मैं हूँ यह विश्व नीड बन जाता। [१८४]

जगत के सम्पूर्ण दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति भी हो जाती है। प्रसादजी ने आनन्दवाद की स्थापना सृष्टि के भौतिक संघर्ष से मुक्ति प्राप्त करने के लिए की है क्योंकि जगत की विडम्बनाओं में फँसा हुआ मनुष्य जीवन के वास्तविक सुख को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक वह आनन्द के आध्यात्मिक स्वरूप को पहचान न ले किन्तु इसका यह अर्थ कभी नहीं कि व्यक्ति पलायनवादी और निवृत्तिमार्गी हो जाय। प्रसाद का आनन्दवाद शैववाद के सिद्धान्त पर स्थित है शैववाद का लक्ष्य निवृत्ति द्वारा उतना सिद्ध नहीं होता जितना विश्व को समरसता मानने से सिद्ध होता है। यह कोरा कर्म नहीं समन्वयात्मक कर्म है। [१८५]

कामायनी में इस ओर संकेत भी किया गया है

यह नीड मनोहर कृतियों का यह विश्व कर्म रंगस्थल है

है परम्परा लग रही यहाँ ठहरा जिसमें जितना बल है। [१८६]

उपर्युक्त पंक्तियों में काम ने मनु को विश्व की कर्म रंगस्थली में ठहरने की शिक्षा दी है। श्रद्धा ने भी चिंताग्रस्त मनु से यही कहा है

दुःख के डर से तुम अज्ञात जटिलताओं का कर अनुमान

काम से झिझक रहे हो आज भविष्यत् से बन कर अनजान। [१८७]

संसार (सर्ग) मंगल और श्रेयमण्डित है। उसे तिरस्कृत करना उचित नहीं जिसे तुम जगत की ज्वालाओं का मूल और अभिशाप समझते हो वह ईश्वर के वरदान का रहस्य भी है। विश्व भूमा का मधुमय दान है

---

[१८४] कामायनी आनन्द सर्ग पृ० २८६

[१८५] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ११८

[१८६] कामायनी काम सर्ग पृ० ७५

[१८७] वही श्रद्धा सर्ग पृ० ५२

काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम।

× × ×

विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पन्दित विश्व महान्
यही दुख सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान। [188]

इस प्रकार प्रसादजी का आनन्दवाद आध्यात्मिक होते हुए भी पूर्णतः अभौतिक नहीं। आत्मिक होते हुए भी उसकी अनुभूति अशरीरी नहीं। उसमें कर्म की प्रेरणा और सात्त्विक सुख की प्राप्ति एक साथ होती है।

समरसता—समरसता शब्द और सिद्धान्त दोनों को ही प्रसादजी ने शैव दर्शन से ग्रहण किया है। शैवदर्शन में शिव और शक्ति तत्त्व के समन्वय का प्रतिपादन किया गया है। कामायनी में इस समरसता के सिद्धान्त को कवि ने इच्छा, कर्म और ज्ञान नामक त्रिपुर के समन्वय द्वारा प्रतिपादित किया है। कामायनीकार ने यह प्रतिपादित किया है कि मानव की इन तीनों प्रवृत्तियों का समन्वय होने पर ही वास्तविक आनन्द की उपलब्धि सम्भव है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा नामक तीनों शक्तियाँ क्रमशः पुरुष की बुद्धि, अहंकार और मन की क्रमशः सतोगुणी, तमोगुणी एवं रजोगुणी प्रवृत्तियाँ हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मन की इन त्रिवृत्तियों में सामरस्य स्थापित होने पर वह पूर्णत्व की स्थिति को पहुँचकर अखण्ड आनन्द की प्राप्ति उसी प्रकार करता है जिस प्रकार योगी समाधि की अवस्था में ब्रह्म की अनुभूति। कामायनीकार ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि इच्छा, ज्ञान और क्रिया का भिन्नत्व जीवन की विडम्बना है

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की। [189]

इन तीनों के मिलन पर मनु को चिदानन्द की प्राप्ति होती है। मनु इच्छा अनादि निनाद सुन योगियों की भाँति परमानन्द की दशा को प्राप्त होते हैं। कामायनी की दार्शनिक उपलब्धियों में समरसता का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रसादजी ने इस सिद्धान्त का जीवन के व्यवहार जगत में भी प्रतिपादन किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने पुरुष और स्त्री के संघर्ष को समाप्त करने के लिए समरसतापूर्ण सम्बन्धों की आवश्यकता पर बल दिया है। काम ने मनु से कहा भी है

---

[188] कामायनी, श्रद्धा सर्ग पृ० ५३ ५४

[189] वही रहस्य सर्ग पृ० ७२

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की। [१६]

इसी समरसता का उल्लेख जय और पराजय का कारण भी माना है। यथा—

समरस थे जड़ और चेतन सुन्दर साकार बना था।

इसी समरसता का उद्देश्य सारस्वत प्रदेश में जाती हुई श्रद्धा अपने पुत्र को भी देती है

सबकी समरसता का प्रचार मेरे सुत सुन मा की पुकार। [१६१]

कामायनी के अन्तिम सर्ग में तो इस समरसता का बड़ा विशद प्रभाव चित्रित किया गया है।

शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है।
जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि जहाँ है। [१६२]

इस प्रकार कामायनी में समरसता के तीन रूप मिलते हैं—व्यक्ति की समरसता समाज की समरसता तथा प्रकृति और पुरुष की समरसता। व्यक्ति की समरसता श्रद्धा के द्वारा व्यक्त हुई है समाज की समरसता के अभाव में सारस्वत प्रदेश में विप्लव तथा संघर्ष होता है तथा प्रकृति तथा पुरुष की समरसता आनन्द सर्ग में दिखायी गयी है। [१६३]

समरसता परमशान्ति एवं आनन्दमय अवस्था की जननी है। उस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर मानव के लिए कुछ भी प्राप्त करना शेष हो जाता है। यहीं जीव की जीवन यात्रा समाप्त होती है। जब जन्म-मरण में कुछ भी नहीं रहता और अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने से कर्म की गति भी यहाँ शान्त हो जाती है। यही सतचित और आनन्द का सामंजस्य तथा सामरस्य है यही भारतीय दर्शन जीवन धर्म और कर्म का चरम लक्ष्य है। [१६४]

इस प्रकार समरसता का सिद्धान्त कामायनी की अनुपम देन है जिसे कवि ने वर्तमान असन्तुलित जीवन में समाधान के रूप में चित्रित किया है।

---

[१६] कामायनी इडा सर्ग पृ० १६२

[१६१] वही पृ० २४४

[१६२] वही पृ० २८८

[१६३] डा० रामलालसिंह कामायनी अनुशीलन पृ० १७८

[१६४] डा० उमेशमिश्र भारतीय दर्शन पृ० २५

शैवागमों एवं तन्त्रों से प्रभावित होते हुए भी यह सिद्धान्त नितान्त मौलिक और नवीन है। इस सिद्धान्त के प्रयोग से कामायनी ही महान् नहीं बनी है वरन् सिद्धान्त भी महान् हो गया है।

नियतिवाद—शैवागमों में नियति को विश्व के क्रिया-व्यापारों को मर्यादित करनेवाली के रूप में वर्णित किया गया है। वह कर्मफल देने वाली शिव शक्ति है। शैव दर्शन में नियति कला विद्या राग काल आदि कंचुकों में एक है जो जीव को आवृत करते हैं। तन्त्रालोक में नियति को नियमन करने वाली कहा गया है

नियति नियोजनां धत्ते विशिष्टे कार्यमण्डले। [१६५]

प्रसाद जी ने कामायनी में इसका (नियति) ग्रहण उस चेतनशक्ति के रूप में किया है जिसके सम्मुख मानव विवश हो जाता है—संसार का समस्त क्रिया व्यापार नियति के द्वारा ही चलता है। वह व्यक्तिगत नहीं समष्टिगत है। नियति केवल मनु का जीवन ही परिचालित नहीं करती वरन् समग्र संसार उसी से नियन्त्रित है।[१६६]

कामायनी में सर्वत्र ही नियतिवाद का स्वर सुनायी देता है क्योंकि सृष्टि के कर्म चक्र का संचालन वही करती है

कर्मचक्र सा घूम रहा है यह गोलक बन नियति प्रेरणा
सबके पीछे लगी हुई है कोई व्याकुल नयी एषणा।

× ×

नियति चलाती कर्म-चक्र यह तृष्णाजनित ममत्व वासना। [१६७]

काव्यारम्भ में प्रलयकाल की समाप्ति के बाद नियति के शासन को कवि ने सूचित किया है

उस एकान्त नियति शासन में चले विवश धीरे धीरे
एक शान्त स्पन्दन लहरों का होता ज्यों सागर तीरे। [१६८]

इस सर्ग में कवि ने नियति का एक नया रूप कहा है जिसका रूप भीषण भी होता है

---

[१६५] तन्त्रालोक, ६।१६०

[१६६] डॉ० प्रेमशंकर प्रसाद का काव्य, पृ० २६८

[१६७] कामायनी रहस्य सर्ग पृ० २६६ ६७

[१६८] वही आशा सर्ग पृ० ३४

इस नियति नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलांच रही। [१६६]

वासना सर्ग में नियति के कौतुक को देखकर मनु चमत्कृत होते हुए चित्रित किये गये हैं

देखते थे अग्निशाला से कुतूहल युक्त
मनु चमत्कृत निज नियति का खेल बन्धन युक्त। [२]

संघर्ष सर्ग में इसी नियति को विकंपनमयी के रूप में अंकित किया गया है जिसे देखकर सभी व्याकुल हो जाते हैं

ताण्डव में थी तीव्र प्रगति परमाणु विकल थे
नियति विकंपनमयी त्रास से सब व्याकुल थे। [१]

कामायनी में इस प्रकार नियति को एक नियन्ताशक्ति के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु कामायनी का नियतिवाद मनुष्य को अकर्मण्य और निराश नहीं बनाता वरन् अकर्म से कर्म की ओर प्रवृत्त करता है। कामायनी का नियतिवाद भाग्यवाद की उस विचारधारा से भी भिन्न है जिसमें पूर्वजन्मों के कर्म का फल मानकर व्यक्ति निष्क्रिय भाव से परिस्थितियों की विडम्बना को सहता रहता है। नियति को प्रसादजी अचेतन प्रकृति का कार्य-कलाप मानते हैं। सचेतन प्रकृति नियति के रूप में ही सक्रिय होती है। प्रसादजी की दृष्टि में प्रकृति का नियमन और विश्व का सन्तुलन करने वाली शक्ति नियति है जो मानव अतिवाद की रोक थाम करती है और विश्व का सन्तुलित विकास करने में सहायक होती है। प्रसाद का यह नियति सिद्धान्त साधारण भाग्यवाद या प्रारब्धवाद से भिन्न है। नियति एक अनन्य शक्ति है किन्तु वह जड़ और अज्ञानमूलक नहीं है। [२]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि— प्रसादजी ने नियति को भारतीय दर्शन की ठोस चिंतनभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। वह विश्वनियन्ता की इच्छाशक्ति है। प्रसादजी ने उसको पूर्णतः स्वतन्त्र तथा स्वेच्छाचारिणी माना है। ईश्वर की इच्छाशक्ति होने के कारण अन्य सत्ता नहीं है। उसके

[१६६] कामायनी इड़ा सर्ग पृ० १५८
[२] वही वासना सर्ग पृ० ८३
[१] वही संघर्ष सर्ग पृ० २०
[२] प्रसाद का जीवन दर्शन कला और कृतित्व—सम्पादक महावीरअधिकारी में आचार्य वाजपेयी का कामायनी का दार्शनिक निरूपण नामक निबंध पृ० ६३

कर्म चक्र के प्रवर्तन का उद्देश्य सदैव जीव के लिए कल्याणमय है क्योंकि वह अंत में उस शिव तत्त्व की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है जिसे प्राप्त करके वह आनंदलोक का जीव बन जाता है।[203]

अन्य दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव

बीसवीं शताब्दी में गांधीजी का आविर्भाव राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं, वरन् तत्कालीन भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। गांधीजी के विचार (जीवन-दर्शन) से हिन्दी काव्य की प्रतिनिधि काव्यधाराएँ यथेष्ट रूप से प्रभावित हुई। महाकाव्य युग जीवन की चेतना के आकलन का विराट प्रयास होने के कारण उसमें अपने युग की उन्नत विचार धाराओं की प्रतिच्छाया का समावेश होना स्वाभाविक ही है। कामायनी व्यापक अर्थों में एक युगीन महाकाव्य होने के कारण गांधीवाद के मूल सिद्धान्तों से प्रभावित है। काव्य के प्रारम्भिक सर्गों में अहिंसा की जिस विचारणा का समर्थन कवि ने श्रद्धा के माध्यम से कराया है वह गांधीवादी प्रभाव का व्यंजक है। कामायनी की श्रद्धा मनु के हिंसात्मक कार्यों का दृढ़ता से विरोध करती है। अपने पालित पशु की यज्ञ में बलि दिए जाने पर वह कहती भी है कि किसी देवता के नाम बलि देना कितना [illegible] है।[204]

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार भारत की माता चित्रकूट में कात निज वालाओं को कातना बुनना सिखाती है उसी प्रकार कामायनी की श्रद्धा भी हाथ में तकली लेकर बुनती है। तकली द्वारा सूत कातना और वस्त्र बुनना गांधीवाद की ग्रामोद्योग आर्थिक विकास योजना का प्रचार है।[205]

गांधीवाद के अतिरिक्त डा० नगेन्द्र ने कामायनी पर बौद्ध-दर्शन के शून्यवाद, क्षणवाद, दु:खवाद तथा विकासवाद और उसके अंगभूत परिवर्तनवाद, परमाणुवाद, शक्तिसद्भाववाद आदि का प्रभाव भी बतलाया है।[206]

शून्यवाद

'मौन नाश विध्वंस अंधेरा शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है अरी अमरते तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव।[207]

---

[203] डा० रामगोपाल [illegible] हिन्दी काव्य में नियतिवाद पृ० २०८-२०९

[204] कामायनी कर्म सर्ग पृ० १ ६

[205] वही ईर्ष्या सर्ग पृ०

[206] डा० नगेन्द्र कामायनी के अध्ययन की समस्याएं पृ० ६६-६८

[207] कामायनी चिन्ता सर्ग पृ० १८

कुरुक्षेत्र

कुरुक्षेत्र

कुरुक्षेत्र

कथासार

प्रथम सर्ग—कुरुक्षेत्र का युद्ध पाण्डवों और कौरवों में हुआ। युद्ध में पाण्डव जयी हुए। युद्ध की समाप्ति पर सभी आनन्द निमग्न थे। किसी को भी युद्ध के विनाशकारी भयंकर और वीभत्स दृश्यों की स्मृति न थी। किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय करुणाकुल था। वे उस विजय की ओट में हुए असंख्य नर-संहार और विनाश की स्मृति करके शोकातुर हो रहे थे। वे सोचते थे कि पाँच असहिष्णु नरों के द्वेष से सारे देश का संहार हो गया। करोड़ों माताएँ और नारियाँ पुत्र-पति विहीन हो गयीं। उन्होंने सोचा कि रक्त से सने इस राज्य का उपभोग मैं कैसे करूँगा? इसी प्रकार के विचारों से युधिष्ठिर का हृदय इतना खिन्न हो उठा कि वे पाप से सहकर भीष्म पितामह के पास चले गये।

द्वितीय सर्ग—अजय भीष्म ने आयी हुई मृत्यु से कह दिया कि अभी जाने का योग नहीं है और यह कहकर शर शय्या पर पड़े रहे। काल के करों से उन्होंने प्राणों को छीन लिया था।

उसी समय धर्मराज को भीष्म पितामह ने चरणस्पर्श करते देखा। धर्मराज ने अत्यन्त अधीर और व्याकुल होकर कहा कि—हे पितामह महाभारत विफल हुआ। तदनन्तर धर्मराज ने युद्ध के विनाशकारी परिणामों का विवरण दिया और मन-संताप की व्यथा को व्यक्त किया। तब भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा कि यह अवश्यम्भावी है उसे पाण्डव नहीं रोक सकते थे। युद्ध के अनेक कारण हैं स्वार्थ राजनीतिक प्रवंचना और प्रतिशोध। कौरवों ने पाण्डवों का अपमान किया अतः प्रतिशोध की भावना से युद्ध हुआ। अस्तु धर्मराज का यह विचार सर्वथा निर्मूल है कि युद्ध करके पाप किया। भीष्म पितामह ने कहा कि पाप और पुण्य के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती।

युद्ध की समस्या पर ही विचार करते हुए उन्होंने तप त्याग समरस और करुणा के महत्त्व पर भी सोचा। पितामह का अभिमत था कि निश्चय

ही यह महत भाव है किन्तु इनकी उपयोगिता विशेष परिस्थितियों में ही होती है। व्यक्तिगत धर्म के रूप में ये सहायक हो सकते हैं किन्तु सामाजिक अभ्युत्थान के लिए युद्ध का भी आश्रय लेना पड़ता है। पाशविकता के सामने आत्मबल का कोई वश नहीं चलता है। भीष्म पितामह ने श्रीराम का उदाहरण दिया कि उन्होंने भी कानन में मुनियों के अस्थि-समूह को देखकर दस्युओं का वध करने का प्रण किया था।

तृतीय सर्ग—इस सर्ग में शान्ति की समस्या पर विचार किया गया है। भीष्म पितामह ने कहा कि सभी शान्ति चाहते हैं। कोई भी मरने मारने के घृणित व्यापार में लिप्त नहीं होना चाहता किन्तु विवश होकर युद्ध का वरण किया जाता है। सभी शान्ति के इच्छुक हैं। शान्ति दो प्रकार की है एक तो कृत्रिम शान्ति जिसका आधार अन्याय और शोषण है दूसरी वास्तविक शान्ति जिसका आधार प्रेम और अहिंसा है। सत्ताधारी वर्ग चाहता है कि वह शासित का शोषण करे और शान्ति भंग न हो। किन्तु शान्ति का यह कृत्रिम रूप जनमत को बहुत समय तक दमित नहीं कर सकता क्योंकि दमन जन मानस में घृणा पैदा कर क्रान्ति करा देता है और युद्ध होता है। अस्तु ऐसे युद्ध के लिए उत्तरदायी आततायी शासक है। भीष्म पितामह ने कहा कि प्रतिशोध से तो शौर्य की शिखाएं दीप्त होती हैं। प्रतिशोधहीनता तो महापाप है। अन्याय और शोषण का तो प्रतिशोध होना ही चाहिए। शान्ति का प्रथम न्यास न्याय और समता है। इनके अभाव में समाज में सच्ची शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

चतुर्थ सर्ग—ब्रह्मचर्य के व्रती धर्म के महास्तम्भ और बल के आगार भीष्म ने कहा कि धर्मराज न्याय को चुराने वाला ही रण को आमन्त्रित करता है। स्वत्व का अन्वेषण पाप नहीं है। कोई भी अकारण किसी से लड़ना नहीं चाहता। अन्यायी स्वयं दूसरों के न्यायोचित स्वत्वों को छीनकर युद्ध करता है। अतः युद्ध का उत्तरदायित्व सुयोधन पर है क्योंकि उसने पाण्डवों के अधिकारों का हरण और हनन कर युद्ध किया।

इसके अतिरिक्त भी महाभारत युद्ध के अनेक कारण थे। सुयोधन ने द्रौपदी का भरी सभा में अपहरण किया था। भीष्म ने कहा कि युद्ध में जिन व्यक्तियों और नरेशों ने तुम्हारा और सुयोधन का साथ दिया वह भी व्यक्तिगत कारणों से है। उदाहरण के लिए, अर्जुन का वध करने के प्रयोजन से कर्ण सुयोधन की ओर से लड़ा। राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्य से वैर चुकाने के लिए पाण्डवों का साथ दिया। इसी प्रकार किसी न किसी रूप के कारण राजा युद्ध

में सम्मिलित हुए। राजसूय यज्ञ भी युद्ध का कारण बना क्योंकि दूसरा पक्ष स्पर्धा करने लगा। इस प्रकार महाभारत-युद्ध की भूमिका निर्मित हुई। मानो भारत एक ज्वालामुखी के समान विस्फोट था जिसके लिए बहुत समय से ताप संचित होता रहा था।

भीष्म पितामह ने कहा कि पाण्डवों के राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर व्यासजी ने राजाओं से प्रेम और सद्भावपूर्वक रहने को कहा था किन्तु तुम जुए में द्रौपदी को हार गये। पितामह ने स्वयं को भी युद्ध के लिए दोषी बताते हुए कहा कि मेरे मन में प्रेम और कर्तव्य का संघर्ष था। मुझे पाण्डवों से प्रेम था किन्तु कर्तव्य के बन्धन के कारण मैं सुयोधन की ओर से लड़ा। उन्होंने कहा कि मेरी बुद्धि ने मुक्त हृदय को शासित कर लिया और सम्भवतः मैं भी यदि बुद्धि का अनुशासन न मान सुयोधन को न्याय के लिए ललकार देता तो वह सम्भलकर चलता और युद्ध न होता। किन्तु अब सब हो चुका। बीती बात को भुलाकर नये युग का सूत्रपात करो।

पंचम सर्ग—इस सर्ग के आरम्भ में कवि ने तत्कालीन समाज की भीषण परिस्थितियों का चित्र अंकित किया है कि किस प्रकार सर्वत्र ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि प्रज्वलित थी। धर्मराज ने विजय भी प्राप्त की किन्तु वे युद्ध की विभीषिका पर विचार-निरत थे। भीष्म पितामह की बातें सुनते-सुनते वे रोने लग उठे कि सर्वत्र विनाश का वीभत्स दृश्य है। धर्मराज ने कहा कि हे पितामह राक्षसों का समूह मानो मेरे समक्ष आकर उपहास कर रहा है कि मैं पापिष्ठ हूँ। मैं ऊपर से साधु वृत्ति धारण किये रहा किन्तु प्रतिशोध की भावना और राज्य लिप्सा ने मेरे तप-त्याग को तिलांजलि दे दी। मुझे यह राज्य पाप-कर्मों से प्राप्त हुआ है। युधिष्ठिर ने पश्चात्ताप करते हुए कहा कि मुझे युद्ध के पूर्व यह बोध क्यों नहीं हुआ कि युद्ध का कारण राज्य का लोभ और धन है अन्यथा मैं युद्ध करता ही नहीं। राज्य सिंहासन के लोभ ने ही मेरा सर्वनाश किया है। अस्तु अब मैं लोभ से द्वितीय युद्ध करूँगा। महाराज युधिष्ठिर ने कहा कि इस युद्ध में वही विजयी होंगे। मनु का यह पुत्र निराश नहीं है। वह नव धर्म का दीप प्रज्वलित करेगा।

षष्ठ सर्ग—प्रस्तुत सर्ग में कवि ने स्वयं युद्ध की समस्या पर विचार किया है। द्वापरयुग के युद्ध विषय को इसने विज्ञान-युग की परिस्थितियों के परिपार्श्व में ला सोचा है। सर्गारम्भ में कवि ने भगवान से पूछा है कि धर्म या श्रद्धा का दीप संसार में कब जलेगा? शान्ति की सुकोमल ज्योति से धरा कब अभिषिक्त और सरस होगी? भीष्म युधिष्ठिर बुद्ध, अशोक गांधी और

ईसा मसीह आदि ने शांति-स्थापना का प्रयास किया है। सभी ने इन महानु भावों की वाणी को सिर झुकाकर सम्मान भी दिया है किन्तु कोई भी उनके आदर्शों को मानता नहीं। मानव आज भी पुराने मार्ग पर ही चल रहा है।

आज का युग पुराने युग की भांति बेबस भी नहीं है। आज मानव ने बुद्धि के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर संसार के सभी रहस्यों को जान भी कर लिया है। धरती आकाश सागर सर्वत्र वह गतिगामी है। जल वायु अग्नि और विद्युत मानव के दास हैं। किन्तु खेद यही है कि बुद्धि की भांति मानव के हृदय का समविकास नहीं हो पाया है। उसे आज प्रेम और बलिदान की आवश्यकता है।

कवि कहता है कि विज्ञान के अन्वेषणों से अतृप्त मनुष्य चाहता क्या है? संसार वासना में डूब रहा है। पृथ्वी के सम्पूर्ण रहस्यों को जानकर मानव नक्षत्रों को जानने में प्रयत्नशील है। युद्ध और संहार का प्रिय मानव ग्रहों तक पहुंचना चाहता है। किन्तु यह लक्ष्य उचित नहीं। विज्ञान का लक्ष्य संसार में समरसता की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। साम्य की स्निग्ध और उदार रश्मि से ही विश्व में सरसता आयेगी किन्तु ऐसा कब होगा?

सप्तम सर्ग—काव्य का यह सबसे बड़ा सर्ग है। प्रारम्भ में कवि स्वयं विचार कर रहा है कि एक व्यक्ति यदि पाप की खाई में गिरकर भी निकलने का प्रयास करता है तो वह महान् है। संसार में पाप और पुण्य उत्थान और पतन सभी हैं। युधिष्ठिर को जब यह बोध हुआ तो भीष्म पितामह ने भी वही बात कही कि धर्मराज दुर्भाग्य के युद्ध से मानवता का संहार या अंत नहीं हो सकता। दुःख की घटा दूर होकर सुख शान्ति के पुन भी मिलेंगे। द्वापर युग की समाप्ति पर जिस नवीन युग का समारम्भ होगा उसमें मानव अवश्य ही प्रगति-पथ गामी होगा। मनुष्य ने अभी भी मनुष्यता का तिरस्कार नहीं किया है अन्यथा वह बैर भाव त्याग देता। धर्मराज! तुम मानव-कल्याण के मार्ग को लेकर संसार में बढ़ो। समाज में सच्ची शान्ति की स्थापना तभी होगी जब सभी को अपने अधिकार प्राप्त हो जायेंगे।

भीष्म ने कहा कि पहले पहल व्यक्तियों के समान अधिकार और कर्तव्य थे। अत जीवन में सर्वत्र शांति थी। व्यक्ति के मन में स्वार्थ का उदय हुआ और उसने अधिकारों का संचय आरम्भ किया। अस्तु शान्ति भंग हुई संघर्ष हुए। तभी शासक का जन्म हुआ। राजतन्त्र का उद्देश्य अधिकारों की रक्षा तथा न्याय की स्थापना था। राजतन्त्र के भय से लोग ठीक रहने लगे किन्तु कालान्तर में राजाओं ने भी शोषण प्रारम्भ किया। यह शोषण जब

तक समाप्त नहीं होगी शांति असम्भव है। व्यक्ति का आपणमुक्त होना अनिवार्य है।

पितामह ने कहा कि धर्मराज ! तुम्हें संन्यास ग्रहण न कर दुःखी जनता को सुखी बनाने का प्रयास करना चाहिए। संन्यास में व्यक्ति संसार को नश्वर समझकर चिन्ताओं में डूब जाता है। वास्तविकता यह है कि नश्वर संसार में भी हम कर्तव्य पालन करना चाहिए। संसार में सुख-दुःख तो हैं ही। साहसी व्यक्ति सुख-दुःख सहन करता हुआ संसार को सरस और सुन्दर बनाता है। संन्यासी तो संसार से पलायन करता है। वह संसार के काम नहीं आता। मानव के शत्रु उसके अन्तःकरण में ही विद्यमान हैं अन्यत्र नहीं। अतः उस मन पर संयम रखकर मानवता के विकास में विश्वास लिए हुए जीवन को लोक-कल्याण के पथ पर अग्रसर करना चाहिए। पितामह ने अन्त में कहा कि धर्मराज ! आशा के दीप जलाये चलो। एक दिन अवश्य ही यह धरा युद्ध की ज्वाला से मुक्त होगी। हार से मानव की महिमा घटेगी नहीं और न जीत से तेज बढ़ेगा। स्नेह और बलिदान से ही पृथ्वी स्वर्ग के समान हो सकेगी।

कथानक-समीक्षा

कथानक के आधार और स्रोत—कुरुक्षेत्र काव्य के कथानक का मूल आधार महाभारत है। महाभारत के सौप्तिक पर्व में युधिष्ठिर को मृत सम्बन्धियों के अन्तिम संस्कार सम्पन्न करते समय ज्ञात होता है कि कर्ण उनके अग्रज थे। इससे उनका मन अशान्त हो जाता है। 'शान्ति पर्व' में युधिष्ठिर नारद के सम्मुख विस्तार से अपनी आत्म-ग्लानि को प्रस्तुत करते हैं। वे युद्ध की निन्दा करते हुए वन गमन हेतु उद्यत होते हैं। किन्तु अपने भाइयों तथा द्रौपदी के विरोध एवं श्रीकृष्ण के परामर्श पर वे हस्तिनापुर आते हैं जहाँ उनका राज्याभिषेक होता है। श्रीकृष्ण के आदेशानुसार वे राज्य धर्म के ज्ञान प्राप्ति हेतु भीष्म पितामह के पास जाते हैं। भीष्म पितामह बड़े विस्तार से राज-धर्म का उपदेश देते हैं। इस वार्तालाप में युधिष्ठिर के प्रति भीष्म पितामह ने अनेक विषयों का विवेचन किया है। भीष्म पितामह के स्वर्गारोहण के बाद धर्मराज युधिष्ठिर पुनः खिन्न होकर आत्मग्लानि करते हैं। तब व्यास और श्रीकृष्ण विभिन्न प्रकार से समझाते हैं।

महाभारत में उपर्युक्त कथानक शान्ति पर्व से आश्वमेधिक पर्व तक फैला हुआ है। किन्तु कुरुक्षेत्र में प्रमुख कथानक शान्ति पर्व तक ही परिसीमित है।

कथानक की विशषताए

कुरु त्र काय क कथानक पर विचार करते समय हम निम्नाक्ति नथ्या को दृष्टिगन रखना चाहिए कि

१ कुरुभत्र एक विचार प्रधान काय है घटना प्रधान नहा ।

२ कुरुभत्र क कवि का प्रमुख घ्यय प्रब घ काव्यकारा या भाँति कथा कहना नहा वरन एक विशिष्ट विचारणा का प्रस्तुत करना है।

३ कुरुभत्र म कथा-नत्व की योजना का कवि न विशष महत्त्व नहा न्यिा है ।

१ ऐतिहासिकता— कुरुभत्र काव्य की कथावस्तु की एनिहासिकता का जहा तर सम्ब ध है उस न्म महाभारत की कथा के सन्दभ म रखकर ही देख सकत है । घटनाआ की दष्टि स प्रस्तुत का य का कथानक तनिक भी महत्त्व पूण नहा क्याकि कोइ भा घटना घटित हात हुए चित्रित नहा की गयी है अन घटनाआ की एतिहासिकता का उस रूप म (घटित होन म) प्रश्न हा नहा उठना । सम्पूण का य क यत्किचित तथा कथित कथानक का विकास दा पात्रा (युधिष्ठिर और भाप्म) के पारस्परिक सवान्ग क माध्यम स ही हुआ है । इन पात्रा को एतिहासिकता ही प्रस्तुत का य क कथानक की एनिहासिकता के रूप म ग्रहणीय है ।

दूसरे महाभारत क पात्रा क सम्ब ध म विन्ाना क अनेक मत है । उन्ह एतिहासिक और अनतिहासिक दाना ही माना गया है । प्रस्तुत प्रसग म उल्लखनाय यह है कि कुरुक्षत्र क रचयिता न महाभारत म प्रतिपान्ति एतिहासिकता का अक्षण्ण बनाय रखा है ।

२ काल्पनिकता और मौलिकता—महाकाव्यकार का कतव्य इतिहास पुराण क जीणकाय कथानका का युग-जावन क अनुरूप आकार प्रदान करना हाता है । कुरु त्र क रचयिता न आद्यात कल्पनाशक्ति के सशक्त प्रयाग ारा कथाचयन म मौलिकता का प्रदशन किया है ।

महाभारत म भाप्म पितामह युधिष्ठिर क प्रनि राजनीति वणाश्रम राष्ट्ररक्षा तप सत्य अध्यात्मज्ञान मा त सृष्टि का उत्पत्ति एव प्रलय युद्ध नानि सत्य-सधान विधि धर्माचरण आदि अनेक विषया पर सविस्तार उपदेश दत है । कुरुभत्र म कवि न काव्य क मूल प्रतिपाद्य विषय का हा दाना क पारस्परिक विचार विनिमय का माध्यम बनाया है । कवि न प्रसगतर विषया क प्रतिपान्न ारा कथावस्तु म अनावश्यक आकार वद्धि नहा का है । इसक

विपरीत काव्य का प्रतिपाद्य युद्ध और शान्ति की समस्या को विविध प्रकार से सांगोपांग उल्लिखित किया गया है।

२. युगानुरूपता—कुरुक्षेत्रकार कल्पना के प्रयोग में संयम की सीमाओं में बँधा रहा है। उसने काल विपरीत कुछ नहीं कहा है। काव्य में युग जीवन के अनुरूप ग्राह्य बनाने के लिए कवि ने स्वतन्त्र चिन्तन का सहारा भी लिया है। कवि के ही शब्दों में— यद्यपि मैंने सर्वत्र इस बात का ध्यान रखा है कि भीष्म और युधिष्ठिर के मुख से कोई ऐसी बात नहीं निकल जाय जो द्वापर के लिए सर्वथा अस्वाभाविक हो। हाँ इतनी स्वतन्त्रता अवश्य ली है कि जहाँ भीष्म किसी बात का वर्णन कर रहे हों जो हमारे युग के अनुकूल पड़ता हो उसका वर्णन नये और विशद रूप में कर दिया जाय।[1] स्पष्ट है कि कवि ने महाभारत के कथानक को युगानुरूप आकार देने के लिए ही स्वातन्त्र्य का सदुपयोग किया है।

कुरुक्षेत्र के कथानक की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि कवि ने प्राचीन कथा के सहारे आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण समस्या का चित्रण किया है। वह समस्या है युद्ध और शान्ति की। युद्ध की समस्या यद्यपि मानव जीवन की एक चिरन्तन समस्या है किन्तु वर्तमान युग-जीवन के परिप्रेक्ष्य में उसके स्वरूप प्रतिक्रिया परिणाम आदि पर विचार कवि की निजी सूझ-बूझ के ही उदाहरण हैं।

कुरुक्षेत्र के कथा-संयोजन में कवि साग्रह प्रयत्नशील भी नहीं है। प्रबन्धात्मकता कवि को बन्धन के रूप में स्वीकार्य नहीं है। प्रस्तुत काव्य में कवि की प्रमुख तथ्य विचारधारा का प्रतिपादन है। जहाँ कथानक इस कार्य को पूरा करने में सक्षम नहीं हुआ वहाँ कवि ने स्वयं कहना ही प्रारम्भ कर दिया है। उदाहरण के लिए छठे सर्ग में कवि स्वयं युद्ध की समस्या पर विचार करता है। वह द्वापर युग की सीमाओं को छोड़ विज्ञान युग के विकास की पृष्ठभूमि पर इस समस्या के समाधान और निदान की चेष्टा करता है। दूसरे शब्दों में वातावरण के अनुरूप कथानक को गति प्रदान की गयी है। डॉ० पाण्डेय के शब्दों में 'कुरुक्षेत्र में युद्धोत्तर काल के वातावरण को कवि ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए बड़े कौशल से चुना है। और जहाँ कहीं इसका काम कुरुक्षेत्र के कथानक से नहीं चल पाया वहाँ स्वयं पाठकों के सम्मुख आ खड़ा है।'[2]

---

[1] कुरुक्षेत्र निवेदन पृ० ६

[2] डॉ० शम्भूनाथ पाण्डेय आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद पृ० १८६-८७

कुरुक्षेत्र काव्य के कथानक में कुछ त्रुटियाँ भी हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में कथावस्तु की महाकाव्योचित व्यापकता नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है मानो दो व्यक्तियों के संवादों में ही काव्य का आदि अन्त समाहित है। घटनात्मक विनियोजन के अभाव ने कथारस की दृष्टि से कुरुक्षेत्र को महत्त्वहीन बना दिया है। कदाचित इसीलिए कतिपय समीक्षकों ने कुरुक्षेत्र को एक महाकाव्य मानने में संकोच किया है किन्तु कथानक का मात्र अभाव ही उस महाकाव्य की गरिमा से युक्त या रहित होने में सहायक नहीं हो सकता। कथानक का ह्रास वर्तमान युग के साहित्य की एक विशेषता बनती जा रही है। यह बात काव्यों के साथ ही नहीं वरन् कथा साहित्य (कहानी उपन्यास नाटक एकांकी आदि) पर भी लागू होती है। महाकाव्य का प्राण तत्त्व उसके उद्देश्य की महानता और विचारों की उच्चता है जो कुरुक्षेत्र में विद्यमान है। जहाँ तक कथा वस्तु का सम्बन्ध है वह महाभारत की पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण एक ओर प्राचीन तथा दूसरी ओर आधुनिक युग-बोध को प्रतिफलित करने की प्रेरणा से प्रेरित होने के कारण नवीन भी है। वाजपेयीजी ने उचित ही कहा है—"हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि कुरुक्षेत्र काव्य प्राचीन पृष्ठभूमि पर रखा गया है। उसमें सम्पूर्ण आधुनिकता हो ही नहीं सकती। महाभारत में आये हुए भीष्म और युधिष्ठिर-संवाद को हो नये सांचे में ढालने की चेष्टा की गयी है। उसमें पूरा आधार महाभारत का भी नहीं है और न पूरी नवीनता ही है। प्राचीन और नवीन के मिश्रण से जो चीज बन सकती है वह बनी है।"[3]

कुरुक्षेत्र में कथा-तत्त्व में बौद्धिकता की भी प्रधानता है क्योंकि यह एक चिंतन प्रधान काव्य है। आद्यान्त बौद्धिक मन्थन ही काव्य की उपलब्धि रही है।

इस प्रकार कथानक की दृष्टि से कुरुक्षेत्र के सृजन की अपनी सीमाएं हैं। कुरुक्षेत्र की कथावस्तु में विज्ञान युग के महाकाव्य की विशेषताएं दिखायी देती हैं और इस दृष्टि से आधुनिक महाकाव्यों की यह सम्भावना भी प्रकट होती है कि कथाविहीन काव्यकृतियां भी वैचारिक तारतम्य और क्रमबद्धता के कारण महाकाव्यात्मक औदात्य सम्पन्न हो सकती हैं।

चरित्र विश्लेषण

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों में कुरुक्षेत्र शिल्प की दृष्टि से एक अभिनव प्रयोग है। काव्य में कथा और पात्र का नहीं बल्कि चिंतन की प्रधानता होने के कारण यह एक विचार प्रधान महाकाव्य कहा जाता है।

---

[3] नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० १४५

कथानक और घटना विधान की क्षीणता के कारण कुरुक्षेत्र में चरित्र विकास की सम्भावनाएं शून्य के बराबर हैं। काव्य में केवल दो ही पात्र हैं—युधिष्ठिर और भीष्म—जिनके संवादों के माध्यम से कवि ने युद्ध की समस्या पर विचार किया है। इन दोनों पात्रों के उदात्त स्वरूप को देखते हुए यह निर्णय करना कठिन है कि इनमें नायक कौन है? कुरुक्षेत्र के कुछ समीक्षक युधिष्ठिर को नायक ठहराते हैं तो कुछ भीष्म को। वास्तव में कवि ने दोनों में से किसी भी पात्र को नायकत्व प्रदान नहीं किया है। काव्य के निवेदन में कवि ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसके समक्ष मुख्य समस्या युद्ध की है जो कि मानव जाति की सारी समस्याओं की जड़ है। भीष्म और युधिष्ठिर को तो कवि ने इसी समस्या को प्रस्तुत करने के लिए आलम्बन रूप में ग्रहण किया है। अस्तु प्रतीक रूप में युद्ध की समस्या को ही कुरुक्षेत्र का नायकत्व प्रदान किया जा सकता है क्योंकि काव्य का कथानक, विचार-तत्व, पात्र और जितनी दार्शनिक प्रवृत्तियाँ हैं उन सबका ध्येय इसी समस्या को प्रस्तुत करना है। यह युद्ध की समस्या चिरन्तन है, इसका सम्पूर्ण मानव जाति और जीवन से सम्बन्ध है। सृष्टि रचना के प्रारम्भ से लेकर आज तक यह भीष्म और दुर्दान्त समस्या के रूप में मानवता के समक्ष एक चुनौती के रूप में रही है। अस्तु कुरुक्षेत्र का नायक प्रतीक शैली में यदि युद्ध को स्वीकार किया जाय तो कोई असंगति नहीं लगती। इस प्रतीक का आधार-स्वरूप युद्धभूमि कुरुक्षेत्र को माना जा सकता है। डा० नगेन्द्र का विचार है कि इस काव्य में कुरुक्षेत्र युद्ध का प्रतीक है, युधिष्ठिर अहिंसा के प्रतीक हैं जो युद्ध को किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं समझते और भीष्म न्याय भावना के प्रतीक हैं जो अन्याय के दमन के लिए युद्ध को उचित ही नहीं वरन् आवश्यक भी मानते हैं। वास्तव में नायकत्व का प्रश्न काव्य में प्रच्छन्न ही रह जाता है।[४]

युधिष्ठिर और भीष्म के अतिरिक्त महाभारत के २३ अन्य पात्र मुख्य रूप में आये हैं और उनमें से प्रायः सभी का आगमन वर्ण्य प्रसंग में एक विचित्र मार्मिकता का समावेश कर देता है। कृष्ण और व्यास आदि द्वारा भीष्म को अपनी बातों का समर्थन कराना, द्रोणाचार्य, दुर्योधन, अभिमन्यु तथा भीष्म इत्यादि का इस धर्मयुद्ध में अन्यायपूर्वक मारा जाना, अश्वत्थामा, शकुनि तथा भीष्म आदि के जघन्य कर्म, धृतराष्ट्र और गान्धारी का सन्तान [illegible] आदि अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो नाटकीयता से निर्विवाद रूप से सम्पादक

[४] डा० नगेन्द्र : विचार और विश्लेषण पृ० १२८

सिद्ध होते हैं। कवि का महत्त्व इस बात में है कि उसने इनकी महत्ता को मूल्य आँका है और उनका सफल उपयोग किया है।[5] जहाँ तक भीष्म और युधिष्ठिर के चरित्र का सम्बन्ध है, उनके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास बहुत कम हुआ है। कुरुक्षेत्र के कथानक में घटनाचक्र की नगण्यता के कारण इन पात्रों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की चरित्रगत विशेषताओं की महत्त्वपूर्ण व्यंजना नहीं हो पायी है। यह दोनों पात्र कवि की चिन्तनधारा के संवाहक बनकर ही हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं फिर भी इन दोनों पात्रों की कुछ ऐसी चारित्रिक विशेषताएँ अवश्य हम काव्य में पाते हैं जिनके आधार पर दिनकर के चरित्र चित्रण-कौशल का परिचय प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर—कुरुक्षेत्र के प्रथम सर्ग के आरम्भ में ही हम युधिष्ठिर को महाभारत के युद्ध के परिणामों की चिन्ता में ग्रस्त पाते हैं। उनकी चिन्ता का मूल कारण विजय के पीछे छिपा हुआ ध्वंस और विनाश है। युधिष्ठिर उस महान व्यक्तित्व से सम्पन्न पुरुष हैं जो सारे पाण्डवों के रूप में [illegible] जाने पर भी विनाश के परिणाम सोचकर चिन्तित और विकल हैं।[6] उनके मन में एक अपार वेदना का भाव है कि पाँच धर्महीन नरों के द्वेष के कारण पूरे देश का संहार हो गया।[7] वे सोचते हैं कि रक्त से सने राज्य का भोग कैसे कर सकेगा।[8] और [illegible] में [illegible] पितामह [illegible] भीष्म के पास चले जाते हैं। इस प्रकार प्रथम परिचय में ही हम युधिष्ठिर को एक विचारवान व्यक्ति के रूप में पाते हैं जिसके हृदय में युद्ध की भयंकर स्मृतियों का अन्तर्द्वन्द्व व्याप्त है।

भीष्म पितामह के पास जाकर वे मर्मस्पर्शी शब्दों में अपनी हृदय वेदना

---

[5] श्री कान्तिमोहन शर्मा : कुरुक्षेत्र मीमांसा, पृ० १६८

पात्रों की सूची—

पुरुष पात्र—अभिमन्यु, अर्जुन, अश्वत्थामा, कर्ण, कृतवर्मा, कृपाचार्य, जरासन्ध, दुःशासन, [illegible], [illegible], धृतराष्ट्र, नकुल, धृष्टद्युम्न, भीष्म, राम, विदुर, व्यास, शकुनि, शिशुपाल, श्रीकृष्ण, संजय, सात्यकि।

स्त्री-पात्र— उत्तरा, गान्धारी, [illegible], माता।

[6] कुरुक्षेत्र, प्रथम सर्ग, पृ० १

[7] वही, पृ० १६

[8] वही, पृ० १५

को प्रस्तुत करते हैं। युधिष्ठिर के हृदय का अन्तर्द्वन्द्व निम्न शब्दों में व्यक्त हुआ है

एक ओर सत्यमयी गीता भगवान की है
एक ओर जीवन की विरति प्रबुद्ध है
जानता हूँ लड़ना पड़ा था हो विवश किन्तु
लहू-सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है
ध्वंसजन्य सुख याकि साश्रु दुख शान्तिजन्य
ज्ञात नहीं कौन बात नीति के विरुद्ध है
जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य
या महान पाप यहाँ फूटा बन युद्ध है।[9]

यहाँ से काव्य की मूल विचारधारा (युद्ध की समस्या) पर युधिष्ठिर और भीष्म में विचार विमर्श प्रारम्भ हो जाता है। भीष्म पितामह अनेक प्रकार की युक्तियों से युद्ध का समर्थन करते हैं किन्तु शान्ति और प्रेम के पुजारी युधिष्ठिर सन्तुष्ट नहीं हो पाते हैं। पितामह की बात सुनते सुनते पंचम सर्ग तक आकर धर्मराज रो उठते हैं।[10] महाराज युधिष्ठिर स्वयं पर नरसंहार का दायित्व डालते हैं।[11] ऐसा लगता है कि लोग यही कहेंगे कि युधिष्ठिर स्वजन के कारण अनुजों का राग करते रहे। उन्हें सुयोधन के समान ही युद्ध के विष-बीज से नहीं मिलना चाहिए था। इसी प्रकार के विचार-संघर्ष में वे इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि भीम ही युद्ध का कारण है। अस्तु पंचम सर्ग की अन्तिम पंक्तियों में वे भीम से रण करने को ठानते हैं

पर होगा मध्याह्न राग के साथ
युधिष्ठिर का विजयी निकलेगा
नर संस्कृति की रणछिन्न लता पर
शान्ति सुधा फल दिव्य फलेगा
कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इति
पंथ की मानव ऊपर और चलेगा
मनु का यह पुत्र निराश नहीं
नव-धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।[12]

[9] कुरुक्षेत्र द्वितीय सर्ग पृ० १८-१९
[10] वही पंचम सर्ग पृ० ८१
[11] वही, पृ० ८१
[12] वही पृ० ८४

अन्तत व धमराज को गीता के कृष्ण की भांति कम माग म प्रवत्त होने का ही उपदेश देते है। व चाहते ह कि धमराज असख्य नरा के जीवन की आशा बनकर त्रय भू तन को पीयूष स अभिषिक्त करें।

युधिष्ठिर की भांति भीष्म पितामह के चरित्र म भी कवि न अन्तर्द्वन्द्व की अवतारणा की ह। उनके अन्तर म भी धम और स्नेह का सघष चला था। पाण्डवा म प्रम करत हुए भी उन्ह दुर्योधन का ही पक्षधर बनना पड़ा। वे धम और प्रम दोना का ही निवाह करना चाहत थ किन्तु अन्त म विजय स्नेह की ही हुई धम पराजित हुआ। व अजुन स खुलकर युद्ध न कर सकने क कारण ही पराजित हो गय

धम स्नेह दोनो प्यारे थ बडा कठिन निणय था
अत एक को देह दूसरे को दे दिया हृदय था।
× × ×
धम पराजित हुआ स्नेह की डका बजी विजय की
मिली देह भी उसे दान था जिसको मिला हृदय का।
भीष्म न गिरा पाथ क सर स गिरा भीष्म का वय था।[२१]

कवि ने भीष्म पितामह के चरित्र निरूपण म आदश और यथाथ गुणा का अद्भुत समन्वय किया है। स्वय कवि न उन्ह ब्रह्मचयव्रती धम का महास्तम्भ बल का आगार परम विरागी पुरुष कहा है। भीष्म के समान ससार म अन्य कौन विक्रमी होगा जिन्होन धम नीति और प्रम के कारण अपन प्राणा का विसजन कर दिया।[२२]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र क चरित्र चित्रण म भारतीय इतिहास क दो महान पात्रा का नितान्त नवीन रूप प्रस्तुत किया गया है। कवि ने यद्यपि इन पात्रा को निजी विचार अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर ही उपस्थित किया है किन्तु वहा भी उनकी चरित्र गरिमा म न्यूनता नहीं आयी है। विशेषता यह है कि हमारे युग की विचार वीथी म विचरण करते हुए भी य पात्र इतिहास क माग स नहीं भटके है। काव्य म दोनो पात्रो क जीवन का एक अश ही हमारे सामने आया है किन्तु वह इतना महत्त्वपूण है कि उनके सम्पूण व्यक्तित्व की एक अमिट छाप पाठक के मन और मस्तिष्क पर अकित हो जाती है। धमराज युधिष्ठिर और भीष्म पितामह क ऐतिहासिक व्यक्तित्व मनोविज्ञान और

---

२१ कुरुक्षेत्र चतुथ सग पृ० ६५ ६६
२२ वही पृ ४६

कल्पना के संस्पर्श से कुरुक्षेत्र में निश्चय ही मौलिकता लिए हुए हैं। पात्रों के चरित्र निरूपण की प्रमुख विशेषता है।

रचना शिल्प

भावपक्ष (वर्णन-कौशल)

प्रकृति चित्रण—कुरुक्षेत्र एक विचार प्रधान महाकाव्य है। प्रस्तुत काव्य का समस्त भावात्मक सौन्दर्य उसकी विचार कल्पना का ही नतीजा है। काव्य में प्रकृति चित्रण किसी विशेष पद्धति या प्रणाली को आधार बनाकर नहीं हुआ है। और न ही प्रकृति निरूपण कवि का ध्येय है। प्रसंगवश काव्य में प्रकृति के कतिपय चित्र अवश्य आ गये हैं जिनमें कवि के प्रकृति चित्रण कौशल का सामान्य परिचय अवश्य मिल जाता है। काव्य में चित्रित प्रकृति का स्वरूप भीषण और शक्तिमय ही है। द्वितीय सर्ग में भीष्म पितामह युधिष्ठिर से झंझा (तूफान) के प्रलयकारी रूप का वर्णन निम्नांकित शब्दों में करते हैं

> और युधिष्ठिर से कहा—तूफान देखा है कभी ?
> किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ
> काल-सा वन में द्रुमों को तोड़ता झकझोरता
> और मूलोच्छेद कर भू पर सुलाता क्रोध से
> उन सहस्रों पादपों को जो कि क्षीणाधार हैं ?
> रुग्ण शाखाएँ द्रुमों की हरहरा कर टूटतीं
> टूट गिरते शाखा के साथ नीड़ विहग के
> अंग भर जाते वनानी के निहत तरु गुल्म से
> छिन्न फूलों के दलों से पक्षियों की देह से।[23]

पंचम सर्ग के प्रारम्भ में कवि ने प्रकृति के रौद्र रूप का एक और चित्र अंकित किया है

> घिर गये यहीं जो धवल रक्त अम्बर है
> उड़ रहा पवन में दाहक लाल रंग है
> कोलाहल-सा आ रहा काल गह्वर से
> ताण्डव का शोर मचाता भैरव सागर से।
> मर्मर नाद वन दहन दाह की झाँकी
> विस्फोट वह्नि गिरि का गर्जन भयकारी।[24]

---

[23] कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग पृ० २१

[24] वही पंचम सर्ग पृ० ७५

प्रकृति के संवेदनात्मक रूप का भी चित्रण कवि ने किया है। महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर पृथ्वी और आकाश दोनों विषण्ण हैं। दिशाएं में गम्भीर उदासी है

रण शान्त हुआ पर हाय अभी भी
धरा अवसन्न डरी हुई है
नर नारियों के मुख-देश पे नाश की
छाया सी एक पड़ी हुई है
धरती नभ दोनों विषण्ण उदासी
गंभीर दिशा में भरी हुई है
कुछ जान नहीं पड़ता धरणी यह
जीवित है कि मरी हुई है। [२५]

कुरुक्षेत्र में दिनकरजी ने प्रकृति के चित्रण की अपेक्षा उसकी शक्ति का वर्णन अधिक किया है। एक प्रकार से प्रकृति नियति का ही दूसरा रूप है। वह मानव कल्याण के सम्पूर्ण वैभव को एक कोष की भांति संयोजित किये हुए है। मानव सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में प्रकृति का सम्पूर्ण दान नि शुल्क रूप से सभी को प्राप्त थी। भूमि भी उसी प्रकार सभी को सुलभ थी जैसे आज जल और अनिल निर्विघ्न प्राप्त हैं। [२६] किन्तु मनुष्य प्रकृति पर अधिकार करता गया और आज स्थिति यह है कि वारि विद्युत वायु ताप सब पर उसका अधिकार है

प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन
है बंध नर के करों में वारि विद्युत भाप
हुक्म पर चढ़ता उतरता है पवन का ताप।
है नहीं बाकी कहीं व्यवधान
लांघ सकता नर सरित गिरि सिन्धु एक समान। [२७]

यहां तक कि आज पृथ्वी का प्रत्येक उपकरण मनुष्य की पहुंच में है

यह मनुज
जिसका गगन में जा रहा है यान
कांपते जिसके करों को देख कर परमाणु।

---

[२५] कुरुक्षेत्र पंचम सर्ग पृ ८४
[२६] वही सप्तम सर्ग पृ० ११८
[२७] वही षष्ठम सर्ग पृ० ९६

खोल कर अपना हृदय गिरि सिन्धु भू आकाश
है सुना जिसका चुके निज गुह्यतम इतिहास।

× × ×

एक लघु हस्तामलक यह भूमिमण्डल गोल
मानवों ने पढ़ लिये सब पृष्ठ जिसके खोल।[28]

सप्तम सर्ग में प्रकृति के आनन्द कोष का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि प्रकृति में वैभव का अनन्त कोष है। प्रकृतिसम्पदा का निरन्तर उपभोग करने पर भी वह कभी समाप्त नहीं हो सकता। पृथ्वी से आकाश तक जल प्रकाश और पवन न कभी घटते हैं न सिमटते हैं। पृथ्वी अन्न धन फल फूल और रत्न उगलने वाली है पर्वतों में हीरे अनेक रत्न भरे हुए हैं। समुद्र में मुक्ता विद्रुम और प्रवाल बिखरे हुए हैं। उनका उपभोक्ता केवल मानव है

यह धरती फल फूल अन्न धन रत्न उगलने वाली
यह पालिका मृगय जीव की अटवी सघन निराली।
तुंग शृंग ये शैल कि जिनमें हीरक रत्न भरे हैं
ये समुद्र जिनमें मुक्ता विद्रुम प्रवाल बिखरे हैं।[29]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में प्रकृति के सुन्दर संश्लिष्ट चित्र भी हैं किन्तु बहुत कम। इन चित्रों में दिनकरजी के प्रकृति चित्रण कौशल का परिचय तो मिलता ही है साथ ही प्रकृति के सम्बन्ध में उनकी विचारधारा का भी परिचय मिल जाता है।

रस-परिपाक—कुरुक्षेत्र में सुनिश्चित प्रबन्ध-योजना का अभाव होने के कारण यह कहना बहुत कठिन है कि काव्य में प्रधान रस कौन-सा है। वस्तुतः कुरुक्षेत्र में विभिन्न स्थिर भाव की योजना प्रत्येक काव्य खण्ड में होती गयी है। यही भाव अन्ततः रस बनते गये हैं। कुरुक्षेत्र में सभी रस तो नहीं हाँ वीर वीभत्स भयानक रौद्र करुण और शान्त रसों की व्यंजना अवश्य उल्लेखनीय है। सम्पूर्ण रसों की स्थिति पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो काव्य में वीर रस की एक अविच्छिन्न धारा दिखायी देती है जिसके आधार पर काव्य में वीर रस की प्रधानता एक सीमा तक स्वीकार की जा सकती है।

वीर रस—भीष्म पितामह और युधिष्ठिर के संवादों में अनेक स्थलों पर

---

[28] कुरुक्षेत्र पञ्चम सर्ग पृ० ९६

[29] वही सप्तम सर्ग पृ० ११२ १३

वीर रस की सुंदर व्यंजना हुई है। भीष्म पितामह का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है

> कायरों सी बात कर मुझको जला मत आज तक
> है रहा आदर्श मेरा वीरता बलिदान ही
> जाति मंदिर में जलाकर शूरता की आरती
> जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर।[3]

वीभत्स रस

> रुधिर सिक्त अचेत में नर के खण्डित निय शरीर
> मृतवत्सला विषण्ण पडी है धरा मौन गम्भीर।
> सन्नाटा हुई विपाक्त गंध से दम घटता सा जान
> दबा नासिका निकल भागता है द्रुत गति पवमान।[31]

अथवा

> जिस मस्तक को चंचु मार कर वायस रहा विदार
> उन्नति कोष जगत का था वह स्यात स्वप्न भण्डार।
> नाच नाच क्या रहा गृद्ध जो वक्ष किसी का चीर
> किसी सुकवि का स्यात हृदय था स्नेह सिक्त गम्भीर।[32]

करुण रस—द्वितीय सर्ग के आरम्भ में भीष्म पितामह के समक्ष युधिष्ठिर अपने बंधु बांधवों के निधन पर जो शोक भाव व्यक्त करते हैं उसमें करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है

> वीर गति पाकर सुयोधन चला गया है
> छोड़ मेरे सामने अशेष ध्वंस का प्रसार
> छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन
> व्योम में बजाता जय दुन्दुभि-सा बार-बार
> और यह मृतक शरीर जो बचा है शेष
> चुप चुप मानो पूछता है मुझ से पुकार
> विजय का एक उपहार मैं बचा हूँ बोलो
> जीत किसकी है और किसकी हुई है हार ?[33]

[3] कुरुक्षेत्र द्वितीय सर्ग पृ० २७
[31] वही पंचम सर्ग पृ० ८१ ८२
[32] वही पृ० ८२
[33] वही द्वितीय सर्ग पृ० १७

शान्त रस—काव्य के अन्तिम अंश में युधिष्ठिर के मन में जिस निर्वेद भाव की जागृति होती है अर्थात् सांसारिक वासनाओं के प्रति जो विरक्ति का भाव उत्पन्न होता है उसमें शान्त रस की सुन्दर अभिव्यंजना है

यह होगा महारण राग के साथ युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा
नर संस्कृति की रण छिन्न लता पर शांति सुधा फल दिव्य फलेगा।
कुरुक्षेत्र की धूल नहीं इति पन्थ की मानव ऊपर और चलेगा
मनु का यह पुत्र निराश नहीं, नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।[34]

वात्सल्य रस—काव्य के चतुर्थ सर्ग में भीष्म पितामह जहाँ यह कहते हैं कि युद्ध भूमि में जब अर्जुन के बाण से गिर गये थे तब पुत्रवत स्नेह के अधीन थे। उनके इस कथन में वात्सल्य भाव की सुन्दर झाँकी दिखायी देती है

प्रेम अधीर पुकार उठा भर शरीर में मन से—
तो अपना सर्वस्व पार्थ ! या मुझको मार गिराओ
अब है विरह असह्य मुझे तुम स्नेह धाम पहुँचाओ।[35]

शृंगार अद्भुत और हास्य नामक रसों का कुरुक्षेत्र में अभाव है। कुरुक्षेत्र में किसी एक रस के पूर्ण परिपाक के अभाव में भी काव्य में स्थान-स्थान पर इतने अधिक रसमय स्थल हैं कि प्रस्तुत काव्य विचार प्रधान होते हुए भी पाठक को भाव विभोर किए रहता है। कुरुक्षेत्र की रस योजना में वीर और शान्त रसों की ही प्रमुखता है। महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से वीर शान्त या शृंगार में किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए।

भाषा शैली—कुरुक्षेत्र में साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा के स्वरूप निर्माण में सुन्दर शब्द चयन लोकोक्तियाँ एवं मुहावरों के प्रयोग चित्रात्मकता लाक्षणिकता प्रसंगानुकूल कोमल एवं कठोर शब्दावली आदि का विशेष योगदान रहा है।

कुरुक्षेत्र की भाषा में जहाँ एक ओर तत्सम शान्ति यज्ञ त्याग नरसिंह ऋचा कुसुम आदि संस्कृत शब्दों का प्रयोग है तो दूसरी ओर निशां गनगनी मवाजब लाचार कुफार निशान तसवीर शान मंजिल आदि उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इनमें से कतिपय का व्यवहार हिन्दी में प्रचलित है और उनका प्रयोग भाषा के स्वरूप को सशक्त बनाने के लिए ही किया गया है।

शब्द चयन की सुन्दर और उपयुक्त योजना द्वारा कवि ने भाषा को सुगठित एवं शक्तिशाली बनाया है। कुरुक्षेत्र में कोमल और कठोर दोनों

[34] कुरुक्षेत्र सप्तम सर्ग पृ० ९४
[35] वही चतुर्थ सर्ग पृ० ६३

प्रकार के भावों की व्यंजना हुई है। तदनुसार ही भाषा का प्रयोग हुआ है। कवि को जहां जिस प्रकार के भाव व्यक्त करने हैं उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित दो स्थल द्रष्टव्य हैं

या हो नरों में भी विकारों की शिखाएं आग-सी
एक से मिल एक जलती हैं प्रचण्डावेग से
तप्त होता क्षुद्र अन्तर्व्योम पहले व्यक्ति का
और तब उठता धधक समुदाय का आकाश भी
क्षोभ से दाहक घृणा से गरल ईर्ष्या द्वेष से।[३६]

अथवा

वहां न कामद वायु कभी मन को था कभी न लाता
पत्तों की झुरमुट में छिपकर विहग न कोई गाता।[३७]

उपर्युक्त उद्धरणों में भाषा के दोनों रूप द्रष्टव्य हैं।

आज कुरुक्षेत्र की भाषा का प्रमुख गुण है। सम्पूर्ण काव्य में ओज की स्वाभाविक-सी प्रवाहिनी दिखायी पड़ती है। यथा प्रसंग भाषा प्रसाद सहज और प्रसाद गुण-सम्पन्न भी है। भाषा में चित्रोपमता भी है जैसे

नरों की नाक पर चढ़ हुए गजराज जैसे
यहां टूटे गन्ध से स्तम्भ पन्नगराज-जैसे
मरण पर वीर जीवन का अगम बल भार डाले
दबाये काल को सायास मन को सम्भाले।[३८]

कुरुक्षेत्र के कवि ने शब्दों की आवृत्ति द्वारा भी भाषा की शक्ति को बढ़ाया है जैसे

नर धर्म है अनय दलन अगारों पर चलना
नर धर्म है शान्ति अरि पर धर कर चरण मचलना।
नर धर्म कहते हैं छीना तान तारे स्नान को
नर धर्म कहते हम कर न्योछावर प्राण को।[३९]

अथवा

एक चिन्ता कथा के मृतों के स्मृति-दंशन की दाय
एक गुप्त कथा के जीवितों के मन की मनाय।

---

३६ कुरुक्षेत्र द्वितीय सर्ग पृ २२
३७ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ६७
३८ वही पृ० ४६
३९ वही पृ ६०

एक पुण्य कंकाल युधिष्ठिर की जय की पहचान
एक पुण्य कंकाल महाभारत का अनुपम दान।[४०]

काव्य में कतिपय स्थलों पर भाव शक्ति का उद्रेक करने वाले प्रसंग-गर्भत्व के भी अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं जैसे

भीष्म हों अथवा युधिष्ठिर या कि हों भगवान्
बुद्ध हों कि अशोक गांधी हों कि ईसु महान।[४१]

लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग ने भी कुरुक्षेत्र की भाषा में सजीवता उत्पन्न की गयी है जैसे

१ 'शान अपने पास अन्तिम दाँव में।
२ ध्वंस अवशेष पर सिर धुनता है कौन।
३ गया! सुबुद्धि पितामह हाय! मारा गया।
४ आ गया जो द्वार पर ललकारता।

कुरुक्षेत्र में अनेक शैलियों का प्रयोग हुआ है जैसे—प्रश्न शैली, दृष्टान्त शैली, तर्क शैली, मनोवैज्ञानिक शैली, तुलनात्मक शैली, पुनरावृत्ति शैली, वर्णनात्मक शैली, नाटकीय शैली आदि। इनमें से कतिपय के उदाहरण इस प्रकार हैं

प्रश्न शैली—इस शैली का काव्य में सबसे अधिक प्रयोग हुआ है

किस शान्ति का नर नर में यह विनाश होयगा
भारत का दुर्भाग्य खून पर खड़ा हुआ आयेगा।[४२]

अथवा

जन्मा है वह जहाँ आज जिस पर उसका शासन है
क्या है यह घर वही और यह उसी प्यार का धन है।[४३]

दृष्टान्त शैली

हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।[४४]

तर्क शैली—सप्तम सर्ग में भीष्म पितामह ने आत्मवाद का खण्डन करते

---

४० कुरुक्षेत्र पंचम सर्ग पृ० ८२
४१ वही, सप्तम सर्ग पृ० ६५
४२ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ४४
४३ वही, सप्तम सर्ग पृ० ११५
४४ वही तृतीय सर्ग पृ० ३५

हुए अनक तक प्रस्तुत किय है। साथ ही कमवादी और मनुष्य क परिश्रम क समथन म जहा अनक प्रमाण दिय है वहाँ इस शली का प्रयाग हुआ है जस

पूछा किसी भाग्यवादी स यदि विधि-अक प्रबल है
पद पर क्या दती न स्वय वसुधा निज रतन उगल है ?

× × ×

नर-समाज का भाग्य एक है वह श्रम वह भुज बल है
जिसके सम्मुख झुकी हुई पृथ्वी विनीत नभ-तल है। [६४]

मनोवज्ञानिक शली—कवि न जिन स्थला पर भीष्म पितामह और धमराज युधिष्ठिर क मानसिक सघष को अभिव्यक्त किया है वहा इस शली का प्रयाग हुआ है। भीष्म का कथन है कि

प्रम स्नह दाना प्यार थ बल्कि वह्नि निणय था
अत एक का दश दूसर को द दिया हृदय था।

× × ×

ममता था मिट गया हृदय पाकर यह न्याय विभाजन
जात न था ह कहा कम म कठिन स्नह का बधन। [६५]

युधिष्ठिर का कथन

यह धार मसान पितामह दखिए प्रत गमृद्धि क जा रह ह
जय माता पिता कुरुराज का घर प्रशस्ति क गीत सुना रह वे
सुरलाक क कल्प गात को इगित स मुसका दिखला रह व
सुनिए यह व्यग्य निनाद हसी का ठठा गुलरी हा चिता रह व। [६७]

तुलनात्मक शली—तृतीय सग म वास्तविक और बनावटी शान्ति का निरूपण करत समय इस शली का प्रयाग किया गया है।

पनरावत्ति शली—कहा-कहा एक वाक्यांश का अनक बार आवत्ति करक इस शली का कवि न परिचय दिया है। [६८]

नाटकीय एव वणनात्मक शलिया का प्रयाग काव्य म बहुत कम हुआ है। नाटकीय शली म जस—पचम सग की अन्तिम पक्तियों म धमराज युधिष्ठिर कहत ह

[६४] कुरुक्षत्र सप्तम सग पृ० ११५ १६
[६५] वही चतुथ सग पृ० ६५ ६६
[६७] वही पचम सग पृ ८५
[६८] वही पृ ८

मनु का यह पुत्र निराश नहीं, नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा ।[४९]

परन्तु सर्ग के प्रारम्भ में कवि उन्हीं शब्दों की आवृत्ति करते हुए प्रश्न करता है

> धर्म का दीपक, दया का दीपक
> कब जलेगा, कब जलेगा विश्व में भगवान ।[५०]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में विभिन्न शैलियों के प्रयोग द्वारा काव्य के उत्कर्ष में तो वृद्धि हुई ही है, साथ ही शैलियों की प्रखरता एवं सम्पन्नता को देखते हुए यह भी ज्ञात होता है कि कुरुक्षेत्र का कवि शैलियों का धनी है ।[५१]

अलंकार-योजना—कुरुक्षेत्र में अर्थालंकार एवं शब्दालंकार दोनों का ही प्रयोग हुआ है । विशेष रूप से अर्थालंकारों की योजना दिनकर के काव्य-कौशल का परिचायक है । अलंकारों के प्रयोग से भाषा के रूप-सौन्दर्य में तो अभिवृद्धि हुई ही है, साथ ही वे भाव-व्यंजना में भी सहायक हुए हैं । कुछ प्रमुख अलंकारों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं

उपमा

> शरों की नोक पर लेटे हुए गजराज जैसे
> थके, टूटे गरुड़-से, स्रस्त पन्नगराज जैसे ।[५२]

रूपक

> नर नारियों के मुख-चन्द्र पे नाश की
> छाया सी एक पड़ी हुई है ।[५३]

अथवा

> नर संस्कृति की रण-छिन्न लता पर
> शान्ति सुधा फल दिव्य फलेगा ।[५४]

उत्प्रेक्षा

> बाहर से भाग कक्ष में जो छिपता हूँ कभी
> तो भी सुनता हूँ अट्टहास क्रूर काल का
> और सोते-जागते मैं चौंक उठता हूँ मानो
> शोणित पुकारता हो अर्जुन के लाल का ।[५५]

---

[४९] कुरुक्षेत्र, पृ० ८८
[५०] वही पृ० ८९
[५१] कुरुक्षेत्र मीमांसा पृ० ०
[५२] कुरुक्षेत्र, पृ० ६६
[५३] वही पृ० ८४
[५४] वही पृ० ८४
[५५] वही पृ० १६

सन्देह

ऋत्विक पढ़ते हैं वेद कि ऋचा दहन की ?
प्रशमित करते या ज्वलित वह्नि जीवन की ?
है कपिश धूम प्रतिमान जया के यश का ?
या धुधुआता है क्रोध महीप विवश का ? [४६]

अतिशयोक्ति

बात पूछने की विवेक से जभी वीरता जाती
पा जाती अपमान पतित हो अपना तेज गवाती। [४७]

अपह्नुति

भरी सभा में लाज द्रौपदी की न गया थी लूटी
वह तो यहीं दरार आग की निर्भय होकर फूटी। [४८]

असंगति

ज्यों-ज्यों साड़ी विवश द्रौपदी की खिंचती जाती थी
त्यों-त्यों वह आवत दुर्गति यह नग्न हुई जाती थी। [४९]

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त कुरुक्षेत्र में और भी बहुत से अलंकारों (जैसे—विरोधाभास दृष्टान्त विशेषोक्ति सहोक्ति एवं उल्लेख आदि) का सुन्दर प्रयोग हुआ है। अर्थालंकारों में कहीं-कहीं अनुप्रास और वक्रोक्ति का प्रयोग अवश्य मिलता है किन्तु बहुत कम। मानवीयकरण जैसे नवीन अलंकारों के प्रयोग भी काव्य में मिल जाते हैं। पंचम सर्ग में विजय का मानवीयकरण करते हुए कवि ने इस अलंकार का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है

अयि विजय ! रुधिर से क्लिन्न वसन है तेरा ?
यम-दंष्ट्रा से क्या भिन्न दसन है तेरा ?
लपटों का चामर झलक रहा अधरों में
है धुआं ध्वंस का भरा कृष्ण कुन्तल में। [५०]

प्रतीक विधान—दिनकरजी ने कुरुक्षेत्र में अनेक सुंदर प्रतीकों का प्रयोग किया है जो कोमल और कठोर भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णत सहायक है। जैसे

---

[४६] कुरुक्षेत्र पृ ७६
[४७] वही पृ० ६१
[४८] वही चतुर्थ सर्ग पृ ५६
[४९] वही पृ ५७
[५०] वही पंचम सर्ग पृ० ७८

पर हाय, यहाँ भी धधक रहा अम्बर है
उड़ रही पवन में दाहक लाल लहर है
कोलाहल-सा आ रहा काल गह्वर से
वाडव का गर्जन उठा क्षुब्ध सागर में।[61]

यहाँ काल गह्वर, मृत्यु और वाडव भयंकर अमंगल के प्रतीक हैं।

कोमल प्रतीकों की भी काव्य में योजना हुई है। जैसे—छठे सर्ग में निम्नांकित काव्यांश द्रष्टव्य है

चाहिए उनको न केवल ज्ञान, देवता हैं माँगते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान
मोम-सी कोई मुलायम चीज, ताप पाकर जो उठे मन में पसीज-पसीज
प्राण के झुलसे विपिन में फूल कुछ सुकुमार
ज्ञान के मरु में सुकोमल भावना की धार
चाँदनी की रागिनी, कुछ भोर की मुसकान
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान
रंग में घुलता हुआ खिलती कली का राज
पत्तियों पर गूँजती कुछ ओस की आवाज
आँसुओं में दर्द की गलती हुई तसवीर
फूल की, रस में बसी-भीगी हुई जंजीर।[62]

यहाँ चाँदनी की रागिनी, भोर की मुसकान आदि कोमल भावनाओं के सुन्दर प्रतीक हैं।

छन्द विधान—कुरुक्षेत्र में विभिन्न प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। अधिकतर मात्रिक छन्दों को ही दिनकरजी ने प्रस्तुत रचना में प्रयुक्त किया है, जैसे—सार, रूपमाला, आनन्दवर्द्धक, राधिका, सरसी, वीर आदि। इनके अतिरिक्त सवैया, दुर्मिल, सुन्दरी, रूप घनाक्षरी, कवित्त एवं दोहा आदि छन्दों का भी काव्य में प्रयोग हुआ है।

कुरुक्षेत्र में तृतीय, चतुर्थ और सप्तम सर्गों में सार नामक छन्द का प्रयोग किया गया है, जैसे

पापी कौन? मनुज से उसका न्याय चुराने वाला
या कि न्याय खोजते विघ्न का शीश उड़ाने वाला।[63]

[61] कुरुक्षेत्र, प्रथम सर्ग पृ० ३८
[62] वही, षष्ठ सर्ग पृ० ९७
[63] वही, तृतीय सर्ग पृ० ४५

रूपमाला छन्द का प्रयोग कवि ने षष्ठ सर्ग में किया है जैसे

व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय
पर न यह परिचय मनुज का यह न उसका श्रेय। ६४

कवित्त और सवैया का प्रयोग द्वितीय तृतीय पंचम एवं सप्तम सर्गों में हुआ है। सम्पूर्ण काव्य में एक गीत का प्रयोग सप्तम सर्ग में हुआ है।

दिनकरजी ने उन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है जो काव्य के प्रवाह एवं गति को बनाये रखने में सक्षम है। वर्णिक वृत्तों का प्रयोग भी काव्य भाषा के प्रवाह में साधक हुआ है। कहीं-कहीं कवि ने मुक्तक छन्द का भी प्रयोग किया है जैसे काव्य के प्रारम्भ में ही

वह कौन रोता है वहाँ—
इतिहास के अध्याय पर
जिसमें लिखा है नौजवानों के लहू का मोल है
प्रत्यय किसी बूढ़े कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है। ६५

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में यद्यपि मात्राओं या तुकान्तता का कोई नियम नहीं है किन्तु लय के कारण ही छन्द की सृष्टि हुई है। कुरुक्षेत्र के कवि ने प्रसंग और भाव के अनुरूप विविध छन्दों का प्रयोग किया है जो काव्य के छन्द विधान की सफलता का परिचायक है।

नामकरण— कुरुक्षेत्र का उसी प्रकार नामकरण स्थान की दृष्टि से हुआ है जिस प्रकार साकेत आर्यावर्त एवं हल्दीघाटी आदि महाकाव्यों के नाम स्थानों से सम्बन्धित हैं। कुरुक्षेत्र कुरु प्रदेश को कहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कुरुक्षेत्र वह स्थान है जहाँ कौरवों और पाण्डवों का विश्वविख्यात युद्ध हुआ था। प्रस्तुत काव्य का मूल प्रतिपाद्य यह कुरुक्षेत्र का युद्ध ही है। काव्य में जिन विचारधाराओं एवं तथ्यों की व्यंजना हुई है वे सब भी कुरुक्षेत्र के युद्ध को ही आधार बनाकर। इस दृष्टि से काव्य का नामकरण उपयुक्त ही है। महाराज भीष्म पितामह भी युद्धक्षेत्र में ही शर शय्या पर पड़े हुए हैं और वहीं धर्मराज युधिष्ठिर उनसे वार्तालाप करते हैं। इस दृष्टि से काव्य का सम्पूर्ण विधान कुरुक्षेत्र की भूमि पर ही होता है। अस्तु काव्य के प्रतिपाद्य एवं विधान दोनों ही दृष्टियों से यह नाम उपयुक्त है।

६४ कुरुक्षेत्र षष्ठम सर्ग पृ १०१
६५ वही प्रथम सर्ग पृ ६

सर्ग विधान—सम्पूर्ण काव्य सात सर्गों में विभाजित है। सर्गों का नामकरण न करके केवल उनकी संख्या ही दी गयी है। छठे सर्ग के अतिरिक्त शेष सभी सर्गों की वस्तु योजना प्रासंगिक दृष्टि से पूर्वापर नियोजित एवं सुसम्बद्ध है। छठे सर्ग का प्रतिपाद्य और विषय कुछ पृथक्-सा प्रतीत होता है। किन्तु वैचारिक दृष्टि से इस सर्ग को अन्य सर्गों से सम्बद्ध स्पष्टतः नियोजित किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में 'कुरुक्षेत्र' के रचना शिल्प पर यदि विचार किया जाय तो उसे प्रबन्ध कविता न कहकर सफल प्रबन्धकाव्य कहना पड़ेगा जिसमें वैचारिक एवं भावात्मक सौन्दर्य की इतनी समृद्ध और उदात्त सृष्टि हुई है कि उसे महाकाव्य मानने को बाध्य होना पड़ता है। 'कुरुक्षेत्र' का काव्य-सौन्दर्य चमत्कार या पाण्डित्य प्रदर्शन में नहीं वरन् गम्भीर भावों की सहज अभिव्यक्ति में है। वस्तुतः भाव विचार और कला का सन्तुलित सामंजस्य 'कुरुक्षेत्र' की सफलता का एकमात्र रहस्य है।[16] 'कुरुक्षेत्र' के सम्पूर्ण काव्य-उपकरणों में चाहे वे छन्द हों अलंकार हों भाषा या शैली से सम्बन्धित हों सभी में सरलता है। यह सरलता 'कुरुक्षेत्र' की लोकप्रियता और उत्कृष्टता दोनों का कारण बनी है। शिल्प की सरलता का कला की दृष्टि से भी कम महत्त्व नहीं है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में — 'कुरुक्षेत्र' में आकर दिनकर की रचना में एक स्तुत्य प्रौढ़ता आ गयी है। उन्होंने यहाँ विस्तृत काव्य सामग्री को बिना आयास के प्रयोग करते हुए विचार और भावना चित्र उपस्थित किये हैं। उसमें कहीं भी काट छाँट अथवा बनाव शृंगार का प्रयत्न नहीं। और इसका कारण उनकी सघन अनुभूति ही है जो अनायास ही वाग्योग में फूट उठती है।[17]

जीवन दर्शन

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' कृत 'कुरुक्षेत्र' काव्य के सभी समीक्षकों ने एकमत से जिस तथ्य को उद्घाटित करके इस कृति की महत्ता को स्वीकार किया है वह है—जीवन-दर्शन और यह सत्य भी है कि 'कुरुक्षेत्र' काव्यात्मक उपादानों और कला सम्बन्धी प्रतिमानों की दृष्टि से उतनी श्रेष्ठ रचना नहीं जितनी जीवन-दर्शन के आलोक में दीप्तिमान विचार काव्यकृति। 'कुरुक्षेत्र' में प्रतिपादित जीवन-दर्शन को समीक्षकों ने प्रगतिवादी, गांधीवादी, समाजवादी

---

[16] डा० शिवबालक : दिनकर पृ० २१०

[17] डा० नगेन्द्र : विचार और विश्लेषण पृ० १२८

मानवतावादी प्रवत्तिमूलक व्यवहारवादी आदि विभिन्न अभिधानों द्वारा सम्बोधित किया है। किन्तु वास्तविकता यह है कि कुरुक्षेत्र के माध्यम से दिनकरजी ने मानवतावादी जीवनदर्शन की मान्यताओं को ही युद्धवादी विचार दर्शन की पृष्ठभूमि पर प्रस्थापित करने का सफल प्रयास किया है। इस प्रस्थापना के मूल में कवि की उदात्त जीवन दृष्टि मानवतावादी जीवन मूल्यों के प्रति अनन्य निष्ठा व्यापक मानवीय विश्वास आशावादी कर्ममय जीवन की आस्था निरंतर विद्यमान रही है। कुरुक्षेत्र के निवेदन में कवि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और कलिंग विजय नामक कविता लिखते लिखते मुझे ऐसा लगा मानो युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो। युद्ध निन्दित और क्रूर कर्म है किन्तु इसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर जो अनीतियों के जाल बिछाकर प्रतिकार को आमन्त्रण देता है? या उस पर जो जाल को छिन्न भिन्न कर देने के लिए आतुर है? वस्तुतः इन्हीं प्रश्न चिह्नों के सन्दर्भ में कुरुक्षेत्र की जीवन दर्शन विषयक विचारधाराओं और मान्यताओं का विकास हुआ है।

युद्धवादी विचार दर्शन

कुरुक्षेत्र का प्रकाशन सन १९४६ में हुआ। स्पष्ट है कि कुरुक्षेत्र की रचना द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध में जन धन का भयंकर विनाश महाभारत युद्ध की विभीषिका की अनुभूति पाठक को सहज ही करा देता है। अस्तु काव्यारम्भ में कवि विस्तार से होने वाले युद्ध के मूल कारणों का सन्धान करता है। वह मानव की स्वार्थलोलुप वृत्ति द्रोहाग्नि की प्रज्वलता एवं प्रतिशोध की भावनाओं को युद्ध का प्रमुख कारण मानता है। व्यक्तिगत स्वार्थ भाव से प्रेरित होकर ही मनुष्य में ईर्ष्या द्वेष और प्रतिशोध की वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो अन्ततः युद्ध की जननी बन जाती हैं। यद्यपि मनुष्य युद्ध नहीं चाहता किन्तु व्यक्ति का स्वार्थ टकरा कर संघर्ष की परिस्थिति उत्पन्न कर देता है। युद्ध से पूर्व व्यक्ति इस तथ्य पर विचार भी करता है कि क्या युद्ध ही एकमात्र उपचार है? किन्तु विवश होकर वह लड़ता है और युद्ध की परिसमाप्ति पर विनाश की विभीषिका देखकर पश्चात्ताप करता है। कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध की परिसमाप्ति पर धर्मराज युधिष्ठिर की ऐसी प्रकार के मानसिक सन्ताप में ग्रस्त चित्रित किया गया है। वे भीष्म पितामह के समक्ष जाकर कहते हैं कि महाभारत का भयंकर परिणाम मैं जानता तो भिक्षा के साथ अन्न माँगकर मर जाता किन्तु रक्तपात

नहीं करता।[५८] युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त नायक धर्मराज यह निर्णय करने में असमर्थ हैं कि ध्वंसजन्य सुख और शान्तिजन्य दुःख में कौन नीति विरुद्ध है? वे कहते हैं कि

'जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य
या महान पाप यहाँ फूटा बन युद्ध है।'[५९]

प्रत्युत्तर में भीष्म पितामह कहते हैं कि युद्ध को महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों के लोभ, शोषण, घृणा, गर्व, ईर्ष्या-द्वेष के गर्भ से फूटता है। कभी-कभी राजनीतिक [illegible] और देशप्रेम भी युद्ध के कारण बन जाते हैं।[६०] वे युद्ध की एक अनिवार्यता मानते हैं

'युद्ध को तुम निंद्य कहते हो, मगर जब तलक हैं उठ रही चिनगारियाँ
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की, युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।'[६१]

कवि युद्ध को पाप-पुण्य से परे अस्तित्व रक्षण के लिए आवश्यक धर्म मानता है। तभी तो भीष्म पितामह कहते हैं कि

'है मृषा तेरे हृदय की जल्पना, युद्ध करना पुण्य या दुष्पाप है,
क्योंकि कोई कर्म है ऐसा नहीं, जो स्वयं ही पुण्य हो या पाप हो।

× × × ×

जानता हूँ किन्तु जीने के लिए चाहिए अंगार जैसी वीरता,
पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है, जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर।'[६२]

इसी सन्दर्भ में प्रश्न उठता है कि युद्ध के लिए उत्तरदायी कौन है?

'युद्ध को बुलाता है अनीति-ध्वजधारी या कि
वह जो अनीति-भाल पै दे पाँव चलता?

× × ×

कौन है बुलाता युद्ध? जाल जो बनाता?
या जो जाल तोड़ने को क्रुद्ध काल-सा निकलता?'[६३]

---

[५८] कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० १७-१८ ([illegible] संस्करण २००२)

[५९] वही, पृ० १६

[६०] वही, पृ० २

[६१] वही, पृ० ५

[६२] वही, पृ० ४-५

[६३] वही, तृतीय सर्ग, पृ० ४०

कवि का उत्तर है

घराता न्याय जो रण को बुलाता भी वही ॥ [७४]

युद्ध की समस्या का निदान कैसे हो ? अन्तत यह प्रश्न शेष रहता है। इस सम्बन्ध में काव्य का अंतिम सर्ग द्रष्टव्य है जिसमें मानव समाज की सम्पूर्ण समस्याओं (जिसमें युद्ध की समस्या भी सम्मिलित है) का कारण जीवन का वैषम्य कहा गया है। जब तक मनुष्य को न्यायोचित सुख सुलभ नहीं तब तक संघर्ष समाप्त नहीं हो सकता ऐसी कवि की मान्यता है।[७५] अस्तु जन समाज में युद्ध का निषेध शांति की स्थापना से हो सकता है और शान्ति स्थापित करने के लिए उपकरण साधनों और सुख सुविधाओं का समान विभाजन आवश्यक है किन्तु स्वार्थलोलुप वर्ग इन साधनों के सम विभाजन का बाधक है। समाज में शोषक और शोषित दो वर्ग हैं। इनमें शोषित वर्ग जब तक शक्तिशाली बनकर शोषक से संघर्षरत नहीं होता तब तक स्थायी शांति समाज में स्थापित नहीं हो सकती और युद्ध होते रहेंगे। कवि का मत है

रण रोकना है तो उखाड़ विषदंत फेंको
वृक व्याघ्र भीति से मही को मुक्त कर दो
अथवा अजा के छागलों को भी बनाओ व्याघ्र
दांतों में कराल कालकूट विष भर दो। [७६]

दिनकरजी का यह दृष्टिकोण निश्चय ही साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित है किन्तु उपर्युक्त उल्लिखित पंक्तियों से पूर्व के पद्य ही में वे मानवतावादी जीवन दृष्टि को अपनाते हुए जो कुछ भीष्म के मुख से धर्मराज को कहलाते हैं वही विचार वस्तुत मूल्यवान निदान प्रतीत होता है

दलित मनुष्य में मनुष्यता के भाव भरो
दर्प की दुरग्नि को करो दूर बलवान में
हिम शान्त भावना में आग अनुभूति की हो
छीन लो दुरन्त उष्णता अभिमान से। [७७]

मानवतावादी जीवन-दर्शन

युद्धवादी विचार-दर्शन की प्रस्थापना ही काव्य का चरम लक्ष्य नहीं।

---

[७४] कुरुक्षेत्र चतुर्थ सर्ग पृ ६३
[७५] वही सप्तम सर्ग पृ १११
[७६] वही पृ० ११०
[७७] वही पृ० १०६

यह तो आधारभूमि है जिस पर कुरुक्षेत्र के कवि की मूल मान्यताएं आधृत हैं। पंचम सर्ग के अन्त में स्पष्ट कहा गया है कि कुरुक्षेत्र का पूर्ति जहां इति पर्व की मानव ऊपर और चलेगा अर्थात् कुरुक्षेत्र का युद्ध मानवता का अन्त नहीं। मनुष्यता के विकास का मार्ग युद्ध के बाद भी अक्षुण्ण रह गया है। कुरुक्षेत्र में मनुष्य मरे हैं मनुष्यता नहीं मरी। इसी मनुष्यता का नव विकास मानव समाज में रहकर करना होगा।[78] मानवता के नव विकास के लिए कवि ने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है उसका निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है :

1. नवीन सामाजिक संरचना
2. आध्यात्मिक निष्ठाओं में परिष्कार
3. मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा।

नवीन सामाजिक संरचना का स्वरूप

कुरुक्षेत्र में स्थान-स्थान पर मानवतावादी जीवन मूल्यों पर आधारित नवीन समाज रचना के महत्त्व का आग्रह कवि ने व्यक्त किया है। सप्तम सर्ग में आध्यात्मयुक्त दृष्टि से मानवता के पुनर्निर्माण और सामाजिक जीवन के समृद्ध विकास का विचार सरणी को प्रस्तुत किया गया है। इस सर्ग में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को वैराग्य भाव त्यागकर जीवन-संग्राम में प्रवृत्त होने का सन्देश देते हैं। मानव-समाज के विकास क्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है कि प्रारम्भ में सब मनुष्य समान और सुखी थे। वे परस्पर विश्वासी और समतावान सहवासी थे। जन-समाज कुटुम्ब के समान था। सभी धर्म बन्धन से बंधे थे। जन जन के मन पर धर्म नीति का अनुशासन था राजा का शासन नहीं। व्यक्ति का सुख समाज के सुख से भिन्न नहीं था। मानव समाज का जीवन सरल और विकासोन्मुख था।[79] कालान्तर में नाना वृत्ति उत्पन्न हुई जिसने मनुष्य के मन में वैयक्तिक संग्रह के भाव को जन्म दिया। फलस्वरूप धारा कुत्सित शोषण प्रकार लोभ-लालसा शुरू हुई। समाज की शान्ति भंग हो गयी। तभी दण्डनीति धारी विजयी शासक आया जिसने संग्रह के बल पर समाज में शान्ति और व्यवस्था तो स्थापित की किन्तु राजतन्त्र शासन प्रणाली द्वारा उसने प्रजा के सम्पूर्ण अधिकारों का भी अपहरण कर लिया। मनुष्य का व्यवहार हो गया बुद्धि से, राजराज

---

[78] नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० १४६

[79] कुरुक्षेत्र सप्तम सर्ग पृ० ११८

शोषण का अस्त्र और अकर्मण्य बनाने वाला विचार कहकर तिरस्कार किया गया है

भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का।
जिससे रखता दवा एक जन भाग दूसरे जन का॥ [८८]
अथवा
ब्रह्मा का अभिलेख पढा करते निरुद्यमी प्राणी।
धोते वीर कुअंक भाल का बहा भ्रुवा से पानी॥ [८९]

भाग्यवाद की भाति ही कवि ने मोक्षवादी विचारणा का भी उपहास किया है। मोक्षवादी चिन्तक जगत को अनित्य और जीवन को नश्वर कहकर मनुष्य को सामाजिक दायित्व के प्रति उदासीन बनाते है। कुरुक्षेत्र के रचयिता ने संसार से वैराग्य और निवृत्ति अर्थात संन्यास की भावना की घोर भर्त्सना की है

धर्मराज संन्यास खोजना कायरता है मन की। [९०]
जनाकीर्ण जग से व्याकुल हो निकल भागना वन में
धर्मराज है घोर पराजय नर की जीवन रण में
यह निवृत्ति है ग्लानि पलायन का यह कुत्सित क्रम है
निःश्रेयस यह श्रमित पराजित विजित बुद्धि का भ्रम है। [९१]

इसके स्थान पर कवि ने प्रवृत्तिमार्गी कर्मवाद की स्थापना की है। निवृत्तिमार्गी भावना व्यक्ति की निज की मुक्ति और सुख का उपाय है। ससार से पलायन करने वाला व्यक्ति समष्टि हित नहीं कर सकता। जीवन एक समुद्र है। इसकी सतह पर खडा जलाभिलाषी खारा जल पाता है किन्तु गोता लगाकर मन्थन करने वाला अमृत तत्त्व का पान और रत्नो की प्राप्ति करता है। जीवन-सागर के जल को खारा कहकर छोड़ने वाले पलायनवादी है। वे वृक्ष पर बिना चढ़े ही सुधा फल पाना चाहते हैं। अस्तु संसार का त्याग वे करते हैं जो अकर्मण्य और आत्मभीरु हैं। सच्चा आत्मजयी पुरुषार्थी और कर्मयोगी तो ससार मे रहकर दूसरो के दुःख दूर करके ही आत्मलाभ और कल्याण करता है। इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट दिखायी देता है कि कवि गीता के निष्काम

---

८८ कुरुक्षेत्र सप्तम सर्ग पृ० ११५
८९ वही पृ ११४
९० वही पृ० १ ७
९१ वही पृ० १ २

कर्मयोग की विचारधारा से प्रभावित है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के 'गीतारहस्य' में प्रतिपादित विचारों का 'कुरुक्षेत्र' के रचयिता पर प्रभूत प्रभाव पड़ा है। कर्मवाद का स्वर 'गीता' और 'कुरुक्षेत्र' में कितना समान है यह निम्नांकित उद्धरणों से द्रष्टव्य है

गीता

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ गीता अ० ३।५
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ वही अ० ३।८

कुरुक्षेत्र

कर्म भूमि है निखिल महीतल, जब तक नर की काया
तब तक है जीवन के अणु अणु में कर्तव्य समाया।
क्रिया धर्म को छोड़ मनुज कैसे निज सुख पायेगा ?
कर्म रहेगा साथ, भाग वह जहाँ कहीं जायेगा।[६२]

इस प्रकार कवि की आध्यात्मिक निष्ठाओं का जहाँ तक प्रश्न है, वे भौतिकवादी जीवन मूल्यों से सम्पृक्त हैं। वह सामाजिक जीवन से परे किसी अलौकिक आध्यात्मिक जगत की कल्पना और मोक्ष-साधना को महत्त्वपूर्ण और श्रेयस्कर नहीं मानता है। किन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि वह जड़वादी भौतिकतापूर्ण जीवन-पद्धति (मनोरंजनविलासिता) का भी अन्धानुकरण करता नहीं है जिसके अनुसार खाओ पीओ और मौज करो ही जीवन का सर्वस्व है। वह देह पर मन का आधिपत्य भी चाहता है। लोक-कल्याण के लिए वैयक्तिक स्वार्थ के परित्याग और पुरुषार्थपूर्ण संयमित जीवन की महत्ता को भी इसने स्वीकारा है। धर्मराज युधिष्ठिर को संयम और त्यागमय जीवन जीने का उपदेश ही पितामह ने निम्नांकित शब्दों में किया है

त्यागी तुम इस भाँति मुक्ति का राग न जगने पाये,
मिट्टी में तुम नहीं, वही तुम में विलीन हो जाये।
और विरागी साधक का यह गाढ़ जतन मन का,
करे विलीन देह को मन में, नहीं देह में मन का।
मन का होगा आधिपत्य जिस दिन मनुष्य के तन पर
त्याग रहेगा अधिष्ठित जिस दिन सांसारिक जीवन पर

---

[६२] कुरुक्षेत्र सप्तम सर्ग, पृ० १३५

उस न्दिन होगा सुप्रभात नर के सौभाग्य उन्य का
उस न्दिन होगा शख ध्वनिन मानव की महा विजय का।[83]

मानवतावादी जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा

यह प्रारम्भ म हा कहा जा चका है कि कुरुक्षत्र म विभिन्न प्राचीन और युगीन विचारधाराओ का प्रतिपादन होते हुए भी उसका जीवन न्शन मूलत मानवतावादी है। काव्य म सवत्र मानव मानव जगत और मानवीय जीवन मूल्या की महिमा का हा आख्यान किया गया है। कुरुक्षत्र क प्रथम पृष्ठ पर ही विश्व मानव क हृदय म द्वप भाव को युद्ध के लिए उत्तरदायी ठहराया गया है। युद्ध की विन्म्बना का निरूपण और निवत्तिमूलक वत्तिया का विरोध करके भी कवि अन्तत मानव की महत्ता को हा स्थापित करना चाहता है। कुरुक्षत्र युद्ध के अवसान पर मानव शवा को देखकर युधिष्ठिर का आह म कवि का ही ममभेदी आत्तनाद सुनायी देता है

मनु का पुत्र बना पशु भोजन ! मानव का यह अन्त
भरत भूमि क नर वीरा की यह दुगति हा हन्त।[84]

क्योकि सम्पूण कलाओ ज्ञान विज्ञान और धम का वरेण्यकर्ता वह मानव को ही मानता है

नर वरेण्य निर्भीक शूरता के ज्वलन्त आगार
कला ज्ञान विज्ञान धम के मूर्तिमान आधार।[85]

किन्तु कुरुक्षत्र युद्ध के भयकर विनाश पर कवि मानवता की इति नहा मानता। वह मानवता क अभ्युदय का ही आकाक्षा है

कुरुक्षत्र की धूलि नही इति पथ की
मानव ऊपर और चलगा
मनु का यह पुत्र निराश नही
नव धम प्रदीप अवश्य जलगा॥[86]

कुरुक्षत्र क षष्ठ सग म विज्ञान का सम्पूण उपलब्धिया का अनुस धाता भोक्ता और नियन्ता मानव का ही कहा गया है

---

[83] कुरुक्षत्र सप्तम सग पृ १५० ५२
[84] वही पचम सग पृ० ८२
[85] वही पृ ८
[86] वही पृ० ६६

यह प्रगति निस्सीम! नर का यह अपूर्व विकास!
चरण-तल भूगोल! मुट्ठी में निखिल आकाश।[९७]

× × ×

यह मनुज जिसका गगन में जा रहा है यान
काँपते जिसके करों को देख कर परमाणु।[९८]

सृष्टि की सम्पूर्ण शक्तियों का नियन्ता और रचना की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव ही है

'यह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।

× × ×

यह मनुज, जो सृष्टि का शृंगार
ज्ञान का विज्ञान का आलोक का आगार।[९९]

जहाँ तक विज्ञान और मानव के सम्बन्धों का प्रश्न है, कवि [illegible] की उस चिन्तनधारा से प्रभावित प्रतीत होता है जिसके अनुसार विज्ञान निरपेक्ष है मानव ही उसका निर्माण एवं सद् असद् प्रयोग करता है। इसीलिए मनुष्य को सचेत किया गया है कि

सावधान मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार
तो इसे दे फेंक तजकर मोह स्मृति के पार।[१००]

विज्ञान मानवता का वरदान और श्रेय तभी बन सकता है जब इसके आविष्कार शिव-स्वरूप अर्थात् लोक-कल्याणमय हों। इसी प्रकार समता विधायक ज्ञान भावना के विकास में सम्भव सिद्ध हो सकता है

श्रेय वह विज्ञान का वरदान
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान।

× ×

श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान
स्नेह सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण।[१०१]

---

९७ कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग पृ० ९७
९८ वही पृ० ९९
९९ वही पृ० १००
१०० वही पृ० १०४
१०१ वही पृ० १०३

मानव की अपरिमित शक्ति और सामर्थ्य का बखान करके कवि ने अन्तत मनुष्य की महत्ता की ही स्वीकृति प्रदान की है। किन्तु दूसरी ओर क्रूरकर्मा मनुष्यों को शृगालों और कुक्कुरों से हीन भी कहा। संहार सेवी मनुष्य को उसने वासना का भृत्य और मनुष्यता का अपमान भी कहा है

यह मनुज नाना शृगालो कुक्कुरो से हीन
हो किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।
× × ×
नाम सुन भूलो नहीं सोचो विचारो कृत्य
यह मनुज संहारसेवी वासना का भृत्य
छद्म इसकी कल्पना पाखण्ड इसका ज्ञान
यह मनुष्य मनुष्यता का घोरतम अपमान।[१२]

सच्चे मानव की परिभाषा कवि ने निम्नांकित शब्दों में दी है

श्रेय उसका बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान
तोड़ दे जो बस वही ज्ञानी वही विद्वान
और मानव भी वही।[१३]

मानव की उपर्युक्त व्याख्या का यह अर्थ नहीं कि कवि पददलित और पतित मनुज को हेय मानता हो। वह तो मानव की जय का ही अभिलाषी है

जय हो अध के गर्त गत में गिरे हुए मानव को
मनु के सरल अबाध पुत्र को पुरुष ज्योति सम्भव को।[१४]

मनुष्य में लोभ द्रोह प्रतिशोध की वृत्तियाँ यदि मानवता के विघ्न हैं तो करुणा त्याग तपस्या इत्यादि मानव जाति की रक्षा के सबल भी हैं। इसी लिए मानवता की महिमा कभी घट नहीं सकती। आशा विश्वास स्नेह त्याग आदि जीवन-मूल्यों के प्रति मानवीय निष्ठा के बल पर ही कुरुक्षेत्र के अंतिम छन्द में कवि मानवता के उज्ज्वल भविष्य की आशा से युक्त सन्देश प्रसारित करता है

१२ कुरुक्षेत्र पष्ठ सर्ग पृ १ १
१३ वही पृ० १०१
१४ वही सप्तम सर्ग पृ० १ ५

आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण भीति से
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से
हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और
तेज न बढ़ेगा किसी मानव का जीत से
स्नेह बलिदान होंगे माप नरता के एक
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से। [14]

इस प्रकार कुरुक्षेत्र महाकाव्य में प्रतिपादित जीवन-दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह एक मानवतावादी जीवन-दर्शन से अनुस्यूत कृति है। कुरुक्षेत्र में जहाँ एक ओर भाग्य, भगवान, मोक्ष, निवृत्ति, संन्यास आदि परम्परागत रूढ़ विचारों एवं आध्यात्मिक निष्ठाओं का खण्डन किया गया है, वहाँ सांसारिक जीवन में आसक्ति तथा मानवीय जीवन मूल्यों (जैसे त्याग, तप, स्नेह, बलिदान, विश्वास आदि) के प्रति अनन्य आस्था मण्डित की गयी है। नियति, प्रकृति एवं ज्ञान विज्ञान के लोकमंगलकारी रूप को ही वरेण्य कहा गया है। युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करके भी उसके सम्भव निदान की ओर संकेत किया गया है। कुरुक्षेत्र की सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक उपलब्धि गीता के कर्मयोग की सबल पुष्टि तथा मानवता के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण की प्रस्थापना है।

---

१४ कुरुक्षेत्र सप्तम सर्ग पृ १५८

'पार्वती' महाकाव्य
में
मानवतावादी संस्कृति की धारणा

'पार्वती' महाकाव्य
में
मानवतावादी संस्कृति की धारणा

वैज्ञानिक युग में काव्य-लेखन एक सांस्कृतिक प्रयास है। इस लक्ष्य से विरहित होकर किया गया काव्य सृजन हमारे युग की वैज्ञानिक प्रगति और गद्यात्मक विधाओं के विकास की अपूर्व गति में पिछड़ ही नहीं जायगा, वरन अपने अस्तित्व को उतना ही क्षणिक, निरुद्देश्य, अनपेक्षित और एकांगी बना देगा जैसा कि आज अधिकांश हिन्दी कविता के नाम से प्रकाशित होने वाली काव्य रचनाओं के विषय में चरितार्थ हो रहा है, अर्थात प्रकाशन, प्रचार, विक्रय और विनाश। काव्य के स्थायित्व और चिरंतनत्व का प्रश्न जीवन मूल्यों की शाश्वत कल्पना से जुड़ा है। वही काव्य वाङ्मय की स्थायी निधि बन सकते हैं जो मानवीय चेतना के विकासशील स्तरों को रूपायित करने में सक्षम तथा सामाजिक जीवन मूल्यों के संगठन, विघटन और संतुलन को साकार करने की अपूर्व शक्ति संधारण किये रहते हैं। इस शक्ति को ही युग जीवन का अमित प्रवाह कहा जाता है। हडसन ने साहित्य की व्याख्या करते समय उचित ही कहा है कि

> Literature is only one of the many channels in which the energy of age discharges itself in its political movement, a religious thought, philosophical speculation and Art. We have the same energy overflowing into other forms of expression.
>
> (*Study of Literature*)

युग जीवन की स्फूर्ति (शक्ति) की व्यंजना साहित्य और काव्य के विभिन्न रूपों में होती है। किन्तु जीवन मूल्यों के व्यापक विकास का दिग्दर्शन कराने की सबसे अधिक क्षमता महाकाव्य नामक काव्य रूप में होती है। महाकाव्य सच्चे अर्थों में जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आदर्शों का सांस्कृतिक प्रयास है। सृजन के उपकरणों अर्थात् जीवन कथानक, महान् नायक

गरिमामयी उदात्त शैली, महत् उद्देश्य, युग-जीवन के व्यापक चित्रण, गम्भीर अभिव्यंजना-शक्ति, रस-परिपाक, विराट् कल्पना और जीवन-दर्शन की बलवती प्रेरणा के कारण महाकाव्य निश्चय ही सर्वोपरि काव्य-रूप है। इसलिए रामायण, महाभारत, कुमारसम्भव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध, नैषधीय चरित, रामचरितमानस, पृथ्वीराजरासो, कामायनी आदि भारतीय वाङ्मय की चिरंतन निधि बन सके हैं।

आज गद्य का युग है। गद्य-युग का महाकाव्य उपन्यास भी कहा जाता है। प्रो० टिलयार्ड का अभिमत है कि अठारहवीं शताब्दी में महाकाव्य-लेखन की परम्परा ही लुप्तप्राय हो गयी थी। मानव-ज्ञान के विभिन्न स्तरों का इतना व्यापक प्रसार हुआ कि होमर और दान्ते जैसे महाकाव्यकारों की भाँति समस्त समाज का चित्रण दुःसाध्य हो गया। साहित्य के व्यापक से-व्यापक रूप में भी जीवन के विशेष पक्ष का ही चित्रण सम्भव हो सका। मध्ययुगीन समाज का चित्राङ्कन उपन्यास में हुआ। १६वीं शताब्दी में महाकाव्य का रूप उपन्यास में ही परिवर्तित हो गया।[1] फिर भी बहुत कम संख्या में महाकाव्यों का सृजन हो रहा है। सन् १६१४ से अद्यावधि हिन्दी में हो अनेक महाकाव्य लिखे गये हैं।[2] यद्यपि इनमें से अधिकांश केवल नाम के ही महाकाव्य हैं।

---

[1] ... he ... ut ... nd ... h cated so much has been added to the stock of human learning there was so much ecumenical freedom to exchange ideas that the epic spanning a total society like Homer s or Dante s became impossible Any great work of literature however ambitious of universality was forced to be in some degree speciali t Now the speciality that turned out most propitious for the epic was middle class novel that began to flourish in the 18th century By the nineteenth century the real course of the epic had forsaken the tradition for the novel

—E M W Tillyard *The Epic Strain in English Novel* pp 530-31

[2] (१) प्रियप्रवास (२) साकेत (३) कामायनी (४) वैदेही-वनवास (५) कृष्णायन (६) साकेत-संत (७) सिद्धार्थ (८) रघुवंश (९) नूरजहाँ (१०) नलनरेश (११) अंगराज (१२) वर्द्धमान (१३) जयभारत (१४) पावनी (१५) रश्मिरथी (१६) मीरा (१७) तारकवध (१८) ऊर्मिला (१९) तारक वध (२०) सेनापति कर्ण (२१) कुरुक्षेत्र

दूसरे शब्दों में इन काव्यों के रचयिताओं ने महाकवि की उपाधि के लिए कतिपय रूढ़ शास्त्रीय लक्षणों का सफल निर्वाह कर रचना को महाकाव्य कह दिया है। तथापि इसी युग में उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य भी लिखे गये हैं। कविवर जयशंकरप्रसाद कृत कामायनी महाकाव्य इस युग की श्रेष्ठतम कृति है जिसमें मानवता के जनक मनु के पौराणिक इतिवृत्त को मूल रूप में लेकर विराट् कल्पना और काव्य प्रतिभा के आश्रय में मानवतादर्शन एवं विकास का अद्भुत निदर्शन हुआ है। कामायनी आज समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है जिसमें मानव मन के अन्तर्द्वन्द्व, हृदय-बुद्धि के संघर्ष, प्रकृति के प्रेम और प्रताप, वृत्तियों के स्वार्थ और प्रवंचना, अर्थ लोलुपता और काम वासना, शोषण और द्रोह, नारी गौरव एवं अदम्य उत्साह आदि अनेक युगीन समस्याओं का समुचित समाधान एवं व्यावहारिक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए प्रसादजी हमारे युग के महान काव्यकार और कामायनी महान रचना मानी जाती है।

डा० रामानन्द तिवारी भारतीनन्दन विरचित पावनी महाकाव्य भी इसी समृद्ध साहित्यिक परम्परा की रचना है। इस काव्य में भी युगीन जीवन चेतना की विराट् व्यंजना हुई है। 'पावनी' में भारतीय संस्कृति के आदर्श स्वरूप का व्यापक चित्रण हुआ है। पावनीकार ने वर्तमान युग की दिग्भ्रान्त मानव जाति के प्रति निज संस्कृति का सत्य प्रकाशित कर स्वस्थ मानवतावादी जीवन मूल्यों की स्थापना का सफल प्रयास किया है। धर्म और नीति अर्थात् सत्य, प्यार और न्याय भारतीय संस्कृति के अनिवार्य उपकरण हैं। पावनी काव्य में इन स्थायी जीवन मूल्यों (सत्य, प्यार और न्याय) का गरिमामय सम्पादन और प्रतिपादन हुआ है।

आधुनिक युग के हिन्दी महाकाव्यों में आकार की दृष्टि से पावनी सर्वाधिक बृहदाकार रचना है। पावनी महाकाव्य का कथात्मक मूल आधार स्कन्द पुराण है। कथात्मक संयोजन की दृष्टि से पावनीकार ने कालिदास के कुमारसम्भव का अनुकरण किया है। पावनी के प्रथम १७ सर्गों में कुमार

---

(२२) हल्दीघाटी (२३) आर्यावर्त (२४) विक्रमादित्य (२५) जननायक (२६) महामानव (२७) [illegible] (२८) ओंकार (२९) [illegible] (३०) दमयन्ती (३१) उर्वशी (३२) सारथी (३३) [illegible] (३४) श्रीरामचरितामृत (३५) रामचरित चिन्तामणि (३६) कृष्णचरित चिन्तामणि (३७) नारी की गरिमा (३८) अंगराज (३९) रामराज्य (४०) शिवज्योति बापू आदि।

सम्भव के १७ सर्गों की सम्पूर्ण कथा गृहीत की गयी है। पार्वती महाकाव्य के प्रथम १७ सर्गों को काव्य का पूर्वार्द्ध कह सकते हैं। उत्तरार्द्ध खण्ड में प्रौढ़ कवि कल्पना विलक्षण काव्य प्रतिभा भाव-सौन्दर्य रस परिपाक कलात्मक कौशल और प्रबन्धत्व प्रभाव आदि दृष्टव्य हैं। साथ ही मौलिक सृजन प्रतिभा कलात्मक औदात्य वैचारिक निधि और भाव-गाम्भीर्य की दृष्टि से भी काव्य का उत्तरार्द्ध (सर्ग १८ से २७) महत्त्वपूर्ण है। पार्वती महाकाव्य के अंतिम १० सर्ग निश्चय ही कवि की चरम साधना के ज्वलन्त प्रतीक हैं। इन सर्गों में कवि के अध्ययन मनन और चिंतन ने जीवन-दर्शन के रूप में ढलकर बलवती प्रेरणा का रूप ग्रहण कर लिया है। शैवागमों के निगूढ़ अध्ययन और तत्त्व दर्शन चिंतन ने शिव संस्कृति के रूप में एक महान् उपलब्धि करायी है। पार्वतीकार की शिव संस्कृति विषयक परिकल्पना नितांत मौलिक उपादेय एवं युगानुरूप है।

पार्वती महाकाव्य के १७वें सर्ग में पार्वतीपुत्र सेनानी कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध हो जाता है। यहाँ तक का वस्तु विधान कुमारसम्भव पर आधारित है।

१८वें सर्ग में जयन्त अभिषेक और १९वें सर्ग में विजय पर्व के आयोजन के साथ-साथ तारक के तीन पुत्रों का तप तथा ब्रह्माजी द्वारा वरदान इन का वर्णन है। सर्ग २० २१ और २२ में राजतपुर आयसपुर एवं काचनपुर नामक त्रिपुरों का बड़ा सजीव वर्णन है। उदाहरणार्थ—

राजतपुर में ज्ञान धर्म का सूक्ष्म छद्म बन करुणा भांति
फलित हुआ कमनाश कूट की बन अधम की रुचिर अनीति
शक्ति और वैभव से मोहित दुर्बल दीन अकिंचन जान
बन अज्ञान बना जीवन का मायामय नय धर्म विधान।

× × ×

आयसपुर में रूप-क्रोध से उन्मद भय से कुण्ठित काम
फलित हुआ विद्यमानी के बन वैभव में फिर उद्दाम
अन शील बन ज्ञान प्रजा का अल्पदृष्टि में बनकर शान्ति
प्रकट हुए शासन सेवा औ पर नियमों का भूषित भ्रान्ति।

× × ×

काचनपुर में अंध करुणा औ क्रोध-रूप का द्वन्द्व विकार
शान्ति समृद्धि और सुख का बन छद्म हुआ सद्गुण साकार

जिसकी माया के विमोह म स्वप्ना व स्वणिम प्रासाद
कर निर्मित श्रम और सेवा का वहन कर रह जन अवसाद ।
(सग २३ पृष्ठ ४७०)

त्रिपुरा क इस घोर अनय से सकल लोक व्याकुल हो उठे जीवन-मय का नयारचित धम शक्ति और माया के आडम्बर न आच्छन्न कर लिया । तारक-वध स जो दव समृति की प्रसन्नता नई थी लोक म परिवर्तित हो गयी

धम शक्ति धन की माया म हुआ सत्य जीवन का लुप्त
उगल रह थ विष अनय का कौन अनगन विषधर गुप्त
हुआ विषाक्त वायुमण्डल था मिमक रह जीवन क प्राण
विरत हुए अपनी कृतिया स भक्त भूप धनपति भगवान् ।

× × ×

त्रिपुरा क अनय उपद्रव म विरत हो उठ नाना भाव
हुवा का जय हुय अन्तत बना हृदय का नूतन घाव ।
(सग २३ पृ० ४७१)

त्रिपुरा क अत्याचारा स पीडित होकर जयन्त ब्रह्माजी क पास गया । ब्रह्माजी न जो त्रिपुर उपचार बताया वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । ब्रह्माजी न त्रिपुर उपचार क लिए प्रम और शिवत्वबोध का माग सुझाया । प्रम माग और शिवत्वबोध आज क विश्व जीवन की विडम्बना का भी महत्त्वपूर्ण निदान है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पावनीकार की त्रिपुर उपचार की परिकल्पना का कामायनीकार (प्रसादजी) क त्रिपुरदाह की सयोजना स पूर्ण सगति बठती है । प्रसादजी न त्रिपुरा की विडम्बना का वणन रहस्य सग म किया है

यहा त्रिपुर है देखा तुमन तीन बिन्दु ज्योतिमय इतन
अपन कन्द्र बन दुख-सुख म भिन्न हुए है य सब कितन ।
(कामायनी रहस्य सग)

कामायनी का त्रिपुर इच्छा ज्ञान क्रिया क सम्बन्ध म इच्छा ज्ञान और क्रिया की दूरी है अथात् असामजस्य है

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्या पूरी हो मन की ।
एक दूसर स न मिल सक यह विडम्बना है जीवन की ॥
(वही रहस्य सग)

सम्भव के १७ सर्गों की सम्पूर्ण कथा गृहीत की गयी है। पार्वती महाकाव्य के प्रथम १७ सर्गों को काव्य का पूर्वार्द्ध कह सकते हैं। उत्तरार्द्ध खण्ड में प्रौढ़ कवि-कल्पना चित्रण काव्य प्रतिभा भाव-सौन्दर्य रस परिपाक कलात्मक कौशल और प्रबन्धत्व प्रवाह आदि द्रष्टव्य हैं। साथ ही मौलिक सृजन प्रतिभा कलात्मक औदात्य वैचारिक निधि और भाव गाम्भीर्य की दृष्टि से भी काव्य का उत्तरार्द्ध (सर्ग १८ से २७) महत्त्वपूर्ण है। पार्वती महाकाव्य के अन्तिम १० सर्ग निश्चय ही कवि की चरम साधना के ज्वलन्त प्रतीक हैं। इन सर्गों में कवि के अध्ययन मनन और चिन्तन ने जीवन-दर्शन के रूप में ढलकर बलवती प्रेरणा का रूप ग्रहण कर लिया है। शैवागमों के निगूढ़ अध्ययन और तत्त्व दर्शन चिंतन ने शिव संस्कृति के रूप में एक महान उपलब्धि करायी है। पार्वतीकार की शिव संस्कृति विषयक परिकल्पना नितान्त मौलिक उपादेय एवं युगानुरूप है।

पार्वती महाकाव्य के १७वें सर्ग में पार्वतीपुत्र सेनानी कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध हो जाता है। यहाँ तक की वस्तु विधान कुमारसम्भव पर आधारित है।

१८वें सर्ग में जयन्त अभिषेक और १९वें सर्ग में विजय पर्व के आयोजन के साथ-साथ तारक के तीन पुत्रों का तप तथा ब्रह्माजी द्वारा वरदान इन का वर्णन है। सर्ग २० २१ और २२ में राजतपुर आयसपुर एवं काञ्चनपुर नामक त्रिपुरों का बड़ा सजीव वर्णन है। उदाहरणार्थ—

> राजतपुर में दान धर्म का सूक्ष्म छद्म बन करुणा भीति
> फलित हुआ कमनीय कूट की बन अधम का रुचिर अनीति
> शक्ति और वैभव से मण्डित दुर्बल दीन अकिंचन दान
> बन अजान उनका जीवन का मायामय नय धर्म विधान।
>
> × × ×
>
> आयसपुर में दर्प-क्रोध से उमड़ भय से कुण्ठित काम
> फलित हुआ विद्युन्माली के बल वैभव में फिर उद्दाम
> अन्तहीन बल शासन प्रजा की अल्पदृष्टि में बनकर शान्ति
> प्रकट हुई शासन सत्ता जो थी नियमों की भूषित भ्रान्ति।
>
> × × ×
>
> काञ्चनपुर में नय करुणा औ त्याग-रूप का स्वच्छ विकार
> शान्ति समृद्धि और सुख का बन छद्म हुआ सहसा साकार

जिसकी माया के विमोह में स्वप्नों के स्वर्णिम प्रासाद,
कर निर्मित श्रम और सेवा का वहन कर रहे जन अवसाद।

(सर्ग २३ पृष्ठ ४७०)

त्रिपुरों के इस घोर अनय से सकल लोक व्याकुल हो उठे। जीवन-सत्य को तथाकथित धर्म शक्ति और माया के आडम्बर ने आच्छन्न कर लिया। नारद-पथ से जो नव स्मृति की प्रसवना हुई थी, शोक में परिवर्तित हो गयी—

धर्म शक्ति धन की माया में हुआ सत्य जीवन का लुप्त
उगल रहे थे विष अनय का मौन अराल विषधर गुप्त
हुआ विषाक्त वायुमण्डल था सिसक रहे जीवन के प्राण
विकल हुए अपनी कृतियों से भक्त भूप श्रीपति भगवान्।

× × ×

त्रिपुरों के अनय उपचय से विकल हो उठे तीनों लोक
देवों का जय-रव अन्तर बना हृदय का नूतन शोक।

(सर्ग २३ पृ० ४७१)

त्रिपुरों के अत्याचारों से त्रस्त होकर जनगण ब्रह्माजी के पास गया। ब्रह्माजी ने जो त्रिपुर-उपचार बताया वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्माजी ने त्रिपुर उपचार के लिए प्रेम और शिवत्वबोध का मार्ग सुझाया। प्रेम मार्ग और शिवत्वबोध आज के विश्व जीवन की विडम्बना का भी महत्त्वपूर्ण निदान है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पार्वतीकार की त्रिपुर उपचार की परिकल्पना की कामायनीकार (प्रसादजी) के त्रिपुर-दाह की संयोजना से पूर्ण संगति रहती है। प्रसादजी ने त्रिपुरों की विडम्बना का वर्णन रहस्य सर्ग में किया है—

'यहाँ त्रिपुर है देखा तुमने तीन बिन्दु ज्योतिर्मय इतने
अपने केन्द्र बने दुख-सुख में भिन्न हुए हैं ये सब कितने।

(कामायनी, रहस्य सर्ग)

कामायनी का त्रिपुर स्पष्ट मानव सृष्टि के सन्दर्भ में इच्छा ज्ञान और क्रिया की दूरी है अर्थात् असामञ्जस्य है—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की॥

(वही, रहस्य सर्ग)

इन तीनों के समंजन का उपाय तीनों में सामरस्य (समन्वय) की स्थापना है। पार्वती मनोकाय का त्रिपुर रूपक भी हमारे युग जीवन के सन्दर्भ में धर्म शक्ति और धन की माया का संघर्ष है।

जयन्त त्रिपुर उपचार के उपाय पूछने ब्रह्मा शिव और पार्वती के पास गया। तीनों ने वे सुन्दर उपाय बताये

ब्रह्मा— असुर शक्ति के तप के बल से हुआ तात ! इनका निर्माण
 है निमित्त भर सृष्टि नियम का मेरा अवधि-पूर्ण वरदान
 एकात्मी तारक का सम्भव शक्ति-योग से था संहार
 पर त्रिपुरों का नाश शक्ति से सम्भव है करना प्रतिकार।
 × × ×
 सृष्टि नियम में नहीं अनय का सम्भव है कोई प्रतिरोध
 है उसका उपचार शक्ति से अन्वित शिव का शाश्वत बोध।
 (सर्ग २८ पृष्ठ ४७४)

पार्वती— सुन जयन्त के वचन उमा ने करुणा दृगों में भरकर स्नेह
 तात ! त्रिपुर के तन जीवन है शोचनीय अति निस्सन्देह
 कर न सकी यदि शक्ति तुम्हारी सरक्षित जीवन का क्षेम
 तात शक्ति की स्फूर्ति चाहती अभी कान्तिमय कोमल प्रेम।
 × × ×
 ऐसा प्रेम के बिना बन गया राजतपुर का तात विमोह
 इसी प्रेम के बिना छा रहा आयसपुर में वज्र विद्रोह
 ऐसा प्रेम के बिना स्वर्णपुर पाल रहा केवल व्यापार
 बिना प्रेम के तात शक्ति औ जय मन्त्र बनते अतिचार।
 × × ×
 एक पावन हो कर सकता त्रिपुरों का युगपत संहार
 कर सकता है विश्व जागरित करके डमरू का धकार।
 (सर्ग २३ पृष्ठ ४७, ११)

शिव— शिव बोले गम्भीर शान्तिमय वचन स्नेह से पूर्ण उदार—
 प्रकृति और प्रतिरोध मार्ग में चलता यह अपूर्ण संसार
 तात शक्ति मर्यादा विश्व की गति करता पावन क्षेम
 त्रिपुरों से उद्धार विश्व का कर सकता पर पावन प्रेम।
 (सर्ग २ पृष्ठ ४७६)

इसी प्रेम में शिव का महत् सन्देश है। इस सन्देश के एक-एक शब्द में मानवतावादी स्वराघात है, संजीवनी शक्ति और अमरत्व है। विस्तार-भय से कतिपय पंक्तियाँ ही उद्धृत की जा रही हैं—

'जन-जन के जाग्रत गौरव से कम्पित होगी अन्ध अनीति
नष्ट दर्प अतिचार जाति का प्रलय बनेगा शोषण नीति।
धर्म धुरन्धर अन्ध पुजारी मन्दिर-विहार शासक सामन्त
धन-कुबेर, श्रीमान् भूमिपति सबका दर्प करेगा अन्त।

× × ×

माँगेंगे जाग्रत मानव से वे ज्ञान का सम अधिकार।

× × ×

जाग्रत मानव की करुणा में माँगेंगे वे जीवन दान।

× × ×

जाग्रत मानव से माँगेंगे वे ईश्वर श्रम का वरदान।

× × ×

मानव की संस्कृति का गौरव होगा नारी का सम्मान
नारी के स्वतन्त्र जीवन का स्तर बनेगा चिर वरदान।

× × ×

प्रति मानव के शीश और मुख होंगे जब निज कर प्रवीण
प्रति मानव के बाहु बनेंगे दान शक्ति के रक्षा लीन।
प्रति मानव का उपार्जन कर होगा उपभोग में पुष्ट
सेवा-श्रम से प्रति मानव के पावन पद होंगे सन्तुष्ट।

× × ×

नव मानव मानव बन मन से औ तन से बन देव समान
होगा नव विश्व का स्रष्टा औ पालक अनन्त भगवान।
ज्ञान शक्ति श्रम और स्नेह से कर सुन्दर का चिर निर्माण,
नव जीवन के पथ-पथों में निरत करेगा रूप विधान।

इस नव्य मानवतावादी संस्कृति के निर्माण में युगों की संचित भ्रान्ति का विनाश और नव चेतना का विकास होगा—

जब जन जन में उर्ध्व पावन आत्मा का उज्ज्वल आधार
होगी उन्नति स्नेह-करुणा का बन कर भूमि मंगलमय संसार।
जब जन जन के तन औ मन में छिपी मधु का रुचिर अगार
जाग्रत हो माँगेगा सच्चा जीवन का गौरव अधिकार।

× × ×

तब नव चेतनता से होगी भग युगों की संचित भ्रांति
नवयुग का निर्माण करेगी श्रममुखी जीवन की क्रांति।
(सर्ग २४ पृष्ठ ४८३)

त्रिपुर उद्धार नामक २४वें सर्ग में शिवत्वबोध और नय से अनय रूपी त्रिपुरा का उद्धार वर्णित है। यहाँ मानवता को स्ववल वैभव की चेतना से जागृत भी किया गया है

मानव हो अपने जीवन के गौरव को पहचानो
नर हो तुम अपने पौरुष के वैभव को पहचानो।

इस चेतना आह्वान ने जन जन के जीवन में जागरण की लहर दौड़ा दी

बोले उठ सब एक कण्ठ से मानवता की जय हो
गूंज उठा स्वर अन्तरिक्ष में अन्त समस्त अनय हो।

× × ×

जीवन का श्रम श्रेय और सुख चिर अधिकार हमारा
करना इसको सिद्ध सघ के शक्ति मन्त्र के द्वारा।
(पृष्ठ ४९६)

त्रिपुर उद्धार के उपरान्त नये सर्ग की सृजन ध्वनि शिव के डिम्ब निनाद से निःसृत हुई

विश्व भारती के मगन सा शिव का डमरू बोला
शिव ने आज नवीन सर्ग का सूत्र मर्ममय खोला।

× × ×

अन्तरिक्ष में उगा ज्ञान का सूर्य अनामित छवि से
गन्धकोष निज खोल कली ने कहा जागरित कवि से—
आज न कलियों के कानों में कवन मधुरस घोलो
नये सर्ग के बीज मन्त्र की भव्य अर्गला खोलो।
(सर्ग २६ पृष्ठ ५०६)

इस नवीन सर्ग (सृष्टि) की संस्कृति भी आदर्श और महान् थी। त्रिपुर-दाह शिवत्वबोध के कारण हुआ अत नवीन सृष्टि में जिस धर्म नीति और संस्कृति का विकास हुआ वह शिवमय थी। पार्वती महाकाव्य के २५ २६ और २७वें सर्गों में शिव धर्म शिव नीति और शिव संस्कृति का वर्णन है। इन सर्गों का सृजन नितान्त मौलिक और नवीन है।

शिव धर्म नामक सर्ग में धर्म के जिस स्वरूप का निरूपण हुआ है वह सब

सम्प्रदाय की किसी सद्धान्तिक दूरारूढ कल्पना का प्रस्तुतीकरण नहा वरन् मानवतावादी कल्याणमय (शिवम्) धम की स्थापना का प्रशसनीय प्रयास है

शिव धम म—

मानव ही रह गया एक ईश्वर की आशा
जीवन ही बन गया धम की नव परिभाषा
आत्मा का परमाथ अथ म अन्वित होता
आत्मा का परमाथ काम से सरसित होता।

(सग २५ पृ० ५१७)

मानवता ही सवस्व था—

मानवता थी मानदण्ड नूतन सस्कृति का
आत्मभाव था मूल मन्त्र नूतन सस्मृति का
नहा मनुज का मनुज मानते जो अतिचारी
उनको काल कृतान्त बने अतिम त्रिपुरारी।

नारी का बहुमान—

नारी का बहुमान बना सस्कृति की कला
जीवन सागर रहा शान्त जिसम कलकला,
मानवता की मर्यादा थी निमल नारी
शक्तिमती श्रीमूर्ति मनोहर औ सुकुमारी।

× × ×

वह युग युग की आतकित औ लाछित नारी
महिमा मण्डित हुई प्राप्त कर गरिमा सारी।

(सग २५ पृ० ५१८)

महा मही—

मानव ही था बना विश्व का नया विधाता
मानवता का बना नया मानव निर्माता
मानव म साकार हो गये विधि हरि हर म
व अदृश्य के रूप अतुल जीवित सुन्दर थ।

× × ×

नारी म साकार हुई थी वीणापाणी
नारी म ही मूर्त हुई लक्ष्मी कल्याणी
हुई उमा की रूप शक्ति से जाग्रत नारी
शान्त रक्षित आगारा म अकित थी नारी।

(सग २५, पृ० ५२६)

२६व सग म उल्लिखित शिव नीति का स्वरूप भी इलाघनीय है—

धम अथ औ काम मुक्ति का अन्वय पूर्ण विधान
करता था मानव समाज म शिवत्व का निर्माण
नान शक्ति तप क्षम आदि का श्रयान्वित उद्योग
करता था कृताथ मानव का जीवन साधन योग ।

(सग २६ पृष्ठ ५४६)

काय के अन्तिम सग म शिव सस्कृति क आनन्दवादी स्वरूप का विशद व्याख्या है। कवि न नारी का सस्कृति और सृष्टि की सधारिणीशक्ति कहा है। मानव के मगल विधान और विजय पव की प्रतीक नारी ही है। इस मूल सत्य की स्वाकृति इस २७वें सग की अन्यतम विशषता है

वह सिंहवाहिनी कोटि अस्त्र-कर धारी
मानव सस्कृति की निकष निमला नारी ।
× × ×
वह मधुर वसन्ता यामा की उजियारी
बिखराती स्वग विभूति भूमि पर सारी ।
× × ×
वन वीर व धु की बहन निमला नारी
बनती सस्कृति की सुषमा काम कुमारी ।
× × ×
उस ज्योति-पव का पुण्य निमला उषा
पावन भावा की मधुर मुक्त मजूषा ।
× × ×
वह शक्ति भूमिका तजमयी कल्याणी
हो रही सफल पाकर जीवन की वाणी ।

कवि न नारी क सम्मान को सास्कृतिक विकास का आधारमान भी माना है

नारी का नय औ मान माप सस्कृति का
पथ उसका शुचि सस्कार निमग प्रकृति का ।

(पृष्ठ ५५६)

महाकाव्य का इति श्री पर भी कवि मानवता का मगलकामी रहा है। देखिए यह गान

जग म मगल दीप जलें ।
जीवन क अधकार बनकर स्नेह प्रदीप जलें ।

पूर्ण सत्य की प्रभा विश्व में निखर बिखर
ज्योति-पथ में स्नात रूप मानव का निखर
सत्य शक्ति शिव औ सुन्दर के पथ में जोर चरन।

× × ×

इस शिव का साम्राज्य विश्व में मंगलकारी
शान्ति शक्ति युत बन श्रेय का चिर प्रतिहारी
शिव जीवन की कल्पलता पर था आनन्द फलें।

इस प्रकार 'भारती' महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के विराट रूप को अंकित करने की भव्य चेष्टा हुई है। आज के विश्व जीवन में मानव की संकटापन्न स्थिति, कुण्ठित आत्म चेतना और भयावह वातावरण का मूल कारण मानवीय चिन्तन बोध के स्तरों में विशृंखलन और बौद्धिक अन्तर्विरोध है। इस परिस्थिति-द्वन्द्व का विधायक मानव का अहंभाव है। इस अहंभाव को व्यावहारिक दृष्टि से विज्ञान के दुर्वह आणविक अनुसंधानों का स्वच्छन्द विकास, बौद्धिक अति या चेतना का व्यतिक्रम भी कहा जा सकता है। हमारे युग जीवन में भौतिकतावादी मूल्यों की अंध पराकाष्ठा ने मानव की आध्यात्मिक आस्थाओं को आवृत कर युग-सत्य की स्वीकृति से भी पराङ्मुख कर दिया है। इस ओर अहं की अधिष्ठापना में निम्न चेतना क्रमशः और विश्व ह्रास-ह्रास विघटनकारी तत्वों पर अवलम्बित रहने लगी है। परिणामस्वरूप समग्र सामाजिक संगठन में विघटनकारी स्वार्थमूलक शक्तियाँ परम्पराओं से स्थापित मूल्यों के मूलोच्छेदन में अनवरत रत हैं। समाज के विघटनकारी तत्वों ने सांस्कृतिक भावनाओं की अवहेलना भी प्रारम्भ कर दी है। और यही कारण है कि हम समाज के अनुसरण में असमर्थ हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में साहित्य क्या कर सकता है? यह प्रश्न है। अस्तु—

वर्तमान युग के इस परिस्थिति द्वन्द्व में संवेदनशील साहित्यकार, जागरूक कलाकार और अन्वेषणशीलता के अनुसंधाता कवि का कर्तव्य मानव जीवन बोध को स्वस्थ दिशा निर्दिष्ट कर विश्वजनीन मानवता को प्रगति पथ पर गतिमान करना है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व इस देश को स्वाभिमान, स्वावलम्ब और विश्वबन्धुत्व सांस्कृतिक चेतना की स्वाधीनता संग्राम के लिए आह्वान कर विजय संघर्ष प्रमाणों की आवश्यकता थी। इस युग के साहित्य ने आदर्श उपादान नहीं स्वीकारा न किया। प्रगतिवादियों के स्वर ने जीवन की दृष्टि करण

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

(कामायनी श्रद्धा सर्ग)

तत्कालीन परिस्थितियों में समाज के शक्ति-अंगों के समन्वय की आवश्यकता थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जीवनादर्शों के संगठन की समस्या बलवती होती जा रही है। सामाजिक जीवन मूल्यों के सुदृढ संगठन के लिए संस्कृति रूपी वट वृक्ष के अतिरिक्त सुखद और शीतलच्छाय स्थल की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय समाज और जीवन की विविधताओं (Diversities) का संगम संस्कृति ही बन सकती है। धर्म जाति वर्ग प्रान्त भाषा या मथावत संगठन आज के संघर्ष-युग में ऐक्य के प्रतीक (Symbol of Unity) नहीं बन सकते। वसे संस्कृति में इन सब इकाइयों (Unities) का भी समन्वय हो जाता है। डा रामानन्द तिवारी भारतीनन्दन ने पार्वती महाकाव्य में उसी सांस्कृतिक वट वृक्ष की छाया प्रदान की है। उनका सांस्कृतिक निरूपण विघटित मानव मूल्यों के संगठन का प्रशंसनीय प्रयास है। सत्य शिव सुन्दरम् जीवन के शाश्वत मूल्य हैं। सत्य शौर्य और नय भारतीय संस्कृति के अमोघ अस्त्र रहे हैं। डा० तिवारी ने इन्हीं चिरन्तन संगठन-तत्त्वों का युगानुरूप पुनर्मूल्यांकन किया है। पौराणिक कथा-सत्य को उन्होंने युग सत्य और सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल ही चित्रित किया है। पार्वती महाकाव्य का शिव संस्कृति निरूपण उनकी कारयित्री चिन्तनशक्ति और प्रखर मेधा का सबल प्रमाण है। इस दृष्टि से पार्वती महाकाव्य की रचना कामायनी जैसे विश्व महाकाव्यों की परम्परा में ठहरती है। पार्वती सच्चे अर्थों में महाकाव्य ही नहीं अपितु महान्काव्य भी है—ऐसी मेरी विनम्र दृढ़ धारणा है।

'सारथी' महाकाव्य   वैचारिक पृष्ठभूमि

'सारथी' महाकाव्य वैचारिक पृष्ठभूमि

काव्याचार्यों ने काव्य रचना के लिए भाव, बुद्धि, शैली और कल्पना नामक चार तत्त्वों का उल्लेख किया है। सृजन की दृष्टि से काव्य में सभी तत्त्वों का यथोचित योग रहता है। किन्तु विज्ञान-युग की काव्य रचनाओं में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता रहती है। इसका कारण जीवन के सभी क्षेत्रों में बौद्धिकता का साम्राज्य है। विज्ञान-युग का कवि भी मात्र भाव प्रवण प्राणी न रहकर बुद्धिजीवी कलाकार बनता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग की काव्य रचना का लक्ष्य भी पाठक को वैचारिक उत्तेजित करना है। रसानुभूति का प्रश्न आज उस रूप में गौण होता जा रहा है। महाकाव्यों में विचारणा का उन्नत स्वरूप मिलता है। इस समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की विराट चेष्टा मिलती है। महाकाव्य जातीय जीवन और सांस्कृतिक चेतना के आलोचन के लिए प्रयास करते हैं। उनमें गम्भीर समस्याओं का महत्त्वपूर्ण निरूपण होता है। इसलिए ये काव्य 'महा' विशेषण से विभूषित किये जाते हैं। इनके रचयिता भी महाकवि कहलाते हैं।

हमारे युग की सबसे बड़ी समस्या जीवन मूल्यों का संघर्ष है। इस संघर्ष का मूल कारण विघटनकारी शक्तियों का उदय तथा वैज्ञानिक मान्यताओं के परिणामस्वरूप धर्म के उपादानों का द्रुत गति से ह्रास है। विज्ञान-युग की सभ्यता ने भौतिकतावादी मूल्यों को सर्वोपरि मान लिया है। इसके कारण स्वार्थपरायणता, धनलोलुपता, शोषण, स्वेच्छाचारिता आदि प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। प्रेम, करुणा, अहिंसा, सत्य, ज्ञान आदि शाश्वत जीवन मूल्यों का प्रायः ह्रास हो गया है। स्थिति यह है कि समस्त भौतिक उपलब्धियों के उपरान्त भी आज के मानव को आत्म परितृप्ति या तुष्टि नहीं है। उसमें अधिक से अधिक अर्जन और अर्थाधिक्य में सर्वाधिक की कामना बढ़ रही है। इस पर स्वार्थपरता ने चिन्तन और मनन के स्तरों को सीमित, संकुचित और उथला बना दिया है। मानव का दम्भ, अहम्, ज्ञान के प्रति अनास्थावान अनात्म के प्रति आसक्ति की ओर, वर्तमान से असन्तुष्ट है। विचित्र विडम्बना है। मानव की अन्तश्चेतना कुण्ठित वातावरण में घुटन का अनुभव कर रही

है। इस सबका कारण क्या है? निवारण का उपाय क्या है? अनुसरणीय मार्ग क्या है? ये आज युग-जीवन के प्रश्न और समस्याएँ हैं। इन प्रश्नों का उत्तरदाता काव्य ही हमारे युग का महाकाव्य है। इन समस्याओं के संधान और समाधान में रत साहित्यकार ही महाकवि कहलाने का अधिकारी है। अस्तु—

हम महाकाव्यों की परख इन मानदण्डों पर करनी चाहिए। प्राचीन साहित्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षण और बहुचर्चित मान्यताएँ आज महाकाव्यालोचन के लिए निरपेक्षितप्राय हो चुकी हैं।

हिन्दी के वर्तमान युग में महाकाव्य-सृजन द्रुत गति से हो रहा है। हरिऔधजी के प्रियप्रवास से लेकर दिनेशजी के सारथी तक लगभग ४ महाकाव्य लिखे जा चुके हैं। ऐसे महाकाव्य कम हैं जिनमें हमारे युग जीवन के संघर्ष की व्यंजना हो, जिनमें मानव के अन्तश्चेतन विकासी स्तरों को स्थापित करने का विराट प्रयत्न हो, जिनमें शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का आग्रह हो, जिनमें वैचारिक विद्रोह और आत्म-क्रान्ति के द्वारा मानव में आस्था, विश्वास और सौहार्द्र भाव के नव जागरण की शक्ति और सामर्थ्य हो। जयशंकरप्रसाद के कामायनी काव्य में निश्चय ही जीवन सत्यों की स्थापना हुई है। कामायनी में हमारे युग का उन्नत बोध अपने व्यापकतम परिवेश में प्रतिफलित हुआ है। उसमें मानव के अन्तर्बाह्य द्वन्द्व, हृदय-बुद्धि के संघर्ष, प्रकृति के प्रेम और प्रकोप, वृत्तियों की स्वार्थ-कामना और श्रेय प्रवंचना, रूप-आकर्षण और काम-वासना, शोषण और नारी-शैवल्य आदि युगीन समस्याओं का चित्रण और व्यावहारिक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार की दूसरी रचना डा. रामगोपाल शर्मा दिनेश कृत सारथी महाकाव्य है जो राजस्थान साहित्य अकादमी के अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हो चुका है।

कामायनी में मानवता के जनक मनु की कथा है। सारथी में स्वयं मानव की इतिवृत्त है। कामायनी में श्रद्धा और मनु के द्वारा नव-सृष्टि विधान हुआ—दोनों के मिलन से मानव उत्पन्न हुआ। मानव ने बुद्धि का साथ किया। इसके पश्चात सृष्टि के विकास के साथ मानव में बुद्धि का अपूर्व विकास किस प्रकार हुआ? मानवता किस ओर गयी? उसका भविष्य क्या है? आदि प्रश्न शेष थे। इन शेष प्रश्नों का उत्तर सारथी महाकाव्य है। दूसरे शब्दों में इतिवृत्तात्मक दृष्टि से सारथी महा

काव्य में 'कामायनी' ने पूर्णत्व प्राप्त किया है। 'कामायनी' के कथात्मक पूर्वार्द्ध का 'सारथी' उत्तरार्द्ध है। 'सारथी' महाकाव्य में मानवता के विकास के यथार्थ और वास्तविक पक्ष पर विचार हुआ है। इसमें परम्पराओं का अनुमोदन भी है और प्रगति की सम्भावनाओं के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण भी। विज्ञान-युग की अन्ध प्रगति से त्रस्त और समाक्रान्त मानवता के भविष्य पर बड़े विचारपूर्ण एवं मननशील रूप में सोचा गया है। 'सारथी' महाकाव्य में भावात्मक पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष प्रबल है। इसमें रचनात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा वैचारिक विभूति की उपलब्धि अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत प्रसंग में हम 'सारथी' महाकाव्य की विचारणा को ही समझने का प्रयास करेंगे।

'सारथी' महाकाव्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विचार-सम्पत्ति त्रिपुर कल्पना है। त्रिपुर-कल्पना एक प्राचीन रूपक है जिसका उल्लेख वैदिक वाङ्मय, पौराणिक कथा एवं परवर्ती साहित्य में भी मिलता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार तारकासुर के वध के पश्चात् उसके तीन पुत्रों ने तीन पुरों का निर्माण किया। त्रिपुरों में घोर अत्याचार प्रारम्भ हो गया। अतः देव-सृष्टि की प्रार्थना पर शिव ने एक ही बाण से त्रिपुर नाश कर दिया।

कामायनीकार ने भी त्रिपुर-रहस्य की योजना रहस्य सर्ग में की है। वहाँ पर त्रिपुर इच्छा, ज्ञान और कर्म लोक के रूप में हैं। वहाँ श्रद्धा की मुस्कान से सारे मिलकर लय हो जाते हैं और समरसता के सिद्धान्त की सफलता दिखायी गयी है।

'सारथी' महाकाव्य में त्रिपुर रूपक को युगीन संदर्भ की पृष्ठभूमि के रूप में व्यंजित किया गया है। यहाँ ज्ञान, प्रसार, श्रम, सृजन शक्तियाँ जीवन-मूल्यों और प्रवृत्तियों के रूप में इस रूपक की परिणति हैं।

'सारथी' महाकाव्य के तृतीय सर्ग में श्रद्धा मानव को समझा रही है कि कैसा भाग्य आज विकल हुआ—

सृष्टि के आरम्भ में जब
बने विधाता के बुलाये।
पास अपने सुर असुर नर॥
और उनके भाग्य का निर्णय किया था
तब मनुज ने श्रम माँगा
दानवों ने वासना सी
[illegible]
[illegible] (पृष्ठ ३१)

× × ×
सृष्टि तब से चल रही है
कर्म में है लीन मानव।
ज्ञान के आधार पर सुर
कर रहे हैं भोग नभ का।
और भू आकाश दोनों में
त्रिपुर के शासक असुर हैं॥ (पृष्ठ ४२)

श्रद्धा ने आगे कहा कि तदुपरांत शक्ति सहित शिव ने सृष्टि का भ्रमण किया। देव दानव और मानव सृष्टियों का अवलोकन किया। इसी अवसर पर शिव ने मानव के अहम् के विषय में शक्ति से यह कहा कि

मनुज कितना जड़ अभी तक
अहम् की सीमा नहीं पहचानता है। (पृष्ठ ४८)

फिर समर की भयंकरता का वर्णन है जो सृष्टि और मानव के विनाश का कारण है

युद्ध वह दानव धरा पर
लोह के पुर में सजाकर।
जो भयंकर रूप अपना
नाश का होता रचाता। (पृष्ठ ५१)

जिसका परिणाम

नाश के ज्वालामुखी पर
बैठकर फिर मृत्यु गाता।
सभ्यता के शिखर गिरते
धूल में मिलते बनाए।
और संस्कृतियाँ मनुज की
आग में जल राख होती।
किन्तु वह मानव
न फिर भी हारता है। (पृष्ठ ५१)

यहाँ श्रद्धा ने कहा कि वह वासना में रत है। मानव में कर्म का अहम है। यही विनाश का कारण है जिसका उपाय ज्ञान का समन्वय है

मानव धरा पर मुक्त गगन में
वासना से कर समन्वय
कर्म मार्ग—ज्ञान का अमृत बनाए। (पृष्ठ ५४)

चतुर्थ सर्ग में मानव के कर्म-क्षेत्र का वर्णन है जिसमें श्रम की महत्ता की व्यंजना युगानुरूप हुई है

कर्मशील बन कर संसृति का
मैं शृंगार किया करता हूँ।
अपने पौरुष से निसर्ग में
मैं सौन्दर्य अमित भरता हूँ।
धरती मेरे श्रम अंकुर से
सजी में माला कल्यानी।
हरी डालियाँ ने वसन्त से
झूम झूम मधु स्वर में गातीं। (पृष्ठ ४४ ४६)

मानव के सृजन गौरव की स्थापना इस सर्ग की उल्लेखनीय विशेषता है

जन्म लिया मैंने संस्कृति का
काव्य कला संगीत बनाये।
पाषाणों में प्राण डालकर
मैंने नभ के गान सुनाये।
तिल तिल कर मर मर कर मैंने
गतिशीलता ने जीवन पाया।
मेरा चिन्तन मनन विवेचन
कितने ही दर्शन बन आया। (पृष्ठ ४७)

मानव ने माना कि वह परम्पराओं का निर्माता है असीम शक्ति का अनन्त भण्डार है मोहनगर और रजतपुर को ध्वस्त कर सकता है धरा को धूलि में मिला सकता है अणुओं का शासन स्वर्ण लोक से हटा सकता है वासना के अञ्चल में चिर प्रकाश भी भर सकता है किन्तु

फिर क्या मेरा गौरव मुझ से
स्पर्धा सा करता फिरता है?
आज अनागत के नेत्रों से
मेरा क्या अन्तर रचता है (पृष्ठ ४८)

सब श्रद्धा ने मानव को परिस्थिति-बोध कराया। श्रद्धा ने कहा—मानव जीवन का ध्येय अर्थ और काम नहीं है भौतिकता भी तृप्ति नहीं दे सकती। जीव जगत की नश्वर वस्तु है फिर उस मृत्यु से भय क्या? जीवन के साधना का अन्त मृत्यु से सम्भव क्या? अपार वैभव पाकर भी हृदय में शान्ति क्या? जीवन समरागिनी है समरसता ही जीवन की गीतात्मकता है

जीवन तुझसे स्नेह माँगता
तू उसको देता है ज्वाला।
चिन्ता के सोपानों से चढ़
पीता विकृत बुद्धि की हाला।
भूल गया तू तृष्णा में जग
जीवन की शीतल समरसता।
दौड़ रहा जड़ता के पीछे
सुप्त हुई जाती चेतनता।
मुक्त न भय से मुक्ति मिलेगी
जब तक त्रिपुरा के अधीन तू।
कर्म वासना ज्ञान समन्वय
कर न सकेगा इन तीन तू। (पृष्ठ ६५)

तभी बुद्धि आ गयी। बुद्धि का संग पाकर मानव ने सोचना प्रारम्भ किया—

बुद्धि प्रिया मेरी परिणीता
मेरे जीवन का सम्बल है।
इसका त्याग करूँ मैं कैसे
यह मेरे मन की हलचल है। (पृष्ठ ६६)

आगे सारथा में कतिपय प्रगीत हैं। विस्तारभय के कारण उनकी प्रथम पंक्तियाँ ही उद्धृत हैं

१ तुम्हारे राग में अपना प्रिये! मैं स्वर मिलाऊँगा। (पृष्ठ ७६)
२ प्रिये चलो जीवन के मधुवन में जो वासन्ती फूल खिला दें। (पृष्ठ ८०)
३ स्वर लहरी के साथ रहे जो वह मधुपान मधुर होता है। (पृष्ठ ८२)
४ इस पतझड़ में क्या मतलब सरस मधुमास लाये हैं। (पृष्ठ ८४)

इस प्रकार गान गान बुद्धि के साथ मानव भ्रमण करता रहा। फिर थक कर जब उसने बुद्धि से उसके वक्षस्थल की सरस छाया की याचना की तो बुद्धि ने कहा

हे मनुज! मुझको कभी
तुम किसी भी बिन्दु पर या रोक कर
पा नहीं सकते अटल विश्राम कर।
तर्क के पथ पर सदा मैं घूमती
वक्ष में मेरे सदा तुम बिन्दु से
बद्ध बनकर देख सकते हो मुझे

किन्तु मेरी परिधि तो निस्सीम वह
है जहाँ पर बिन्दु का स्थल न कोई भी कहीं !
चाहते हो साथ रहना
त्याग दो तो बन्ध को
और आ मुझमें समाओ
नष्ट कर अस्तित्व निज । (पृष्ठ ८८)

मानव यह सुनकर चकित हो गया । बोला

बुद्धि ! अब समझा तुम्हारा भेद सब
तुम मुझे अनुचित दिशा दिखला रही
कर्म मेरा ध्येय
सुर का ज्ञान है
वासना है भोग्य असुरों का प्रिय । (पृष्ठ ८९)

मानव ने कहा मैं कर्म—मेरा ध्येय कर्म है । तुम मुझे ज्ञानों पर अधिकार दिलाना चाहती हो जो मेरे लिए असम्भव है । मैं अपने अस्तित्व का विलय त्रिगुण में नहीं कर सकता । मानव ने यहाँ तक कह दिया

मैं तुम्हें भी साथ रखना चाहता
किन्तु श्रद्धा के बिना मुझको प्रिय
तुम अकेली तो नहीं स्वीकार हो । (पृष्ठ ९०)

किन्तु बुद्धि ने यह स्वीकार न किया

किन्तु मैं हूँ बुद्धि
मैंने तो समन्वय को कभी
मार्ग अपनाया नहीं है आज तक ।
पास श्रद्धा के पहुँच कर भी मुझे
बिन्दु पर रहना नहीं अच्छा लगा ।
तुम मुझे एकान्त में आये बिना
पा नहीं सकते ।
मनुज ! भ्रम त्याग दो । (पृष्ठ ९०)

बुद्धि के उत्तर से मानव कांप गया । उसने चीखकर कहा कि मुझे भूमि पर ही रहने दो । मैं यहीं कितना शान्त और अनन्य हूँ । किन्तु बुद्धि ने कहा

पर असम्भव हो गया
लौटकर आना यहाँ से भूमि पर

जीवन तुझसे स्नेह माँगता
तू उसको देता है ज्वाला।
चिंता के सोपानों से चढ़
पीता विकृत बुद्धि की हाला।
भूल गया तू तृष्णा में जल
जीवन की शीतल समरसता।
दौड़ रहा जड़ता के पीछे
सुप्त हुई जाती चेतनता।
पुन न भय से मुक्ति मिलेगी
जब तक त्रिपुरों के अधीन तू।
कर्म वासना ज्ञान समन्वय
कर न सकेगा इनसे तीन तू। (पृष्ठ ६५)

तभी बुद्धि आ गयी। बुद्धि का संग पाकर मानव ने सोचना प्रारम्भ किया—

बुद्धि प्रिया मेरी परिणीता
मेरे जीवन का सबल है।
इसका त्याग करूँ मैं कैसे
यह मेरे मन की हलचल है। (पृष्ठ ६६)

आगे सारथी के कतिपय प्रमगीत हैं। विस्तारभय के कारण उनकी प्रथम पंक्तियाँ ही उद्धृत हैं

१ तुम्हारे राग में अपना प्रिये! मैं स्वर मिलाऊँगा। (पृष्ठ ७६)
२ प्रिय चलो जीवन के मधुवन में दो वासन्ती फूल खिला दें। (पृष्ठ ८०)
३ स्वर लहरी के साथ चल जो वह मधुपान मधुर होता है। (पृष्ठ ८२)
४ हम पतझड़ से क्या मतलब सरस मधुमास लाये हैं। (पृष्ठ ८४)

इस प्रकार गीत गाते बुद्धि के साथ मानव भ्रमण करता रहा। फिर थक कर जब उसने बुद्धि से उसके वक्षस्थल की सरस छाया की याचना की तो बुद्धि ने कहा

हे मनुज! मुझको कभी
तुम विमा भी बिन्दु पर या रोक कर
पा नहीं सकते अटल विश्राम वह।
तर्क पथ पर सदा मैं घूमती
वक्ष में मेरे सदा तुम बिन्दु से
भग्न बनकर दग्ध सकते हो मुझ

किन्तु मेरी परिधि तो निस्सीम वह
है जहा पर बिन्दु का स्थल न कोई भी कहीं ।
चाहते हो साथ रहना
त्याग दो तो केन्द्र को
और आ मुझमे समाओ
नष्ट कर अस्तित्व निज । (पृष्ठ ८८)

मानव यह सुनकर चकित हो गया । बोला

बुद्धि ! अब समझा तुम्हारा भेद सब
तुम मुझे अनुचित दिशा दिखला रही
कर्म मेरा ध्येय
सुर का ज्ञान है
वासना है मात्र असुरो को प्रिय । (पृष्ठ ८९)

मानव ने कहा मैं कर्म—मेरा ध्येय कर्म है । तुम मुझे ताना पर अधिकार दिलाना चाहती हो जो मेरे लिए असम्भव है । मैं अपने अस्तित्व को विलय त्रिपुर में नहीं कर सकता । मानव ने यहा तक कह दिया

मैं तुम्हे भी साथ रखना चाहता
किन्तु श्रद्धा के बिना मुझको प्रिय
तुम अकेली तो नहीं स्वीकार हो ।

किन्तु बुद्धि ने यह स्वीकार न किया (पृष्ठ ९०)

किन्तु मैं हूँ बुद्धि
मैंने तो समन्वय का कभी
मार्ग अपनाया नहीं है आज तक ।
पास श्रद्धा के पहुँच कर भी मुझे
बिन्दु पर रहना नहीं अच्छा लगा ।
तुम मुझे एकान्त में आये बिना
पा नहीं सकते ।
मनुज ! भ्रम त्याग दो । (पृष्ठ ९०)

बुद्धि के उत्तर से मानव काप गया । उसने चीखकर कहा कि मुझे भूमि पर ही पहुँचा दो मैं यहाँ कितना ज्ञान और असहाय हूँ । किन्तु बुद्धि ने कहा

पर असम्भव हो गया
लौटकर जाना यहाँ से भूमि पर

एक क्षण म देवता दानव यहाँ
छन्न वार महा सग्राम ह।
लौह क जो अस्त्र मैंने दे तुम्हे
अग्नि का आश्रय दिया था भूमि पर
आज लौहपुर के न्याय स
छीन उनको हो चुके असहाय तुम।
और मुझको भी उन्हीं का साथ ?
रजतपुर तक युद्ध म
करना पडेगा विवश हो। (पृष्ठ ६१)

बुद्धि ने कहा—म अपनी उपेक्षा का देवों स प्रतिशोध लूंगी। अत तुम भी दानवों का साथ दो। और यदि मेरी आज्ञा न मानोगे तो तुम्हें असहाय छोड कर म चली जाऊंगी तथा मनु द्वारा निर्मित समस्त सृष्टि का सहार होगा। मानव विषम परिस्थिति के द्वन्द्व म फसा था

भ्रात मानव चीखता था
रो रहा उद्भ्रान्त होकर—
बुद्धि! मेरी बुद्धि! ओ मेरी प्रिये।
तुम मुझ असहाय छोडो मत यहाँ।।
म करूगा अब वही जो चाहती
राग म मिलना पडे चाहे मुझ मेरी प्रिये। (पृष्ठ ६३)

इस प्रकार मनुज बुद्धि पर आसुरी तमस छा गया। वह विनाशी हो गया। उसम मानव सस्कृति की सभी विपदाए आ गयी। फिर युद्ध हुआ। देव और दानव का कुछ नहीं बिगडा। मानव सृष्टि का विध्वस हो गया

किन्तु उनका परिणाम नहीं कुछ क्योंकि वासना सरि म।
असुर रोग जीवित हो उठते बार बार करते थे।
देव नहीं मरते क्योंकि व अमर जीव समृति क।
अप्सरियों का छल भाग व जाय स्वर्ग नगर म।
किन्तु मनुज की सृष्टि धरा पर बढ बुद्धि का राई।
निर्माणों का मन गाव पर अविरल अत्र बनाता।

(पृष्ठ १०५)

तब बुद्धि का छोडा मानव शिशु क समान सिसक रहा था और श्रद्धा को पुकार रहा था

"दूर बुद्धि का छोड़ आज जो
शिशु सा सिसक रहा था
श्रद्धा ! श्रद्धा ! का पुकार था
गूंज चतुर्दिक भरती। (पृष्ठ १०६)

तभी मानव की प्रार्थना पर ज्योतिवसना श्रद्धा कैलास शिखर से आयी। उसने मानव को जीवन का रहस्य समझाया। वह रहस्य था आत्मानन्द का उपलब्धि का। वह भोग और तन का नहीं वरन सूक्ष्म भाव विषय है जिसके समझने पर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। उस समझने के लिए दर्शन और विज्ञान की भी आवश्यकता नहीं रहती। उस आनन्द का विश्लेषण ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। उसके अनुगमन में बुद्धि सहाय नहीं बन सकती। श्रद्धा ने कहा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् ही जीवन के शाश्वत मूल्य हैं। बुद्धि ने ही तुम्हें विचलित किया है

या आतंक अथ आडम्बर
तुम्हें बुद्धि ने देकर
शून्य अन्यम् का दास बनाया
सत् शिव सुन्दर खोकर। (पृष्ठ ११६)

और—

महानाश के पहले मैंने तुम्हें सचेत किया था।
शिव और उसकी महाशक्ति का तुमको ज्ञान दिया था।
समझाती हूं आज तुम्हें फिर तुम उसको पहचानो!
आस्तिक बनो आस्था लेकर भेद सृष्टि का जानो।
(पृष्ठ ११७)

श्रद्धा ने कहा कि देव-दानव के संग्राम में भी त्रिपुर जल नहीं पाया। क्योंकि देवों ने ज्ञान बल ही लगाया था। मानव ! तुम हतचेतन मत हो। देव भी त्रिपुर ध्वंस के लिए प्रयत्नशील हैं। मानव श्रद्धा की वाणी से सजग हो उठा। उसकी क्लान्त मुद्रा शान्त हो गयी

यही हमारा ज्ञान पराजित
साहस और पराक्रम।
है शिव अमरनाथ की सुषमा
तम में डूब रही है।
नाश करो या तो त्रिपुरा का
या फिर सृष्टि प्रलय हो।

हार दनुज से फिर हताश हो
शरण तुम्हारी आये। (पृष्ठ १२५)

तभी एक वाणी गूंजी कि जिसमे ज्ञान और कर्म विभाजित हैं उसे शिवत्व प्राप्त नही हो सकता। देव दानव और मानव अपनी अपनी लक्ष्य साधना मे भ्रष्ट है। इसलिए ब्रह्मा भी सृजन विधान मे सफल नही हो पा रहे है।

देवताओं ने समवेत स्वर से शिव और शक्ति की प्रार्थना की—

विश्व विधाता हमें त्राण दो
दनुज त्रिपुर के भय से। (पृष्ठ १२२)

तभी शक्ति ने त्रिपुर सहार का आश्वासन दिया—

अमर सुनो सहार त्रिपुर का करने शिव उद्यत है।
सावधान होकर तुम उनके साथ समर मे जाओ॥
पृथ्वी का रथ चक्र सूर्य शशि
अश्व वेद हो चारो।
ब्रह्मा उनके बन सारथी
गति भू अम्बर द्यौ मे।
शिव होगे मध्य मे करने नाश त्रिपुर का।
अपने त्रिपत्री रूप विष्णु को ज्योतिबाण बनाकर।
(पृष्ठ १३३ ३४)

शक्ति के इस स्वर से समृति मगलमयी हो गयी। प्रकृति मे उल्लास छा गया। श्रद्धा ने मानव को जागरण के गीत सुनाये। सम्पूर्ण नवम सर्ग मे उद्बोधन गीतो की योजना है।

दशम सर्ग मे शिव ने सृजन-कर्म मे लीन ब्रह्मा को सारथी बनाकर रथारूढ हो त्रिपुर दाह किया। शिव के आलोक शर ने त्रिपुर-नाश कर दिया। पृथ्वी पूर्ववत ज्योति चक्र से चलने लगी। प्रकृति की नूतन सुषमा से मुक्त सृष्टि सृजन हुआ। मानव भूमि पर ज्ञान कामना और कर्म का समन्वय हुआ। सृजन की यह सुन्दर वेला था

मनुज रहा था देव
श्रद्धा रचती मोद महोत्सव
बुद्धि अनुसरण करती
अब काम औ मोक्ष था
आज नहा थे पथक मार्ग था
उनका समरस करता। (पृष्ठ १५२)

एसा सृष्टि म मानव क प्राणा म अथ का पिपासा न थी वह शुष्क बुद्धि माग का अनुचर न था। शस्त्रा के बल पर विवक खोकर वह रण न छेड़ता। वह श्रद्धा क मस्तक पर चलकर भू का ही स्वग बना रहा था। सिन्धु को वह रत्नराशि के लिए हा टगता था। मानव का निजि वयक्तिक न हाकर सामाजिक मगन और सुख-समृद्धि का कारण थी। वह भौतिक निर्देशन म न रहकर आत्मिक आदेश मानता था। उसके समाज म वभव की वृद्धि थी। बुद्धि और वासना स वह श्रद्धा की पूजा करता था। उसकी वाणी म प्राथना भाव म समपण जीवन क हर काय म नीति और पवित्रता थी

वाणी म प्रायना समपण भरा भाव उसके।
जीवन क हर एक कृत्य म नीति और पावनता। (पष्ठ १४८)

उसकी वाणी की कल्पना के स्वर यह थ—

सबके हित की कम कामना।
ज्ञान साथ दे उसका।
जीवन रथ का सफल सारथी
बनू शिवम् के पथ पर। (एकादश सग पष्ठ १६०)

इस प्रकार 'सारथी महाकाव्य म त्रिपुर रूपक की पौराणिक इतिवृत्तात्मक पष्ठभूमि पर विराट कल्पना के माध्यम से युग-जीवन क सघष की सामयिक व्याख्या की गयी है। सारथी महाकाव्य म मानव की घोर बौद्धिकता का निषध और अतिवाद परिणामो की विडम्बना की ओर सकेत किया गया है। आज का मानव बुद्धि वभव एव विज्ञान क बल पर नक्षत्र मण्डलो के वेधन के लिए प्रयत्नशील है। अणु अस्त्रो क अनुसधानो द्वारा विनाश क उपकरणो क सयोजन म रत है—उसक परिणाम की ओर भी सारथीकार ने, अनागत की कल्पना कराकर इगित किया है। साथ ही जीवन क शाश्वत मूल्यो (सत्यम् शिवम् सुन्दरम्) के अनुसरण और प्रवत्तियो (इच्छा, ज्ञान क्रिया) के समन्वय पर बल दिया है। कामायनी और पावती महाकाव्यो म भी इसी प्रकार क भव्य प्रयास है किन्तु वचारिक दृष्टि म त्रिपुर रूपक की युग जीवन क वर्तमानिक विकास क्रम क सन्दभ म चितन की परिणति निश्चय ही सारथी महाकाव्य म 'कामायनी और पावती स भी आग है। उसम परम्पराओ क अनुमोदन म प्रगति का पथ प्रदर्शित किया गया है। सारथी महाकाव्य की विचारणा निश्चय ही महत्त्वपूण है। उसम वतमान जीवन क लिए सन्देश है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो की सृजन-परम्परा म सारथी एक नवीन और महत्त्वपूण उपलब्धि है।

'दमयन्ती' महाकाव्य का कलात्मक सौन्दर्य

'दमयन्ती' महाकाव्य का कलात्मक सौन्दर्य

भारतीय महाकाव्य की परम्परा को विकसित करने में पौराणिक वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। महाकाव्यकारों ने पौराणिक आख्यानों (कथातत्त्व) के साथ-साथ पुराणों की शिल्प विधि (शैलीतत्त्व) और वैचारिक निधि (विचारतत्त्व) को भी ग्रहण किया है। संस्कृत साहित्य में पौराणिक पात्रों और आख्यानों के आधार पर उत्कृष्ट कोटि की नाट्य रचना और काव्य-सृजन हुआ है। संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कुमारसम्भव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपाल वध एवं नैषधीय चरित्र भी पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित हैं। पौराणिक शैली के महाकाव्यों की अक्षुण्ण परम्परा पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में भी मिलती है।[1] हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य रामचरितमानस तो पौराणिक महाकाव्य है ही, भक्ति-परम्परा के अन्य महाकाव्यों पर भी पुराणों का प्रभाव स्पष्ट है। आधुनिक-युग में भी पौराणिक उपाख्यानों एवं पात्रों पर अनेक महाकाव्यों की रचना हुई है। उदाहरण के लिए वर्तमान युग के प्रियप्रवास, साकेत, साकेत-संत, वैदेही वनवास, कृष्णायन, रघुवंश, अंगराज, 'रश्मिरथी', सेनापति कर्ण, पार्वती, जयभारत, एकलव्य, 'उर्मिला', कैकयी, 'तारक वध', कुरुक्षेत्र, उर्वशी, रामराज्य, 'श्रीरामचन्द्रोदय' आदि महाकाव्यों की रचना का आधार पुराण ही है। इसी परम्परा की रचना श्री ताराचन्द हारीत रचित 'दमयन्ती' महाकाव्य है। दमयन्ती महाकाव्य का कथात्मक आधार सुप्रसिद्ध नलोपाख्यान है। महाभारत के विभिन्न आख्यानों में नल-दमयन्ती उपाख्यान सत्य, धर्म और सतीत्व के व्यावहारिक आदर्श का पावन प्रतीक है। इसीलिए नलोपाख्यान को लेकर विपुल साहित्य की रचना हुई है। संस्कृत में श्रीहर्ष (१२वीं शताब्दी) का नैषधीय चरित्र, त्रिविक्रम भट्ट (१०वीं शताब्दी) कृत नलचम्पू[2] वामनभट्ट (१५वीं शताब्दी) कृत नलाभ्युदय[3] प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। सन् १९६० में

---

[1] डॉ० शम्भूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, अध्याय २
[2] वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८६८
[3] वही, पृ० ८६६

पुराहित प्रतापनारायण कविरत्न (जयपुर निवासी) न १६ सर्गों का नलनरेश नामक महाका य लिखा था।[४] नलनरेश महाका य म का यशास्त्रीय लक्षणा का सतक अनुपालन हात हुए भी उसम महाका यात्मक औदात्त का अभाव है। सम्पूण का य म इतिवत्तात्मकता का प्राधा य है। छायावाद युग की रचना हाते हुए भी नलनरेश युग की का यात्मक प्रवत्तिया के अनुरूप नहा है। इस का य के लगभग २५ वष बाद प्रकाशित हाने वाली कृति दमय ती महाका य म निश्चय ही कवि ने मौलिक प्रसगोदभावनाए की ह। हारीतजी ने नल दमयन्ती के प्राचीन आख्यान का युग की आवश्यकताओ के अनुरूप नियाजित किया है। इस काव्य म नल और दमयन्ती के चरित्र राष्ट्रीय जीवन का सांस्कृतिक आदश प्रस्तुत करते ह।

दमयन्ती महाका य म रूढ का यशास्त्रीय लक्षणा का सामा यत निर्वाह हुआ है किन्तु साग्रह या प्रयत्नज नहीं स्वाभाविक रूप म। सम्पूण का य १४ सर्गों म विभाजित है। कथानक पुराणसम्मत है। नाटकीय सधियो की सफल योजना है। बीच बीच म अवा तर कथा प्रसग भी प्राप्य है। महाका य का नायक राजकुमार नलनरेश ह। यद्यपि दमय ती के चरित्र विश्लेषण की दष्टि प्रमुख होने स नायिका का यक्तित्व ही अधिक मुखरित हुआ है। प्राकृतिक सौन्दय और जीवन के विभिन्न यापारो और परिस्थितिया का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। पौराणिक इतिवत्त होने के कारण अतिप्राकृत कथातत्त्वा की भी अधिकता है। अलकार विधान भाषा सौष्ठव रूप-सगठन और शिल्प प्रयोग परम्परित और नवीन दोनो ही ह। मगलाचरण छन्द विधान (सगात छन्द परिवतन) चतुवग फल प्राप्ति सज्जन स्तुति दुजन निन्दा आदि महाका य रूढिया का भी विधिवत् पालन किया गया है। रस-परिपाक और भाव चित्रण कौशल भी सुन्दर बन पडा है। करुण रस के कतिपय प्रसग बड हृदयद्रावक है। साराश त दमयती महाका य का यशास्त्रीय लक्षणा की दष्टि से सफल रचना है। कि तु किसी भी महाका य का उपयुक्त मूल्याकन परिवर्तित काव्यशास्त्रीय मानदण्डा और युगीन का यादर्शों की दष्टि स महत्त्वपूण नहा अपूण है। आज के महाका यकार का दायित्व युग जीवन की चेतना का आत्मसात कर जीवन्त कथानक महत्त्वपूण नायक गरिमामयी उदात्त शैली और गम्भीर अभि यजना शली के माध्यम स महदुद्देश्य की सिद्धि है। हमारे युग जीवन की समस्याओ का सास्कृतिक समाधान और प्रश्नो का निदान आज के महाका यकार की चेतना के मूल स्वर होने चाहिए। विज्ञान युग के

---

४ डा० शकुन्तला दुबे काव्य रूपो के मूल स्रोत और उनका विकास पृ ७४

आर्णविक वैभव में काव्य रचना एवं सांस्कृतिक प्रयास बनकर ही अपना अस्तित्व रक्षण कर सकता है। अन्यथा प्राचीन आख्यानों की पुनरावृत्ति आत्म प्रवंचना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। काव्य को संस्कृति की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित करने के लिए सहज काव्य प्रतिभा, वक्रता, आत्म प्रेरणा, समाज चेतना और जीवन साधना की आवश्यकता होती है, जैसी कि कविवर जयशंकर के व्यक्तित्व में थी। इसीलिए वह यन्त्र-युग की भस्म और परमाणु-युद्ध के भय से आक्रान्त मानवता को कामायनी, मनोभावों के माध्यम से समरसता और आनन्दवाद का अमर सन्देश प्रदान कर सके। इन्हीं प्रतिमानों के आधार पर दमयन्ती के महाकाव्यत्व का परीक्षण करेंगे। मूल्यांकन के लिए हमारे पास तीन प्रमुख रचना उपकरण हैं—कथानक, शिल्प विधि और वैचारिकता। प्रश्न यह है कि इन उपकरणों के संगठन में हारीतजी ने किस सीमा तक पूर्ववर्ती लेखकों का अनुगमन किया, कहाँ तक वह असम्पृक्त रहे और किस कोटि की मानसिक सूझ बूझ का उपयोग कर उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि दमयन्ती महाकाव्य का कथात्मक आधार प्रसिद्ध पौराणिक वृत्त (नलोपाख्यान) है। अतः वस्तु अनुत्पाद्य है। किन्तु वस्तु के संयोजन एवं चयन में कवि की कल्पनाशक्ति सर्वथा श्लाघनीय है। घटना-व्यापार और सर्ग विधान में परस्पर अन्विति और पूर्वापर प्रसंग सम्बद्धता है। कथारम्भ युधिष्ठिर और पुरोहित के संवाद से होता है। धर्मराज अपनी व्यथा की चर्चा कर स्वयं को संसार का सबसे अभागा और दुर्दैवग्रस्त व्यक्ति कहते हैं। तभी पुरोहित नलराज की कथा का आरम्भ करते हैं। काव्य के आरम्भ की शैली पौराणिक है। काव्य का मंगलाचरण मातृभूमि की वन्दना से हुआ है जिसमें कवि की राष्ट्रीय भावना प्रतिफलित होती है :

> 'धन्य धन्य हे अम्ब भारती तुम हो धन्या।
> हे माँ! तुम सी नहीं विश्व में अन्या॥
> मुकुट तुम्हारा गिरिवर से शोभित होता है।
> पाद तुम्हारे अम्ब स्वयं अम्बुधि धोता है॥'
>
> (प्रथम सर्ग पृ० १)

तदनन्तर कवि विश्व जीवन की परिस्थितियों का उल्लेख करता हुआ निर्माण की प्रतिज्ञा करता है।

मानसकार तुलसी की भाँति कवि ने आत्म कवि-कल्पना, हेय प्रदर्शन, रचना उद्देश्य आदि रूढ़ियों का निर्वाह भी किया है।

धन्य ! महाकवि व्यास ! प्रणति तुमको शत शत है
धन्य लेखनी मुने ! तुम्हारी निरवाल्ल है।
× × ×
किन्तु हुए जो मनुज विपद में पड़ ऊन से
पढ़कर यह आख्यान अभाव भरे यदि उनका।
हूँगा मैं कृतकृत्य दुःखौघ हरे यदि उनका।।
(प्रथम सर्ग पृ० ६)

कथानक में वास्तविक गति पंचम सर्ग के उपरान्त आती है। सुरपति और अन्य देवगण नल को सम में दमयन्ती के स्वयंवर के लिए जाते देखकर मार्ग में उससे इस बात का वचन ले लेते हैं कि वह उनका दूत बनकर दमयन्ती के पास जाय और उसे देवताओं का वरण करने के लिए उद्यत करे। सत्यव्रती और धर्मनिष्ठ नरेश धर्म संकट में पड़ जाता है। मन संघर्ष करता परिस्थिति द्वन्द्व से जूझता वह दमयन्ती के पास जाकर सभी देवताओं के वैभव का विराट वर्णन कर दमयन्ती से देवों का वरण करने का आग्रह करता है। किन्तु दमयन्ती दृढ़प्रतिज्ञ रहती है। तदुपरान्त स्वयंवर हो जाता है। नल ही दमयन्ती को पाते हैं। कलि इसे स्वापमान समझकर नरेश के सर्वनाश पर तुल जाता है। फिर द्यूत क्रीडा में छद्म से नल को राज्य से निर्वासित होना पड़ता है। आगे की सारी कथा गतानुगतिक है। कथानक में पौराणिक मान्यताओं को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया गया है। जैसे कलि में कठिन विपत्ति में भी नरेश को धर्मनिष्ठ तथा दमयन्ती को कर्त्तव्यपरायण चित्रित किया गया है। सत्य धर्म और कर्त्तव्य की त्रिवेणी का समस्त काव्य के कलेवर में अपूर्व प्रवाह है। नल का व्यक्तित्व भी महान है—

'देव सम उसका कान्त शरीर सकल गुण युक्त धीर वर वीर
वृहद युग लोचन विस्तृत भाल युगल भुज हैं आजानु विशाल।
बने वे बन के अनुपम काय वक्ष हिम गिरि सा है निर्लेप
हृदय है अतुल धैर्य का स्थान और ग्रीवा है सिंह समान।
(द्वितीय सर्ग पृ० २)

दमयन्ती के नख शिख-वर्णन में उपमाएं परम्परित ही हैं—
नाक शुक सी वक्त्र मध्य रदावली
भरे रदों ज्यों पंक्ति में मुक्तावली।
चिबुक परम मनोज्ञ विमल भाल है
अलि यों पर पक्ष्म को घट जाल है।

पूर्ण मुख पूर्णेन्दु सा लगता अहा
है सुधा सौन्दय जो बरसा रहा।

(प्रथम सग पृ० ६ १०)

नख शिख वणन की अपेक्षा प्रकृति वणन म कवि अधिक सफल रहा है। प्रकृति को मानवीय उपदेशात्मक उद्दीपन आलम्बन आदि सभी रूपो म चित्रित किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

चार घडी रात न थे वदन हुआ पीला सा
पृथ्वी अचल पर हरित हुआ गीला सा।
वह सुरभिसारिका गयी चिह्न य छोड
हतप्रभ से तारे उसे पकडने दौडे।
मूच्छित सा विधु हो गया न वह सह पाया
जा पहुचा मन्द समीर देख मुसकाया।
वह व्यजन डुलाने लगा गन्ध से सीचा
हो विवश तिमिर ने हाथ धरा से खीचा।
उदयाचल पर रवि चढ दृष्टि दौडायी
तब गीली आखें उन्ह धरा की पायी।
मुख पोछ लिया कर बढा धरा मुसकाया
खोयी सी अपनी शक्ति शीघ्र ही पायी।

(चतुथ सग पृ० ५८)

प्रकृति के ऐसे ही सुन्दर और सुरम्य दृश्य काव्य के कलेवर म आद्योपान्त उपलब्ध है। निषध देश एव कुण्डिनपुर आदि के वणन म कवि ने विशेष कौशल का परिचय दिया है।

भाषा के सम्बन्ध म प्रस्तुत काव्य के प्रस्तावना लेखक सुप्रसिद्ध कवि श्री गोपालशरण नागर जी का यह कथन सत्य है— भाषा पर तो कवि का ऐसा पूर्णाधिकार है कि वह उसे जब जिस रूप म चाहे मोड लेता है। प्रकृति चित्रण म उसकी भाषा संगीतात्मक और कोमल हो जाती है सवादो म तिक्त एव प्रभावपूर्ण दिखायी देने लगती है और तथ्य वणन म सहज भाव से गज गामिनी। कही कुछ प्रयोगो म पुनरुक्ति दोष अवश्य आ गया है। नदी शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। अर्क तरणि के रूपक की योजना कवि ने इस पन्द्रह बार म भी अधिक की है जिससे इस प्रयोग म नीरसता आ गयी है। छन्द विधान विविधता लिये हुए है। सस्कृत शब्दो का प्रयोग भी खूब हुआ है। काव्य म अनेक स्थलो पर नाटकीय ध्वनो के सफल प्रयोग अलकार

विधान एव वाग्वदग्ध्य के कारण ममस्पर्शी रचना की योजना हो सकी है। अन्य रसो के प्रासगिक सयोजन के साथ साथ करुण रस की अपूर्व धारा काव्य के उत्तरार्द्ध में प्रवहमान है। द्यूत-क्रीडा प्रसग के पश्चात यद्यपि सभी प्रसग कारुणिक हैं किन्तु दाम्पत्य सग में तन्मयता की पराकाष्ठा वन म साथ छोड़कर चल जाने पर उसका विलाप हृदयविदारक बन जाता है। पतिपरायण दमयन्ती के चरित्र की यह स्थिति सीता सावित्री राधा यशोधरा किसी भी नारी की सकटापन्न अवस्था से अधिक गम्भीर एव दुःसह है। कवि ने वर्णन में इस प्रसग का मनोवैज्ञानिक एव परिस्थितिजन्य समाहार किया है। यहाँ दमयन्ती के चरित्र की महानता स्पष्ट हुई है।

काव्य म भाग्यवाद एव दैववाद का स्वर बडा प्रबल रहा है। नल की द्यूत क्रीडा नलानुज पुष्कर का दुर्व्यवहार विरह व्यथा एव तथावत् अन्य घटनाओ को कवि ने भाग्य की तुला पर तोलने का प्रयास किया है। पौराणिक इतिवृत्तात्मक प्रसगो के यह भले ही अनुकूल हो किन्तु विज्ञान युग के प्रबुद्ध पाठक को द्यूत-क्रीडा नल का व्यसन ही लगेगा न कि भाग्य की विडम्बना। काव्य म पात्रो की प्रवत्तियो का युगानुरूप बौद्धिक समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया है। गाधीवादी विचारधारा के अहिंसा प्रेम अस्पृश्यता निवारण समानता आदि सिद्धान्तो का सफलता के साथ निर्वाह हुआ है। साकेत की भाँति यहाँ भी राजकुलीन पात्रो ने प्रजातन्त्र के महत्त्व को समझा है। नल के ये शब्द

> है प्रजा धरोहर मात्र राज्यसिंहासन
> सम्राट म अत्युच्च त्याग का आसन।

युग के अन्य नायिका प्रधान महाकाव्यो (प्रियप्रवास साकेत कामायनी उर्मिला वैदेही-वनवास पार्वती नूरजहाँ मीरा झाँसी की रानी उर्वशी आदि) की भाँति प्रस्तुत महाकाव्य (दमयन्ती) म नारी चेतना एव जागरण के महान स्वरो का उद्घोष भी हुआ है। जैसे

> शक्ति की नारी है अवतार
> उससे ही चेतन है ससार।

(द्वितीय सर्ग पृ० ६)

अथवा

> विधि की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि पुरुषत्व यदि है
> उसी शक्ति पर पूर्ण विजय नारीत्व रहा है।
> अबला हो तुम किन्तु विपद म बल हो तुम ही
> विश्व मरुस्थल ह इसम जल हो तुम ही।

(दशम सर्ग पृ० २ ०)

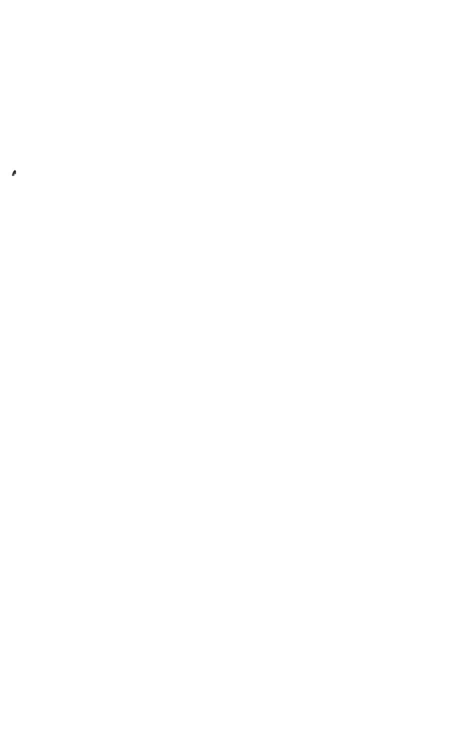
अथवा

'उपभोग्य वस्तु है नारि नवल नर की ?
वह कल्याणी है प्रथम मात भर जग की ।

(चतुर्थ सर्ग २८५)

दमयन्ती के चरित्र विश्लेषण द्वारा लेखक ने वर्तमान युग की नारी चेतना को मुखरित कर एवं आदर्श स्थापन का स्तुत्य प्रयास किया है। युग के विरोधी प्रश्नों के सम्यक समाधान नारी चेतना की अभिव्यक्ति सत्य एवं सतीत्व के धर्मादर्शों की स्थापना सामयिक विचारधाराओं की सफल व्यंजना उदात्त शैली महत् कार्यादर्श एवं जीवन दर्शन की उत्तेजना प्रेरणा निश्चय ही दमयन्ती काव्य की वे विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं जो उस महाकाव्य को पद प्रदान करती हैं। काव्य का सर्वांगीण अनुशीलन कवि की ज्योयमान प्रतिभा की प्रशंसा करने को ही बाध्य करता है। हरिऔधजी हिन्दी की नवान्वित प्रतिभाओं में हैं। भविष्य में भी उनकी काव्य साधना हिन्दी को गरिमापूर्ण कृतियों की उपलब्धि करायेगी ऐसी आशा है।

'रामराज्य' महाकाव्य · रामकाव्य परम्परा की एक उपलब्धि



'रामराज्य' महाकाव्य रामकाव्य परम्परा की एक उपलब्धि

हिन्दी रामकाव्य परम्परा की आख्यायिका का सम्बन्ध प्रमुख रूप से आदि कवि वाल्मीकि कृत रामायण से है। रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य साधना के अमर प्रतीक हैं। ये दोनों ग्रन्थ सहस्राब्दियों से काव्य रचना की प्रेरणा के अक्षय स्रोत रहे हैं। वैसे रामकथा के रूप की उपलब्धि वैदिक वाङ्मय से ही होने लगती है। रामकथा की प्राचीनता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि एतद्विषयक गाथाओं और उपाख्यानों की सृष्टि छठी शताब्दी ई० पू० से ही होने लगी थी।[1] प्रसार की दृष्टि से रामकथा विश्वव्याप्त है।[2] किन्तु रामकथा का सम्यक स्वरूप प्रदान करने का समस्त श्रेय आदि कवि को ही है। विद्वानों का मत है कि—विश्व साहित्य के इतिहास में शायद ही किसी अन्य कवि का प्रादुर्भाव हुआ हो जो प्रभाव की दृष्टि से भारत के आदि कवि वाल्मीकि की तुलना कर सके।[3] संस्कृत के रामकाव्य के कवियों ने तो रामायण को आधार-ग्रन्थ के रूप में ग्रहण किया ही है हिन्दी के रामकाव्य रचयिताओं ने भी प्रेरणा प्राप्त की है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ रामचरित मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने भी आदि कवि के ऋण का आभार स्वीकार किया है। तुलसी के उपरान्त हिन्दी की सम्पूर्ण रामकाव्य परम्परा ने रामायण को कथात्मक आधार के रूप में ग्रहण किया है। हिन्दी में मानस की रचना के अनन्तर रामकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है।[4]

राम के आख्यान को लेकर वर्तमान युग में अनेक काव्यों की रचना हुई है। आधुनिक युग के बहुचर्चित प्रबन्धकाव्यों में रामरसायन, श्रीरामचन्द्रोदय रामचरित चिन्तामणि कौशल किशोर साकेत वैदेही-वनवास साकेत

---

1. हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६४१
2. डॉ० कामिल बुल्के रामकथा उत्पत्ति और विकास
3. हिन्दी साहित्य कोश पृ० ६४६
4. हिन्दी साहित्य कोश, हिन्दी राम साहित्य खण्ड, पृ० ८६, ८६

मन्त उर्मिला कैकयी आदि के नाम उल्लखनीय हैं। वास्तव म राम का चरित्र और कर्तव्य भारतीय जन जीवन की चेतना म आत्मसात हो गया है। राम का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति का अनिवाय विशेषताओं (यथा सत्व शील मर्यादा आस्था पुरुषाथ आदि) का संगम-स्थल है। राम के चरित्र म युग जीवन की आकांक्षाओं को परितृप्त करन और मानव मूल्यों का प्रतिष्ठा करन की अमोघ शक्ति विद्यमान है। इसीलिए राम की जीवन गाथा रामकाव्यों का प्रतिपाद्य रहा है। अधिकांश काव्यों म रामचरितमानस की भांति ही कथा का विकास हुआ ह। हा कथा क प्रस्तुतीकरण और निर्वाह सभी म राम काव्यकारों का दृष्टिकोण भिन्न किंवा मौलिक रहा है। यह कहना अति उपयुक्त होगा कि चरित्र विश्लेषण को केन्द्र बिंदु मानकर इन काव्यों म राम कथा की परिधि विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए साकेत साकेत सन्त उर्मिला वदेही वनवास रावण कैकेयी आदि काव्यों की रचना इनके पात्रों के चरित्र उत्कर्ष के लिए हुई है। आलोच्य महाकाव्य (रामराज्य) इसी परम्परा की रचना है। किन्तु प्रतिपाद्य की दृष्टि स डा० बलदेवप्रसाद मिश्र के रामराज्य महाकाव्य का विशेष महत्त्व है। राम की भांति रामराज्य की परिकल्पना भी बहुत प्राचीन है। रामराज्य हमारे आदर्श राष्ट्र और शासन व्यवस्था का सूचक है। वाल्मीकि और तुलसी के ग्रन्थों म रामराज्य की व्यवस्था के जिस रूप का अकन हुआ है वह शासन-तन्त्र के इतिहास का अद्भुत और अनोखा वस्तु है। डा शम्भूनाथसिंह का मत है— तुलसी न रामराज्य की जो कल्पना की है उसी को महात्मा गांधी न लोकतन्त्र और स्वातन्त्र्य क युग म भी अपना आदर्श और लक्ष्य निश्चित किया।[४] विद्वानों न रामचरितमानस का मुख्य काय और फलागम रामराज्य ही माना है। मानस क महत काय का उल्लख करत हुए डा० शम्भूनाथसिंह न लिखा है कि— रामराज्य की स्थापना को तुलसी न कितना महत्त्व दिया है इसका अनुमान इसी स किया जा सकता है कि रामराज्य का सुख सम्पदा का वणन वाल्मीकिरामायण (उत्तर काण्ड सग ६६) और अध्यात्मरामायण (युद्ध काण्ड २८) म केवल कुछ ही छन्दों म किया गया है जबकि मानस म उसका वणन ११ दोहों (कडवकों) म हुआ है। अत कथा की केन्द्रीय घटना का सम्बन्धता की दृष्टि स राम रावण युद्ध रावण वध और रामराज्य की स्थापना ही मानस का महत्त्वपूर्ण काय है। अस्तु—

---

४ डा शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का उद्भव और विकास पृ० ५६

रामराज्य की धारणा भारतीय संस्कृति और साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपपत्ति रही है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ने इसी महत् कल्पना को 'रामराज्य' महाकाव्य में साकार करने का प्रयास किया है। आज के विश्व-जीवन की अनेक विषम समस्याओं में आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना भी एक है। संसार की सभी शासन प्रणालियों और राज्य की व्यवस्थाओं में लोकतन्त्र को आज सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। किन्तु जनहित की भावना, लोकमंगल की साधना, सामान्य जन की सुख समृद्धि का संवर्द्धन और मानव मूल्यों का संरक्षण इस व्यवस्था के द्वारा कहाँ तक हो रहा है आज विचारणीय है। हम विश्वसरकार (World Government) या विश्वराज्य की कल्पना कर रहे हैं। किन्तु राष्ट्र-राज्यों का रूप अव्यवस्थित है। आन्दोलन और क्रान्तियों के द्वारा सरकारों के तख्ते उलट दिये जाते हैं। व्यक्ति समूह के हितों की अवहेलना कर रहा है और बहुसंख्यकों का शोषण कर रहा है। शासकों और शासितों में संघर्ष चल रहा है। व्यवस्था में सर्वत्र ही दमन, शोषण, स्वार्थलिप्सा, प्रवंचना, षड्यन्त्र और भ्रष्टाचार व्याप्त है। आखिर क्यों? जीवन मूल्यों के विघटन के कारण, राष्ट्रनेताओं के पतन के कारण, शासक और शासित में भाव-साम्य के अभाव के कारण या सत्ताधारी की दुर्नीति के कारण? इस वातावरण में 'रामराज्य' जैसे काव्य की रचना निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। इसे काव्य प्रेरणा और प्रोत्साहन की वस्तु है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या 'रामराज्य' महाकाव्य वर्तमान जीवन की समस्याओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष समाधान प्रस्तुत करता है? क्या उसमें युग के उन्नत बोध का परिनिष्पन्न हुआ है? क्या उसमें व्यवस्थाओं के व्यावहारिक आदर्श रूप का अंकन हुआ है? क्या 'रामराज्य' की रचना सच्चे मानों में रामकाव्य परम्परा को विकसित करने में समर्थ हुई है? अथवा क्या प्रस्तुत सृजन हिन्दी काव्य जगत की उपलब्धि है? इन्हीं परिसन्दर्भों में 'रामराज्य' महाकाव्य का मूल्यांकन हमें अभीप्सित है।

रामराज्य के सृजन की मूल प्रेरणा कवि को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुई थी। काव्य रचना के उद्देश्य में जन-समुदाय का कल्याण और हिन्दी के सौभाग्य की श्रीवृद्धि ही प्रमुख कारण थे, जैसा कि कवि ने इस काव्य के भूमिका भाग में स्वतः स्वीकार भी किया है। निश्चय ही प्रेरणा और लक्ष्य दोनों महान् हैं। 'रामराज्य' के रचयिता ने इन लक्ष्यों को प्राप्त भी किया है।

रामराज्य की धारणा यद्यपि कल्पित विचारणा (Utopia) है। किन्तु

रामकथा की एतिहासिकता उस प्रामाणिकता प्रदान करती है। अन रामराज्य क प्रणता ने रामकथा को ही ग्रहण किया है। कथा का प्रारम्भ उस स्थल स होता है जबकि निर्वासित राम सुमत्र के साथ रथ पर बठकर वन रहे है। इसस पूव के करुण प्रसग (ककेयी का वर याचना और दशरथ मरण आदि) का कवि न सकेत मात्र ही किया है। दसव सग म राम क राज्याभिषक का वणन है और इसा पूव दूसरे से दसवें सग तक परम्परित रामकथा है। काव्य के दो महत्त्वपूर्ण सग ११ और १२ है जिनम क्रमश भारतीया के मानव धम की घोषणा और रामराज्य की व्यवस्था का उल्लेख है। सच पूछा जाय तो कथात्मक दृष्टि से इस काव्य की मौलिक उपलब्धि अन्तिम दो सग ही है। रामराज्य क कथा चयन हतु कवि न प्रमुख रूप स मानस का मुख्य आधार के रूप म ग्रहण किया है। किन्तु कवि की सूक्ष्म कल्पना और सृजन प्रतिभा क कारण इस काव्य म रामकथा अपन नवीनतम परिवश म प्रस्तुत हुई है। मिश्रजी न भूमिका म कहा है कि— कथा का उद्देश्य कवल कथा नहीं किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज्य स्थापना स सम्बन्धित राम क प्रयत्नो पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है। इतिहास म यदि वतमान का प्रतिबिम्ब न हो और भविष्य क लिए प्रेरणा न हो तो उस प्राय काव्य का विषय नहीं बनाया जाता। ग्रथकार एतिहासिक कथानक निवत समय भी अपन युग को कम भुला सकता है? परन्तु हा उसका कतव्य यह अवश्य होना चाहिए कि वह एसा कोई बात न लिख जो उसक कथानक क युग म न फब सक। (भूमिका पृ० ६) स्पष्ट है कि मिश्रजी न रामराज्य महाकाव्य की कथा निर्मिति म इतिहास की परम्पराओ के निर्वाह क साथ साथ युग चतना का भी प्रतिबिम्बन किया है।

रामराज्य क प्रतिष्ठापक और सचालक श्रीराम है। कवि न राम के चरित्र का निरूपण यथार्थदर्शी लोकनायक क रूप म किया है। वह उन्ह युग युग का प्रेरणा का धाम मानता है

अतः युग क नहीं राम तो युग युग क प्रेरणाधाम है।
पूण पुरातन चिर नवीन व भाव यान हृदयाभिराम है॥
(प्रस्तावना पृ)

× ×

राम ब्रह्म हो राम विष्णु हो किन्तु राम नर तो है निश्चय।
युग स्रष्टा हो नहीं आप हो युगकर्ता भी जो निर्भय॥
(सग १२ छन्द ८२)

राम सुमन्त्र के साथ रथारूढ़ वन गमन कर रहे हैं उस अवसर पर उनके मन में विश्वबन्धुत्व के भाव जाग्रत हो रहे हैं

'क्या मेरा बन्धुत्व अवध की सीमा में आबद्ध रहे।
क्या न विश्व का मानव, खग मृग तरु मुझको निज बन्धु कहे ॥
उन्नत भाव है वह मुझको तो इस पथ ने भारत का ध्यान।
भारत भावी हो । भारत का सर्वोन्नमय रहे त्थान ॥'
(प्रथम सर्ग छन्द ६ ७३)

रामचरित के अनेक गायकों ने राम रावण-युद्ध को उत्तर-दक्षिण के संघर्ष का माना है आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का द्वंद्व कहा है और इस विचारधारा का लेकर हमारे देश में बड़ी विषम स्थितियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। दशहरा के अवसर पर उत्तरी भारत के लोग रावण का पुतला जलाते हैं तो दक्षिण वाले राम की प्रतिमा को भी जलाने लगे हैं। मिश्रजी ने रामराज्य महाकाव्य में इस स्थिति का निदान स्वयं राम के द्वारा ही बड़े सुन्दर ढंग से कराया है

इसकी जन जन पावन चिन्मय ग्राम-ग्राम है अवध समान
इसको जन जन स्वजन सुजन है उत्तर दक्षिण एक समान।

× × ×

दक्षिण यदि विकास रहा तो उत्तर की समृद्धि निष्प्राण
सब अवयव हों स्वस्थ समंजस तभी स्वस्थ है पुरुष महान।
किसी समय सम्भव है दक्षिण में भी हों ऐसे आचार्य
उत्तर के जो शिक्षा गुरु हों जो और बन आर्यों के आर्य ॥
किन्तु अभी जो अन्धकार है वहाँ प्रकाश जगाना है।
पुरुष परम पुरुषत्व दान कर वह संस्कृति फैलाना है ॥
(प्रथम सर्ग छन्द २८ ० ८१)

इसी काव्य के अन्य अनेक स्थानों पर भी उत्तर-दक्षिण की एकता का गान किया गया है। उदाहरणार्थ सर्ग ६।२८ १०।११ १०।४७ आदि।

राम के उपर्युक्त कथनों में भारत की, विशेषकर उत्तर-दक्षिण की एकता की भावना है। वे दक्षिण में सांस्कृतिक प्रकाश का प्रसार करने के लिए जाना चाहते हैं। इसी सर्ग में कवि ने विदेशियों की कूटनीति के कारण राष्ट्र की अव्यवस्था तथा ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की सांस्कृतिक प्रगति का उल्लेख किया है। ग्रामीण जीवन के प्रति कवि की अनन्य आस्था है क्योंकि भारत का यथार्थ रूप वहीं रक्षित है।

नगर ग्राम्या से बढ़कर हो वैभव में गुण दोषों में
किंतु धनी हैं ग्राम्य धन्य थे अपने दृढ़ सन्तोषों में ।

(सर्ग १ छन्द ४२)

× × ×

जन आत्मा यदि जग न पायी तो शासन के व्यर्थ सुधार
नगर बन गये गांव सुखाकर तो उस बस्ती को धिक्कार ।
नगर बसें पर साथ ही बन बसाये गांवों को
वह विकास है विकसित करदे जो जन जन के भावों को ।

राम के चारित्रिक शील और आदर्श विचारणा का रूप द्वितीय सर्ग में अंकित हुआ है। राम की मान्यता है कि—नहीं भोग में किंतु त्याग में निखरता जीवन। आधुनिक शिक्षा के रूप पर व्यंग्य करते हुए कवि ने कहा है कि

ज्ञान नक्षत्रों का यदि लिया आप अपने से रहे अजान।
बुद्धि से भरा तन विस्तार किया संकीर्ण हृदय का मान ।।
ग्रन्थ के बाद पन्थ के वाद गया गयी जिनमें मन की शान्ति।
ज्ञान का सार रहा वह कौन भार है वह तो केवल भ्रान्ति ।।

शिक्षा का उद्देश्य यह है कि

कुजन हो सज्जन सज्जन शान्त शांत हों भव बंधन मुक्त ।
मुक्त हो जो के आगे बढ़ करें औरों को भी उन्मुक्त ।
यही शिक्षा का है ध्रुव ध्येय न सच चेतना उसको स्वीकार ।
मनुज की मानवता का न्याय रचा प्रिय ऐसे रुचिर उपाय
यही लक्ष्मण ! शिक्षा उद्देश्य रमा से विकसित जनसमुदाय ।

भारतीय संस्कृति का आधार मानकर विशेषतया सह अस्तित्व और सर्वजन हिताय की घोषणा इस प्रकार की गयी है

नहीं साहन हम कि बढ़ साम्राज्य हमारा
काम्य यही है बढ़े शिवद संस्कृति की धारा
गौर श्याम ताम्र कि पीत जग के वासी
समझें चातुर्वर्ण्य और हों हो सुख राशी ।

(सर्ग ५ छन्द ३८)

विज्ञान युग की भौतिक प्रगति के प्रति भी लेखक जागरूक है किन्तु भारतीयता की पुनीत भावना से ओत प्रोत होने के कारण जीवन के आध्यात्मिक

और सर्वस्पर्शी मूल्य हो उसे अधिक काम्य है। राम लंका विजय के उपरान्त विभीषण को सन्देश देते हुए कहते हैं

जसली ध्येय मनुजता ही है सात्विकता जिसके अनुरूप।
राजस तामस चित्तवृत्तियाँ क्यों न सर्वे उनका अपरूप॥
उन्हें उदात्त बना दो जिससे निन्द्य निशाचरता मिट जाय।
प्रजा तुम्हारा सच्चे हित में हो जाय विश्व सहाय॥

सर्ग ११ और १२ में रामराज्य की अभूतपूर्व कल्पना साकार हुई है। ११वें सर्ग के प्रारम्भ में ही कवि ने वर्णन किया है कि राम के राजा होते ही धर्म की घोषणा हुई। इसी में रामराज्य का रूप प्रकट हुआ है। घोषणा में कहा गया है कि

तभी राष्ट्रीयता होगी सुदृढ इस देश की
जब मिल जनों में भी एक संस्कृति साम्य हो।

कवि ने वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था के नियम पर भी बल दिया है। राष्ट्रीय आचार का उल्लेख करते हुए कवि ने व्यक्ति की स्वाधीनता पर बल दिया है

वही राष्ट्रीय आचार व्यक्ति का समझा गया
राष्ट्रीयता विवर्द्धन जो सहायक हो सके।
(सर्ग ११ छन्द ७८)

× × ×

राष्ट्र या जाति या व्यक्ति का अधिकार है
जिये और फूले फले अविरोधी प्रकार से।
राष्ट्र जाग्रत है तो व्यक्ति जाग्रत जानिए
राष्ट्र हो सो गया तो व्यक्ति फूला फला कहाँ।

रामराज्यकार का मत है कि एक-एक व्यक्ति के सुधार से राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। किन्तु राष्ट्रहितार्थ व्यक्तिस्वार्थ का दमन ही वाञ्छनीय है

यदि प्रयत्न हो व्यक्ति, अपने को सुधार ले
तो राष्ट्र का सुसंस्कार सुसाध्य कितना बने।
विरोध यदि हो राष्ट्रस्वार्थ औ व्यक्ति स्वार्थ में
तो राष्ट्रहित में व्यक्तिहित का स्वार्थ त्याज्य है।

इसी सर्ग में सभी राष्ट्रवासियों के लिए पंच प्रतिज्ञाओं की घोषणा की गयी है जिसके अनुसार रामराज्य का प्रत्येक निवासी सर्वधर्मसहिष्णु, स्वावलम्बी मितव्ययी, सदाचारी और सद्विचारी बनने की प्रतिज्ञा करता है। समाज में मानव-धर्मिता और लोककल्याण की भावना को सर्वोपरि कहा गया है

मनुष्य मे महाशक्ति जाग सो शिव के लिए।
मनुष्य के लिए श्रेष्ठ यही धर्म है॥
मनुष्य ही महासत्य मनुष्य मन के लिए।
वही परम आराध्य वही प्रत्यक्ष विष्णु है॥
व्यक्ति का प्रतिफला होवे लोक-कल्याण भावना।
सनातन सुखप्रदायी यही वैष्णव भाव है॥

द्वादश सर्ग की कथावस्तु मर्मस्पर्शी और करुणापूरित गाथा है जिसमे सीता के निर्वासन और रामराज्य का उल्लेख है। रामराज्य के व्यावहारिक रूप का स्पष्टीकरण भी इसी सर्ग मे हुआ है। रामराज्य मे राजा का प्रजा के प्रति व्यवहार लोक इच्छाओं की पूर्ति और सर्वजन-सम्मान की भावना आदि का वर्णन है। रामराज्य मे पच परमेश्वर के तुल्य थे ग्रामो का जीवन स्वर्ग के समान था सहकारिता मे लोगो को विश्वास था। विज्ञान के आविष्कार भी सहार नही सृजन के लिए होते थे

पचो मे परमेश्वर बसते पचायती राज सुख छाये।
पाय थे पचो ने रस पचशील के तत्त्व सुहाये।
सहकारिता सिखाते पच्चो थे कृषियो मे गृह उद्योगो मे।
सामूहिकता का महत्त्व था विविध उत्सवो सुख भोगो मे॥
गाव गाव मे पूर्ण स्वच्छता गाव गाव के सुपथ मनोरम।
गाव गाव के सुख सुविधामय देव गृहोपम भवनो के क्रम॥
वैज्ञानिक आविष्कारो के नित्य प्रयोग हुआ करते थे।
किन्तु सहारक बातो पर विज्ञानी निजमन धरते थे॥

इस प्रकार रामराज्य का चित्रण भी कवि ने यथार्थ की भूमिका पर युगीन सन्दर्भों मे प्रस्तुत किया है। रामराज्य के सम्बन्ध मे प्राय यह भ्रान्ति हुआ करती है कि यह राजतन्त्रीय-व्यवस्था (Monarchy) है जो आज की सर्वप्रिय जनतन्त्रीय व्यवस्था (Democracy) के प्रतिकूल है। किन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि रामराज्य की शासन-व्यवस्था सच्चे मानो मे राजा और प्रजा की सम्मिलित व्यवस्था है। राजा तो प्रजा की भावनाओ और इच्छाओ की पूर्ति का माध्यम मात्र है। यथा

महाराज श्री रामचन्द्र ने रामराज्य इस भाँति चलाया।
राजतन्त्र या प्रजातन्त्र है भेद न यह कोई लख पाया॥

कवि ने उचित ही कहा है कि

रामराज्य का क्षणिक नही था निर्मल मानव मूल्य मिलाया।
असुरो के भी कुत्सित कामो मे नर भक्षण निर्मूल कराया॥

यही कारण है कि शताब्दियों के उपरान्त भी रामराज्य की धारणा हमारी राज्य-कल्पना का आदर्श है। मिश्रजी ने ठीक ही लिखा है कि—"श्रद्धेय महात्मा गांधी ने रामराज्य और सुराज्य को समानार्थक मानते हुए इस नाम के प्रति भारतीयों में पर्याप्त उत्सुकता जाग्रत कर दी है।... रामराज्य एक कल्पना ही सही परन्तु वह ऐसी कल्पना है जो व्यवहार में भी असीम लाभप्रद हो सकती है।" (भूमिका, पृ० ६-१०)

यहाँ तक स्थूल रूप की रामराज्य विषयक विचारणा पर विचार किया। कवि की अन्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं :

नारी को कवि ने पुरुष का पूरक माना है। इस शक्ति को सत्ता से सम्बोधित भी किया है। यथा—

> तत्त्व यदि नर है नारी शक्ति कहा ऋषि पत्नी ने यह सार।
> उभय का होता जब सहयोग जगत का चलता कार्य-कलाप॥
> बुद्धि है नर तो नारी भाव इष्ट हो नर की जग कल्याण।
> किन्तु है नारी का यह धर्म करे वह उत्तम नर निर्माण॥
> रही नारी है भावुक सदा न भावुकता में उसका श्रेष्ठ।
> नियन्त्रक भावुकता का पुरुष इसी से पुरुष कहाता ज्येष्ठ॥
> न कोई हीन न कोई उच्च उभय का अपना अपना मान।
> उभय समझें अपने कर्तव्य प्रकृति नियमों का रखकर ध्यान॥

रामराज्य के रचयिता के शब्दों में कविता और साहित्य की परिभाषा निम्नांकित प्रकार है :

> कविता सविता ज्योति प्रभात सुधा है।
> कविता मन्थन से कर प्रबुद्ध हुआ है॥
> हित सन्निहित रहे साहित्य वही सुन्दर है।
> जो समुन्नत अमर करे वही अक्षर है॥

कवि की महिमा और कर्तव्य का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :

> कवि चाहे नर को अमर कर स्वर नाग।
> कवि चाहे जन इतिहास बदल दे सारा॥
> जन जन के अमर तत्त्व जगाता है कवि।
> चिर-काल बन्ध सब आप भगाता है रवि॥

जीवन के प्रति मिश्रजी का दृष्टिकोण यह है :

> जीवन आशा उल्लास सुखों का घर है।
> जीवन नभ का विस्तीर्ण न वह नश्वर है॥

इस विस्तृत नभ पर विघ्न मघ स जाय ।
यह सम्भव ही ह नहीं कि उस मिटायें ।।

इस प्रकार रामराज्य महाकाव्य म राज्य क आदश रूप क साथ साथ मानवतावादी जावन दृष्टि का भी विकास हुआ है । कवि न विज्ञान-युग क विकास और ह्रास प्रगति और पतन क परिप्रेक्ष्य म रामराज्य का प्रतिष्ठा का आग्रह किया है । राष्ट्रीय एकता शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा ग्राम्य जीवन का महत्ता सहकारिता पचशील आदि जावन प्ररक प्रवत्तिया क निरूपण क कारण इस काय म रामकथा का युगान पुनराख्यान हुआ है । रामराज्य काय म उत्तर दक्षिण की अभद स्थिति का निरूपण निश्चय हा रामकथा क विकास म एक नवीन अध्याय का सृष्टि करता है । एक प्रकार स रामकथा के गायका का एक त्रुटि का कवि न माजन किया है । उद्दश्य की महानता विवचन की गम्भीरता शली की उत्कृष्टता शिल्प विधि के समुन्नत स्वरूप चरित्र विश्लषण का मानवतावादी पद्धति पौराणिक कथानत्त्व क पुनर्मूल्याकन और कलात्मक औदात्त क कारण रामराज्य महाकाय निश्चय ही हिन्दी काव्य जगत की एक महत्त्वपूण उपलब्धि है । आज क युग जीवन म ऐसी रचनाओ का स्थायी महत्त्व है । मिश्रजी भारतीय सस्कृति क अनय उपासक रह ह । उनक कृतित्व स हिन्दी साहित्य का उत्कष हुआ तथा भारतीय सस्कृति की अखण्डता सिद्ध हुई है । रामराज्य स पूव कोशल किशोर और साकेत-सन्त जसी अनुपम कृतिया स वह हिन्दी साहित्य भण्डार की पूर्ति कर चुके हैं । उनका तृतीय महाकाय (रामराज्य) हिन्दी जगत म अभिनन्दनीय है । भविष्य म भी व हिन्दी ससार का एसी कृतिया प्रदान करेंगे एसी आशा है । हम रामराज्य क कवि की इन पक्तियां क साथ हा प्रस्तुत प्रसग की समाप्ति करत ह

त्रेता युग का रामराज्य वह कलियुग का आनाव दिलाय ।
जिसका प्रयर प्ररणा पाकर शासन स्वप्न सत्य बन जाय ।।
भारत की माता समृद्धि का रावणत्व स मुक्त करावर ।
मिट जाय रावणत्व मनुज का एस याग रचें विश्वश्वर ।।

(आदश सग पृ० १८८)

'कृष्णायन' के कृष्ण

'कृष्णायन' के कृष्ण

श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'कृष्णायन' महाकाव्य की रचना का मुख्य उद्देश्य श्रीकृष्ण के चरित्र का सर्वांगीण निरूपण करना रहा है। कवि को इस उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्ण सफलता भी मिली है। अतीत और वर्तमान में कृष्ण के पावन चरित्र को लेकर विपुल परिमाण में काव्यों की रचना हुई है किन्तु कृष्ण चरित्र की जितनी व्यापक और विराट अभिव्यक्ति इस महाकाव्य में हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सम्पूर्ण महाकाव्य में आरम्भ से अन्त तक कृष्ण को प्रधान पात्र के रूप में अंकित किया गया है। इस महाकाव्य में घटनाचक्र एवं कथासूत्रों का संचालन उन्हीं के व्यक्तित्व को केन्द्र करके हुआ है। इसके अतिरिक्त 'कृष्णायन' के कृष्ण का रूप इतना व्यापक है कि इसमें भारतीय वाङ्मय में पूर्व प्रतिपादित सम्पूर्ण कृष्ण रूपों का सहज में ही समाहार हो गया है। 'कृष्णायन' के कृष्ण की चरित्र निर्मिति में कवि ने 'श्रीमद्भागवत महापुराण', 'महाभारत', 'गीता' और 'सूरसागर' में वर्णित विभिन्न रूपों का एकीकरण कर लिया है। 'कृष्णायन' में कृष्ण चरित्र के निम्नांकित तीन रूप मिलते हैं—

१. बालकृष्ण—इस रूप का चित्रण 'अवतरण काण्ड' में हुआ है।
२. राधिका और गोपियों के प्राणप्रिय कृष्ण—इस रूप का चित्रण 'मथुरा काण्ड' में हुआ है।
३. कर्मयोगी कृष्ण—इस रूप का वर्णन 'मथुरा काण्ड' से लेकर अन्तिम अर्थात् 'आरोहण काण्ड' तक मिलता है।

मिश्रजी ने पौराणिक मान्यताओं के अनुसार कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना है। वे तुलसी के राम की भाँति भू भार उतारने के लिए जन्म लेते हैं। जब धर्म, संस्कृति और सुनीति नष्ट हो जाती है और भारतमाता हरि को पुकारती हैं तब श्रीहरि कृष्ण के रूप में अवतरित होते हैं—

भयो कला षोडस सहित कृष्ण चन्द्र अवतार।

× × ×

असुर विनासन जन हितकारी। नाम कृष्ण विष्णुहि अवतारी॥ [1]

कृष्ण का जन्म कारागृह में होता है जहाँ से वे गोकुल में नन्द के घर पहुँचा दिये जाते हैं। इसके अनन्तर कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन कवि ने सूरसागर के आधार पर किया है। बाल सुलभ लीलाओं में उनका मञ्जु मानवीय रूप व्यक्त हुआ है। विभिन्न असुरों का संहार करके बाल्यावस्था में ही वे एक ओर असुरसंहारक चित्रित किये गये हैं और दूसरी ओर गोपिकाओं से प्रेमलीला करते हुए गोपी जन वल्लभ रूप में अंकित हुए हैं। गोपिकाओं के प्रिय और रसिक कृष्ण का रूप चित्रण हिन्दी साहित्य में पर्याप्त रूप में हुआ है। रीतिकालीन काव्य में तो उन्हें रसिकशिरोमणि के साथ साथ विलासी भी चित्रित किया गया है। किन्तु कृष्णायन के कृष्ण का गोपियों के प्रति प्रेम सात्त्विक और लोक कल्याण की भावना से पूर्ण है। उसमें विलासिता और उच्छृंखलता नहीं है। राधा के प्रति उनका आकर्षण शुद्ध एवं प्रेममय है विलासपूर्ण किंवा वासनाजन्य नहीं। राधिका उनकी चिरसहचरी है जिनसे उनका पूर्व जन्म से सम्बन्ध है। कृष्ण स्वयं कहते हैं

हम दो एक नाहिं कछु भेदा।
कहत सकल निगमागम वेदा॥
निवसति यथाक्षीर धवलाई।
यथा हुतासन दाहकताई॥
बसत प्रिय तस तुम माहिं माहिं।
तुमहिं बिहाय मोरि गति नाहिं॥ [2]

एक अन्य स्थान पर भी कृष्ण ने यही भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि
एकहि मैं और राधिका द्वैत भाव भव भ्रान्ति। [3]

मिश्रजी ने परम्परित कृष्ण के चरित्र में गिराने वाले प्रसंगों और घटनाओं में संशोधन करके कृष्ण चरित्र के आदर्श को यथावत रखा है। उदाहरण के लिए चीरहरण लीला वाले प्रसंग का वर्णन इस प्रकार किया है कि कृष्ण एक समाजसुधारक की भाँति दिखायी देते हैं। जल में नग्न स्नान करने वाली गोपिकाओं से वे कहते हैं कि

नारि माहि निरमल बरन तिनहि लाज विहाय।
नारि लाज हू त्याग तुम धसन नग्न जल जाय॥ [४]

इसी प्रकार द्वारिका काण्ड में कृष्ण का रुक्मिणी, जाम्बवती, कालिन्दी आदि विभिन्न राजकुमारियों से जो परिणय सम्बन्ध स्थापित हुआ है उसके मूल में राष्ट्रहित की भावना और राजकीय नीति निहित है। क्योंकि इन सम्बन्धों द्वारा विभिन्न विरोधी राजाओं से मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए।

कृष्ण का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप वह है जिसके अन्तर्गत उन्हें असुरसंहारक धर्मसंस्थापक एवं लोकरक्षक चित्रित किया गया है। बाल कृष्ण जहाँ अवतरण काण्ड और मथुरा काण्ड में बकासुर आदि असुरों का वध करते हैं वहीं युवा कृष्ण शिशुपाल का वध और जरासन्ध का दमन भी करते हैं। वे कुशल राजनीतिविशारद भी हैं। गीता काण्ड एवं जय काण्ड में उनका यही रूप दृष्टव्य है। कुरुक्षेत्र युद्ध में वे पाण्डवों का साथ देते हैं। महाभारत युद्ध की सम्पूर्ण रणनीतियों का संचालन वे अर्जुन के रथ पर बैठे हुए ही करते हैं। व्यवहारकुशल नीतिज्ञ के नाते अपनी समस्त सेनाएँ वे कौरवों को दे देते हैं। गीता काण्ड में कृष्ण का कर्मयोगी रूप भी मिश्रजी ने प्रस्तुत किया है। एक स्थान पर अर्जुन को फलरागशून्य कर्म करने का उपदेश देते हुए वे कहते हैं कि

पै त्यागी कर्मन फल जोई। त्यागी सोई धनंजय होई॥
इष्ट अनिष्ट मिश्र अस विधि त्रय। कर्मन को फल होत धनंजय॥
× × ×
करि निज कर्म भजन तेहि जाई। अर्जुन लहत सिद्धि नर सोई॥ [५]

कृष्णायन के कृष्ण को हम सफल जन नेता के रूप में भी पाते हैं। कृष्णायन महाकाव्य में स्थान-स्थान पर उन्होंने पाण्डवों का नेतृत्व प्रदान किया है। राष्ट्र की एकता और उन्नति के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहे हैं। महाभारत-युद्ध के समाप्त होने पर युधिष्ठिर के मन में जो आत्मग्लानि और वैराग्य की भावना घर कर जाती है उसे भी वे सदुपदेश देकर दूर करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य में स्थान-स्थान पर उनके ही सदप्रयत्नों से सम्पूर्ण नीतियों का परिचालन होता है। इन रूपों के अतिरिक्त कृष्ण का मातृ पितृ भक्त, भक्तवत्सल, पतितउद्धारक आदि रूपों में भी अंकित किया गया है। आजीवन कर्मरत रहते हुए भी वे अन्त में हस्तिनापुर से द्वारिका पहुँच जाते हैं।

---

[४] कृष्णायन, अवतरण काण्ड, पृ० ७०

[५] वही गीता काण्ड पृ० ६०८ ६१२

वहा क गृह कलह स खिन्न होकर स्वर्गारोहण का निश्चय करत हैं। दुर्वासा ऋषि के आशीर्वाद को सत्य करन क लिए वन म जाते हुए व्याध क बाण स घायल होकर वहीं मत्रय को उपदेश दत हुए उनका शरीरात होता है। अस्तु—

कृष्णायन महाकाव्य म चित्रित कृष्ण की मादृश्यना एव उपलब्धिया पर विचार करता व दो रूपा म स्मार समझ जाता है

प्रथम—भारतीय काव्य एव साहित्य क अध्येता कृष्ण चरित्र क जितन रूपा से परिचित है व सभी कृष्णायन महाकाव्य म विशिष्ट विधि स समायोजित देखे जा सकत है। दूसरे शब्दा म कृष्णायन म कृष्ण का चरित्र व्यापकतम परिवेश म चित्रित हुआ है। हिन्दी महाकाव्या की परम्परा म सबस महान रूप म कृष्ण क महान और विराट चरित्र की प्रतिष्ठा कृष्णायन म ही हुई है।

द्वितीय—कृष्णायन क कृष्ण ईशावतरी किवा पौराणिक हात हुए भी युग जीवन की प्रवत्तिया भावनाओ एव आकाक्षाओ का प्रतिनिधित्व करन वाल पात्र क रूप म अकित किय गय ह।

'रश्मिरथी' महाकाव्य मे युग-चेतना के स्वर

'रश्मिरथी' महाकाव्य में युग चेतना के स्वर

उद्देश्य और सन्देश

रश्मिरथी की रचना का उद्देश्य जैसा कि काव्य के रचयिता ने भूमिका में स्वीकार किया है— वर्ण चरित्र का उद्धार है। कवि के शब्दों में— वर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से नयी मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।[1] इस सकेत के आलोक में यदि रश्मिरथी काव्य के जीवन-दर्शन सम्बन्धी मन्तव्यों पर विचार किया जाय तो हम पायेंगे कि इस काव्य का जीवन-दर्शन मानवतावादी है। मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास यों तो दिनकरजी ने कुरुक्षेत्र काव्य में भी किया है किन्तु उसके एतद्विषयक चिन्तन की चरम परिणति और विचार-दर्शन का प्रौढतम स्वरूप रश्मिरथी में ही प्राप्त होता है। डा० सत्यकाम वर्मा के शब्दों में— कुरुक्षेत्र के बाद आने वाला यह महाकाव्य सच्चे अर्थों में केवल महाकाव्य ही नहीं बल्कि कवि की दार्शनिक सांस्कृतिक कवि-कर्मय धर्म सम्बन्धी और रचनात्मक चेतना का सबल और सतर्क प्रमाण भी है। यह अकेला काव्य ही कवि की सम्पूर्ण चेतना और शक्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। कवि का जो जीवन-दर्शन हुँकार में जागा और जिसकी पूर्णता परशुराम की प्रतीक्षा में हुई उसी का केन्द्र बिन्दु है रश्मिरथी है। इसमें मानवतावाद का एक ऐसा ज्वलन्त सत्य केन्द्र बिन्दु के रूप में प्रमुख होकर चला है जिसने उस विचारक कवि और दार्शनिक से ऊपर उठाकर महानतम मानवतावादी सिद्ध किया है।[2] सच तो यह है कि रश्मिरथी के कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक ओर परम्परा पोषित एवं जर्जरित रूढ़िवादी मान्यताओं का खण्डन किया है तो दूसरी ओर युग-सापेक्ष प्रगतिशील जीवन मूल्यों की प्रस्थापना पर बल दिया है। उसने सामाजिक अन्याय के कारण उच्च कुल की झूठी मान मर्यादा और जातिवाद के दम्भ की भर्त्सना की है किन्तु श्रम पुरुषार्थ तपस्या दान मैत्री सत्य,

---

[1] रश्मिरथी, भूमिका पृ० ५

[2] डा० सत्यकाम वर्मा जनकवि दिनकर, पृ० ६३

शील आदि मानवीय गुणों (जीवन मूल्यों) की महत्ता को सराहा और स्वीकारा है। काव्यारम्भ में ही कृपाचार्य के जाति विषयक प्रश्न पूछने पर कर्ण ने जो उत्तर दिया है उसमें तथाकथित उच्चकुलीन मान मर्यादा एवं जातिवाद का निरूपण किया गया है

> जाति जाति रटते जिनकी पूजा केवल पाषण्ड
> मैं क्या जानूं जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।
> × × ×
> पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर
> जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।
> × × ×
> बड़े वंश से क्या होता है खोटे हों यदि काम ?
> नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है नहीं वंश धन धाम।[३]

काव्य के चतुर्थ सर्ग में देवराज इन्द्र से वार्तालाप करते हुए कर्ण ने कहा है कि—एक नया सन्देश विश्व के हित वह भी लाया है।[४] और वह सन्देश है कर्तव्यपरायण एवं पुरुषार्थी बनकर सत्यपथ पर चलते रहना। जीवन की जय इसी कर्तव्यपालन में निहित है। पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर पाँव रखकर चल सकता है। चाहे विश्व रिपु हो जाय धर्म दगा दे और पुण्य ज्वाला बरसाये किन्तु मनुष्य को सत्यपथ से विचलित न होना चाहिए। कर्तव्यपरायणता की यह शक्ति किसी वंश या कुल की धरोहर नहीं वरन् वह बार पुरुषार्थ के पृथुल वक्षस्थल में रहती है।[५] वंशगत उच्चता और कुलीनता के नाम पर शताब्दियों से मानवता का जो तिरस्कार किया जाता रहा है रश्मिरथी के कवि ने उसका जोरदार शब्दों में प्रतिकार किया है। इसीलिए काव्य का नायक कर्ण उनका आदर्श बनकर अवतरित हुआ है जिन्हें कुल गौरव की प्रताड़ना सहनी पड़ी है नीचवंशजन्मा कहकर जग ने जिन्हें धिक्कृत किया है और समाज की विषमता वह्नि से जो विदग्ध हैं। कर्ण के शब्दों में

> मैं उनका आदर्श जिन्हें कुल का गौरव ताड़ेगा
> नीचवंशजन्मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
> × × ×

---

[३] रश्मिरथी प्रथम सर्ग पृ ४ ५ ७

[४] वही चतुर्थ सर्ग पृ० ७२

[५] वही पृ० ७

मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे
पूछेगा जग, किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे।

× ×

मैं उनका आदर्श, किन्तु, जो तनिक न घबरायेंगे
निज चरित्र बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।
सिंहासन ही नहीं, स्वर्ग भी जिन्हें देख नत होगा
धर्म हेतु धन, धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा। [१]

अस्तु, स्पष्ट है कि रश्मिरथी काव्य का उद्देश्य और सन्देश मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित है।

'रश्मिरथी' काव्य के जीवन-दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका युगीन स्वरूप है। काव्य में जिन व्यापक मानवीय विश्वासों और आदर्शों, आध्यात्मिक निष्ठाओं और मान्यताओं तथा चिन्तनीय समस्याओं और धारणाओं का प्रतिपादन किया गया है, उन सबका आधार हमारे युग का उन्नत विचार दर्शन है। इस विचार-दर्शन को एक शब्द में मानवतावाद अभिधान दिया जा सकता है।

आध्यात्मिक मान्यताएं

आध्यात्मिक मान्यताओं के प्रतिपादन में कवि का दृष्टिकोण नितान्त युगीन और प्रगतिशील रहा है। नियति, भाग्य, धर्म आदि आध्यात्मिक विषयों का विवेचन कवि ने युग जीवन के सन्दर्भ में की है। केवल श्रीकृष्ण के सम्बन्ध (उन्हें ईश्वर मानने में) में उसके विचार मूल चिन्तनधारा का अपवाद कहे जा सकते हैं।

ईश विषयक धारणा और श्रीकृष्ण

दिनकर का कवि आस्तिक है। संसार की संचालिका अनन्त शक्ति में उसका पूर्ण विश्वास है। इस अनन्त शक्ति को ईश, जगदीश, भगवान, विधाता आदि कहकर उसने सम्बोधित किया है तथा अक्षय और सक्षम माना है

पर हंसते कहीं अदृश्य जगत के स्वामी
लखते सभी कुछ को तब भी अन्तर्यामी। [२]

श्रीकृष्ण को रश्मिरथी में ईश्वरत्व से सम्पन्न चित्रित किया गया है। वे ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न होने के कारण विलक्षण एवं गरिमापूर्ण व्यक्तित्व

१ रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग पृ० ७० ३८
२ वही, पंचम सर्ग पृ० ६४

बात है। कौरवों और पाण्डवों में सद्भाव स्थापित कराने के उद्देश्य से वे हस्तिनापुर से पाण्डवों का मन्त्री सन्देश लेकर दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन उनके सत्परामर्श को न मानकर उलटा उन्हें बाँधने का उपक्रम करता है। तभी कृष्ण कुपित होकर भीषण हुंकार करते हुए अपना विराट रूप निदर्शित करते हैं। श्रीकृष्ण का वह रूप ब्रह्माण्डव्यापी था। उस स्वरूप में उदयाचल भाल, भूमण्डल वक्षस्थल और मन्दार मेरु चरण थे। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि कोटि-कोटि सूर्य चन्द्र ब्रह्मा विष्णु महेश दिनेश रुद्र लोकपाल आदि उसमें व्याप्त थे। उनकी जिह्वा से भयंकर ज्वालाएँ निकल रही थीं। त्रिकाल को मुट्ठी में बाँधे सृष्टि के आदि और अन्त का कारण वह विकराल रूप था—

उदयाचल मेरा दीप्त भाल भूमण्डल वक्षस्थल विशाल।

× × ×

शत कोटि रुद्र शत कोटि काल शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
भूलोक अतल पाताल देख गत और अनागत काल देख।
अम्बर में कितने जाल देख पद के नीचे पाताल देख।
मुट्ठी में तीनों काल देख मेरा स्वरूप विकराल देख।[8]

श्रीकृष्ण के इस स्वरूप को देखकर सभा सन्न थी। लोग डर के मारे चुप थे या बेहोश पड़े थे। रश्मिरथी के कृष्ण का यह रूप गीता में श्रीकृष्ण के उस विराट रूप से तुलनीय है जो उन्होंने अर्जुन को दिखाया था।[9] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण का कवि ने ईश्वरीय रूप में अंकन किया है। कृष्ण के इस पौराणिक रूप का चित्रण विंशति शताब्दी के बुद्धिजीवी पाठक को कितना ग्राह्य और वरेण्य होगा यह चिन्तनीय है। प्रस्तुत काव्य से ७ वर्ष पूर्व लिखित कुरुक्षेत्र काव्य में दिनकर जी ने कृष्ण को महापुरुष के रूप में ही अंकित किया है। कुरुक्षेत्र में अनेक स्थलों पर भीष्म पितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने कृष्ण को भगवान कहकर सम्बोधित किया है। किन्तु कृष्ण को भगवान कहने में उसकी सगुणोपासना नहीं झलकती अपितु वह उन्हें महापुरुष (अतिमानव) मात्र मानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है। कवि अवतारवाद में विश्वास नहीं रखता अपितु ईश्वर सम्बन्धी उसकी कल्पना अधिक व्यापक एवं आध्यात्मिक है आधिदैविक नहीं।[1]

[8] रश्मिरथी तृतीय सर्ग पृ० २३
[9] गीता अध्याय ११ श्लोक १० से ० तक
[1] कुरुक्षेत्र मीमांसा पृ० ११८

'कुरुक्षेत्र' के कवि दिनकर के लिए अन्य महापुरुषों की भांति श्रीकृष्ण भी श्रद्धेय हैं ईश्वर नहीं।

> 'मोहन हो अथवा युधिष्ठिर या कि हो भगवान्
> बुद्ध हो कि अशोक गांधी हो कि ईसु महान।
> सिर झुका सबको सभी को श्रेष्ठ निज से मान
> मात्र वाचिक ही उन्होंने था दिया सम्मान।'[11]

इस प्रकार कृष्ण के सम्बन्ध में एवं दशावतारों में गिने गये दोनों काव्यों में दिनकरजी का दृष्टिकोण भिन्न है। 'रश्मिरथी' में कृष्ण के विराट रूप-दर्शन द्वारा ही नहीं वरन् अन्य अलौकिक घटनाओं के आयोजन द्वारा भी उनके ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा की गयी है। उदाहरणार्थ अर्जुन की प्रतिज्ञा-पूर्ति अर्थात् जयद्रथ वध के लिए

> माया की सहसा शाम हुई असमय दिनेश हो गये अस्त।[12]

इसी प्रकार दानव घटोत्कच की सृष्टि तथा रण के रथ चक्र के रक्त-नाव में धँस जाने और सम्पूर्ण शक्ति लगाने पर भी न निकलने में ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार-दर्शन ही है।

दिनकरजी के विचार-दर्शन का यदि उपर्युक्त विवेचन के आलोक में विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि कवि की ब्रह्म विषयक धारणा का मूल स्वरूप तो वही है जो 'कुरुक्षेत्र' में प्रतिपादित है किन्तु 'रश्मिरथी' में पौराणिक ऐतिहासिक कथानक में आमूल चूल परिवर्तन को अवांछनीय मानकर कवि ने इस काव्य के घटनाक्रम को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया है जिसके कारण कृष्ण इस काव्य में ईशावतारी हो गये हैं। 'रश्मिरथी' है भी कथाकाव्य जबकि 'कुरुक्षेत्र' विचार प्रधान काव्य है। कथाकाव्य में कथानक और विचार प्रधान काव्य में वैचारिकता (चिंतन) का महत्त्व विशेष होता है। कथाकाव्य की महत्ता के सम्बन्ध में कवि के विचार 'रश्मिरथी' की भूमिका में द्रष्टव्य हैं। फिर भी इतना तो कहा ही जायगा कि अपने मूल चिन्तनक्रम (जिसके अनुसार ब्रह्म अपौरुषेय है और कृष्ण महापुरुष हैं ईशावतार नहीं) की रक्षा के लिए अलौकिक घटनाओं को किंचित परिवर्तन द्वारा बुद्धिग्राह्य बनाया जा सकता था। उदाहरणार्थ कुरुजन-सभा में कृष्ण के विराट रूप-दर्शन के स्थान पर उनके

---

[11] कुरुक्षेत्र षष्ठ सर्ग पृ० ६५ (संस्करण संवत २००८ का)
[12] रश्मिरथी षष्ठ सर्ग, पृ० १३६

तेजस्वितापूर्ण रूप की झांकी भी अंकित की जा सकती थी जिसे देखकर दुर्योधन चकित रह जाता लोग बेहोश तो न होते आदि।

नियति—नियति को एक क्रूर अदृश्य शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। नियति ही बार बार पुरुषार्थी कर्ण से छल करके उसे जीवन संग्राम में पराजित और निराश करती है। इस संदर्भ में कर्ण के कुछ कथन द्रष्टव्य हैं

सबको मिली स्नेह की छाया नयी-नयी सुविधाएं
नियति भेजती रही सदा पर मेरे हित विपदाएं।[13]

× × ×

प्रवंचित हूं नियति की दृष्टि में दोषी बड़ा हूं।[14]

× × ×

विलक्षण बात मेरे ही लिये है
नियति का घात मेरे ही लिये है।[15]

स्वयं कवि ने कहा है

किया नियति ने वार कर्ण पर
छिपकर पुण्य विवर से।[16]

कवि ने महाभारत युद्ध की आयोजिका भी नियति को ही माना है

हो चुकी पूर्ण योजना नियति की सारी
कल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।[17]

इतना होने पर भी रश्मिरथी के नायक कर्ण ने नियति की क्रूरता को नत मस्तक होकर स्वीकार नहीं किया है वरन् पुरुषार्थ के बल पर उसका पूर्ण प्रतिरोध किया है। कर्ण कहता है

चरण का भार लो सिर पर संभालो
नियति की दूतियो! मस्तक झुकाओ।
चलो जिस भांति चलने को कहूं मैं
ढलो जिस भांति ढलने को कहूं मैं।

---

[13] रश्मिरथी चतुर्थ सर्ग पृ० ७२
[14] वही सप्तम सर्ग पृ० १२६
[15] वही पृ० १८८
[16] वही चतुर्थ सर्ग पृ० ६
[17] वही पंचम सर्ग पृ० ८१

न जर छन छन्द में आघात पूनो
पुष्प हूँ मैं नहा यह बान भूना।
युचल दूगा निशानी मेट दूगा
चन्द्र दुम भुजा का भेद दगा। [१८]

कर्ण के उपयुक्त कथन में कर्ण का पौरुष ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानवता के पुरुषार्थ का महान् उद्घोष है। इसी कथन के परिप्रेक्ष्य में कवि दिनकर के दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता भी दृष्टव्य है जिसके अनुसार वह मानव की शक्ति और सामर्थ्य को ही सर्वोपरि मानता है। मानव नियति की क्रूरता के प्रतिरोध में अन्त तक संग्राम करने को कृतसंकल्प है। कर्ण के शब्दों में

चले मघव आठो याम तुम स
करूंगा अन्त तक संग्राम तुम से। [१९]

यदि न तो यहां तक कह दिया है कि कर्ण की गौरवपूर्ण जीवनगाथा के समक्ष नियति और भाग्य के संकेत व्यर्थ है

मगर यह कर्ण का जीवन कथा है
नियति का भाग्य का इगत वृथा है। [२०]

यही नहीं पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर भी पद रख सकता है
नियति भाल पर पुरुष पाव निज बल से धर सकता है। [२१]

भाग्य—भाग्यवाद की धारणा का खण्डन कवि ने कुरुक्षेत्र काव्य में[२२] इस पाप का आवरण और शोषण का शस्त्र कहकर किया था। इसी मान्यता की पुष्टि रश्मिरथी में कर्ण के निम्नांकित कथन द्वारा हुई है

कर्म कर्ण न क्या भाग्य में आप डर जाते है
जो है सम्मुख उस पहचान नहीं पाते हैं।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य में खूब जानता हूँ मैं
बाहों को पर कहीं भाग्य से बड़ा मानता हूँ मैं।

---

[१८] रश्मिरथी सप्तम सर्ग पृ० १५६
[१९] वही, पृ० १६७
[२०] वही षष्ठ सर्ग पृ० १५१
[२१] वही चतुर्थ सर्ग पृ० ७३
[२२] भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।
(कुरुक्षेत्र सप्तम सर्ग पृ० ११२)

महाराज उद्यम म विधि का अक पलट जाता है
किस्मत का पासा पौरुष म हार पलट जाता है।[२३]

धम—पौराणिका न कुरुक्षत्र का धमक्षत्र और महाभारत का धमयुद्ध कहा है।[२४] किन्तु कवि न इस मान्यता का विरोध किया है। उसक मतानुसार धम का विग्रह हिंसा युद्ध या सहार स सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। धम तो करुणा स उद्भूत होता है

करुणा स कल्ता धम विमल। [२५]

धम का वास्तविक स्वरूप कममय साधना एव जीवन पथ का त्याग की ज्योति स आलोकित करन म है। धम ध्यय म नहीं साधना म ही निहित है

है धम पहुचना नहीं धम तो जीवन भर चलन म
फला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति दीपक समान जलन म।

× ×

इसालिए ध्यय म नहीं धम तो सदा निहित साधना म।[२६]

अजुन द्वारा जयद्रथ क नामहपक एव अन्यायपूण वध का कवि न धममय काय नहीं माना है। मरना और मारना कभी भी धममय काय नहीं हो सकत

जो जिस धम स प्रम कभी वह कुत्सित कम करगा क्या ?
बबर कराल दष्ट्री बनकर मारगा और मरेगा क्या ? [२७]

चिरन्तन जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा

आध्यात्मिक निष्ठाओ क प्रति युगीन किंवा प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनात हुए भी चिरन्तन जीवन मूल्यों की स्थापना क लिए रश्मिरथी का कवि प्रयत्नशील रहा है। दानशीलता सत्य मत्री समानता उदारता आदि मूल्यो को प्राचीन कहकर उपक्षित नहीं किया गया वरन उनकी महत्ता का बखान काव्य म आद्यान्त दिखाया गया है।

दान की महिमा—भारतीय सस्कृति म दान की महिमा अनादि काल स स्वीकृत रही है। दान कम को पुराणपथा कहकर तिरस्कृत नहीं किया जा

---

[२३] रश्मिरथी चतुथ सग पृ ६६
[२४] धम क्षत्र कुरुक्षत्र समवता युयुत्सव। गीता अ० १ श्लोक १
[२५] रश्मिरथी षष्ठ सग पृ १३७
[२६] वही पृ १ ७ ८
[२७] वही पृ० १ ८

भवता। दिनकरजी ने दान की महिमा का तत्वपूर्ण आख्यान करते हुए इस काव्य का जीवन धर्म कहा है

जीवन का अभियान दानव्रत से अजस्र चलता है।

× × ×

दान जगत का प्रकृत धर्म है मनुज व्यर्थ डरता है।[28]

दान स्वत्व का त्याग भी नहीं है क्योंकि जो जितना देता है उतना ही पाप भी लेता है। उदाहरण के लिए वृक्ष फल देकर स्वस्थ रहते हैं कि उनके रसों में बीज न समायें नदियाँ स्वस्थ रहें और नये फल आयें। इसी प्रकार नदियाँ जल देती हैं कि बादल भरपूर बरसें और फिर जलपूरित होकर नया जीवन पायें। इसी सन्दर्भ में कवि ने राम दधीचि शिवि हरिश्चन्द्र जैसी गाथा जैसे आत्म दानियों का यशोगान किया है। दानवीरों में रश्मिरथी के नायक कर्ण का चरित्र अनुपमेय है। उसने दानव्रत के पालन हेतु अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। जन्मजात कवच और कुण्डल तक स्वराज इन्द्र को दे दिये। तभी तो कवि ने कहा है कि

कर्ण नाम पड़ गया दान की अतुलनीय महिमा का।[29]

दान मनुष्य का वह आभूषण है जो उसके चरित्र को अलंकृत नहीं करता वरन सम्पूर्ण मानव जाति को गौरव वृद्धि करता है। कर्ण से इन्द्र की याचना स्वर्ग की पृथ्वी से याचना है

स्वर्ग भीख माँगने आज सच ही मिट्टी पर आया।[30]

दान की भाँति ही अन्य जीवन मूल्यों के आदर्श का प्रतिपादन काव्य में यत्र तत्र हुआ है। जैसे

तपस्या

नम्रता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है
देता वही प्रकाश आग में जो अभीत जलता है।[31]

सत्य

वीर जान कर क्या चाहें? वीरता की पहचान समर है
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है।[32]

---

[28] रश्मिरथी चतुर्थ सर्ग पृ० ६० ६१

[29] वही पृ० ६

[30] वही पृ० ६८

[31] वही, पृ० ५६

[32] वही, पृ० ७०

अथवा

नहा राधय सत्पथ छाडकर अघ जार लगा
विजय पाय न पाय रश्मिया का नाक नगा ।[33]

मत्री—तृतीय सग म कृष्ण जब कण का युधिष्ठिर स मिल जान का परामश त ह ता प्रत्युत्तर म कण न जा कहा ह उमस मत्रा का महत्ता स्पष्ट झलकती है

मत्री का बडी सुखद छाया शातल हो जाती है काया ।

× × ×

मित्रता बडा अनमाल रतन कब इस तोल सकता है धन ।
धरता का ता है क्या बिसात आ जाय अगर बकुण्ठ हाथ ।
उसका भी न्यौछावर कर दू कुरपति क चरणा पर धर दू ।[34]

श्रम—परिश्रम की महत्ता को कवि न मुक्त कण्ठ म स्वीकार किया है । का य म तृतीय सग म कहा गया है कि वसुधा का नता भूखण्ड विजता अतुलित यश क्रता तथा नवधम प्रणता वहा यक्ति हुआ है जिसन विघ्ना का सहकर भी श्रम साधना की है।[35]

युगीन समस्याए

रश्मिरथा म जातिवाद उच्चकुलीनता सामाजिक असमानता आदि अनक समस्याआ का यथाप्रसग विवचना हुई है। युद्ध का समस्या पर विश्लेषणात्मक ढग स कवि न विचार किया है। उसन समस्याए ही नहा वरन उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

युद्ध की समस्या और समाधान

युद्धसम्बन्धी विचार दशन की विस्तृत भूमिका यद्यपि दिनकरजी क कुरुक्षत्र नामक काव्य म मिलती है क्याकि उस का य की रचना ही द्वितीय विश्वयुद्ध का पृष्ठभूमि पर हुई था। तथापि युद्ध का समस्या पर रश्मिरथी म भी अपरिमित प्रकाश डाला गया है।

काव्यारम्भ म ही कुलीन एव वण-व्यवस्था आधृत समाज का आलोचना करत हुए कवि न कहा है कि युद्धो का आयोजन ससार स टूट न्य भगान या पर शापक वर्ग तथा त्यागा का घमण्ड पर नान क लिए नहा हाना है।

[33] रश्मिरथी सप्तम सग पृ १६१
[34] वही तृतीय सग पृ० ५१
[35] वही तृतीय सग पृ० ८

युद्ध को स्थगित होना है कि राजा महाराज विजय का कल्पित सम्मान पाकर माना न अथवा राज्य की सीमा विस्तार कर और लूटमार हो। युद्धों की विजय राजाओं की अहं वृद्धि करता है। राजा स्वच्छाचारी होकर समाज को पददलित करते हैं।[36] अस्तु कवि ने इस समस्या का निदान नये रूप में प्रस्तुत किया है। प्रथमतः समाज का नेतृत्व भोगी विलासी भूपों के हाथों में न रहे। समाज में श्रेष्ठता का पद कवि, दार्शनिक, कलाकार, ज्ञान विज्ञान विशारदों को प्राप्त हो। क्योंकि समाज का शुभचिन्तक वर्ग यही है। यह वर्ग असन-वसन विहीन एवं ज्ञान रत्नाकर का मानवता-पुण्य का ही ध्यान करता है। इस वर्ग के लोगों को कनक नहीं ज्ञान, कल्पना और चरित्र की उज्ज्वलता पर अभिमान है। अस्तु—

> नर विभूतियों को जब तक समाज पहचानेगा
> राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न उन्हें मानेगा।
> तब तक पड़ी आग में धरती इसी तरह अकुलायेगी
> चाहे जो भी करें, दुखों से छूट नहीं पायेगी।[37]

युद्ध के निवारण का दूसरा समाधान क्रान्तिकारी है। कवि का अभिमत है कि राजाओं की समता-युवाकर ज्ञानी और कवि थक गये किन्तु प्रशासक वर्ग खड्ग के अतिरिक्त किसी भी भाषा को नहीं समझता। अस्तु ज्ञानियों को भी खड्ग धारण करके अविचारी एवं मदान्ध नृप के आतंक से भू को मुक्त करना चाहिए

> रोक-टोक से नहीं सुनेगा नृप समाज अविचारी है
> ग्रीवाहर निष्ठुर कुठार का यह मदान्ध अधिकारी है।
> इसीलिए मैं कहता हूँ अरे ज्ञानियो! खड्ग धरो
> हर न सका जिसको कोई भी भू का वह तुम शूल हरो।[38]

दूसरे शब्दों में जनक्रान्ति द्वारा राजतन्त्र से मुक्ति के उपाय की ओर संकेत किया है। बस 'कुरुक्षेत्र' काव्य की भाँति युद्ध का एक चिन्तन और अनिवार्य समस्या के रूप में इस काव्य में भी कवि ने स्वीकार किया है। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद मनुष्य यद्यपि विराट ज्ञानी और मनस्वी हो गया है किन्तु मनुज मनुज में युद्ध आज भी चल रहा है

---

[36] रश्मिरथी द्वितीय सर्ग पृ० १६
[37] वही पृ० १५
[38] वही पृ० १६

महाभारत मही पर चल रहा है
भवन का भाग्य रण म जल रहा है।
मनुज ललकारता फिरता मनुज को
मनुज ही मारता फिरता मनुज को।[3]

इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का मूल कारण अतिशय भौतिकतावादी मूल्यों की मानव जीवन म स्वीकृति है। सुख-समृद्धि क अधीन एव सत्तालोलुप होने के कारण मनुष्य पतनशील हो रहा है

होकर समृद्धि सुख क अधीन
मानव होता नित तप क्षीण।
सत्ता किरीट मणिमय आसन
करत मनुष्य का तेज हरण।
नर विभव हतु ललचाता है
पर वही मनुज को खाता है।[४]

इस प्रकार रश्मिरथी काव्य म जीवन दर्शन सम्बन्धी विचारणा का स्वरूप महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसम एक ओर पुरातन आदर्शों की नवीन और युगानुरूप व्याख्या प्रस्तुत की गयी है तथा दूसरी ओर चिरन्तन मानवीय मूल्यों का पुनर्प्रतिष्ठा का प्रबल आग्रह है। जिस कर्णधर्म के प्रसार का सन्देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया गया है वह हमारे युग जीवन एव समाज की वर्तमान परिस्थितियों म सर्वथा वांछनीय है। वह कर्णधर्म है

श्रम स नहीं विमुख होंगे जो दुःख स नहीं डरेंगे
सुख क लिए पाप स जो नर सन्धि न कभी करेंग।
कर्णधर्म होगा धरती पर बलि स नहीं मुकरना
जीना जिस अप्रतिम तज स उसी शान स मरना।[६१]

३६ रश्मिरथी सप्तम सर्ग पृ० १५
[४] वही तृतीय सर्ग पृ ५४
४१ वही चतुर्थ सर्ग पृ० ७८

'वैदेही वनवास' मे लोकाराधन का स्वरूप

महाभारत मही पर चल रहा है
भवन का भाग्य रण में जल रहा है।
मनुज ललकारता फिरता मनुज को
मनुज ही मारता फिरता मनुज को। [३९]

इस विच्छिन्नतापूर्ण स्थिति का मूल कारण अतिशय भौतिकतावादी मूल्यों की मानव जीवन में स्वीकृति है। सुख समृद्धि के अधीन एवं सत्तानोलुप मन के कारण मनुष्य पतनशील हो रहा है

हा ! सुख समृद्धि सुख के अधीन
मानव होता नित तप क्षीण।
सत्ता किरीट मणिमय आसन
करते मनुष्य का तेज हरण।
नर विभव हेतु ललचाता है
पर वही मनुज को खाता है। [४०]

इस प्रकार रश्मिरथी काव्य में जीवन-दर्शन सम्बन्धी विचारणा का स्वरूप महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसमें एक ओर पुरातन आदर्शों की नवीन और युगानुरूप व्याख्या प्रस्तुत की गयी है तथा दूसरी ओर चिरन्तन मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रबल आग्रह है। जिस कर्मधर्म के प्रसार का सन्देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया गया है वह हमारे युग जीवन एवं समाज की वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा वांछनीय है। वह कर्मधर्म है

श्रम से नहीं विमुख होंगे जो दुख से नहीं डरेंगे
सुख के लिए पाप से जो नर सन्धि न कभी करेंगे।
कर्मधर्म होगा धरती पर बलि से नहीं मुकरना
जीना जिस अप्रतिम तेज से उसी शान से मरना। [४१]

[३९] रश्मिरथी सप्तम सर्ग पृ० १५
[४०] वही तृतीय सर्ग पृ० ५८
[४१] वही चतुर्थ सर्ग पृ० ७४

'वैदेही-वनवास' मे लोकाराधन का स्वरूप

'वैदेही वनवास' में लोकाराधन का स्वरूप

सृजन प्रेरणा और उद्देश्य

'वैदेही-वनवास' महाकाव्य की सृजन प्रेरणा का मूल आधार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और सतीशिरोमणि जनकनन्दिनी के चरित्र हैं। कृष्ण राधा और राम-सीता के चरित्र वेदोत्तरकालीन भारतीय धर्म संस्कृति एवं सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं। शताब्दियों से भारतीय जन जीवन में ये चरित्र अवतारी रूप में पूज्य और मान्य रहे हैं। हरिऔधजी ने जिस प्रकार 'प्रियप्रवास' में कृष्ण और राधा का लोकसेवी रूप में अंकन किया है उसी प्रकार 'वैदेही वनवास' में राम और सीता का लोकाराधक रूप में चित्रित किया गया है। कवि के शब्दों में—'महाराज रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम लोकोत्तर चरित्र और आदर्श नरेन्द्र अथच महिपाल हैं। श्रीमती जनकनन्दिनी सतीशिरोमणि और लोकपूज्या आर्यबाला हैं। इनका आदर्श आर्य संस्कृति का सर्वस्व है मानवता का महनीय विभूति है और है स्वर्गीय सम्पत्तिसम्पन्न। इसलिए इस ग्रन्थ में इसी रूप में इनका निरूपण हुआ है।'[1] साथ ही अपने वक्तव्य में कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि—"सामयिकता पर दृष्टि रखकर इस ग्रन्थ की रचना हुई है, अतएव इसे बोधगम्य और बुद्धिसंगत बनाने की चेष्टा की गयी है। इसमें असम्भव घटनाओं और व्यापारों का वर्णन नहीं मिलेगा।"[2] स्पष्ट है कि राम-सीता के पौराणिक स्वरूप का युगीन एवं सामयिक सन्दर्भों में चित्रण करना प्रस्तुत महाकाव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत रहा है।

'वैदेही-वनवास' में वैदेही के वनवास की कथा है। गर्भिणी नारी का निर्वासन प्रसंग राम के चरित्र पर एक लांछन बना रहा है। प्रस्तुत प्रसंग को लेकर राम के चरित्र की आलोचना भी की जाती रही है। हरिऔधजी के पौत्र श्री मुकुन्ददेव शर्मा ने अपने ग्रन्थ[3] में उल्लेख किया है कि एक कलक्टर ने हरिऔधजी से विचार विनिमय करते समय प्रश्न किया था कि आप लोग

---

[1] वैदेही वनवास वक्तव्य पृ० ८ (पंचम संस्करण)

[2] वही पृ० ८

[3] मुकुन्ददेव शर्मा हरिऔध और उनका साहित्य पृ० ४२५

रामचन्द्रजी को ईश्वर का अवतार कहते है उनकी पूजा करते हैं उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहते है, परन्तु मैं तो उन्हें साधारण मनुष्य भी कहने में हिचकिचाता हूँ। क्या कोई ऐसा भी महापुरुष होगा जो अपनी गर्भवती स्त्री का निरपराध जान पर भी जगत में निर्वासित कर दे आदि। हरिऔधजी ने इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए वैदेही वनवास की रचना की। जैसा कि इस काव्य के कथानक से ज्ञात होता है इन्होंने जनकनन्दिनी के गर्भावस्था में वनवास गमन (कुलपति के आश्रम में जाना) का प्रयोजन लोकाराधन की सिद्धि के साथ साथ एक सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह भी माना है।[४] इसके अतिरिक्त हरिऔधजी की करुण रस में विशेष आसक्ति भी प्रस्तुत काव्य की रचना की प्रेरक रही है। कवि ने स्वयं कहा है कि— करुण रस की विशेषताओं और उसकी मर्मस्पर्शिता की ओर मेरा चित्त सदा आकर्षित रहा इसका ही परिणाम प्रियप्रवास का आविर्भाव है। प्रियप्रवास की रचना के उपरान्त मेरी इच्छा वैदेही-वनवास प्रणयन की हुई।[५]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदेही वनवास के प्रणयन की प्रेरणा के तीन प्रमुख स्रोत रहे है

१ सीता राम के चरित्रों की युगीन सन्दर्भों (लोकाराधक रूप) में प्रतिष्ठा।

२ वैदेही के वनवास की घटना का सांस्कृतिक परम्परित एवं व्यावहारिक औचित्य।

३ करुण रस की काव्यमय अभिव्यक्ति।

वैदेही-वनवास की सृजन प्रेरणा के इन स्रोतों का उल्लेख कवि ने स्वयं काव्य की भूमिका (वक्तव्य) में किया है। इनके अतिरिक्त भी वैदेही-वनवास की रचना के कतिपय मन्तव्य हैं। डा द्वारिकाप्रसाद सक्सेना का मत है कि— वैदेही वनवास की रचना द्वारा हरिऔधजी ने एक घटना प्रधान एवं प्रकृति चित्रण के विविध रूपों से संयुक्त प्रबन्धकाव्य के अभाव की पूर्ति की है। प्रियप्रवास की रचना के उपरान्त हरिऔधजी के आलोचकों ने दो बातें इनके सम्मुख दृढ़ता से रखी थी प्रथम तो यह कि आपकी रचना अधिक संस्कृत शब्दावली से परिपूर्ण है दूसरे आपके काव्य में प्रकृति चित्रण की विविध दृष्टि नहीं आती। अतः इन दोनों बातों को दूर करने के लिए वैदेही वनवास

[४] वैदेही-वनवास चतुर्थ सर्ग छन्द ५१ ५२

[५] वही वक्तव्य पृ० ६ ७

रचा गया।"[१] डा० सक्सेना द्वारा निर्दिष्ट कारण भी 'वैदेही-वनवास' की रचना के उद्देश्य यद्यपि स्वीकार किये जा सकते हैं किन्तु ये बहुत गौण बातें हैं। वस्तुतः महाकाव्यों की रचना एक महत् उद्देश्य से प्रेरित होती है। मेरी धारणा है कि प्रस्तुत महाकाव्य की रचना हरिऔधजी के गम्भीर चिन्तन मनन से प्रसूत मान्यताओं एवं जीवन-दर्शन सम्बन्धी निष्कर्षों की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए हुई है। 'वैदेही-वनवास' की रचना 'प्रियप्रवास' महाकाव्य के चौबीस वर्षों पश्चात् हुई। इतने वर्षों तक हरिऔधजी अन्यान्य प्रकार की साहित्य रचना भी करते रहे। अध्ययन, अध्यापन एवं साहित्य-सृजन के व्यवसाय ने उन्हें चिन्तन मनन का स्वर्ण अवसर प्रदान किया। और इनके इस सुदीर्घकालीन चिन्तनक्रम की चरम परिणति 'वैदेही-वनवास' महाकाव्य में हुई। उनके इस जीवन-दर्शन को एक शब्द में 'लोकाराधन' अभिधान दिया जा सकता है जिसके अनुसार

> सर्वोत्तम साधन है उर में
> भव-हित पूत भाव का भरना।
> स्वाभाविक सुख लिप्साओं को
> विश्व प्रेम में परिणित करना॥[२]

लोकाराधन की विचारणा

लोकाराधन का शाब्दिक अर्थ है—लोक की आराधना अर्थात् लोकमंगल की साधना। इस शब्द के समानार्थी लोकरंजन, लोकानुरंजन, लोककल्याण, लोकमंगल, लोकसेवा, लोकसाधन तथा विलोमार्थी लोकापवाद और लोकपीड़न शब्द हैं, जिन सभी का काव्य में यथाप्रसंग प्रयोग हुआ है। लोकाराधन की विचारधारा 'वैदेही-वनवास' महाकाव्य के जीवन-दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। कवि की सम्पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक मान्यताओं तथा आदर्शों का प्रतिपादन लोकाराधन की विचारणा के अन्तर्गत ही हुआ है। 'वैदेही-वनवास' महाकाव्य में प्रतिपादित लोकाराधन की विचारणा का अध्ययन राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक (दार्शनिक) एवं सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है।

(अ) राजनीतिक आदर्श—लोकाराधन का मूल विचार तत्त्वतः हमारे युग की समाज कल्याण (Social Welfare) की विचारणा का सहवर्ती है

---

[१] कविसम्राट हरिऔध और उनकी कलाकृतियाँ पृ० १२७

[२] वैदेही वनवास सप्तम सर्ग छन्द ७५, पृ० ९२

जिसके अनुसार सम्पूर्ण राजकीय साधना एवं शक्ति का उपयोग जनकल्याण या लोकहित की साधना के लिए किया जाना चाहिए। प्रस्तुत काव्य के मन्त्रणा गृह नामक सर्ग में वैदेही के सम्बन्ध में फैले लोकापवाद पर विचार करने के लिए एकत्रित भाइयों से राम स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जनहित की साधना ही प्रशासन की नीतियों का आधार है

प्रजारंजन हित साधन भाव। राज्य शासन का है पर अंग॥

अथवा

उचित है हे अत्यन्त पुनीत। लोक आराधन की नृप नीति॥ [८]

शान्ति अहिंसा और त्याग लोकाराधन की नीति के मूलभूत आधार हैं। इस नीति का पालन प्रशासक द्वारा दमन करके नहीं वरन प्रजा का विश्वास अर्जित करके किया जा सकता है। इसलिए राम कहते हैं

दमन है मुझे कदापि न इष्ट। क्योंकि यह है भयमूलक नीति।
चाह है लाभ करूं कर त्याग। प्रजा की सच्ची प्रीति प्रतीति॥ [९]

जनकजी के विरुद्ध फैले प्रतिवाद (लोकापवाद) का प्रतिकार भी राम शान्तिपूर्ण नीति द्वारा ही करना चाहते हैं चाहे इसके लिए उन्हें बड़े से बड़ा त्याग क्यों न करना पड़े

पठन कर लोकाराधन मन्त्र। करूंगा मैं इसका प्रतिकार।
साध कर जनहित साधन सूत्र। करूंगा घर घर शान्ति प्रसार॥ [१०]

× × ×

लोकाराधन के बल से लोकापवाद को दूंगा।
कलुषित मानस को पावन कर मैं वांछित फल लूंगा॥ [११]

राम गुरु वशिष्ठ से भी यही बात दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि जब मैंने लोकाराधन का व्रत ग्रहण किया है तो मैं प्रिया का वियोग भी सहूंगा और बड़े से बड़ा त्याग भी करूंगा। [१२] कवि ने लोकाराधन को राजनीति का सर्वस्व कहा है। [१३] इसी सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि लोकाराधन की नीति का

---

[८] वैदेही-वनवास तृतीय सर्ग पृ० २८ ३५

[९] वही पृ० ४२

[१०] वही चतुर्थ सर्ग पृ० ४८

[११] वही पंचम सर्ग पृ० ५८

[१२] वही चतुर्थ सर्ग पृ० ४८

[१३] वही सर्ग १७ पृ० २४२

आधार यदि हिंसावाद नहीं है तो अति-अहिंसावाद भी नहीं है। समाज में जो क्रूर और अनाचारी हैं व लोकाराधन के मार्ग के कंटक हैं जिनका दमन करने के लिए दण्डनीति भी आवश्यक है—

> रंगा मन में कभी शान्ति करता किया करें जो क्रूर।
> तो हुआ लोकाराधन कहां तार कंटक जो हुए न दूर।। [14]

अस्तु

> है क्षमा योग्य न अत्याचार उचित है दण्डनीय को दण्ड।
> निवारण करना है कर्तव्य मिटा पाषण्डों का पाखण्ड।। [15]

प्रजापाल (नृप) के लिए अपेक्षित गुणों का विवेचन करते हुए हरिऔधजी ने कहा है कि— नृप भी मनुज है अतः उसमें अनिवार्यतः मनुजता होनी चाहिए। वह सत्य और न्याय का आधार स्तम्भ है। उसका प्रधान कृत्य लोकाराधन की साधना करते हुए शान्तिमय शासन करना है।[16] कवि के शब्दों में

> त्याग सहित जिसमें लोकाराधन नहीं।
> वह लोकाधिप कहलाता है किसलिए।। [17]

इस प्रकार स्पष्ट है कि हरिऔधजी ने राजनीति को नीति से सम्पृक्त करके देखा है। उनका राजतन्त्र भी प्रजातन्त्र का ही प्रतिमूर्ति है। उनके राजनीतिक आदर्श युग जीवन की मान्यताओं एवं व्यवस्थाओं के सर्वथा अनुरूप हैं।

(ख) सामाजिक आदर्श—काव्य के चतुर्थ सर्ग में विज्ञानवती और सीता के वार्तालाप के माध्यम से कवि ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों, दाम्पत्य विवाह समस्या एवं पारिवारिक जीवन की समस्याओं पर गम्भीर विचार प्रस्तुत किये हैं। कवि का मत है कि विधाता ने स्त्री-पुरुष की रचना अर्ध भाग की कामना से की है। स्त्री और पुरुष अपने आप में अपूर्ण हैं किन्तु दोनों का मिलन उन्हें पूर्णता प्रदान करता है।[18] विवाह के सम्बन्ध में विज्ञानवती कहती

---

[14] वैदेही वनवास तृतीय सर्ग पृ० ८२
[15] वही, पृ० ८३
[16] वही नवम सर्ग पृ० ११८
[17] वही, पृ० ११५
[18] वही चतुर्थ सर्ग पृ० ५१

ह कि विवाह कोई बधन नहा वरन् निगमागम द्वारा प्रतिपादित वह पवित्र विधान है जिसके द्वारा दा हृदय मिलते ह तथा कुल कुटुम्ब गौरवान्वित तथा समाज सम्मानित हाता ह । इसीलिए विवाह एक समादृत प्रथा है ।[१९]

दाम्पत्य जीवन की सफलता का आधार सहकारिता है ।[२०] सहकारिता स अभिप्राय पति पत्नी क पारस्परिक सहयाग स ही नहा अपितु जावन क प्रत्यक क्षत्र म सामजस्य तथा सामरस्य स भी ह । उदाहरणार्थ नारी का निर्माण मृदुल उपादाना स हुआ ह अत वह सुकोमल और महनीया है । पुरुष की रचना अकामल तत्त्वा स हुई ह अत वह दृढ़ता और बलवान है । जीवन म दाना का हा महत्त्व आवश्यकता एव उपयागिता ह ।[२१] विज्ञानवता न नारा के लिए अपक्षित गुणा का चर्चा करत हुए कहा है कि

> सहज सरलता पवित्रता मृदुता सरसता
> आदि दिव्य गुण द्वारा हा जा उर्जिता ।
> प्राति सहित जो पति-पद का ह पूजता
> भव म हाता है वह पत्नी पूजिता ।।[२२]

इन्द्रियलालुपता अतिशय बनाव शृंगार कपटपूर्ण व्यवहार अहभाव आदि का स्त्री जाति का दुगुण कहा गया है ।

नारी क प्रति हरिऔधजा का दृष्टिकाण प्रगतिशाल था । व उस घर की चहारदीवारी म बद रहन वाली गहिनी ही नहा अपितु सहधर्मिणा भी मानत थ

> ह पत्ना न केवल गहिनी
> सहधर्मिणा मन्त्रिणी भी है ।[२३]

मातृत्व का अधिष्ठात्री होन क कारण नारी पुरुष स भा अधिक उच्च पद की अधिकारिणा है

> जनना केवल जन जनना नहा ।
> उसका पद है जावन का भा जनयिता ।।

---

[१९] वदेही-वनवास चतुदश सग छन्द ५५ ६७

[२०] वही छन्द ६

[२१] वही छन्द ६४ ६५

[२२] वही छन्द ११५

[२३] वही षष्ठ सग छन्द ६४

उसमें वह शक्ति सुचरित सृजन की।
नहीं पा सका जिसे प्रकृति कर से पिता॥ [२४]

हरिऔधजी जिस आदर्श सामाजिक व्यवस्था के समर्थक थे उसका स्वरूप काव्य के द्वितीय सर्ग के रामराज्य वर्णन में उल्लिखित है। हरिऔधजी ने सामाजिक जीवन की सम्पन्नता के लिए समता भाव, स्वतन्त्रता, पारस्परिक प्रेम, वर्णाश्रम धर्मपालन, ज्ञान, संयम, सदाचार आदि को आवश्यक माना है।[२५]

(ख) आध्यात्मिक आदर्श—हरिऔधजी ने निस्सन्देह पौराणिकता के प्रति बौद्धिक दृष्टि अपनाया है किन्तु उनका दृष्टिकोण विशुद्ध वैज्ञानिक नहीं बन पाया है। संस्कारवशात् वे वैदेही-वनवास के चरित-नायक राम और सीता को क्रमशः मानवता की महनीय विभूति और लोकपूज्या आर्यबाला मानते हुए भी उनके लोकोत्तर चरित तथा स्वर्गीय सम्पत्तिसम्पन्न व्यक्तित्व के चित्रण के व्यामोह से मुक्त नहीं हो पाये हैं। वैदेही-वनवास में इन चरित्रों को यद्यपि लौकिक रूप में ही चित्रित किया गया है किन्तु इनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक अलौकिकतापूर्ण घटनाओं और विज्ञापनाओं का समावेश स्वतः हो गया है। उदाहरणार्थ वाल्मीकि आश्रम में राम का गुणगान करते हुए वैदेही कहती है—

जिसकी नीरद-श्याम मूर्ति भवललामता की जननी है।

/ ^ ×

जिसकी महा-रुचिर रचना में लोक-रुचिरता बसती है।
जिसकी लोकोत्तर लीलाएँ, लोक-रंजक की थाती हैं॥ [२६]

उपर्युक्त उद्धरण में 'भवललामता की जननी', लोकोत्तर लीलाएँ, मंजु रुचिर रचना आदि शब्द राम के ईश्वरत्व की ओर संकेत हैं। इसी प्रकार वैदेही जब वाल्मीकि-आश्रम से लौटकर अवधपुरी जाती है और ज्यों ही रथ से उतरकर राम का चरणस्पर्श करती है कि उनका पार्थिव शरीर निश्चेष्ट होकर दिव्य ज्योति में परिणत हो जाता है—

ज्यों ही पति प्राण ने पति-पद-पद्म का।
स्पर्श किया निर्जीव मूर्ति सी बन गया॥

---

[२४] वैदेही-वनवास, द्वादश सर्ग, छन्द २५
[२५] वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ४७-६३
[२६] वही, दशम सर्ग, पृ० १२६-२७

और हुए अतिरक्त चित्त उल्लास था ।
दिव्य-ज्योति म परिणित पत्र म हुई ॥ [२७]

काव्य म एस कतिपय अन्य सदभ भी ह जिनमें राम को प्रभुवर त्रिभुवनपति तथा वदेही को शक्ति कहा गया है । इतना होते हुए भी वदेही वनवास के राम लोकसेवी और सीता भवसेविका ह

साम्राज्ञी होकर भी सज्जावृत्ति ह ।
राजनन्दिनी होकर ह भवसेविका ॥ [२८]

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राम-सीता के प्रति कवि का दृष्टिकोण परम्परानिष्ठ होते हुये भी प्रगतिशील है । हरिऔध का कवि आस्तिक है । ब्रह्म की सत्ता म उसे पूर्ण विश्वास है । इस विश्वास की व्यजना काव्य म अनेक स्थलों पर हुई है । प्रकृति को कवि ने अनन्तसत्ता की शक्ति कहा है । वह अखण्ड ब्रह्माण्ड की स्वामिनी है ।[२९] पौराणिकों न सृष्टि और प्रकृति को माया कहकर सम्बोधित किया है किन्तु हरिऔधजी इस विचार स सहमत नहीं । उनका मत है कि

सृष्टि या प्रकृति कृति को बहुधा कहकर माया ।
कुछ विबुधों ने ह गुण दोषमयी बतलाया ॥
इस विचार स है चित्त शक्ति कवलित होती ।
वह विदिता निज सब शक्ति सत्ता है खोती ॥ [३०]

नियतिवाद की धारणा को भी कवि ने स्वीकार किया है । यथा

यह विधान विधि का है नियति रहस्य है ।
कब न विवशता मनु सुत को इसमें हुई ॥ [३१]

हरिऔधजी की आध्यात्मिक निष्ठाओं पर विचार करने के अनन्तर विचारणीय यह है कि आध्यात्मिकता और भौतिकता म कवि के विचार से वरण्य क्या है ? यह एक चिरन्तन प्रश्न ह । आज के भौतिकता प्रधान युग जीवन म यह प्रश्न पहले की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है । हरिऔधजी ने वर्तमान समाज की विडम्बनापूर्ण परिस्थितियों एव विषमता का मूल कारण भौतिकवाद

---

[२७] वदेही वनवास सर्ग १८ पृ २८०
[२८] वही सर्ग १ पृ १६४
[२९] वही सर्ग १ पृ० १२
[३०] वही सर्ग १ छन्द ७६
[३१] वही सर्ग १७ पृ २ ८

की प्रभुता मानी है। भौतिकवाद के प्रभाव से मनुष्य में स्वार्थमूलक प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर मनुष्य स्वसुख की अर्जना में संलग्न होकर संघर्षरत रहता है। इसीलिए हरिऔधजी ने भौतिकवादिता का स्पष्ट शब्दों में तिरस्कार किया है—

'यह भौतिकता की है बड़ी विडम्बना।
इसमें होता प्राणि पुंज का पतन॥

कवि ने आध्यात्मिकता और भौतिकता की तुलना करते हुए कहा है कि भौतिकता में स्वार्थपरायणता, विलासिता, तामसवृत्ति, कृत्रिमता, दम्भ और उच्छृंखलता है जबकि आध्यात्मिकता में उदारता, सदाशयता, त्याग, करुणा, सात्त्विकता, सहानुभूति, शुचिता आदि विशेषताएँ हैं।[33] कवि के शब्दों में—

यदि भौतिकता नानाविध सम्पत्ति है।
तो आध्यात्मिकता अधिक सुविभूति है॥
यदि इसमें है नारकीय कटु कल्पना।
तो इसमें स्वर्गीय सरस अनुभूति है॥
भौतिकता में है यदि उच्छृंखलता।
आध्यात्मिकता सभ्य चिन्मयी शक्ति है॥[34]

अस्तु लोकानुरंजन की दृष्टि से समाज में आध्यात्मिकता का प्रचार प्रसार आवश्यक है।[35]

(द) सांस्कृतिक आदर्श—भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों की प्रतिष्ठा के लिए वैदेही-वनवास के रचयिता पूर्णतः सजग और प्रयत्नशील रहे हैं। उनके लोकाराधन की सिद्धि की भावना का करणीय रूप रहा है।[36] कवि ने स्वार्थ-साधन की पटुता तथा अनीति और दुर्नीति शासन की मनुजता का अभिधान किया है। मनुष्यों में वे ही पूज्य और वन्द्य हैं जो सत्य और न्याय जैसे मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए स्वहित का उत्सर्ग कर देते हैं

---

[32] वैदेही-वनवास सर्ग १४ पृ० २०
[33] वही छन्द ११० १५८
[34] वही छन्द २०२ २०
[35] वही छन्द १६०
[36] वही सर्ग ७ छन्द ८६

भवहित पर हित देश हिता का यान रख।
कर लेना निज स्वाथ सिद्धि है मनुजता॥
मनुजा म व परम पूज्य है वद्य है।
जा पराथ उत्सर्गी कृत जीवन रहे॥
सत्य याय क निए जि हान अटन रहे।
प्राणदान तक किय सब सकट सह॥ [३७]

का य म स्वाथ से परमाथ की सग्रह स त्याग की स्वहित से जातीय एव देशहित की महत्ता सिद्ध करके अ तत जावन मूल्या एव भारतीय सस्कृति के पुनीत आदर्शों की स्थापना की गयी है।

इस प्रकार वदही वनवास महाका य म लाकाराधन की विचारणा का कवि ने राजनीतिक सामाजिक आध्यात्मिक एव सास्कृतिक (मानवतावादी) आदि विभिन्न परिस दर्भों म प्रस्थापित किया है। इस विचारधारा की महत्ता का सबस बडा प्रमाण यह है कि वदेही के वनवास का कारण भी लोकाराधन हा माना गया है। वदही का वनवास म भजा जाना आय जाति की चिर कालिक प्रथा कहा गया है। गभवती पत्नी को नृप कुलपति क आ श्रम म इसलिए भज दिया करत थ जिसस उनका वशधर सवगुणालकृत हा। [३८] अस्तु यह कहा जा सकता है कि लाकाराधन का जिस विचारणा का प्रस्तुत महाका य का विचार-दशन बनाकर प्रस्थापित किया गया है वह परम्परा पाषित हात हुए भी युग जीवन के लिए प्रेरक है।

---

[३७] वदेही-वनवास सग ६ छ द ११ १४
[३८] वही सग ४ छ द ४१
[३९] वही सग ८ छ द २६

‘साकेत-सन्त’ महाकाव्य मे
सास्कृतिक आदर्श

'साकेत-सन्त' महाकाव्य मे सास्कृतिक आदर्श

सृजन प्रेरणा

'साकेत सन्त' के रचयिता ने अन्य कवियों की भाँति काव्य की भूमिका या प्रस्तावना के रूप में कुछ नहीं लिखा है जिसमें काव्य रचना के उद्देश्य या प्रेरणा के सम्बन्ध में कुछ संकेत हो। फिर भी स्पष्ट है कि भरत के चरित्र की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए ही साकेत सन्त की रचना हुई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि साकेत सन्त की रचना पर श्री मैथिलीशरण गुप्त के साकेत का पर्याप्त प्रभाव है[1] किन्तु दोनों की सृजनात्मक प्रेरणा के स्रोत मूलतः भिन्न हैं। साकेत महाकाव्य की रचना रामकाव्य की उपेक्षिता उर्मिला के चरित्रोद्धार की दृष्टि से हुई है जबकि साकेत-सन्त के चरित्र नायक भरत का चरित्र रामकाव्य की परम्परा में उपेक्षित नहीं रहा है। वस्तुतः भरत का चरित्र तो इतना गरिमापूर्ण और महान था कि उसके विशद चित्रण के लिए एक स्वतन्त्र काव्य की रचना अपेक्षित थी। सम्भवतः इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ने साकेत-सन्त महाकाव्य की रचना की। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण काव्य के अध्ययन से एक तथ्य यह सामने आता है कि काव्य में एक निश्चित विचार-दर्शन की प्रतिष्ठा के लिए कवि आद्यान्त प्रयत्नशील रहा है। इस विचार-दर्शन का आधार भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त हैं। भरत का चरित्र भारतीय संस्कृति के पुनीत आदर्शों का सात्विक प्रतीक है जिसे कवि वर्तमान युग-जीवन के अशान्त और अन्धकारपूर्ण वातावरण से त्राण के लिए आवश्यक मानता है। साकेत सन्त के कवि ने कहा भी है कि

> शान्ति तज क्रान्ति की वर्षा बना विश्व जब
> तामसी तमिस्रा में विकल बिललाता है।
> तब भावना में आत्मीयता का अन्य रूप
> भास्वर भारत भरत गुण गाता है॥[2]

---

[1] (अ) डा० प्रतिपालसिंह : बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, पृ० २६१
(आ) डा० गोविन्दराम शर्मा : हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ७८

[2] साकेत-सन्त, प्रथम संस्करण, उपक्रम, पृ० १७

साकेत सन्त के जीवन-दर्शन का आधार भारतीय संस्कृति के चिरन्तन आदर्श है। इन आदर्शों की प्रतिष्ठा कवि ने दो प्रकार से की है :

१ प्राचीन भारतीय जीवन मूल्यों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन और

२ पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवनादर्शों का निषेध।

काव्य के आरम्भ में ही भरत जब अपने ननिहाल में मामा युधाजित के साथ आखेट के लिए जाते हैं तो उनके बाण से एक मृग आहत हो जाता है। मृग की कातर दशा को देखकर भरत का भावुक हृदय द्रवित हो जाता है। यहीं कवि ने युधाजित और भरत के संवाद की योजना की है जिसमें पाश्चात्य और पौर्वात्य आदर्शों और मूल्यों की विवेचना हुई है। युधाजित कहता है कि क्षत्रियों का पशु पर करुणा करना उचित नहीं। क्षमा तो तापस का धर्म है। प्रशासक को तो कठोर होना चाहिए।[3] भूप को तो ऐसा होना चाहिए कि त्रिभुवन उसके भय से प्रकम्पित रहे। शासक का जीवन तो संघर्षपूर्ण होता है। क्योंकि

संघर्ष जगत का अर्थ है संघर्ष जगत की गति है।
संघर्ष करो पर निर्भर अपनी उन्नति की स्थिति है॥ [४]

यदि संसार में जीना और बढ़ना है तो संघर्षरत होना ही पड़ेगा। संसार में मत्स्य न्याय प्रसिद्ध है जिसके अनुसार बड़ा छोटे को खा जाता है। यह अवनी वीरभोग्या है। जो सत्ताधारी है संसार उसी का साथ देता है। अर्थ और काम की सिद्धि में ही जीवन की सफलता निहित है। इसलिए दया और करुणा को बान छोड़कर स्वयं अपने भाग्यविधाता बनो।[५] युधाजित ने भरत से यह भी कहा कि सफल प्रशासक बनने के लिए तुम्हें शोषण की नीति सीखनी होगी। जीवन रण में सौभाग्यचक्र चलाने के लिए औरों को कुचलना भी पड़ेगा। क्योंकि

क्षुद्रों की बलि वेदी पर
पनपी है सदा महत्ता।
निर्धन कुटियों को ढाकर
विकसी महलों की सत्ता॥ [७]

---

[3] साकेत-सन्त द्वितीय सर्ग छन्द १६ २५

[४] वही छन्द २६

[५] वही छन्द १ ३

[६] वही छन्द २८ ०

[७] वही छन्द ३६

युधाजित के कथन का प्रतिवाद करते हुए भरत ने कहा कि करुणा ही सबसे बड़ा बल है। शासक एक तपस्वी है जग रक्षा उसका तप है। संसार में दास या स्वामी होना कर्मों का क्रम है। प्रभुता तो एक भ्रम है।[८] सांसारिक जीवन का सार संघर्ष नहीं वरन् परशान्ति की प्राप्ति करना है

'संघर्ष न सार जगत का श्रम साध्य मात्र भव-भव की।
है परशान्ति परमाप्ति जिससे रहती स्थिति मन की ॥[९]

भरत ने कहा कि शोषण ही करना है तो जीवों का नहीं अपितु पापों का करना चाहिए। भरत ने मत्स्य न्याय दमन पर आधारित सत्ता और ऊँच नीच को जन्म देने वाले वैषम्य भाव का भी सतर्क खण्डन किया। उन्होंने लोक व्यवस्था की सुस्थिरता के लिए धर्मार्थ काम की साधना को महत्त्व देते हुए कहा

कब शान्ति किस मिल पायी रमार्थ धर्म के भ्रम में।
सुस्थिर है लोक व्यवस्था धर्मार्थ काम के क्रम में ॥[१]

इस प्रकार स्पष्ट है भरत और युधाजित के विचार परस्पर विरोधी हैं। एक ने जीवन में संघर्ष (Struggel in Life) मत्स्य-न्याय (Survival of the Fittest) शक्तिमत्ता (Might is Right) सत्ता निष्ठुरता दमन, शोषण और अर्थकाम की सिद्धि को महत्त्व दिया है तो दूसरे ने दया करुणा, शान्ति समता, और धर्मार्थ काम की प्राप्ति को जीवन का उत्कर्ष माना है। वस्तुतः इन दोनों की मान्यताएँ क्रमशः पाश्चात्य और पौर्वात्य जीवनादर्शों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यहाँ साकेत सन्त के रचयिता की विचारधारा के उद्घाटक भरत हैं। कवि के विचार दर्शन की सभी विशेषताएँ भरत के चरित्र में चरितार्थ भी हुई हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि साकेत-सन्त के कवि की जीवन-दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का मूल आधार भारतीय जीवन-दर्शन है। अस्तु भारतीय संस्कृति धर्म और दर्शनशास्त्र मिथकों के जीवन दर्शन सम्बन्धी मन्तव्यों की पृष्ठभूमि कह जा सकते हैं किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि पाश्चात्य जीवन दर्शन की उपलब्धियों (जिनका वर्तमान जीवन पर पर्याप्त प्रभाव है) को साकेत-सन्त के प्रणेता ने स्वीकारा नहीं है। वह

[८] साकेत-सन्त, द्वितीय सर्ग छन्द ४२ ४६
[९] वही, छन्द ४६
[१] वही, छन्द ५८

साकेत सन्त के जीवन दर्शन का आधार भारतीय संस्कृति के चिरन्तन आदर्श है। इन आदर्शों की प्रतिष्ठा कवि ने दो प्रकार से की है

१ प्राचीन भारतीय जीवन मूल्यों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन और

२ पाश्चात्य भौतिकतावादी जीवनादर्शों का निषेध।

काव्य के आरम्भ में ही भरत जब अपने ननिहाल में मामा युधाजित के साथ आखेट के लिए जाते हैं तो उनके बाण से एक मृग आहत हो जाता है। मृग की कातर दशा को देखकर भरत का भावुक हृदय द्रवित हो जाता है। यहीं कवि ने युधाजित और भरत के संवाद की योजना की है जिसमें पाश्चात्य और पौर्वात्य आदर्शों और मूल्यों की विवेचना हुई है। युधाजित कहता है कि क्षत्रियों का पशु पर करुणा करना उचित नहीं। क्षमा तो तापस का धर्म है। प्रशासक को तो कठोर होना चाहिए।[3] भूप को तो ऐसा होना चाहिए कि त्रिभुवन उसके भय से प्रकम्पित रहे। शासक का जीवन तो संघर्षपूर्ण होता है। क्योंकि

मंघर्ष जगत का अर्थ है संघर्ष जगत की गति है।
संघर्ष कर्म पर निर्भर अपनी उन्नति की स्थिति है॥[४]

यदि संसार में जीना और बढ़ना है तो संघर्षरत होना ही पड़ेगा। संसार में मत्स्य न्याय प्रसिद्ध है जिसके अनुसार बड़ा छोटे को खा लेता है। यह अवनी वीरभोग्या है। जो सत्ताधारी है संसार उसी का साथ देता है। अर्थ और काम की सिद्धि में ही जीवन की सफलता निहित है। इसलिए दया और करुणा की बातें छोड़कर स्वयं अपने भाग्यविधाता बनो।[५] युधाजित ने भरत से यह भी कहा कि सफल प्रशासक बनने के लिए तुम्हें शोषण की नीति सीखनी होगी। जीवन रण में सौभाग्यचक्र बढ़ाने के लिए औरों को कुचलना भी पड़ेगा।[६] क्योंकि

क्षत्रों की वक्रि बर्की पर
पनपी है सत्ता महत्ता।
निर्धन कुटियों को ठोकर
विकसी महलों की सत्ता॥[७]

---

[3] साकेत सन्त द्वितीय सर्ग छन्द १६ २५
[४] वही छन्द २६
[५] वही छन्द १ ३
[६] वही छन्द २८ ०
[७] वही छन्द २६

सुधाजित के कथन का प्रतिवाद करते हुए भरत ने कहा कि करुणा ही सबसे बड़ा बल है। शासक एक तपस्वी है जो इच्छा उसका तप है। संसार में दास या स्वामी होना कर्मों का क्रम है। प्रभुता तो एक भ्रम है।[8] सांसारिक जीवन का सार संघर्ष नहीं वरन् पराशान्ति की प्राप्ति करना है

संघर्ष न सार जगत का ध्येय सदा शान्त भवन की।
है पराशान्ति परमावधि जिसमें रचना स्थिति मन की।।[9]

भरत ने कहा कि शोषण जो करता है वो जीवों का नहीं अपितु पापों का करना चाहिए। भरत ने मत्स्य-न्याय-दमन पर आधारित सत्ता और ऊँच नीच का जन्म देने वाले वैषम्य भाव का भी सबल खण्डन किया। उन्होंने लोक-व्यवस्था की सुस्थिरता के लिए यथार्थ काम की भावना का महत्त्व स्पष्ट किया

कब शान्ति किसे फिर पाया कामार्थ धर्म के भ्रम से।
सुस्थिर है लोक व्यवस्था, यथार्थ काम के क्रम से।।[10]

इस प्रकार स्पष्ट है भरत और सुधाजित के विचार परस्पर विरोधी हैं। एक ने जीवन में संघर्ष (Struggle in Life) मत्स्य-न्याय (Survival of the Fittest) शक्तिमत्ता (Might is Right) सत्ता लिप्सुता दमन शोषण और अपकाम की सिद्धि का महत्त्व दिया है तो दूसरे ने दया करुणा शान्ति समता और यथार्थ काम की प्राप्ति को जीवन की उपलब्धि माना है। वस्तुतः इन दोनों की मान्यताएँ क्रमशः पाश्चात्य और पौर्वात्य जीवनादर्शों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यही 'साकेत-सन्त' के रचयिता की विचारधारा के उद्घाटक भरत हैं। कवि के विचार-दर्शन की सभी विशेषताएँ भरत के चरित्र में चरितार्थ भी हुई हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'साकेत-सन्त' के कवि की जीवन-दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं का मूल आधार भारतीय जीवन-दर्शन है। अस्तु भारतीय संस्कृति धर्म और दर्शनशास्त्र विशेषज्ञ के जीवन-दर्शन सम्बन्धी मान्यता की पृष्ठभूमि बन जाते हैं किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि पाश्चात्य जीवन-दर्शन की उपलब्धियाँ (जिनका वर्तमान जीवन पर पर्याप्त प्रभाव है) को 'साकेत-सन्त' के प्रणेता ने स्वीकारा नहीं है। वह

---

[8] साकेत-सन्त, द्वितीय सर्ग, पृष्ठ ४८-४९
[9] वही, पृष्ठ ४९
[10] वही, पृष्ठ ५८

भारतीयता का पुजारी होते हुए भी समसामयिक चिन्तनधारा और जीवन बोध के प्रति जागरूक रहा है। इसका प्रमाण कवि के सम्पूर्ण चिंतनक्रम में उपलब्ध है। उदाहरणार्थ कवि ने भारतीय धर्मशास्त्र की परम्परा के अनुसार राजा को ईश्वर का रूप मानते हुए भी उसके जीवन को सार्थक लोकहित माना है

भूप इससे ही प्रभु का रूप कि उसके सिर है इतना भार।
न अपने किन्तु लोक के लिए सदा उसका जीवन संचार॥

× × ×

राजमित्र शासन का यह छिन्न जगन्मङ्गलमय सात्त्विक रूप।
कि शासन सेवक होकर मिले स्वकर्मों में भर प्रेम अनूप॥ [11]

स्पष्टतः यहाँ प्रशासक के प्रजातान्त्रिक स्वरूप की मान्यता प्रदान की गयी है किन्तु राजतन्त्र का निषेध नहीं। इसी प्रकार कवि ने भारतीय मान्यता के अनुसार नियति और भाग्य के अस्तित्व को स्वीकार किया है तो पुरुषार्थ की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है। यथा

भाग्यवाद

पुरुष कुछ नहीं समय बलवान
समय के हाथ फलाफल दान।

× ×

भाग्य विधि का पन्न निर्माण
रहे का तब मिलते हैं प्राण॥ [12]

नियति

नियति परतन्त्र मनुज व्यापार
नियति ही मार नियति ही सार।
नियति है जगदात्मा का कर्म
कौन समझेगा पूरा मर्म।
विषम यह विधि का रचा विधान
विधाता समझे या भगवान॥ [13]

---

[11] साकेत सन्त द्वादश सर्ग पृ १५ १५८
[12] वही चतुर्थ सर्ग पृ ६० ६१
[13] वही पृ ६१

पुरुषार्थ

मरण ही हो जीवन का ध्येय कर्म की गीता सबकी गाथ।
भाग्य की बात भाग्य के हाथ पुरुष का है पौरुष के साथ।
× × ×
पुरुष है भाग्यविधाता आप अलस ही पाता है अभिशाप।[१४]

इसी सन्दर्भ में कवि की ईश विषयक धारणा भी द्रष्टव्य है। श्री मथिलाशरण गुप्त की भाँति रामकाव्यों (कौशल किशोर साकेत-सन्त 'रामराज्य) के प्रणेता डा० बलदेवप्रसाद मिश्र वैष्णव भावना के कवि हैं। उनके शब्दों में

'स्वामी एक राम हैं उन्हीं का धाम विश्व यह।[१५]

मिश्रजी ने साकेत सन्त में ब्रह्म के लिए ईश ईश्वर प्रभु विभु विश्वम्भर विश्वपुरुष आदि पौराणिक अभिधानों का प्रयोग किया है। किन्तु वैष्णव भावना के अनुवर्ती होते हुए भी उन्होंने जनता में जनार्दन को देखने की बात कहकर ईश्वर और धर्म की मानवतावादी व्याख्या प्रस्तुत की है

मनुज में शक्ति, मनुज में भक्ति
जनार्दन का जन-जन अवतार।[१६]

अथवा

न देखा जिसने भू पर स्वर्ग, नरों में विश्वम्भर भगवान।
वृथा है प्रेम वृथा है कर्म वृथा है उसका सारा ज्ञान।
जनार्दन को जनता में लखो यही सब धर्मों का सार।[१७]

इसी प्रकार देशभक्ति राष्ट्रीय एकता और भारत की महिमा का बखान काव्य में अनेक स्थलों पर हुआ है किन्तु राष्ट्रीय भावना की चरम परिणति विश्व प्रेम में निदर्शित की गयी है। कवि के शब्दों में

हो उठे उत्तर दक्षिण एक तुम्हारा भारत बने अभंग।
कहकर आर्यावर्त ललाम भरत या भारत हो विख्यात।
समन्वित संस्कृति इसकी कर विश्वभर को उज्ज्वल अवदात।
पूज्य हो इसकी कण-कण भूमि बढ़े या महिमा अमिट अपार।
रहे इच्छुक निर्जर भी सदा यहाँ पर लेने को अवतार।[१८]

---

[१४] साकेत-सन्त, चतुर्दश सर्ग पृ० ६२ ६३
[१५] वही, उपक्रम पृ० १७
[१६] वही द्वादश सर्ग पृ० १४६
[१७] वही पृ० १५१
[१८] वही, पृ० १४७

अथवा

भारत जब तक जग म होगा
भारतीयता तब तक होगी।
भारतीयता होगी जब तक
जग होगा तब तक नीरोगी। [१६]

उपर्युक्त उद्धरणो स स्पष्ट है कि कवि राष्ट्रोत्थान का आकांक्षी है किन्तु राष्ट्रोत्थान की कामना वह निबल राष्ट्रो को हडपन क लिए नहा वरन विश्वशान्ति और मानवता के उत्कष के लिए करता है

सभी निज सस्कृति क अनुकूल
एक हो रचें राष्ट्र उत्थान।
इसलिए नही कि करें सशक्त
निबला को अपने म लीन।
इसलिए कि हो विश्वहित हेतु
समुन्नति पथ पर सब स्वाधीन।
विश्व म फल जाय सुख शान्ति
यही हो जीवन का आदश।
इसी म मानवता की कान्ति
इसी म मानव का उत्कष। [२]

जिसे हम आज सहअस्तित्व का सिद्धान्त कहत है उसका प्रतिपादन भारतीय मनीषी न सर्वे भवन्तु सुखिन कहकर बहुत पहल किया था। मिश्रजी न विश्व मगल की कामना करत हुए उसी सिद्धान्त की पुनप्रतिष्ठा साकेत-सन्त म की है। कवि के शब्दो म

सब स्वतन्त्र सब समृद्ध।
निज उन्नति म सब ही रह हानि स अविद्ध।
× × × ×
एक ध्वजा एक छत्र एक स्वीय राज्य ऋद्ध।
विश्व की मनुष्य जाति एक हो प्रभाव इद्ध।
सिद्ध करें जग विभक्ति भारतीयता प्रसिद्ध। [२१]

---

[१६] साकेत-सन्त अयोदश सग पृ० १८२
[२] वही द्वादश सग पृ० १५०
[२१] वही चतुदश सग पृ १६७

युगीन समस्याओं का निरूपण और निदान

'साकेत-सन्त' में समसामयिक जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओं का निरूपण और निदान प्रस्तुत किया गया है। काव्य के द्वादश सर्ग में भरत राम से जीवन का मर्म जानने हेतु प्रश्न करते हैं। उत्तर में राम सृष्टि के रचना काल से लेकर वर्तमान युग तक मानवता के विकासक्रम का परिचय देते हुए विश्व जीवन की अनेक उल्लेखनीय समस्याओं पर मूल्यवान विचार प्रस्तुत करते हैं। मिश्रजी के अनुसार चेतना के स्पन्द में सृष्टि रचना हुई। विकासक्रम में वसुन्धरा पर मानव अवतरित हुआ। अपने विशाल अस्तित्व के कारण सृष्टि और प्रलय के अनेक चक्र लाँघकर भी मानव आज तक अचल अटल है। मानव की अपार समृद्धि देखकर देवता भी सहम गये। कालान्तर में द्रव्य-संघात की लिप्सा के वशीभूत होकर मनुष्यों में परस्पर षडयन्त्र होने लगे। प्रेम और संयम दब गये। ईर्ष्या और वैमनस्य का प्रसार होने लगा। अर्थ-संग्रह की प्रवृत्ति ने पूँजीवाद को जन्म दिया। वही पूँजीवाद जो समाज का अभिशाप बनकर शोषण की नींव पर पनप रहा है —

द्रव्य संघात द्रव्य संधान
छा गया सिक्कों का वह जाल।
कौड़ियों पर लुटने ही लगे
कराल मनुजों के कंकाल।
खड़े निर्धन कुटियों को चूर
धनों के उठे गगन प्रासाद।
अनेकों को दे दृढ़ दासत्व
एक ने पाया प्रभुता स्वाद।[12]

पूँजीवादी मनोवृत्ति के कारण जो संघर्ष बढ़ा वह व्यक्तियों तक ही सीमित न रहा वरन् वर्ग समाज और राष्ट्रों में भी फैल गया। हमारे भी देश में ब्राह्मण और क्षत्रिय में आर्य और अनार्य में दक्षिण और उत्तर में विरोध तथा संघर्ष दिखायी देता है। आर्यावर्त और आर्य-संस्कृति का पुरातन स्वरूप आज छिन्न भिन्न हो गया है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के कारण आज सम्पूर्ण मानव जाति विवश होकर कराह रही है —

मनुजता रही कराह कराल आह के कौन पूछता हाल
राक्षसी चक्की में पिस रहे मनुजता के जर्जर कंकाल।

---

[12] साकेत-सन्त द्वादश सर्ग पृ० १४३

अकेला रावण क्या इस काल अनेक खरदूषण से वृत
कुचलते जाते वन मातंग मनुजता के कोमल अरविन्द।
अनेक देख रहे ऋषि वृन्द न कोई चलता किन्तु उपाय
महा भीषण यह अत्याचार मनुज मनुजों से खा जाय।[23]

इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का समाधान सुझाते हुए कवि ने कहा है कि विश्व जीवन में संगठन हो,[24] आर्य और अनार्य संस्कृतियों में मेल हो,[25] श्रम धन की महत्ता हो,[26] भौतिक सुख सुविधा के साधन सभी को उपलब्ध हों किन्तु मनुष्य विज्ञानप्रसूत भौतिक सुख-सुविधाओं के अधीन न हो। मनुष्य विज्ञान से नहीं भारतीय योग विज्ञान की शक्ति से ऐसा विधान करे कि मानव में जो भगवान छिपा है वह प्रकट हो

हमारे योगों के विधान
रचें ऐसा विज्ञान नवीन।
× × ×
व्यवस्था एक नयी चुपचाप
विश्व में ऐसा रचे विधान।
कि जिससे नर के अन्तस में स्वतः
प्रकट हों छिपे हुए भगवान।।[27]

यहाँ भगवान के प्रकट होने से अभिप्राय मनुष्यों में सद्वृत्तियों की उद्भावना से है। जहाँ तक नयी व्यवस्था का प्रश्न है कवि ने स्वयं कहा है कि— विश्वबन्धुत्व व्यवस्था का[28] तथा प्रेम और करुणा इस व्यवस्था के आधार हों।[29] कवि की धारणा है कि

हृदय से होगा जब तक नहीं
प्रेम का क्रियाशील शुचि याग।
जगत के कर्म क्षेत्र में कभी
न आगे बढ़ पायेंगे नाग।[30]

[23] साकेत सन्त एकादश सर्ग पृ १८५
[24] वही छन्द ४५
[25] वही छन्द ४६
[26] वही छन्द ४७
[27] वही पृ १५४
[28] वही छन्द ४६
[29] वही छन्द ५२
[30] वही पृ १४८

निष्कर्ष

इस प्रकार साकेत-सन्त में प्रतिपादित कवि के जीवन-दर्शन सम्बन्धी मन्तव्यों पर विचार करने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मिश्रजी ने परम्पराप्रिय होते हुए भी प्रगतिशील जीवन-दृष्टि को अपनाकर अपनी चिन्तनधारा का निर्माण किया है। उन्होंने भारतीय संस्कृति की जिन आधारभूत मान्यताओं को काव्य में प्रतिपादित किया है उनका महत्त्व भारत या भारतीयों के लिए ही नहीं अपितु विश्वजनीन है। पौराणिक इतिवृत्त पर आधारित होते हुए भी साकेत-सन्त वर्तमान युग की मूलभूत चेतना से अनुप्राणित काव्य है। साकेत-सन्त के माध्यम से नये युग के आदर्श आर्य संस्कृति की विशेषताएं या भारतीय दर्शनशास्त्र की मान्यताएं ही वर्णित नहीं हुईं वरन् विश्व-जीवन को प्रेरित और प्रभावित करने वाला महान मानवतावादी सन्देश प्रसारित हुआ है जो समग्र मानव जाति की थाती है। वह सन्देश है

मनुज जीवन का यह ही मर्म
आह को गहरा ले जान।
मनुजता की रक्षा के हेतु
निछावर कर दे अपने प्राण।
जगायेगा जन जन में भरी
मनुजता को जो मनुज महान।
विश्व रक्षा हित उसमें शक्ति
भरेंगे विश्वम्भर भगवान।।[31]

इसीलिए साकेत-सन्त सामान्य काव्य नहीं महाकाव्य है। और महाकाव्य अपने सन्देश और उद्देश्य की दृष्टि से किसी भाषा साहित्य समाज या राष्ट्र की सम्पत्ति ही नहीं होते वरन सम्पूर्ण मानवता की धरोहर बन जाते हैं।

[31] साकेत-सन्त, द्वादश सर्ग छन्द २८, पृ० १४६

'रावण' और 'दैत्यवंश' : मानव मूल्यों के महाकाव्य

'रावण' और 'दैत्यवंश' मानव मूल्यों के महाकाव्य

पौराणिक युग के कलंकित, तिरस्कृत एवं उपेक्षित पात्रों के उचित मूल्यांकन और सम्यक समालोचन की प्रवृत्ति हिन्दी के साहित्यकारों ने बंगला के मानवतावादी लेखकों और युगद्रष्टा कवियों से प्राप्त की। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'काव्येर उपेक्षिता' लेख ने श्री मैथिलीशरण गुप्त को 'साकेत' और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को 'ऊर्मिला' महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार माईकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद वध' महाकाव्य में तिरस्कृत और कलंकित पात्रों को मानवीय दृष्टि और युगीन सन्दर्भों में अवलोकन की काव्य दृष्टि प्रदान की। हिन्दी में श्री हरदयालुसिंह विरचित 'दैत्यवंश' और 'रावण' नामक महाकाव्य इसी प्रेरणा के परिणाम हैं। मानवतावादी जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर ही सूतपुत्र कर्ण पर श्री दिनकर ने 'रश्मिरथी' और 'निषादपुत्र' एकलव्य पर डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' नामक महाकाव्यों की रचना की है। प्रसन्नता का विषय है कि इस कोटि के काव्यों में कृतिकार की मेधा और अनुभूति युग चेतना से अनुरंजित होकर मुखरित हुई है। ऐसे कवियों का प्रयास मानवता के पुरातन कलंकों का पूत प्रक्षालन है, ऐतिहासिक त्रुटियों का सम्मार्जन है, चिरन्तन सत्य का अनुसंधान है और साहित्य में मानवतावाद की महान् उद्घोषणा है।

हिन्दी महाकाव्य लेखन की सुदीर्घ परम्परा में 'दैत्यवंश' और 'रावण' का उल्लेखनीय स्थान है। क्योंकि इन महाकाव्यों में प्रथम बार एक कवि ने दैत्य और दानव कहे जाने वाले पात्रों में दैवीय गुणों और मानवीय विशेषताओं का संधान किया है। श्री सिंह का यह प्रयास सर्वथा अभिनन्दनीय है।

'दैत्यवंश' की रचना कालिदास कृत 'रघुवंश' महाकाव्य की शिल्प विधि के आधार पर हुई है। 'दैत्यवंश' का इतिवृत्तात्मक संयोजन श्रीमद्भागवत महापुराण तथा 'रावण' का वाल्मीकि रामायण के आधार पर हुआ है। 'दैत्यवंश' में दैत्यकुल के हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और अरविन्दकुमार नामक छः राजाओं की कथा का वर्णन है। 'रावण' महाकाव्य में पुलस्त्य ऋषि के वंश का (विश्रवा से लेकर अक्षयकुमार-अरिमर्दन तक)

वणन है। दाना महाका या का कथात्मक आधार पौराणिक होत हुए भी नवीन प्रसगोदभावनाओ द्वारा कवि न कथा चयन म मौलिकता का परिचय दिया है। उदाहरणाथ दत्यवश क प्रथम सग म वराह द्वारा हमनाचन की पुष्प वाटिका उजाडना चतुथ सग म सिधुसुता क स्वयवर म सरस्वती द्वारा विभिन्न देवा और अन्यो का परिचय देना सप्तम सग म इन्द्र का हस द्वारा शची का सन्देश भेजना दशम सग म वामन क जन्म तथा बाललीलाओ का चित्रण और त्रयोदश सग मे चित्ररखा द्वारा अनिरुद्ध का हरण मौलिकता पूण है। इसी प्रकार रावण महाकाव्य म रावण क देव विरोध का कारण षष्ठ सग म पुत्र प्राप्ति क लिए मन्दोदरी द्वारा पावती पूजन सप्तम सग म सुलोचना और मघनाद का गन्धव विवाह सीता हरण का कारण विभीषण क चरित्र म बधु द्रोह एव विश्वासघात तथा १५व व १६व सर्गों का सम्पूण कथा विधान कवि-कल्पना प्रसूत है। कथा-सयोजन म कवि ने परम्परा प्रख्यात कथानक के स्वरूप की रक्षा करत हुए युगीन सन्दर्भों क अनुरूप कथासूत्रो को सजोया है। दत्यवश म बलि की राज्य-व्यवस्था का वणन मेरे कथन का पुष्टि म द्रष्ट य है।

वस्तुत दत्यवश और रावण चरित्र प्रधान महाका य है। अदव असुर राक्षस और असुर कहे जाने वाल पात्रो की चरित्रगत विशषताओ का मानवता वादी परिप्रेक्ष्य (Humanitarian Perspective) म प्रदशन इन महाका यो की रचना का मुख्य प्रयोजन है। इन महाका यो के चरित्र विश्लेषण स पूव यह समझ लिया जाय कि देव और दानव कौन है ? क्या दव और दानव मानवेतर जातियाँ है ? यदि हा तो उनका मानवीय दृष्टि स मूल्याकन कस किया जा सकता है ? प्रतीक दष्टि स दवत्व और दानवत्व मानवीय वत्तियाँ है। श्री उमाशमिश्र के अनुसार— मानव का अविकसित या अपविकसित रूप दत्य और सुविकसित रूप देव है। फलत दत्य प्रकृति का आदि मानव रूप कहा जा सकता है जिसम शारीरिक बल प्रचुर मात्रा म मौजूद है क्योकि वह प्रकृति की सीधा दन है। परन्तु मस्तिष्क बल उसम अधिक नहा है। शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्राय एक-स अनुपात म किसा वग म नहा पाया जाता। विकासक्रम म यह भा देखा गया है कि किसा वग म जस जस मस्तिष्काय शक्तिया का विकास हाता है शारीरिक बल का ह्रास भा हाता जाता है। छल प्रपच धूतता विश्वासघात आदि मस्तिष्क क विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दत्य शारीरिक बल म बढे चढे है पर उनम सरल विश्वास सत्यनिष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर बल म निबल

है पर चतुर अधिक है वे बात बात में दैत्यों को धोखा देते हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हें छल देते हैं।[1]

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यदि हम देव और दानव के प्रश्न पर विचार करें तो पायेंगे कि जिन्हें हम दानव कहकर तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखते आये हैं वे अनेक मानवीय गुणों और विभूतियों से युक्त हैं। पौराणिकता के पुष्कल प्रभाव, रूढ़िबद्ध मान्यताओं की अन्ध स्वीकृति, अवतारवाद की परिकल्पना के व्यामोह एवं तथाकथित धार्मिक प्रतिबद्धता के कारण हमारा दृष्टिकोण अवैज्ञानिक और अमानवीय रहा है। यदि हम निरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टि और आग्रहमुक्त तटस्थ भाव से देव-दानव संघर्ष के इतिहास का अध्ययन करें तो पायेंगे कि इस अनादि संघर्ष के लिए दोनों ही उत्तरदायी हैं। यह बात दूसरी है कि इसके दायित्व का कितना प्रतिशत देवों पर है और कितना दानवों पर। देव-दानव विरोध के कारणों की रावण और दैत्यवंश के आधार पर खोज करें।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पुत्र मरीचि थे। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। इन्हीं कश्यप ऋषि की दिति नामक पत्नी से दैत्य और अदिति से देवता उत्पन्न हुए। इस प्रकार देव और दानव एक ही पिता की सन्तान थे। दैत्यवंश में हिरण्याक्ष शक्तिशाली और पराक्रमी था। देवताओं को उससे त्रस न होना सो उन्होंने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने वराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष की वाटिका को उजाड़ दिया। फलस्वरूप संघर्ष हुआ जिसमें वराह रूपधारी विष्णु ने हिरण्याक्ष को मार डाला। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु का वध भी उन्होंने किया। दैत्यवंश के राजाओं में बलि सबसे चतुर था। राज्यासीन होते ही उसने सैन्य-संगठन किया तथा प्रजाहित के कार्य किये। उसने ६६ अश्वमेध यज्ञ किये। बलि के उत्कर्ष को देखकर देवता मन ही-मन कुढ़ते थे। उन्होंने छद्मपूर्ण सन्धि प्रस्ताव करके दैत्यों के सहयोग से समुद्र-मन्थन किया। सागर से निकला अमृत को देवता छलपूर्वक अकेले पी गये। यद्यपि सागर-मन्थन में दैत्यों का ही श्रम अधिक था। फलस्वरूप युद्ध हुआ जिसमें बलि ही विजयी हुआ। तदनन्तर बलि ने इन्द्रासन की प्राप्ति के लिए सौवां अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। तभी वामन रूप धरकर विष्णु ने तीन पग पृथ्वी मांगकर बलि का सर्वस्व अपहरण कर लिया। बलि ने दो पगों में सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश देकर तथा तीसरे पग में अपना हिमगिरि के समान

[1] दैत्यवंश, भूमिका पृ० ६७

उच्च और दर्पित शीश अर्पित करके दानशीलता का अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत किया। बलि का पुत्र बाण भी महान् पराक्रमी था। उसने दिग्विजय कर जीवन के अंतिम चरण में राज्य पुत्र को सौंप शिवाराधन के लिए वन गमन किया। बाण का पुत्र अस्कन्दकुमार भी प्रजारक्षक था। उसने प्रजाहित के लिए गुरुकुलों धर्मशालाओं राजमार्गों वनवीथियों और ग्रामों का निर्माण किया तथा समाज के विभिन्न वर्गों से सम्पर्क स्थापित किया। इसी प्रकार रावण महाकाव्य को देखें तो ज्ञात होगा कि रावण का देवों से जन्मजात बैर न था। एक दिन पुलस्त्य ने बताया कि देवताओं के अनुरोध से विष्णु ने नानामाली को मार डाला था। यहीं से रावण देव विरोधी हो गया। उसने देवकुल के संहार का निश्चय किया। अपने शौर्य और पराक्रम से रावण ने त्रैलोक्य में विजय का झण्डा फहरा दिया। राम से रावण के द्वेष का कारण यह था कि राम राक्षसकुल के अनिष्ट के लिए तप कर रहे मुनियों के सहायक हुए। राम ने ताड़का का वध किया। जनस्थान की गवर्नर शूर्पनखा ने जब यज्ञों पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो मुनियों ने उसका विरोध किया। फलस्वरूप खरदूषण को ससैन्य भेजा गया। उनको भी राम ने वध कर दिया। लक्ष्मण ने शूर्पनखा के नाक-कान भी काट दिये। प्रतिशोध की भावना से रावण ने सीता का हरण किया जो अन्ततः राम रावण युद्ध का कारण बना।

दानों महाकाव्यों की प्रमुख घटनाओं के विहंगावलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि देव दानव संघर्ष के मूल में देवों का ईर्ष्याभाव और छल छद्मपूर्ण व्यवहार प्रमुख रहे हैं। इसके विपरीत दैत्यों और राक्षसों के चरित्र में दानशीलता शौर्य साहस पराक्रम तपश्चर्या तेजस्विता शिवाराधन निष्ठा प्रशासनिक योग्यता जैसे गुण निहित हैं जिनकी पूर्वाग्रही दृष्टिकोण के कारण सर्वत्र उपेक्षा की गयी है। अब हम राक्षसों और दैत्यों के गुणों का विवेचन करेंगे।

बलि ने राज्यपदासीन होते ही प्रजाहित के अनेक कार्य प्रारम्भ कर दिये

> खोले गुरुकुल अमित सर्वनि विद्या पढ़वाई
> सनिक सिच्छा काज व्यवस्था सकल कराई।
>
> × × ×
>
> कियो स्वास्थ्य रक्षा हित भूपति अमित उपाई
> ठाहीं नगरनि माहि औषधालय खुलवाई।
>
> × × ×

कृपि विभाग को भुप अमित सम्पन्न बनायो
अरु सहकारी कोष खोलि उन्नति करवायो । २

दत्यवश के राजाओ म अक्षयकुमार न तो राज्य-काय मत्रियो को सौपकर एक एक गाव का भ्रमण किया और प्रजा के दुख सुख की बातें सुनी

मती सारे ग्राम की सब निरख्यो नरनाह
कृषिकन को दुख-सुख सुन्यो मन मह अमित उछाह । ३

दत्यवश क राजा प्रजाहितपी होने के साथ साथ अपार दानी भी थ । गुरु शुक्राचाय के समझान पर भी कि वामन बटु क रूप म विष्णु आय है राजा बलि ने उन्ह तीन पग पृथ्वी दान देना स्वीकार कर लिया और अपना सवस्व अपण कर दिया ।[४] दत्य जितन भोग विलासी थ उतने ही त्यागी तपस्वी और वरागी भी । बाणासुर ने विश्वविजय की अपार वभव स सम्पन्न सोनपुर नगर बसाया अनन्त ऐश्वय सुख का भोग किया । यहा बाणासुर वृद्धावस्था आते ही पुत्र को राज्य पद सौंप शिवाराधन क लिए चला गया । कठोर तप करते हुए बाण न शरीर त्यागा

रहो एक पग रह्यो व्योम निसि हाथ उठाय
सिव सिव निज मुख कहत भानु दिसि दीठि लगाय ।
यहि विधि करि तप घोर दिवस बितय नर त्राता
गयो सुखाय सरीर सहत हिम आतप वाता ।

×   ×   ×

सूख गया नप गात विसाल
रही ठठरी तन म अवसेसा ।
फारि क ब्रह्म के रन्ध्रहि प्रान
मिल्यो सिव शकर म मविसेसी ।
यों तन जोगु की आग म जारि
गयो सिवधाम बनो हर वेसी । ५

बाण न यह कृच्छ तप साधना किसी भौतिक ऐश्वय की प्राप्ति क लिए नहीं की वरन् स्व तपश्चर्या द्वारा दमन आश्रम धम की व्यवस्था का विधिवत्

---

२ दत्यवश सग ७ पृ० २४ २६
३ वही सग १८ पृ० २८५
४ वही सग १२ पृ० १८८
५ वही सग १७ पृ २५१

अनुपालन कर उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया। कठोर तप साधना सभी दैत्य वंशी राजाओं ने की। रावण महाकाव्य में कैकसी अपने पुत्रों (रावण कुम्भकरण विभीषण आदि) को तप के लिए प्रेरित करती हुई कहती है

तप बल ह्वै सो रचत विश्व प्रपंच विधाता
तप बल ही सो बनत विस्नु वाको परित्राता।
तप बल ह्वै सो रुद्र ताहि पल में बिनसावै
तप की महिमा और कहा लौं तुमहि सुनावै।
× × ×
अब विलम्ब जनि होय करहु तप हेतु तयारी
बसहु जाय बन माहि सिद्धि दै हैं त्रिपुरारी।[६]

रावण और कुम्भकरण की कठोर तप-साधना का वर्णन कवि ने निम्नांकित प्रकार से किया है

दीरघ दाघ निदाघ पंचागिनि तापि बितायौ
बहु दारुण हिम राति खड़े जल माहि गवायौ।
अरु वीरासन बैठि कष्ट बरषा को झेल्यौ
इमि तप के धनकरन आपु प्रानन पै खेल्यौ।
कहूं ते अति कठिन उग्र दसमुख तप कीन्हो
निज नव सीसन काटि होम हुतभुज महं दीन्हो।[७]

इसी तप साधना के बल पर दैत्य और राक्षस अमोघ शक्ति प्राप्त करते थे। उनके अनन्त शौर्य और पराक्रम का परिचय हमें देवासुर संग्रामों में मिलता है।

दैत्यों के समान उनकी स्त्रियाँ और कन्याएँ भी गुणवती थीं। बाणासुर की पुत्री उषा असाधारण सुन्दरी बाला थी। वह चौंसठ कलाओं की ज्ञाता और संगीतशास्त्र में प्रवीण थी। उसका विवाह श्रीकृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध से विधिवत सम्पन्न हुआ।[८] पान्शा उषा का रूपचित्र कवि के शब्दों में द्रष्टव्य है

या विधि यौवन वय गय
अधरानि पै बाक लगा नम नगी।
चन्दन [illegible] लगाय विना
मय अंगनि सौरभ सा सरस लगी।

---

[६] दैत्यवंश सर्ग पृ० ६७
[७] वही पृ० ६८
[८] वही सर्ग १ पृ० १६६

अंजन रंजन कीन्हौ नहीं
चख काजर रंग दरस लगी।
बाल के आनन मों मुसकानि
सुधा घनसार घनी बरसन लगी।[९]

इसी प्रकार पतिपरायणा के रूप में 'रावण' महाकाव्य की मन्दोदरी और सुलोचना, वात्सल्यमयी माँ के रूप में कैकसी और राजनीति विशारद कुटनीतिज्ञ के रूप में शूर्पणखा के चरित्र द्रष्टव्य हैं।

मन्दोदरी मय दानव की पुत्री थी, जो हेमा नामक अप्सरा की कोख से उत्पन्न हुई थी। कवि ने उसे अनिंद्य सुन्दरी के रूप में अंकित किया है। उसकी रूप छटा मानसरोवर में खिले हेम सरोज की सुषमा और नीलाम्बर में कलाधर की जुन्हाई के समान थी। मन्दोदरी के जावक में रंगे पंकज-पदों की शोभा के समक्ष जपा-कुसुम, विद्रुम और बंधूक की प्रभा भी मन्द पड़ जाती थी।[१०] पार्वती की पूजन अर्चन से प्रसन्न कर उसने मेघनाद के समान बलशाली पुत्र प्राप्त किया।[११] इसी प्रकार विश्रवा ऋषि को प्राप्त करने के लिए रावण की माँ कैकसी वल्कलवसना तपस्विनी बनी।[१२] वर्षों की कठोर साधना के बाद कैकसी को विश्रवा से मानसपुत्र प्राप्ति का वरदान मिला। शूर्पणखा राजनीति में निपुण थी। इसीलिए उसे नृपदूत नियुक्त किया गया। अपनी योग्यता के कारण ही वह जनस्थान में चौदह हजार राक्षसों की सेना की अध्यक्षा बनायी गयी।[१३] इस प्रकार तटस्थ दृष्टि से देखा जाय तो दैत्य और राक्षस कुल की नारियों में हम स्त्रियोचित सभी गुण और विशेषताएँ पाते हैं। इन नारियों के चरित्र में भारतीय नारी के नाना रूपों (पुत्री, पत्नी, माता, भगिनी आदि) की गौरवपूर्ण झाँकियाँ हैं।

चरित्र विश्लेषण के अनन्तर यदि आलोच्य महाकाव्यों में दैत्यों और राक्षसों के रीति रिवाजों और सांस्कृतिक परम्पराओं का अध्ययन किया जाय तो भारतीय संस्कृति की आधारभूत मान्यताएँ उनमें प्रतिपादित मिलेंगी। शिवाराधन, यज्ञ विधान, आश्रम धर्म की मर्यादा का पालन, तपश्चर्यापूर्ण

---

[९] दैत्यवंश, सर्ग १२ पृ० १६६
[१०] रावण सर्ग ६ पृ० ६०
[११] वही पृ० ६१
[१२] वही, सर्ग २ पृ० ४५
[१३] वही, सर्ग १० पृ० १४७



'ऊर्म्मिला' महाकाव्य में आर्य संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

सृजन प्रेरणा और उद्देश्य

ऊर्म्मिला महाकाव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत जनकनन्दिनी ऊर्मिला का चरित्र है। कवि के शब्दों में—'ऊर्मिला के स्तवन की लालसा और उस स्तवन को प्रकाश में लाने की इच्छा चाहे वह कैसी ही क्यों न हो—मेरी जीवनसंगिनी रही है।'[1] भारतीय रामकाव्य परम्परा में वाल्मीकि रामायण से लेकर साकेत से पूर्व तक के ग्रन्थों में ऊर्मिला का चरित्र उपेक्षितप्राय रहा है। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर[2] और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी[3] ने दो महत्त्वपूर्ण लेख लिखकर साहित्यकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इन्हीं लेखों से प्रेरित होकर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत नामक महाकाव्य की रचना कर प्रथम बार ऊर्मिला के चरित्रोद्धार का विशेष प्रयत्न किया। यद्यपि 'साकेत' की रचनात्मक प्रेरणा का मूल स्रोत और प्रतिपाद्य ऊर्मिला का ही चरित्र था तथापि कथाकथन के व्यामोह, आराध्यदेव श्रीराम की यशोगाथा के वर्णन का प्रलोभन आदि ऐसे तत्त्व थे जिनके कारण साकेत में ऊर्मिला का चरित्र अपेक्षित रूप में न उभर पाया। इस दृष्टि से श्री बालकृष्ण नवीन कृत ऊर्म्मिला महाकाव्य में उल्लेखनीय प्रयास हुआ है। साकेत में ऊर्मिला का आविर्भाव नव परिणीता वधू के रूप में होता है जबकि ऊर्म्मिला महाकाव्य के प्रथम सर्ग के २४० छन्दों में ऊर्मिला की बाल्य एवं किशोरावस्था का सविस्तार विवेचन है। यह सम्पूर्ण वर्णन कवि-कल्पना प्रसूत है। अन्य सर्गों में भी मुख्यतः ऊर्मिला का ही चरित्र-गान हुआ है। सच तो यह है कि ऊर्म्मिला महाकाव्य में ही ऊर्मिला के चरित्र का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है। इस काव्य में

---

[1] ऊर्म्मिला श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु प्रथम पृष्ठ

[2] प्राचीन साहित्य काव्येर उपेक्षिता पृ ६६

[3] कवियों की ऊर्मिला विषयक उदासीनता सरस्वती जुलाई १९०८ भाग ६ संख्या ७ पृ० ३१२ १४।

कवि का उद्देश्य रामायणी कथा की घटनाओं का वर्णन नहीं जैसा कि काव्य की भूमिका[४] में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है। नवीनजी ने रामकथा के उन्हीं प्रसंगों और घटनाओं की संयोजना की है जिनका उर्मिला की चरित्र योजना से सीधा सम्बन्ध है। अस्तु स्पष्ट है कि उर्मिला का चरित्र-गान काव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत है।

उर्मिला महाकाव्य की रचना का दूसरा प्रमुख प्रयोजन आर्य (भारतीय) संस्कृति के समुन्नत जीवनादर्शों का प्रतिष्ठित करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए नवीनजी ने एक ओर आर्य संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्तों की काव्य में प्रस्थापना की है और दूसरी ओर रामकथा के घटना प्रसंगों को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Perspective) में अंकित किया है। उदाहरणार्थ राम के वन गमन को कवि ने महान अर्थपूर्ण आर्य संस्कृति प्रसार यात्रा कहा है।[५] वन गमन के लिए विदा मांगते हुए लक्ष्मण उर्मिला से कहते भी हैं कि कैकेयी का वरदान मांगना और राम का पितृाज्ञा पालन तो औपचारिकतामात्र है। वास्तव में विपिन गमन तो जन दुख भंजन एवं सांस्कृतिक विजय के उद्देश्य से हो रहा है।[६] कवि के मतानुसार वनवासी नागों का जीवन अज्ञान की तमिस्रा विलास और भौतिकता से पूर्ण है। राम का वन गमन भौतिकता को विजित करने के हेतु निमित्त है

आज विजित करने उस भौतिक दैहिक शारीरिक बल को
राम लखन वन गमन कर रहे संग ले आत्मज्ञान दल को।[७]

वन गमन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मण उर्मिला से कहते हैं

हम संन्यासी विपिन प्रवासी
नव संदेश प्रचारक हम।
मन भय हारी मंगल कारी
सब जन गण उद्धारक हम।[८]

इसी प्रकार राम रावण के संघर्ष में राम की विजय को कवि ने आर्य संस्कृति की विजय कहा है

---

[४] उर्मिला श्रीमन मंगलचरणार्पणमस्तु पृ च
[५] वही पृ ८
[६] वही तृतीय सर्ग पृ ६
[७] वही पृ० १९६
[८] वही पृ० २२

हुई सांस्कृतिक विजय पूर्ण थी
आर्य राम की मति धृति की ।
नहीं शास्त्र विजिता यह लंका
यह विजय है शास्त्रों की ।
यही जय है तापस आर्यों के,
शुद्ध शर्म ब्रह्मास्त्रों की ।[९]

इसी सन्दर्भ में नवीन साहित्य के अनुसंधाता डा० लक्ष्मीनारायण दुबे का मत है कि— 'आर्य धर्म सभ्यता तथा संस्कृति की महत्ता उदात्तता तथा गरिमा का इसमें (ऊर्म्मिला महाकाव्य में) सजाए दिखाई गया है। इस कृति में भारत समग्र वसुंधरा को अपने अंक में समेट रहा है। भौतिकता यान्त्रिक सभ्यता विज्ञान आदि के असद् पक्ष का उद्घाटन कर कवि ने कामायनी के समान श्रद्धा भक्ति और विश्वास के तीन चिरन्तन प्रेरणामय आलोक हमारे युग को प्रदान किये हैं।[१०] वस्तुतः ऊर्म्मिला जिस युग की रचना है उसके अनुरूप ही भारतीय संस्कृति का महान उद्घोष उसमें सुनाया गया है। ऊर्म्मिला महाकाव्य का प्रणयन राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-संग्राम की वेला में जनजागरण में हुआ था। उस समय देश भर में क्रान्ति सत्याग्रह और आन्दोलन हो रहे थे। ऊर्म्मिला महाकाव्य का रचयिता समर के अमर गवैया की भाँति अपनी ओजमयी वाणी से भारतीयता की भावना को जन जन में प्रसार कर रहा था। कहा जाता है कि महाकाव्यों में जातीय जीवन संस्कृति और चेतना का महान् उन्मेष होता है जो ऊर्म्मिला महाकाव्य में स्पष्ट सुनायी देता है। एक आलोचक के शब्दों में 'हिन्दी साहित्य में आज जितने भी महाकाव्य हिन्दी प्रेमियों के हाथ में सुशोभित हैं उन महाकाव्यों के कवियों में राष्ट्रीयता की आग देशभक्ति का मादक यौवन विप्लव की गाढ़ी उमंग विद्रोह का सबल स्वर और जिन्दादिली की उछलती-कूदती बलवती धारा नवीन जैसी नहीं थी और न आज ही है। जिन पवित्र भावनाओं के मांगल्य वातावरण में इस महाकाव्य का प्रणयन हुआ वैसा सौभाग्य किसी भी महाकाव्य को नहीं प्राप्त है। ऊर्म्मिला महाकाव्य के लिए यह गौरव और गर्व का विषय है।'[११]

---

९ ऊर्म्मिला, षष्ठ सर्ग पृ० ५

१० गवेषणा अर्द्धवार्षिक पत्रिका जुलाई १९६३ पृ० ८७ पर ऊर्म्मिला का महाकाव्यत्व शीर्षक लेख।

११ वाणी, मई १९६४ पृ० ७६

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऊर्मिला के चरित्र की विशद याजना आय संस्कृति क जावनादर्शों का प्रतिष्ठा युग चेतना का विराट व्यजना क महान् उद्देश्य स प्रेरित होकर उर्म्मिला महाकाव्य का रचना हुई है।

आय संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

आय संस्कृति श द तत्त्वत भारतीय संस्कृति का हा द्योतक है। उर्म्मिला महाकाव्य म दाना का प्रयाग एक दूसर क पयाय क रूप म हुआ है। सत्य तप त्याग यज्ञ विश्वबधुत्व आत्मवाद नारी की महत्ता आदि आय संस्कृति क आधारभूत सिद्धात है। इन सबकी उर्म्मिला महाकाव्य म प्रतिष्ठा हुई है।

सत्य—काय क अतिम सग म लका विजय क अनन्तर विभीषण क लकाधिपति बनन पर राम एक लम्बा वक्तृता द्वारा सत्य की महिमा का बखान करत है। व कहत ह कि सत्य हा आचरणीय धम ह। उनका विश्वास है कि सत्य का पक्षधर हान क कारण हा विभाषण राम क समथक बन। सत्य का हा जय हाना है—सत्यमेवजयत। ससार म सत्य ही पूज्य है

सदा एक हा वस्तु पूज्य है
वह है सत्य असत्य नहीं।[१२]

राम का आकाक्षा है कि

असद्विचार पराजित कुठित भूलुठित उन्मूलित हो
सत्यमव विजयी हा राजन प्रेम विटप फल फूलित हो।
आग आग ध्वजा सत्य का पाछ पाछे जन सना
श्रता का यह धम सनातन जग का विमल पान दना।[१३]

तप—तप का महिमा का आख्यान करत हुए कवि न कहा है कि तपाबल स हा ब्रह्माण्ड गतिमय। तप क अभाव स सृष्टि का अस्तित्व ही समाप्त हा जाता है

यह ब्रह्माण्ड तपस्या क बल गतिमय स्वनिमय चलित हुआ
अणु अणु म कण-कण म स्पन्दन प्रथम तपाबल ज्वलित हुआ।
× × ×
क्षण-क्षण आता याम न हा यदि तप ता यह जग कहाँ रह
निमिष मात्र म महाप्रलय हा सृष्टि कथा फिर कौन कह।[१४]

---

[१२] उर्म्मिला षष्ट सग पृ० ५५६
[१३] वहा पृ ५६५
[१४] वही पृ० ५४६ ५०

यज्ञ—यज्ञ शब्द को कवि ने व्यापक अर्थों में व्याख्यायित किया है। कवि का मत है कि यज्ञाहुति का पुण्य अस्म से ही ईश्वर ने सृष्टि रचना की है। यज्ञ से ही जग में जन गणहिताय वृष्टि होती है। उसका मत है कि तिलघृत का ईंधन में आहुतियाँ देना तो प्रवचनापूर्ण परिपाटी है यज्ञ नहीं।[१४] यज्ञ तो संसार का अनन्त गतिमय क्रम है। यह क्रम सृष्टि के अणु-अणु और कण-कण में प्रत्येक क्षण घटित हो रहा है। सृष्टि के महायज्ञ में सूर्य रश्मियाँ द्वारा और मेघ धाराएँ बरसाकर आहुतियाँ देते हैं। कवि के शब्दों में यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार है

शुद्ध यज्ञ है सब भूत हित रत होकर जीवन देना

शुद्ध यज्ञ है जग हिताय सब अपना तन मन धन देना।[१६]

ऊर्मिला तो यहाँ तक मानती है कि लक्ष्मण का वन गमन मानवता के कल्याण यज्ञ की प्रथम आहुति है।[१७]

नारी का महत्ता—आर्य संस्कृति में नारी को देवी कहकर पूज्यनीय माना गया है। 'ऊर्मिला' में कवि ने इस दृष्टिकोण का विशदता से सम्पादन किया है। काव्य के अन्तिम सर्ग में सीता और लक्ष्मण में इस विषय पर सुन्दर सम्वाद की योजना नवीनजी ने की है। कवि का मत है कि नर और नारी में केवल बाह्य रूप भेद ही है अव्यक्त रूप में दोनों का अस्तित्व एक ही है। जीवन की सुगति इसमें है कि नर नारी हो और नारी नर हो। विकसित पूर्ण पुरुष में नारी का प्रतिबिम्ब अनिवार्यतः होता है। नारी के सन्य हृदय से ही पुरुष जगहित में लगता है

देवि नरोत्तम है वह जिसमें हो नर-नारी का मिश्रण

ऐसे ही नर वर भरते हैं—जग का सविन वन्ना व्रण।

× × ×

प्रति विकसित नर में रहती है कुछ नारीपन की झाँई

उसी तरह ज्यों विभु बिम्बित प्रकृति नटी की परछाईं।[१८]

कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—जिस नर में नारीपन का अंश नहीं वह नर

[१४] ऊर्मिला, तृतीय सर्ग पृ० २९९

[१५] वही षष्ठ सर्ग पृ० ३००

[१७] वही, तृतीय सर्ग पृ० २०१

[१८] वही षष्ठ सर्ग, पृ० ६१३ १४

नहीं वानर है। [19] नारीत्व की गरिमा का प्रतीक ऊर्मिला है जिसे लक्ष्मण चिर प्रेरिका प्रकृति रूपिणी देवी और भक्ति की प्रतिमा मानते हैं

> तुम हो प्रकृति रूपिणी देवी तुम हो आदि शक्ति प्रतिमा
> त्वमसि मनीया चिर प्रेरणा त्वमहि मनीय भक्ति प्रतिमा।
> तुम मेरा साहस बल वैभव तुम मम हास विलास प्रिय
> तुम मम नेह सरणि तुम मेरा नव संदेशोल्लास प्रिय। [20]

लक्ष्मण के उपर्युक्त कथन में आर्य संस्कृति नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिखायी देती है।

विश्वबंधुत्व—सर्वेवसुधैवकुटुम्बकम के आदर्श को काव्य में चरितार्थ किया गया है। इस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खण्डन किया है। नवीनजी का मत है कि— कभी-कभी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति एवं अर्थलिप्सा के वशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में हमें राष्ट्रविमुख भी चलना पड़ सकता है। अन्यथा शताब्दियों से संचित सत्य ज्ञान और संस्कृति का वैभव भस्मसात हो जायगा। [21] जन समूह के हृदय में आसुरी भाव जगने लगें तो हमें सामूहिकता के भी प्रतिकूल हो जाना चाहिए। क्योंकि मनीषियों के लिए तो सारा संसार ही अपना है

> देश विदेश संकुचित जन का है अनुचित संकुचित विचार
> है मनीषियों का स्वदेश वह जहाँ सत्य शिव का विस्तार।
> हैं जग के नागरिक सभी हम सब जगभर यह अपना है
> सीमित देश विदेश कल्पना मिथ्या भ्रम का सपना है। [22]

संस्कारों का महत्त्व—काव्य में स्थान स्थान पर भारतीय संस्कारों का वर्णन करते हुए उनका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। ये संस्कृति के बाह्य आधार हैं। उदाहरणार्थ विवाह नामक संस्कार को ही लें। विवाह को कवि ने दो आत्माओं का मिलन और अभिन्नत्व की जय कहकर अपनी संस्कारगत आस्था प्रकट की है

---

[19] ऊर्मिला षष्ठ सर्ग पृ ६१४
[20] वही तृतीय सर्ग पृ २२५
[21] वही षष्ठ सर्ग पृ ५५६ ५७
[22] वही पृ० ५५८

आर्य धर्म में यह विवाहित बन्धन परम धर्ममय है
जो आत्माओं का मिश्रण है अभिमत की जय है।[२३]

वर्णाश्रम-व्यवस्था—वर्णाश्रम-व्यवस्था भारतीय आर्य संस्कृति की अभूतपूर्व विशेषता रही है। काव्यारम्भ में ही नवीनजी ने इस व्यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है। जनकपुरी के ब्राह्मण वेद-द्रष्टा, यज्ञरत, तपस्वी, योगाभ्यासी, तत्त्वदर्शी एवं मनस्वी हैं।[२४] देश की स्वतन्त्रता के रक्षक क्षत्री वरिष्ठ, सुजाओं वाले तथा पराक्रमी हैं।[२५] वैश्य लक्ष्मीसेवी और व्यवसायी हैं।[२६] शूद्र सेवाभावी हैं और वे इस सिद्धान्त के पोषक हैं कि

सेवाधर्म परम गहनो योगिनामप्यगम्य ।[२७]

अर्थवाद का खण्डन—आर्य संस्कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमें अर्थ की प्रधानता कहीं भी स्वीकार नहीं की गयी है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता में विकास और प्रगति का आधारस्तम्भ अर्थ को ही कहा गया है। हमारे यहाँ भोग-संग्रह, भौतिकवादिता, आडम्बरप्रियता के स्थान पर त्याग, तपश्चर्या, संयम, अपरिग्रह, आध्यात्मिकता एवं सात्त्विकता को स्वीकार किया गया है। 'ऊर्मिला' के रचयिता ने इन्हीं तत्त्वों को भारतीय संस्कृति का आधार माना है

शुद्ध विचार-प्रौढ़ता ही है
भित्ति सभ्यता संस्कृति की।
सदाचरण शीलता मात्र है
द्योतक संस्कृति मति धृति की।[२८]

नवीनजी का मत है कि जो लोग अर्थोपार्जन को जन-संस्कृति का मापदण्ड मान लेते हैं वे सत्-असत् का विचार छोड़कर अर्थ संचय को जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। अर्थ-संचय की वृत्ति मानव-मन को चिन्तन-मनन-शून्य और जड़वादी बना देती है। वस्तुतः ऋषियों ने कभी भी अर्थ-संचय नहीं किया। वे लोकोत्तर

---

[२३] ऊर्मिला, द्वितीय सर्ग, पृ० ८०
[२४] वही, प्रथम सर्ग, छन्द २८, पृ० १८
[२५] वही, पृ० १८
[२६] वही, छन्द ३१, पृ० १८
[२७] वही, छन्द ३२, पृ० १६
[२८] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५५४

आध्यात्मिक साधना को ही सबसे बड़ा धन मानते थे।[२६] आज संसार में जो प्रगति हुई है वह अर्थवाद का परिणाम नहीं है क्योंकि

यदि संस्कृति गति लौकिक आर्थिक
संचय के संग-संग चलती।
तो वल्कल वसना के युग में
कैसे ज्ञान ज्योति जलती।[३०]

अस्तु मानवता के विकास एवं प्रगति का मापदण्ड अर्थ नहीं हो सकता

मनवतिहास की प्रगति का मापदण्ड धन धान्य नहीं
यह समाज संस्कृति जो सकती नापी धन से कभी नहीं।[३१]

आत्मवाद में आस्था—भारतीय धर्म साधना के अनुसार कवि नवीन ने आत्मा के अस्तित्व और आत्मवाद की विचारधारा को स्वीकार किया है। उसने भौतिकतावादी जड़वादी पदार्थवादी जीवन दर्शन से तुलना करते हुए आत्मवाद की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। कवि का मत है कि किस जड़ पदार्थ या अन्धशक्ति से चेतन भाव जगा इस प्रश्न का उत्तर भौतिकवादी दार्शनिकों के पास नहीं है।[३२] भौतिकतावादी विवेचन शुष्क तर्कों पर आधारित है इसलिए

भौतिकवाद चेतना विरहित
है वह निपट निराशावाद।
राजस-तामस गुणमय वह है
मानव मन का मत्त प्रमाद।[३३]

जबकि आत्मवाद में अनन्तता है। उसमें रुचिर ज्ञान का वैभव है। उसमें संचय वृत्ति का अभाव है।[३४]

इस प्रकार आर्य संस्कृति के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही रूपों का विवेचन कवि ने प्रस्तुत किया है। ऊर्मिला महाकाव्य में आर्य संस्कृति का महान और समृद्ध स्वरूप अंकित हुआ है। जहाँ तक सांस्कृतिक चेतना के

---

[२६] ऊर्मिला षष्ट सर्ग पृ ५५
[३०] वही पृ० ५५४
[३१] वही पृ ५५४
[३२] वही पृ ५४७
[३३] वही पृ० ५४८
[३४] वही पृ० ५४८

निरूपण का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि— साकेत की अपेक्षा ऊर्म्मिला में आर्य संस्कृति और धर्म की शंखध्वनि अधिक प्रखर और प्रभविष्णु प्रतीत होती है।[३४]

युग-चेतना के स्वर—आर्य संस्कृति के महत् आदर्शों की प्रतिष्ठा के साथ-साथ ऊर्म्मिला महाकाव्य में युग चेतना के स्वर भी मुखरित हुए हैं। समसामयिक जीवन की चेतना को आत्मसात करके कवि नवीन ने अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण किया है। भारत के अतीत गौरव का गायक कवि नवयुग के स्वागतार्थ भी सन्नद्ध है

आओ नवयुग उन्नत मस्तक
हो हम स्वागत करते हैं।
तेरे नव आदर्शों को हम
सिर आँखों पर धरते हैं।[३६]

नवयुग की नव चेतना से प्रेरित होकर ही कवि जागरूकता को जीवन का धन सत्याचरण को आत्मचिन्तन और जन सेवा को ईश्वर भक्ति कहता है

जागरूकता जीवन धन है
सत्याचरण आत्मचिन्तन है।
निश्छल होकर जगज्जनों की
सेवा ही प्रभु का वन्दन है।[३७]

कवि ने मानव और जीवन की व्याख्या भी इसी प्रगतिशील जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर की है। उनके मतानुसार मनुष्य अग्निपुंज विभु के मन की आग्नेय कल्पना है। मानव की मानवता इसमें है कि वह आग में खेले अर्थात् संघर्षरत रहे।[३८] जीवन सचेतन शक्ति का प्रचण्ड गति संक्रमण है जिसका उद्देश्य जड़ता को भग्न कर समता संस्थापित करना है।[३९] जीवन घोर गम्भीर-नीर का प्रवाह है, जिसका कार्य जगत की प्यास बुझाना है। जीवन सतत युद्ध है जिसमें गति और संघर्ष है।[४०] नवीनजी ने जीवन की तुलना उस विप्लव-गान से की है जिसके स्वरों में क्रान्ति और परिवर्तन का सन्देश है

---

३४ डा० लक्ष्मीनारायण दुबे बालकृष्ण शर्मा नवीन व्यक्तित्व एवं काव्य, पृ० २७१
३६ ऊर्म्मिला, सर्ग पृ० ५८६
३७ वही द्वितीय सर्ग पृ० ७६
३८ वही, षष्ठ सर्ग पृ० ५६७
३९ वही पृ० ५६८
४० वही पृ० ५६६

जीवन है चिर विप्लव गायन
स्वर जिसके ह सतत क्रान्ति ।
गात भार हैं नित परिवतन
गायन नय ह चिर अक्रान्ति । [४१]

कवि की कामना है कि हम विप्लव गान गात गात जीवन पथ पर बढ़ना चाहिए। विप्लव के तत्त्वों का जगत म अथक प्रसार होना चाहिए जिसम रूढ़ियों का उच्छेदन हो। तिमिर-कालिमा प्रकाश म परिवर्तित हो।[४२]

वादात्मक प्रभाव

ऊर्म्मिला महाकाव्य की रचना पर अनेक वादात्मक विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता ह। इनम उल्लेखनीय हैं—गाधीवाद स्वच्छन्दतावाद रामासवाद हालावाद मानवतावाद आदि।

ऊर्म्मिला महाकाव्य की रचना जिस युग म हुई थी उस युग का जीवन गाधीजी स प्रभावित था। सामाजिक राजनतिक आर्थिक सांस्कृतिक आदि सभी जीवन क्षत्रों म गाधीवादी विचारों और सिद्धान्तों को स्वीकृत किया जा चुका था। ऊर्म्मिला महाकाव्य म अहिंसा सत्याग्रह साम्राज्यवाद का विरोध आदि गाधीवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों को स्वीकृत किया गया है। गाधीजी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरोधी थ। ऊर्म्मिला के राम भी इसी मनोवृत्ति के समथक हैं

ह साम्राज्यवाद का नाशक
दशरथ नन्दन राम सदा।
है भौतिकतावाद विनाशक
जनमन रजन राम सदा। [४३]

नवीनजी न राम और रावण को क्रमश आत्मवाद और साम्राज्यवाद का प्रतीक माना है। राम और रावण का सघष वस्तुत आत्मवादी और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का ही सघर्ष कहा गया है। एक स्थल पर राम कहते हैं

महामन्दिम रावण का मरा नहीं व्यक्तिगत था झगडा
आत्मवाद साम्राज्यवाद का वह था अनमिल भेद बडा। [४४]

---

[४१] ऊर्म्मिला षष्ठ सर्ग पृ० ५७
[४२] वही पृ० ५७१
[४३] वही पृ ५५५
[४४] वही पृ० ५४१

ऊर्मिला की रचना पर रोमानवाद, स्वच्छन्दतावाद, हालावाद आदि का भी प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का तब तक भारतीय जन जीवन पर प्रभूत प्रभाव पड़ चुका था। कवि हरिवंशराय 'बच्चन' की हालावाद सम्बन्धी कविताएं तत्कालीन साहित्य जगत में बहुचर्चित थी। उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। 'स्वयं नवीनजी हिन्दी साहित्य में हालावाद के स्थापक हैं और स्वयं ऐसी कुछ कविताएं लिख चुके थे।' ऊर्मिला उस प्रभाव से अछूत न रह सकी।[४४] कवि ने ऊर्मिला और लक्ष्मण के प्रेम का निरूपण करते समय लक्ष्मण से कहलाया है

तुम रसदात्री मैं मधुपायी
तुम प्याली मैं मतवाला।
मैं मदिरा तुम पात्र मनोहर
मैं ग्राहक तुम मधुशाला।
× × ×
गन्धमयी तुम सुधामयी तुम
तुम मेरी मदिरा बाला।
अभयदान देती मनमानी
मुझको करने दो मतवाला।[४५]

लक्ष्मण ऊर्मिला के प्रेमालाप वर्णन में कवि ने रोमानवादी मनोवृत्तियों का परिचय दिया है। लक्ष्मण का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है

अरी रानी क्या लजा रही?
लाज में क्या रखी है सार?
तनिक मुख तो कुछ ऊँचा करो
रच रहे नैन, नैनों में प्यार।
× × ×
अब गई जाओ हिय में बसो
भाँति लज्जा नौ की पतवार।[४६]

---

४४ जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, नवीन और उनका काव्य, पृ० १८०
४५ ऊर्मिला, तृतीय सर्ग, पृ० २१६-२०
४६ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १४४-४५

द्विवेणी का मानो आवेश उदधि में मिलते ही सो रहे।

× × ×

ऊर्मिला की चादर पर आज चढ़ा लक्ष्मण का चोखा रंग

बिंध गये वे अनंग नाराच तड़प उट्ठा मन का मुकुरंग। [४८]

दाम्पत्य-जीवन के मधुर विनोद एवं प्रेम-क्रीड़ाओं के अतिरिक्त देवर भाभी (लक्ष्मण-सीता) के मुक्त परिहास का चित्रण भी कवि ने किया है जिसमें स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं। लंका से लौटते हुए विमान में देवर भाभी के एक लम्बे परिहासपूर्ण संवाद की आयोजना की गयी है जिसके कुछ अंश द्रष्टव्य हैं

सीता का कथन

धन्य भाग ऊर्मिला बहन के
ऐसा त्यागी पति पाया।
भीतर भीतर रस ऊपर से
फैलाई यह यति माया।
सच बोलो क्या करते हो तुम
सदा ऊर्मिला का ही ध्यान। [४९]

लक्ष्मण का प्रति उत्तर

भाभी तनिक राम से पूछो
क्या हो जाता है मन में।
बस सोते खाते करते
विचरे थे वन वन में।
मैं तो फिर भी छोटा हूँ
मेरा कौन विमान अहो। [५०]

मानवतावाद हमारे युग का सबसे उन्नत विचार दर्शन है। कवि नवीन ने ऊर्मिला में इस विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों की प्रस्थापना आद्यान्त की है। यथा

---

[४८] ऊर्मिला द्वितीय सर्ग पृ १४६ ४७
[४९] वही षष्ठ सर्ग पृ ५६५
[५०] वही पृ० ५६६

हैं जग के नागरिक सभी हम,
सब जगभर यह अपना है।
सीमित देश विदेश कल्पना
मिथ्या भ्रम का सपना है। [५१]

'ऊर्मिला' महाकाव्य की रचना पर विभिन्न युगीन विचारधाराओं (वादों) का प्रभाव काव्य के रचनाफलक को व्यापक परिवेश प्रदान करता है। काव्य में समकालीन चिंतन प्रवृत्तियों का समाहार कवि की युग-जीवन के प्रति सजग आस्था का परिचायक है। सत्य तो यह है कि— नवीन का कवि सदा से मानवता के प्रति ईमानदार रहा है तथा उसकी कुशल अन्तर्दृष्टि ने सदा ही युग के सत्य को परखा है। [५२] प्रस्तुत काव्य के जीवन-दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि जिस सांस्कृतिक चेतना के समाहार की चेष्टा की गयी है वह पौर्वात्य और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन, आध्यात्मिक और भौतिक जीवनादर्शों से एक साथ प्रभावित है। उसका आधार विश्व मंगल की कामना है

आत्मसमर्पण की अनहद् ध्वनि
उठे विश्व के अम्बर में
परम भुक्ति का जगे नाद गा
जग में सकल चराचर में। [५३]

इस दृष्टि से ऊर्मिला महाकाव्य में प्रतिपादित जीवन-दर्शन महाकाव्योचित गरिमा से परिपूर्ण है।

---

[५१] ऊर्मिला, षष्ठ सर्ग पृ० ५१८

[५२] क्षेमचन्द्र उपाध्याय नवीन दर्शन—अपनी बात

[५३] ऊर्मिला षष्ठ सर्ग पृ० ५८७

'जयभारत' का कथा-शिल्प

'जयभारत' का कथा शिल्प

महाकाव्य के रचना विधान में सर्वप्रमुख स्थान कथानक का है। महाकाव्य सृजन में कथा-तत्त्व की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि आचार्यों ने महाकाव्य का विवेचन करते समय उसे 'कथाकाव्य' अभिधान दिया है। पाश्चात्य विद्वानों ने सर्वत्र ही महाकाव्य (Epic) को कथाकाव्य (Narrative Poetry) का पर्याय कहा है। मायर्स ने एक स्थान पर लिखा है कि— महाकाव्य शब्द का व्यवहार सभी समालोचकों द्वारा कथात्मक साहित्य के अर्थ में किया गया है।[1] बावरा ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि— महाकाव्य बृहदाकार कथात्मक काव्य रूप है।[2] साहित्य विश्वकोश में महाकाव्य का अर्थ एक कथात्मक कविता ही लिया गया है।[3] श्री कोकिलेश्वर शास्त्री ने महाकाव्य का विकास कथात्मक आख्यानों से ही माना है।[4] डा० उमाकान्त गोयल का मत है कि— महाकाव्य अन्ततः कथाकाव्य है।[5]

उपर्युक्त मतों से स्पष्ट है कि कथातत्त्व महाकाव्य का अपरिहार्य अंग है। महाकाव्य में कथातत्त्व के संयोजन की निश्चित शिल्प विधि भी है। साहित्याचार्यों के अनुसार महाकाव्य का कथानक लोकविश्रुत या प्रख्यात होना चाहिए। दण्डी, विश्वनाथ आदि आचार्यों का मत है कि महाकाव्य का कथानक इतिहास

---

1. Epic is a term applied by them (Critics) all to Narrative Literature The fundamental distinction of the epic from other species of Literature is that upon which they all agree—its narrative form
   —I T Myers *A Study in Epic Development—Introduction* p 32
2. C M Bowra *From Virgil to Milton* p 1
3. Cassell s *Encyclopaedia of Literature* Vol I p 195
4. Kokileshwar Shastry *A Brief History of Sanskrit Literature* (Vedic & Classical) p 19
5. डॉ० उमाकान्त गोयल मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता पृ० १५६

उद्भूत होना चाहिए।[६] रुद्रट के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु उत्पाद्य (काल्पनिक) और अनुत्पाद्य (प्रसिद्ध) दोनों ही प्रकार की हो सकती है।[७] किन्तु एबरक्राम्बी का मत है कि महाकाव्य की मुख्य विषयवस्तु वास्तविक होनी चाहिए काल्पनिक नहीं।[८] यह मत उचित भी है। वस्तुतः महाकाव्य जैसे काव्य का गुरुत्व और गाम्भीर्य जीवनविस्तार कथानक के अभाव में सम्भव भी नहीं है। हाँ, महाकाव्यकार को इतिहास पुराण प्रसिद्ध कथानक में युग जीवन की प्रवृत्ति के अनुरूप परिवर्तन परिवर्द्धन का अधिकार अवश्य है। इस परिवर्तनक्रम में वह अपनी कल्पनाशक्ति का भी परिचय दे सकता है। इसके अतिरिक्त उल्लिखित नियमानुसार महाकाव्य की कथावस्तु का विनियोजन भी विशेष विधि से होना चाहिए। कथावस्तु में पंच संधियों की योजना और सर्गक्रमानुसार विभाजन होना चाहिए। सर्गक्रम घटनान्विति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। मुख्य कथा से अवान्तर कथा प्रसंगों को सुसम्बद्ध रखना भी आवश्यक है। नवीन मान्यताओं के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु में यद्यपि संधियों का निर्वाह और सर्ग-संख्या आदि के नियमों का कठोरता से अनुपालन नहीं किया जाता है तथापि कथावस्तु का समुचित विकास करने की दृष्टि से घटनाओं की पूर्व प्रसंगानुसार अन्विति एवं प्रस्तुतीकरण कौशल वांछनीय है। कथा योजना में मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि और नवीन प्रसंगोद्भावनाएँ महाकवि प्रवर के कथा विधान कौशल का सशक्त प्रमाण होती हैं।

श्री मैथिलीशरण गुप्त विरचित 'जयभारत' आधुनिक युग का महाकाव्य है। प्रस्तुत प्रसंग में 'जयभारत' के कथा शिल्प पर उपर्युक्त परिसन्दर्भों में विचार किया जायगा।

---

६ (अ) इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्। दण्डी काव्यादर्श १/१५
(आ) इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।

विश्वनाथ साहित्य दर्पण, ६/३१८

सन्ति द्विधा प्रबन्धा काव्यकथाख्यायिकाद्याः काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि ॥

(काव्यालंकार अ० १६)

८ The prime material of epic poet must be real and not invented. The reality of the Central subject is of course to be understood *broadly*. It means that the story must be founded deep in the general experience of men.

L Abercrombie *The Epic* p 55

'जयभारत' की कथा का मुख्य आधार व्यासरचित महाभारत है। महाभारत आख्यानों और उपाख्यानों का विराट वन है जिसके एक एक प्रसंग को लेकर संस्कृत और हिन्दी में अनेक महाकाव्यों की रचना हुई है। जयभारत के रचयिता श्री गुप्तजी ने कौरव-पाण्डवों के आख्यान को प्रस्तुत महाकाव्य की रचना के लिए ग्रहण किया है। राजा नहुष के वंश से लेकर यदुवंश वंशों के वर्णन कौरव-पाण्डवों के जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक की समस्त घटनाएं और कथा प्रसंग जयभारत में संकलित हैं। गुप्तजी ने महाभारत की उन घटनाओं और प्रसंगों को ग्रहण किया है जो कौरव पाण्डवों की मूलकथा से सम्बन्धित हैं। कवि ने अन्य प्रसंगों को छोड़ दिया है—यथा सत्यवान-सावित्री, नल-दमयन्ती, शकुन्तला आदि के उपाख्यान।

जयभारत की सम्पूर्ण कथानक ४७ सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक का नामकरण प्रतिपाद्य अथवा पात्रों के आधार पर किया गया है जैसे—नहुष, यदु और पुरु, याजसेनी, वधु विदुर, एकलव्य, परीक्षा, लाक्षागृह, हिडिम्बा, लक्ष्यभेद, इन्द्रप्रस्थ, वनवास आदि।

महाभारत के विशाल कथानक को जयभारत के रूप में महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करने में गुप्तजी की प्रबन्ध क्षमता वास्तव में सराहनीय है। उन्होंने कौरव पाण्डवों की मुख्य कथा में सम्बन्धित कथा प्रसंगों को चुनकर जयभारत में सुनियोजित किया है। इस प्रयास में गुप्तजी को अपेक्षित सफलता मिली है। किन्तु अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को संक्षिप्त करने के प्रयास में उन्हें छोड़ना भी पड़ा है। उदाहरणार्थ नल-दमयन्ती, सत्यवान-सावित्री, शकुन्तला-दुष्यन्त आदि के मनोरम उपाख्यानों को कवि ने छोड़ दिया है। इसके कारण जयभारत में कहीं कहीं इतिवृत्तात्मकता भी आ गयी है। इसका एक कारण यह भी रहा है कि सम्पूर्ण काव्य का रचनाकाल एक नहीं है। जयभारत के निवेदन में कवि ने इस तथ्य को स्वीकार भी किया है। जयभारत के ही रचनाकाल में कवि ने महाभारत के कथा प्रसंगों पर अन्य काव्यों की रचनाएं भी कीं, किन्तु उनका उपयोग इस काव्य में न कर उनका इसमें पुनः सृजन किया। उदाहरण के लिए 'जयद्रथ-वध'। कवि ने इस पुनः सृजन का अपनी लेखनी का विकासक्रम कहा है। सत्य यह है कि गुप्तजी की प्रबन्धपटुता में निरन्तर विकास भी होता रहा है। जयभारत की अभिव्यंजना पद्धति में इस विकासक्रम को स्पष्ट रूप में देखा सकते हैं। 'जयभारत' के आरम्भिक सर्गों में वर्णनात्मकता की अधिकता है किन्तु मध्य

भाग के अनन्तर के प्रकरणों में समास शब्दों का ग्रहण किया गया है जिसके कारण वाक्य रचना में कसाव और विचार गाम्भीर्य आ गया है।

जयभारत के कथानक की मुख्य विशेषताएं निम्नांकित हैं

१ महाभारत के कथा प्रसंगों की अलौकिकता का प्रक्षालन कर कवि ने उन्हें युग की भावना और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रस्तुत किया है। ऐसा करने में गुप्तजी ने नवीन कथा प्रसंगों की सृजना की अपेक्षा प्राचीन आख्यानों को ही नवीनता प्रदान की है। उदाहरणार्थ द्रौपदी-चीरहरण हिडिम्बा का रूपांकन कीचक कथा युद्धक्षेत्र की घटनाएं आदि द्रष्टव्य हैं।

२ पौराणिक आख्यानों को अपनी कला और कल्पनाशक्ति के उपयोग से बुद्धिजीवी पाठक के लिए सहज ग्राह्य बनाया है। द्रौपदी-चीरहरण के समय कृष्ण द्वारा चीर बढ़ाने का उल्लेख महाभारत में है। वहां दुःशासन थककर लज्जित हो बैठ जाता है

यदा तु वाससां राशिः सभामध्ये समाचितः ।
तदा दुःशासनो श्रान्तो व्रीडितः समुपाविशत् ॥

किन्तु जयभारत में द्रौपदी को करुण क्रन्दन करते हुए दिखाया गया है। वह असहायावस्था में दुःशासन को धिक्कारती हुई उसके मन में पाप का भय जागृत कर देती है। द्रौपदी की आत्तवाणी से दुःशासन भीतिमान होकर चारों ओर अन्धकार ही-अन्धकार देखता है और अन्ततः स्तम्भित होकर बैठ जाता है

सहसा दुःशासन ने देखा अन्धकार-सा चारों ओर।
जान पड़ा अम्बर-सा वह पट जिसका कोई ओर न छोर ॥
आकर अकस्मात अति भय सा उसके भीतर बैठ गया।
कर जड़ हुए और पद कांपे गिरता सा वह बैठ गया ॥ [१]

इसके बाद गांधारी ने सभा में प्रवेश कर सबको इस कुत्सित आचरण के लिए धिक्कारा। गांधारी के शब्दों में उसके कातर भाव की चरम व्यंजना हुई है जब वह कहती है

हाय नाक की लज्जा भी अब नहीं रह गया रक्षित क्या ?
आज बहू की ला... कर मेरा कटिपट नहीं अरक्षित क्या ? [२]

महाभारत में धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को कोसा था किन्तु उसका अपरिमित प्रभाव

---

[१] जयभारत द्यूत सर्ग पृ० १४८

[२] वही पृ० १४६

न पन्न था। यहा गाधारी क कथन म नारीत्व का मम कन्ना अधिक स मना स माकार हुइ है। उपयुक्त कथा प्रसग को गुप्तजी न बड मार्मिक और मनो वज्ञानिक न्ग स प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार महाभारत म हिडम्बा का स्वरूप पाठक क मन म विकषण का भाव भरता है। हिम्बा और भीम क विवाह को महाभारत क रचयिता न सामाजिक मर्यादा का उल्लघन बताया है। किन्तु जयभारत म हिम्बा को गुणवती सुन्दरी क प म चित्रित किया गया है। गुप्तजी का कवि मानवता वा का प्रतिष्ठाता है। अय काव्या की भाँति जयभारत का उद्घोष मानव धम की जय ह। अस्तु हिडम्बा और भीम क वार्त्तालाप म मानव मूल्या की सुदर व्याख्या हुई है। हिडम्बा तो यहाँ तक कहती है कि

> यदि तुम आय हो तो दो हम भी आयता
> अपनी ही उच्चता म कसी कृतकायता?
> × × ×
> होकर मैं राक्षमी भी अत म तो नारी हू
> जम स म जो भी रहू जाति स तुम्हारी हू।[११]

इसी प्रकार अज्ञातवास क समय कीचक द्वारा अपमानित होन पर द्रौपदी न जाकर विराट की सभा म प्रार्थना की। उसका धम विरुद्ध आचरण की निन्दा करना और राजा क अधिकारा को एक दासी द्वारा चुनौती दना वतमान युग की जनतत्रीय भावना का प्रतीक है

> लज्जा रहती अति कठिन है कुल वधुओ की भी जहा
> ह मत्स्यराज किस भाँति तुम हुए प्रजारजक वहाँ।
> × × ×
> तुम म यदि सामथ्य नहीं है जब शासन का
> तो क्या करत नहीं त्याग तुम राजासन का?
> करत म यदि दमन दुजनो का डरत हो
> तो छूकर क्या राजदण्ड दूषित करत हो?
> तुमस निज पद का त्याग भी मना भाँति बनता नहीं
> अधिकार रहित इस छत्र का भार तुम्ह खलता नहीं।[१२]

द्रौपदी क इन शब्दा म युग धम की ममस्पर्शी व्यजना है। एस अनक प्रसगो का चयन गुप्तजी न अपनी कल्पनाशक्ति स किया है।

---

[११] जयभारत, हिडम्बा सग पृ० ८३

[१२] वही, सरन्ध्री सग पृ० २६८

३ जयभारत के कथानक के समस्त पात्रों का चरित्र विधान भी नवीन ढंग से किया गया है। साकेत और यशोधरा काव्य में उनकी पात्र रचना देखी जा चुकी है। गुप्तजी ने पौराणिक पात्रों को भी युग भावना के अनुरूप ही ढाला है। पात्रों की योजना कथा चयन की सार्थकता को लक्ष्यगत करके हुई है। महाभारत की चरित्र-योजना में से गुप्तजी ने कतिपय को ही ग्रहण किया है। उन चरित्रों का परिष्कार करके ही प्रस्तुत किया गया है।

४ जयभारत के इतिवृत्त में महाकाव्य वस्तु की गम्भीरता और व्यापकता भी है। वह कथा परिधि में सरक्षित होते हुए भी जीवन की समग्रता का अंकन करने में सक्षम है। काव्य का मूल प्रतिपाद्य मानवीय महिमा की प्रतिष्ठा और धर्म की जय है। इस लक्ष्य की प्राप्ति की दृष्टि से ही कथा का विस्तार दिया गया है।

५ जयभारत के कथा सयोजन का सबसे बड़ा अभाव यह है कि विभिन्न प्रकरणों में *अन्विति के समृद्ध रूप का अभाव है।* कथा वर्णन में वह वेगवान प्रवाह नहीं है जो महाकाव्य में होना चाहिए और जिसमें मैथिलीशरण जी की लेखनी अत्यन्त समर्थ है। खण्ड रूप में लिखी हुई वस्तु में प्रवाह आना सम्भव भी नहीं है।[13] कवि ने प्रकरणों के नाम के अनुरूप अपने ढंग से कथा का विस्तृत किया है। इस कारण कथान्विति में व्यवधान अवश्य आया है किन्तु इससे प्रबन्धात्मकता खण्डित नहीं हुई है क्योंकि पूर्वापर सम्बन्ध निर्वाह किसी न किसी रूप में होता रहा है।

जयभारत और महाभारत की कथात्मक विधान की दृष्टि से तुलना

महाभारत का कथानक महान समृद्ध और शक्ति-समन्वित है। उसमें भारतीय जीवन और संस्कृति की विराट योजना है। उसके वस्तु विस्तार में समस्त व्यावहारिक नीति जीवन दर्शन धर्म बोध और परम्पराओं का समाहार हो गया है। जयभारत के कथानक में वह गुरुत्व गाम्भीर्य नहीं है। जयभारत का एक निश्चित लक्ष्य है। उसमें नारायण नहीं नर की महिमा का गौरव गान है। इसीलिए जयभारत में असम्भाव्य और अलौकिक घटनाओं को स्थान नहीं मिला है। जयभारत के रचयिता के कथा चयन का आधार पौराणिक उपाख्यान होते हुए भी उसका स्वरूप मनोवैज्ञानिक युगीन और बौद्धिकतापूर्ण है। जयभारत का कथानक पाठक को उसकी व्यावहारिक उपादेयता एवं सामयिकता के कारण ग्राह्य है जबकि महाभारत के कथानक

---

[13] डा० नगेन्द्र विचार और विश्लेषण पृ० १२३

को पाठक श्रद्धा (पौराणिक आस्था), कौतूहल या औत्सुक्य के कारण ग्रहण करता है। 'जयभारत' में भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष और प्रबन्ध समसामयिक जीवन-परिवेश में चित्रित किया गया है।

समष्टि रूप में 'जयभारत' का कथानक महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसमें पौराणिक उपाख्यानों का नवीन निरूपण ही नहीं अपितु मौलिक उपलब्धियाँ भी हैं। उसमें धारावाहिकता का एक सीमा तक अभाव होते हुए भी कथानक की सम्पूर्ण अन्विति प्रसंगगत सुसम्बद्धता के कारण अक्षुण्ण रही है। सबसे बड़ी बात कथा महाकाव्य के मूल में तथ्य की प्राप्ति में सहायक है। गुप्तजी ने 'जयभारत' के कथानक को युद्ध सर्ग तक ही समाप्त न कर 'स्वर्गारोहण' प्रकरण तक पहुँचाकर अन्तिम सर्ग को विशेष ढंग से प्रतिपादित कर कथा के उपसंहार को भी पूर्ण गौरव के साथ अंकित किया है।

'एकलव्य' की चरित्र-योजना

'एकलव्य' की चरित्र योजना

डा० रामकुमार वर्मा ने एकलव्य महाकाव्य की रचना मानवतावादी जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर हुई है। संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य के नायकत्व पद का अधिकारी सुर सद्वंशीय व्यक्ति या क्षत्रिय को कहा गया है। किन्तु डा० वर्मा ने निषादपुत्र को एकलव्य का नायक बनाकर व्यापक मानवतावादी जीवन-दृष्टि का ही परिचय दिया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं कहा है कि— एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है वह किसी उच्चकुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह अनार्य नहीं आर्य है क्योंकि उसमें शील का प्राधान्य है। यही उसमें महाकाव्य का नायक बनने की क्षमता है।[1] वस्तुतः डा० वर्मा के एतद्विषयक दृष्टिकोण के निर्माण में बापू के अछूतोद्धार आन्दोलन और महाभारत के सूत्रवाक्य नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् का योगदान उल्लेखनीय है।

महाभारत के उपेक्ष्य पात्रों में निषादपुत्र एकलव्य का चरित्र उपेक्षित प्राय है। डा० वर्मा ने उसी के मनोविश्लेषण के लिए प्रस्तुत काव्य रचा है। आमुख में उन्होंने कहा भी है कि— राजनीति और समाज के अन्तराल में आचार्य द्रोण और शिष्य एकलव्य के चरित्र की व्याख्या बड़ी मनोवैज्ञानिक होगी। इसी विचार से मैंने इस काव्य की रचना की है।[2] चरित्र प्रधान महाकाव्य होने पर भी एकलव्य की पात्र-सृष्टि अत्यल्प है। एकलव्य के प्रमुख चरित्र केवल दो हैं— एकलव्य और द्रोणाचार्य। इनके अतिरिक्त एकलव्य के पिता निषादराज हिरण्यधनु, एकलव्य की जननी और अर्जुन के चरित्र उल्लेखनीय हैं।

एकलव्य— एकलव्य निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र है। उसके चरित्र में निषाद जाति की वीरता, विनय, सदाचार आदि विशेषताएं सहज रूप में उपलब्ध हैं। काव्य में सर्वप्रथम हम उसे एक जिज्ञासु शिष्य के रूप में पाते हैं जो गुरु द्रोण से धनुर्वेद की शिक्षा पाने का समुत्सुक है। उसके जीवन की सबसे

---

[1] एकलव्य, आमुख, पृ० ६

[2] वही, पृ० ६

बड़ी आकांक्षा धनुर्वेद में दक्षता प्राप्त करना है। किन्तु निषादपुत्र होने के कारण राजगुरु द्रोण उसे शिष्य बनाना अस्वीकार कर देते हैं। एकलव्य द्रोण की विवशता समझता है। अतः मन में बिना कोई दुर्भाव पैदा किये वह निष्ठापूर्वक धनुर्वेद की साधना में लग जाता है। किन्तु वर्णभेद की व्यवस्था के प्रति उसके मन में आक्रोश अवश्य है। वह शूद्र भले ही हो परन्तु अपने गुणों के कारण द्रोण को भी आकर्षित कर लेता है। वे कहते हैं

> है तो शूद्र किन्तु जैसे निष्कलंक द्विज है
> बालक निषाद का है किन्तु तेजोमय है।
> जैसे मणिरत्न है विशाल विषधर का
> अन्य राजपुत्रों से विशेष श्रद्धावान है।
> जैसे यह अंकुर है प्रस्तर के पार्श्व में।[3]

एकलव्य के आकर्षक व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए डा० वर्मा ने लिखा है

> पारावत पंख शीश में विचित्र हैं कैसे
> लम्बा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।
>
> × × ×
>
> है प्रशस्त भाल धो वेश उठ भौंहों में
> बीच में मिले हैं जैसे कंपित धनु है।
> नासा रेख उन्नत कपोल सौम्य कर्ण में
> विलुलित हैं कुंडल सुरम्य स्फटिक के।
> सम्पुटित बन्द नील पद्म जैसे नेत्र हैं
> लीन जिनमें है प्रिय मूर्ति गुरु द्रोण की।
> हृष्ट पुष्ट विग्रह है ब्रह्मचर्य तेज से
> कसा पीत वल्कल है वल्लरी के रज्जु से।[४]

एकलव्य का जीवन एकान्त साधक की साधना से परिपूर्ण है। गुरु द्रोण के मुख से धनुर्वेद का पवित्र शब्द सुनकर ही वह उसे ही गुरु मान लेता है और माता पिता तथा मित्र नागदत्त के मना करने पर भी धनुर्विद्या की कठोर साधना करने पर दृढ़संकल्प मन्दिर निर्जन वन में चला जाता है। अन्ततः एकलव्य भयंकर परिस्थितियों में जबकर साधना करते हुए लक्ष्य प्राप्ति में सफल होता है।

---

[3] एकलव्य आत्मनिवेदन सर्ग पृ० १२५

[४] वही साधना सर्ग पृ० १६४

अदम्य उत्साह और धैर्य उसके चरित्र के अन्य विशिष्ट गुण हैं जिनके बल पर वह वन के संकटों से जूझता है। गुरु द्रोण की मृत्तिका मूर्ति उसकी प्रेरिका है। अंततः एकलव्य की साधना अर्जुन के लिए स्पर्धा का कारण बन जाता है। एकलव्य के बाणविद्या कौशल के सम्मुख वह हतप्रभ हो जाता है। एकलव्य की अमोघ साधना अर्जुन के अद्वितीय धनुर्धर रूप को चुनौती थी। एकलव्य की साधना गुरु द्रोण को वन में खींच लायी। उसके लाघव की प्रशंसा करते हुए गुरु ने कहा

किंतु जानता हूँ धनुर्वेद कहता हूँ मैं—
तुम सा कुशल धन्वी दूसरा नहीं हुआ।
× × ×
और तुम आज के अजेय धनुर्धारी हो।[५]

महान् त्यागी एकलव्य ने कठोर साधना से अर्जित धनुर्वेद-कौशल को क्षण भर में गुरु-दक्षिणा में दक्षिणांगुष्ठ देकर समर्पित कर दिया। पार्थ को धनुर्धर के रूप में अद्वितीयता प्राप्त कराने के लिए उसने धनुष-बाण फेंक दिया।[६] गुरु की प्रणपूर्ति हेतु अपना दक्षिणांगुष्ठ काटकर उनके चरणों में रख दिया।[७]

इस प्रकार एकलव्य ने त्याग और बलिदान का एक उच्च आदर्श प्रतिष्ठित किया जिसके कारण उसका चरित्र महाकाव्योचित गरिमा से मण्डित हो सका। एकलव्य के त्याग की महिमा से प्रभावित होकर द्रोण ने यहाँ तक कह दिया कि

तुम विप्र हो हे शिष्य! गुरु द्रोण शूद्र है
हाँ तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है।[८]

अर्जुन ने भी क्षमायाचना करते हुए कहा

क्षमा करो गुरु भक्ति साक्षी आज तुम से
मैं राजवंश की अहम् भावनाओं से।
गुरु को था हीन माना! तुमने निषाद हो
गुरु का महत्त्व सिखलाया इस विश्व को।[९]

---

[५] एकलव्य दक्षिणा सर्ग पृ० २८७
[६] वही पृ० २९१
[७] वही पृ० २९६
[८] वही पृ० २९६
[९] वही पृ० २९७

बडी आकाक्षा धनुर्वेद म दक्षता प्राप्त करना है। किन्तु निषादपुत्र होने के कारण राजगुरु द्रोण उसे शिष्य बनाना अस्वीकार कर देते हैं। एकलव्य द्रोण की विवशता समझता है। अत मन म बिना कोई दुर्भाव पैदा किये वह निष्ठापूर्वक धनुर्वेद की साधना म लग जाता है। किन्तु वर्णभेद की व्यवस्था के प्रति उसके मन म आक्रोश अवश्य है। वह शूद्र भले ही हो परन्तु अपने गुणों के कारण द्रोण को भी आकर्षित कर लेता है। वे कहते हैं

है तो शूद्र किन्तु जसे निष्कलंक द्विज है
बालक निषाद का है किन्तु तेजोमय है।
जसे मणिरत्न है विशाल विषधर का
अन्य राजपुत्रों से विशेष श्रद्धावान है।
जसे यह अकुर है प्रस्तर के पाश्व म। [3]

एकलव्य के आकर्षक व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए डा० वर्मा ने लिखा है

पारावत पख शीश म विचित्र हैं कसे
लम्बा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।

× × ×

है प्रशस्त भाल घन केश उठ भौहों म
बीच म मिले हैं जसे कर्षित धनु है।
नासा रेख उन्नत कपोल सौम्य वर्ण म
विलुलित है कुडल मुरम्य स्फटिक के।
सम्पुटित कज नील पद्म जसे नेत्र है
लीन जिनम है प्रिय मूर्ति गुरु द्रोण की।
हृष्ट पुष्ट विग्रह है ब्रह्मचर्य तेज से
कसा पीत वल्कल है वल्लरी के रज्जु से। [४]

एकलव्य का जीवन एकान्त साधना की साधना म परिपूर्ण है। गुरु द्रोण के मुख म धनुर्वेद का पवित्र शब्द सुनकर ही वह उसे ही मान लेता है और माता पिता तथा मित्र नागदत्त के मना करने पर भी धनुर्विद्या की कठोर साधना करने पर दृढसंकल्प मन्नि निजन वन म चल देता है। अन्तत एकलव्य भयकर परिस्थितियों म जयकर साधना करते हुए लक्ष्य प्राप्ति म सफल होता है।

---

[3] एकलव्य आत्मनिवेदन सग पृ १२५
[४] वही साधना सग पृ० १६४

अदम्य उत्साह और धैर्य उसके चरित्र के दो विशेष गुण हैं जिनके बल पर वह वन के संकटों से जूझता है। गुरु द्रोण की मृत्तिका मूर्ति उसकी प्रेरिका है। अन्तत एकलव्य की साधना अर्जुन के लिए ईर्ष्या का कारण बन जाती है। एकलव्य के बाणविद्या-कौशल के सम्मुख वह हतप्रभ हो जाता है। एकलव्य की अमोघ साधना अर्जुन के अद्वितीय धनुर्धर रूप को चुनौती थी। एकलव्य की साधना गुरु द्रोण को वन में खींच लायी। उसके लाघव की प्रशंसा करते हुए गुरु ने कहा

किन्तु जानता हूँ धनुर्वेद कहता हूँ मैं—
तुम सा कुशल धन्वी दूसरा नहीं हुआ।
× × ×
और तुम आज से अजय धनुर्धारी हो।[५]

महान् त्यागी एकलव्य ने कठोर साधना से अर्जित धनुर्वेद-कौशल को क्षण भर में गुरु-दक्षिणा में दक्षिणांगुष्ठ देकर समर्पित कर दिया। पार्थ को धनुर्धर के रूप में अद्वितीयता प्राप्त कराने के लिए उसने धनुष-बाण फेंक दिया।[६] गुरु की प्रणपूर्ति हेतु अपना दक्षिणांगुष्ठ काटकर उनके चरणों में रख दिया।[७]

इस प्रकार एकलव्य ने त्याग और बलिदान का एक उच्च आदर्श प्रतिष्ठित किया जिसके कारण उसका चरित्र महाकाव्योचित गरिमा से मण्डित हो गया। एकलव्य के त्याग की महिमा से प्रभावित होकर द्रोण ने यहाँ तक कह दिया कि

तुम विप्र हो हे शिष्य ! गुरु द्रोण शूद्र है
हा तुम्हारी गुरुता से गुरु हुआ लघु है।[८]

अर्जुन ने भी क्षमायाचना करते हुए कहा

क्षमा करो गुरु भक्ति सीखी आज तुम से
मैं राजवंश की अहम् भावनाओं में।
गुरु को था हीन माना ! तुमने निषाद हो
गुरु का महत्त्व सिखलाया इस विश्व को।[९]

---

[५] एकलव्य, दक्षिणा सर्ग पृ० २८७
[६] वही पृ० २६१
[७] वही पृ० २६६
[८] वही पृ० २६६
[९] वही पृ० २६७

एकलव्य गुरुभक्त ही नहीं मातृभक्त भी था। माता के ममत्व भाव का स्मरण वह इन शब्दों में करता है

कष्ट मुझ हो कराह है तुम्हारे मुख में
एक अश्रु में तुम्हारे सौ सप्त सिन्धु है।[1]

एकलव्य में अपूर्व आत्मबल है। इससे उसे सफलता मिलती है और इसी से वह भूमिपतियों की चुनौती का उत्तर देता हुआ कहता है

सावधान भूमिपति हम में भी शक्ति है।
× × ×
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है
आत्मबल की हमारे पास सीमा है नहीं।[11]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एकलव्य में महाकाव्य के नायक के अधिकांश गुण विद्यमान है। वह अपने महत् गुणों के कारण ही पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करता है। प्रस्तुत काव्य में एकलव्य के चरित्र का जितना उदात्त रूप आया है वह उसके प्रति युग युग की अटूट श्रद्धा सुरक्षित रखने वाला है।[12] एकलव्य के चरित्र का अप्रतिम त्याग मानवता की अक्षय विभूति है।

आचार्य द्रोण—आचार्य द्रोण महर्षि भारद्वाज के पुत्र तथा परशुराम के शिष्य थे। परशुराम से उन्होंने धनुर्विद्या सीखी और दिव्यास्त्र प्राप्त किये। आचार्य द्रोण उच्चकुल में जन्मे उच्चकोटि की शिक्षा से दीक्षित हुए और उच्च संस्कारों से सम्पन्न थे। कवि ने उनके व्यक्तित्व का अत्यन्त प्रभावशाली चित्र अंकित किया है

श्वेत जटा विस्तृत ललाट कसी भौंह है
नेत्र है विशाल रक्तवर्ण उठी नासिका।
श्वेत श्मश्रु बीच ओठ जैसे शुभ्र अभ्र की
ओट सन्ध्याकाल मध्य दृग को करता है।[13]

ऐसे तेजस्वी द्रोण अर्थाभाव के कारण राजा द्रुपद के पास धन प्राप्ति के लिए

---

[1] एकलव्य संकल्प सर्ग पृ १८२
[11] वही पृ १३७
[1] डा श्यामनन्दनकिशोर आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान पृ २४१
[13] एकलव्य दर्शन सर्ग पृ १२

जाते हैं किन्तु वहाँ उनका तिरस्कार होता है। अन्ततः वे भीष्म द्वारा युधिष्ठिर भीम, अर्जुन, दुर्योधन आदि को शस्त्रास्त्रों की दीक्षा देने के लिए आचार्य नियुक्त किये जाते हैं। अर्जुन की मेधा जानकर वे उसे तमवेध और शब्दभेद का अभ्यास भी कराते हैं। शस्त्रास्त्रों के ज्ञान के साथ-साथ राजकुमारों को वे नीति-नाति सहित धर्मशास्त्र की भी शिक्षा देते हैं। वे उन्हें अन्धकार और दर्प पर विजय पाने का भी उपदेश देते हैं।

एकलव्य धनुर्वेद की शिक्षा के लिए गुरु द्रोण के पास आता है किन्तु राजधर्म की मर्यादा के कारण वे उसे शिष्य बनाना स्वीकार नहीं करते। साथ ही युक्तिपूर्वक वे एकलव्य को सन्तुष्ट करने का भी प्रयास करते हैं। वे कहते हैं कि 'धनुर्वेद तो राजपुत्रों के लिए है निषादपुत्रों के लिए उसकी क्या उपयोगिता है। एकलव्य के निष्ठाभाव से प्रभावित होते हुए भी उन्हें विवशता वश यह कहना पड़ता है कि

> किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी हैं
> जो कि भूमिपुत्र नहीं किन्तु भूमिपति हैं।
> × × ×
> राजगुरु हूँ विशेष पद की मर्यादा से
> शिक्षा नीति राजनीति के पथ चलती है।
> शारदा की वाणी यहाँ बोली है स्वर्ण में॥ [१४]

अन्ततः वे एकलव्य को अस्वीकार कर देते हैं।

यहाँ हम आचार्य द्रोण को मर्यादाओं के कठोर अनुपालनकर्ता गुरु के रूप में पाते हैं। कवि ने उनके चरित्र में सहज मानवीय दुर्बलताओं को भी अंकन किया है। आर्थिक अभाव के कारण जब वे अपने पुत्र के लिए एक घूँट दूध भी उपलब्ध नहीं करा पाते हैं तो उनका पुरुषत्व उन्हें धिक्कारता है

> कुत्सित रे द्रोण! सब तेरा शक्ति व्यर्थ है
> मार चन्द्रमण्डल में एक बाण तू ने क्यों
> चू पड़े सुधा की धार पुत्र पा ले नाच के। [१५]

साथ ही एकलव्य को शिष्यत्व पद प्रदान न करने के कारण उनके मन में एक अन्तर्द्वन्द्व भी उठता है कि शिक्षा तो सरस्वती की धारा है जो अनन्त और

---

[१४] एकलव्य आत्मनिवेदन सर्ग पृ० १७

[१५] वही, परिचय सर्ग पृ० ३८

प्रशात है। मैं केवल राजगुरु बनकर भी क्या रहूँ? अततोगत्वा वे इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि

जाति भेद नहीं वर्ग भेद भी नहीं
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं।[१६]

उनका मानसिक द्वन्द्व इस सीमा तक पहुच जाता है कि व अपनी साधना म भी मिथ्यत्व का आभास पाते हैं

धिक द्रोण! तेरी सब साधनाए मिथ्या है
तेरा धनुर्वेद सूम की सम्पत्ति जसा है।[१७]

स्वप्न सग म हम द्रोण क व्यक्तित्व का वास्तविक रूप पाते हैं जो उनके चरित्र को निश्चय ही ऊचा उठाता है। किन्तु अर्जुन के स्वार्थ क कारण अन्त म वे एकलव्य से जो गुरु दक्षिणा स्वीकार करते हैं उससे उनका चरित्र उच्चादर्शों से स्खलित हो जाता है। एकलव्य के दक्षिणागुष्ठ की दक्षिणा से व हतप्रभ हो जाते हैं। उनकी मर्म-व्यथा इतनी बढ़ जाती है कि उस व्यथा का भार सहन न कर पाने के कारण व तत्क्षण चल जाते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि म गुरु द्रोण के चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व निश्चय ही कवि के चरित्र चित्रण-कौशल की महत्ता का परिचायक है।

अन्य पात्र—काव्य क अन्य पात्रों म हिरण्यधनु एकलव्य-जननी और धजा के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिरण्यधनु को वर्माजी ने जातीय गुणों क अनुसार वीर और साहसी ही नहीं अपितु एक कर्तव्यपरायण पिता के रूप म भी चित्रित किया है। हिरण्यधनु को अपने जातीय गौरव का स्वाभिमान है।

एकलव्य की माता को कवि ने वीर जननी के रूप म चित्रित किया है जिसके हृदय म वात्सल्य का अजस्र स्रोत विद्यमान है। धनुर्विद्या की साधना के लिए एकलव्य के निर्जन वन म चले जाने पर उसका हृदय व्याकुल हो उठता है। एकलव्य जननी के मातृत्व भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए कवि ने ममता नामक पूरा सर्ग ही समर्पित कर दिया है। वह अपने पुत्र की बाल सुलभ क्रीड़ाओं की स्मृति सजाये उसके वियोग को सहती है किन्तु उसकी भावनाए बड़ी उदात्त हैं

---

[१६] एकलव्य स्वप्न सर्ग पृ २२२
[१७] वही पृ० २

गुणकथन ही तो मेरा गान है।

× × ×

लाल तुम्हारी कठिन तपस्या

ही तो मेरा गुणगान है।[18]

पुत्र वियोग की तीव्र वेदना को सहती हुई एकलव्य जननी पुत्र की साधना की सफलता की सूचना पाकर आनन्दित होती हुई वन में पहुँचती है वहाँ पुत्र के खण्डित अंगुष्ठ को देखकर उसका हृदय खण्ड खण्ड हो जाता है। वह द्रोणाचार्य से कहती है कि आपके विधान में यदि शिष्य माता से भी दक्षिणा लेने का नियम हो तो मैं भी अपने नेत्रों को आपकी सेवा में समर्पित कर दूँ क्योंकि मैं यह दृश्य नहीं देख सकती। एकलव्य जननी के इस मर्मस्पर्शी व्यथापूर्ण कथन को सुनकर सभी स्तब्ध हो गये। आकाश में श्यामता छा गयी और दिशाएँ धूमिल हो गयी।[19]

अर्जुन—एकलव्य में अर्जुन का चरित्र बहुत गिरा हुआ दिखाया गया है। महाभारत के आदर्श वीर में यहाँ स्वार्थ की भावना ही अधिक दिखायी देती है। काव्य के आरम्भ में हम अवश्य ही उसे एक निष्ठावान शिष्य के रूप में पाते हैं। उसके निष्ठाभाव को ही देखकर द्रोणाचार्य उसे अद्वितीय धनुर्धारी बनाने का निश्चय करते हैं। वह दिव्यास्त्रों के प्रयोग की विविध विधियों में निपुण है। अर्जुन के शस्त्रास्त्र लाघव को देखकर सम्पूर्ण जनसमुदाय विस्मय विमुग्ध हो जाता है। गुरु के प्रति यद्यपि अर्जुन के मन में विनय और श्रद्धा का भाव है किन्तु दूसरी ओर एक महत्त्वाकांक्षी राजपुत्र होने के कारण वह अद्वितीय धनुर्धर बनने का लोभ-संवरण भी नहीं कर पाता है। यही महत्त्वाकांक्षा उसके चरित्र को हीन बना देती है। अर्जुन की आग्रह-पूर्ति के लिए ही एकलव्य को अपनी महान् साधना का उत्सर्ग करना पड़ता है।

उपर्युक्त उल्लिखित पात्रों के अतिरिक्त नागदत्त भीष्म पितामह दुर्योधन तथा अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डव कुमारों के चरित्र कथा विकास की दृष्टि से विवेचनीय है। इन पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का विशेष विस्तार नहीं हुआ है।

इस प्रकार एकलव्य महाकाव्य के चरित्र चित्रण में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। एकलव्य और आचार्य द्रोण की चरित्र-सृष्टि में तो कवि

---

[18] एकलव्य ममता सर्ग पृ० १९०

[19] वही दक्षिणा सर्ग पृ० २०४

ने मौलिकता और नवीनता का भी परिचय दिया है। एकलव्य का चरित्र निषाद संस्कृति का उज्ज्वल प्रतीक है। आचार्य द्रोण के चरित्र में जिस अन्तर्बाह्य द्वन्द्व की योजना वर्माजी ने की है वह चरित्र विश्लेषण की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। द्रोण इस काव्य का सबसे अधिक गतिशील चरित्र है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वास्तव में आचार्य द्रोण के मनोविज्ञान की कक्षा में ही एकलव्य रूपी उपग्रह भ्रमण करता है। द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व की उष्ण रश्मियों में एकलव्य का चरित्र-कमल विकसित होकर अपनी सुगन्धि समस्त दिशाओं में व्याप्त कर रहा है। अन्तःसंघर्ष के अन्तराल में अन्तर्द्वन्द्व की यह योजना महाकाव्यकार की अनोखी सूझ है।[२] कवि की सूझ के कारण ही एकलव्य का चरित्र गुरु भक्ति के आदर्श का प्रतीक बन गया है। एकलव्य महाकाव्य के चरित्र नियोजन में मनोवैज्ञानिक आधार को ग्रहण करते हुए भी पात्रों की भावगत मान्यताओं को महाभारत के सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी समर्थित रखा है। यही एकलव्य के चरित्र विश्लेषण की सबसे बड़ी सफलता है।

---

२ डा० मान्न अवस्थी जीवन महाकाव्य एकलव्य नामक लेख (वीणा फरवरी १९६१)

'उर्वशी' महाकाव्य मे नारी-निरूपण

'उर्वशी' महाकाव्य मे नारी निरूपण

हिन्दी महाकाव्य सृजन की सुदीर्घ परम्परा मे 'उर्वशी' का प्रकाशन अभूतपूर्व घटना है। 'कामायनी' के अनन्तर प्रकाशित होने वाली काव्यकृतियों मे 'उर्वशी' श्रेष्ठतम है। 'उर्वशी' की श्रेष्ठता का आधार उसकी कलात्मक योजना और जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियाँ है। 'उर्वशी' की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसकी रचना का इतिवृत्तात्मक आधार वैदिक पुराख्यान होते हुए भी उसमे वर्तमान युग जीवन की चेतना का महद्घोष है। इस दृष्टि से 'उर्वशी' का नारी निरूपण द्रष्टव्य है।

उर्वशी मूलतः नारी और नर के रागात्मक सम्बन्धों का विवेचक काव्य है। इन्ही सम्बन्धों का विवेचन करते हुए कवि ने नारी के नाना रूपों का निरूपण भी किया है। उर्वशी मे मुख्यतः नारी के तीन रूप उद्घाटित हुए है, वे है—प्रेयसी, पत्नी और माता। इनमे प्रेयसी नारी के पुनः दो वर्ग किये जा सकते है—उच्छृंखला और संयमशीला। इन आधारों पर उर्वशी के नारी पात्रों को निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

१ प्रेयसी—(अ) उच्छृंखला—अप्सराए
(ब) संयमशीला—उर्वशी
२ पत्नी— औशीनरी
३ माता— उर्वशी, सुकन्या और औशीनरी

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उर्वशी मुख्यतः संयमशीला प्रेयसी होते हुए भी काव्य मे अन्य रूपों मे भी अंकित की गयी है। अर्थात् उर्वशी जहाँ प्रेयसी है वहाँ पुरूरवा का वरण करने और पुरूरवा के संसर्ग से आयु को जन्म देने के कारण पत्नी और माँ भी है।

प्रेयसी नारी—(अ) उच्छृंखला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व काव्य मे अप्सराए करती है। अप्सराए सौन्दर्य की अपार निधि है। वे अम्बर की सुषमा, मनमोहिनी, अभुक्त प्रेम की जीवित प्रतिमाए, मदिर नयनों से स्वामी की रण-क्लान्ति का हरण करने वाली और काम के मन की कामना है।[1]

---

[1] उर्वशी प्रथम अंक पृ० ६ ७



'उर्वशी' महाकाव्य में नारी-निरूपण

हिन्दी महाकाव्य सृजन की सुदीर्घ परम्परा में 'उर्वशी' का प्रकाशन अभूतपूर्व घटना है। 'कामायनी' के अनन्तर प्रकाशित होने वाली काव्यकृतियों में उसकी श्रेष्ठतम है। 'उर्वशी' की रचना का आधार इसकी कथात्मक योजना और जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियाँ हैं। 'उर्वशी' की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसकी रचना का कथात्मक आधार वैदिक पुराख्यान होते हुए भी उसमें वर्तमान युग-जीवन की चेतना का सद्‌घोष है। इस दृष्टि से 'उर्वशी' का नारी निरूपण [illegible] है।

'उर्वशी' मूलतः नारी और नर के रागात्मक सम्बन्धों का विवेचन काव्य है। इन्हीं सम्बन्धों का विवेचन करते हुए कवि ने नारी के नाना रूपों का निरूपण भी किया है। 'उर्वशी' में मुख्यतः नारी के तीन रूप उद्घाटित हुए हैं, वे हैं—प्रेयसी, पत्नी और माता। इनमें प्रेयसी नारी के पुनः दो वर्ग किये जा सकते हैं—उच्छृंखला और संयमशीला। इन आधारों पर 'उर्वशी' के नारी पात्रों को निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

१ प्रेयसी—(अ) उच्छृंखला—अप्सराएँ
(ब) संयमशीला—उर्वशी
२ पत्नी— औशीनरी
३ माता— उर्वशी, सुकन्या और औशीनरी

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उर्वशी मुख्यतः संयमशीला प्रेयसी होते हुए भी काव्य में अन्य दो रूपों में भी अंकित की गयी है। अप्सरा उर्वशी जहाँ प्रेयसी है वहाँ पुरूरवा का वरण करने और पुरूरवा के संसर्ग में आयु को जन्म देने के कारण पत्नी और माँ भी है।

प्रेयसी नारी—(अ) उच्छृंखला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व काव्य में अप्सराएँ करती हैं। अप्सराएँ सौन्दर्य की अपार निधि हैं। वे अम्बर की सुषमा, मनमोहिनी, अमुक्त प्रेम की चित्रित प्रतिमाएँ, भ्रमित नयनों से स्वर्ग की रण-क्लान्ति का हरण करने वाली और काम के मन की कामना हैं।[1]

---

[1] उर्वशी, प्रथम अंक पृ० ६-७

उन्हें किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार्य नहीं। प्रेम उनके लिए क्रीड़ा और स्वाद है। वे किसी एक की होकर नहीं रह सकती हैं। उनके जन्म का साफल्य सबका मनोविनोद है। रम्भा के शब्दों में

जन्मी हम किसलिए ? मोद सबके मन में भरने को
किसी एक को नहीं मुग्ध जीवन अर्पित करने को।
सृष्टि हमारी नहीं सकुचित किसी एक आनन में
किसी एक के लिए सुरभि हम नहीं सजोती तन में।[२]

अप्सराएं कभी देवता और कभी मनुज का आलिंगन करती हैं। वे उन्मुक्त और उच्छृंखल हैं। उनमें सिन्धु की लहरियों के समान कामनाएं तरंगित रहती हैं

रचना की वेदना जगाती पर न स्वयं रचती हम
बध कर कहाँ विविध पाशों में न कभी बचती हम।
हम सागर आत्मजा सिन्धु सी ही असीम उच्छल हैं
इच्छाओं की अमित तरंगों में चक्रित चंचल हैं।[३]

अप्सराओं का कार्य मनुष्य की वासना की वेदना से पीड़ित करना है। वे प्रेम की पीर से अपरिचित हैं। उनमें पुरुष के प्रति समर्पण भाव नहीं। इसीलिए वे किसी एक पुरुष की होकर नहीं रह सकती हैं। सहजन्या और रम्भा के सम्वाद से विदित होता है कि उन्हें नारी का माता रूप कुत्सित लगता है। भूतल की परिणीता नारी का पुरुष से आजीवन प्रेममय मिलन घृणित लगता है।[४] इस प्रकार दिनकरजी ने अप्सराओं के माध्यम से नारी के उस रूप का व्यंजन किया है जो भौतिकता विलासिता और स्वार्थपरता की प्रवचनाओं से पूर्ण है। वस्तुतः ऐसी नारियाँ सामाजिक जीवन का अभिशाप हैं।

(ब) सयमशीला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व उर्वशी करती है। उर्वशी अपरिमित सौन्दर्यशालिनी है। कवि दिनकर की सम्पूर्ण सौंदर्य कल्पना से उर्वशी का देहयष्टि का निर्माण हुआ है। सहजन्या के शब्दों में उर्वशी नन्दनवन की ऊषा सुरपुर की कौमुदी इन्द्र के मन की ललित कामना रति की मूर्ति रमा की प्रतिमा विश्वमय नर की तृषा विधु की प्राणेश्वरी और काम के कर की आरती शिखा है। वह सिद्धों और वैरागियों की समाधि में

---

[२] उर्वशी प्रथम अंक पृ० १५
[३] वही पृ० १५
[४] वही पृ० १६ १७

राग जगाकर नेत्रों के शोणित म मधुमय आग लगाने वाली है। उसके चरणों पर चन्दन के लिए जन जन व्याप्त है। उवशी की सुषमा के मन्दिर ध्यान म त्रिभुवन मग्न मुग्ध है।[४] काव्य के तृतीय अंक म अपना परिचय स्वय देते हुए उवशी ने कहा है

'मैं नाम गोत्र से रहित पुष्प
अम्बर म उड़ती हुई मुक्त आनन्द शिखा
इतिवत्तहीन
सौन्दय चेतना की तरग
सुर नर किन्नर ग धव नहीं
प्रिय ! म केवल अप्सरा
विश्वनर के अतृप्त इच्छा-सागर से समुद्भूत।[५]

उवशी अपने परिचयक्रम म पुरूरवा को बताती है कि मत्त गजराज मेरे समक्ष नत होकर रहते है। केसरी शरभ और शार्दूल अपना हिंस्र भाव छोडकर गृह मृग समान अहिंस्र बन जाते हैं। मेरी भ्रू स्मिति को देखकर शरमा चकित, विस्मित और विभोर हो जाते है। मैं अनवरुद्ध और मुक्त काम वह्नि शिखा के समान अप्रतिहत और दुर्निवार भाव से सदैव घूमती हूं। उवशी को कवि ने नारी की चरम कल्पना कहते हुए उसका व्यापक परिचय निम्नांकित प्रकार से दिया है

जन जन के मन की मधुर वह्नि प्रत्येक हृदय की उजियाली
नारी की कल्पना चरम नर के मन म बसने वाली।
× × ×
विस्तीर्ण सिन्धु के बीच शून्य एकान्त द्वीप
यह मेरा उर।
देवालय म देवता नहीं केवल मैं हूं।
× × ×
मैं कला चेतना का मधुमय प्रच्छन्न स्रोत।
× × ×
भू-नभ का सब संगीत नाद मेरे निस्सीम प्रणय का है,
सारी कविता जयगान एक मेरी त्रयलोक विजय का है।
× × ×

---

[४] उवशी प्रथम अक पृ० १३
[५] वही, तृतीय अक पृ० ६५

मैं देशकाल से परे चिरंतन नारी हूं।
मैं आत्मतन्त्र यौवन की नित्य नवीन प्रभा
रूपसी अमर मैं चिर युवती सुकुमारी हूं।

× × ×

मैं भूत भविष्यत वर्तमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त
मैं विश्वप्रिया।[७]

उर्वशी आदि नारी है। उसका अस्तित्व सदैव रहा है

कौन पुरुष जिसकी समाधि में मेरा चरण नहीं है ?
कौन त्रिया मैं नहीं राजती हूं जिसके यौवन में ?

× × ×

मेरा तो इतिहास प्रकृति का पूरी प्राण कथा है
उसी भांति निस्सीम असीमित जैसे स्वयं प्रकृति है।[८]

ऐसी त्रिकाल बाधा से विमुक्त अपार वैभवशालिनी विश्वप्रिया उर्वशी भी एक अप्सरा है। किन्तु पुरुरवा के प्रति उसका प्रेमभाव अनन्य है। प्रेम भाव से प्रेरित होकर वह तन मन सहित पुरुरवा के प्रति समर्पित होती है। इसी समर्पण भाव के कारण पुरुरवा के मिलन से उसे जहां सुखानुभूति होती है वहां उसका वियोग उर्वशी की व्यथा का कारण बनता है। उर्वशी के मन में प्रिय मिलन की तीव्र उत्कण्ठा है वह चित्रलेखा से कहती है

यदि आज कान्त को अंक नहीं पाऊंगी
तो शरीर को छोड पवन में निश्चय मिल जाऊंगी।

× × ×

तृप्ति नहीं अब मुक्त सांस भर भर सौरभ पीने से
ऊब गया हूं दबा कण्ठ नीरव रह कर जीने से।

× × ×

कहती हूं इसलिए चित्रलेखे! मन कर लगाओ
जैसे भी हो मुझे आज प्रिय के समीप पहुंचाओ।[९]

अन्तत उर्वशी और पुरुरवा का मिलन होता है। वे दोनों एक वर्ष तक गंध मादन पर्वत पर आमोदपूर्वक अभिसार-क्रीड़ाएं करते हैं किन्तु उर्वशी में

---

[७] उर्वशी तृतीय अंक पृ ९६ १०
[८] वही पृ ९३
[९] वही प्रथम अंक पृ० २० २१

अतृप्ति बनी रहती है। उस समय चन्द्र की गति का भी ध्यान नहीं रहता। वह कहता है कि

> जब से हम तुम मिले न जाने कया हो गया समय को
> लय होता जा रहा मरुद्गति से अतीत गह्वर में।
> × × ×
> कट गया वर्ष ऐसे जैसे दो निमिष गये।[१०]

उर्वशी में कामेच्छा है। वह चाहती है

> 'वक्षस्थल पर इसी भाँति, मेरा कपोल रहने दो।
> कसे रहो बस इसी भांति उर पीड़क आलिंगन में
> और जलाते रहो अधरपुट को कठोर चुम्बन से।[११]

ऐसी उद्दाम वासनामयी उर्वशी से शारीरिक मिलन की वेला में ही महाराज पुरुरवा कहते हैं कि वह प्रेम की जन्मभूमि अवश्य है किन्तु प्रेम के विचरण की सारी लीलाभूमि रुधिर या त्वचा तक ही सीमित नहीं है। प्रेम का प्रसार मन के गहन गुह्य लोकों तक है जहाँ रूप की छवि अरूप की अर्चना करती है। और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी के मुखमण्डल में किसी दिव्य अव्यक्त कमल को नमस्कार करता है। प्रेम के उस निरभ्र आकाश में ऐसी निर्विकल्प सुषमा है जहाँ पुरुष और स्त्री का भेद मिट जाता है। वहाँ पुरुष न केवल पुरुष और नारी न केवल नारी रहता है वरन् वे मूलसत्ता के प्रतिमान दिखायी देते हैं। उस स्थिति की परिणति मांसल आवरण हटाकर और तन का अतिक्रमण करके प्राप्त किया जा सकता है।[१२] इसी तथ्य की ओर दिनकरजी ने काव्य की भूमिका में भी संकेत किया है कि— नारी के भीतर एक और नारी है जो अगोचर और इन्द्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है जब शरीर की धारा उछालते उछालते उसे मन के समुद्र में फेंक देती है जब दैहिक चेतना से परे वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँचकर निस्पन्द हो जाता है।[१३] किन्तु पुरुरवा की यह अनासक्तिपूर्ण विचारणा उर्वशी के मन में भय उत्पन्न कर देती है। वह कह उठती है कि

---

[१०] उर्वशी तृतीय अंक पृ० ४८ और १०२
[११] वही, पृ० ६५
[१२] वही पृ० ६८
[१३] वही, भूमिका पृ० ख

मैं देशकाल स पर चिरंतन नारी हू ।
म आत्मतन्त्र यौवन की नित्य नवीन प्रभा
रूपसी अमर मैं चिर युवती सुकुमारी हू ।

× × ×

मैं भूत भविष्यत वतमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त
मैं विश्वप्रिया । [७]

उवशी आदि नारी है । उसका अस्तित्व सत्व रहा है
कौन पुरुष जिसकी समाधि म मेरा पलक रहा है ?
कौन त्रिया मैं नहीं राजती हू जिसके यौवन म ?

× × ×

मेरा तो इतिहास प्रकृति का पूरी प्राण कथा है
उसी भाति निस्सीम असीमित जस स्वय प्रकृति है । [८]

ऐसी त्रिकाल बाधा स विमुक्त अपार वैभवशालिनी विश्वप्रिया उवशी भी एक अप्सरा है । किन्तु पुरुरवा के प्रति उसका प्रमभाव अन य है । प्रेम भाव स प्रेरित होकर वह तन मन सहित पुरुरवा के प्रति समर्पित होती है । इसी समपण भाव के कारण पुरुरवा के मिलन स उस जहाँ सुखानुभूति होती है वहा उसका वियोग उवशी की व्यथा का कारण बनता है । उवशी के मन म प्रिय मिलन की तीव्र उत्कण्ठा है वह चित्रलेखा स कहती है

यदि आज कान्त का अक नहीं पाऊगी
तो शरीर को छोड पवन म निश्चय मिल जाऊगी ।

× × ×

तृप्ति नहीं अब मुझ सास भर भर सौरभ पीने स
ऊब गयी हू देवा कण्ठ नीरव रह कर जीने स ।

× × ×

कहती हू इसलिए चित्रलेखे ! मन वर जगाओ
जस भी हो मुझ आज प्रिय के समीप पहुचाओ । [९]

अनन्त उवशी और पुरुरवा का मिलन होता है । व दोनों एक वर्ष तक गन्ध मादन पवत पर आमोदपूर्वक अभिसार-क्रीडाए करते हैं किन्तु उवशी म

---

[७] उवशी तृतीय अक पृ० ९९ १००
[८] वही पृ ९३
[९] वही प्रथम अक पृ० २० २१

अतृप्ति बनी रहती है। उस समय चक्र की गति का भी ध्यान नहीं रहता। वह कहती है कि

जब से हम तुम मिले न जाने क्या हो गया समय को
लय होता जा रहा मरुत्गति से अतीत गह्वर में।
× × ×
कट गया वर्ष ऐसे जैसे दो निमिष गये। [१]

उर्वशी में कामेच्छा है। वह चाहती है

वक्षस्थल पर इसी भाँति मेरा कपोल रहने दो।
कसे रहो बस इसी भाँति उर पीडक आलिंगन में
और जलाते रहो अधरपुट को कठोर चुम्बन से। [११]

ऐसी उद्दाम वासनामयी उर्वशी से शारीरिक मिलन की वेला में ही महाराज पुरुरवा कहते हैं कि देह प्रेम की जन्मभूमि अवश्य है किन्तु प्रेम के विचरण की सारी लीलाभूमि रुधिर या त्वचा तक ही सीमित नहीं है। प्रेम का प्रसार मन के गहन गुह्य लोकों तक है जहाँ रूप की छवि अरूप का अंकन करता है। और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी के मुखमण्डल में किसी दिव्य अव्यक्त कमल को नमस्कार करता है। प्रेम के उस निरभ्र आकाश में ऐसी निर्विकल्प सुषमा है जहाँ पुरुष और स्त्री का भेद मिट जाता है। वहाँ पुरुष न केवल पुरुष और नारी न केवल नारी रहती है, वरन वे मूलसत्ता के प्रतिमान दिखायी देते हैं। उस स्थिति का परिज्ञान मांसल आवरण हटाकर और तन का अतिक्रमण करके प्राप्त किया जा सकता है।[१२] इसी तथ्य की ओर दिनकरजी ने काव्य की भूमिका में भी संकेत किया है कि— नारी के भीतर एक और नारी है जो अगोचर और इन्द्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है जब शरीर की धारा उछालते उछालते उसे मन के समुद्र में फेंक देती है जब दैहिक चेतना से परे, वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँचकर निस्पन्द हो जाता है।[१३] किन्तु पुरुरवा का यह अनासक्तिपूर्ण विचारणा उर्वशी के मन में भय उत्पन्न कर देती है। वह कह उठती है कि

---

१ उर्वशी तृतीय अंक पृ० ४३ और १०२
११ वही, पृ० ६५
१२ वही पृ० ६३
१३ वही, भूमिका पृ० ख

अनासक्ति तुम कहो किन्तु इस द्विधा ग्रस्त मानव को
चाकी तुमसे देख मुझ जान क्या भय लगता है।
तन स मुझको कस हुए अपने दृढ़ आलिंगन म
मुझ देखते हुए कहो तुम जाकर खो जाते हो ? [१४]

उवशी नही चाहती कि पुररवा अनासक्ति की चिन्तनधारा म डूबकर अनादि सत्य की खोज म लग जाय और उस भूल जाय। महाराज पुररवा को अपने आकषणपाश म निबद्ध करने के लिए वह सवस्व समपण कर देता है

आ मेरे प्यार तृषित ! श्रान्त ! अन्त सर म मज्जित करके
हर लूगा मन की तपन चादनी फूलो स सज्जित करके।
रसमयी मधशाला बनकर म तुझ पर छा जाऊगी
फूलो की छाह तले अपने अधरो की सुधा पिलाऊगी। [१५]

उवशी का यह वह रूप है जिसम वह वासनाप्रिय नारी दिखायी देती है। उवशी का एक और रूप भी है जिसम वह एक उदात्त प्रममयी नारी दिखायी देती है। उवशी के इस रूप का परिचय हम उसकी दस पृष्ठो की लम्बी वक्तृता म मिलता है जिसम वह पुररवा का तकसम्मत समाधान प्रस्तुत करती है।[१६] उवशी की दष्टि म पुरुष परमश्वर का और नारी प्रकृति की प्रतीक है। पुररवा की इस धारणा का वह प्रतिवाद करती है कि प्रकृति मायाविनी है और परमश्वर की प्राप्ति के लिए प्रकृति स सम्बन्ध विच्छेद करना पडता है

किसने कहा तुम्हे जो नारी नर को जान चुकी है
उसके लिए अगम्य नाम हो गया परम सत्ता का।
और पुरुष जो आलिगन म बाध चुका रमणी को
देश काल की भेद गगन म उठने योग्य नही ? [१७]

उवशी की मान्यता है कि प्रकृति को माया कहकर उसके अस्तित्व का निषेध नही किया जा सकता

माया कह क्या मृषा मढते हो अस्तित्व प्रकृति का। [१८]

---

[१४] उवशी तृतीय अक पृ ४७
[१५] वही पृ० ५७
[१६] वही पृ० ७७ ८६
[१७] वही पृ ७७
[१८] वही पृ० ७८

क्योंकि—

हम निमग्न हैं स्वयं कर्म है कर्म स्वभाव हमारा
कर्म स्वयं आनन्द कर्म ही फल समस्त कर्मों का।[19]

इसलिए प्रकृति और ईश्वर में कहीं भी द्वन्द्व या संघर्ष नहीं है। द्वन्द्व तो द्विविधाग्रस्त मानस की रचना है। कोई भी धर्म साधना प्रकृति से भिन्न होकर नहीं चल सकती

द्वन्द्व रच कर नहीं कहीं भी प्रकृति और ईश्वर में
द्वन्द्वों का आभास द्वैतमय मानस की रचना है।
× × ×
धर्म साधना कभी प्रकृति से भिन्न नहीं चलता है।[20]

कवि के अनुसार काम के दो रूप हैं

'काम धर्म काम ही पाप है काम किसी मानव को
उच्च लक्ष्य से गिरा हीन पशु जन्तु बना देता है।
और किसी मन में असीम सुषमा की तृषा जगा कर
पहुँचा देता उसे किरण सेवित अति उच्च शिखर पर।[21]

जिस काम कृत्य के सम्पादन में मन आत्मा तथा वरन दो वपुस ही मिलते हैं जो काम क्रिया स्वतोत्कृष्ट होकर न तो वरन् रति प्रयत्नपूर्वक की जाती है वह बलात्कार के पाप को जन्म देती है। दूसरी ओर फलासक्ति से शून्य निष्काम काम-सुख स्वर्गीय पुनर्वसु के समान है। अस्तु काम का यही रूप वरेण्य है।

इस प्रकार उर्वशी में जिस प्रेमिका रूप का कवि ने चित्रण किया है उसके दो पक्ष हैं—एक वह जिसमें वह अपना सर्वस्व अर्पण करके शरीर-सुख की प्राप्ति के लिए व्यग्र है। दूसरे जिसमें वह फलासक्तिपूर्ण कामुकता का त्याग काम भावना के उदात्त रूप को ग्रहण करना चाहती है। वस्तुतः उर्वशी की चरित्र-सृष्टि द्वारा कवि ने अपने उस मन्तव्य की पुष्टि की है जो प्रस्तुत नारी के सम्बन्ध में भूमिका में प्रतिपादित किया है।

पत्नी—नारी के पत्नी रूप का प्रतिनिधित्व काव्य में पुरुरवा की परिणीता औशीनरी करती है। वैसे आदर्श पत्नीत्व की थोड़ी सुकन्या के चरित्र में भी उपलब्ध है। प्रेमिका के विपरीत पत्नी पूर्णतः पति के प्रति समर्पित होती है।

[19] उर्वशी तृतीय अंक पृ० ८०
[20] वही पृ० ८३-८४
[21] वही पृ० ८४

उसका सर्वस्व पति ही होता है। सुकन्या इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहती है कि

एकचारिणी मैं क्या जानूँ स्वाद विविध भोगों का?
मेरे तो आनन्दधाम केवल महर्षि भर्ता है।
योग भोग का भेद अप्सरा की अबाध क्रीडा है
गृहिणी के तो परम देव आराध्य एक होते है
जिनसे मिलता भोग योग भी वही हमे देता है।[22]

सुकन्या की यह भी मान्यता है कि नारी को यौवन रहते ही किसी एक पुरुष के साथ निश्चित जीवन का तार बाँध लेना चाहिए अन्यथा सौन्दर्य से विगलित म्लान अंगो वाली नारी पुरुष की आकर्षित करने मे समर्थ न होगी। अप्सराएं अपने यौवन पर उन्मत्त रहती है किन्तु पतिव्रता नारी के जीवन का आनन्द उसका मधुपूर्ण हृदय होता है। जो यौवन की जीर्णता पर जीर्ण नहीं होता। इसीलिए पति पत्नी एक दूसरे के हृदय मे ऐसे बसे रहते हैं जैसे एक वृन्त के दो प्रसून हो। वे साथ साथ युवा और वृद्ध होते है। पति पत्नी एक नौका पर चढ़कर जीवनाब्धि को पार करते है। अस्तु सुकन्या के शब्दो मे

अप्सरियाँ उद्विग्न भोगती रस जिस चिर यौवन का
उससे कही महत् सुख है जो हमे प्राप्त होता है
निश्छल शान्त विनम्र प्रेम भरे उर के उत्सर्जन से।[23]

परिणीता नारी के जीवन के अपने अभाव है जिनकी व्यंजना औशीनरी के चरित्र मे हुई है। वह पतिपरायणा नारी है। उसके पति (पुरुरवा) का उर्वशी से मिलन उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है। पुरुरवा के उर्वशी के साथ गन्धमादन पर्वत पर चले जाने पर वह प्राणान्त करना चाहती है तभी निपुणिका पुरुरवा का यह सन्देश देती है कि महाराज एक वर्ष पश्चात लौटकर नमिषेय यज्ञ करेंगे जिसकी पूर्ति के लिए कुलवामा औशीनरी का जीवित रहना आवश्यक है। औशीनरी विचित्र दुविधा मे पड़ जाती है। वह अपनी व्यथा और उर्वशी के प्रति आक्रोश एक साथ व्यक्त करती है

हाय मरण तक जाकर लौटी हताश्वास पाती है।
जानें इस गणिका का मैंने क्या अनहित किया था
कब किस पूर्व जन्म मे उसका क्या सुख छीन लिया था।
× × ×

[22] उर्वशी चतुर्थ अंक पृ १०८
[23] वही पृ १०

छीन ले गयी अधम पापिनी सुभग मेरे पति को।
ये प्रवंचिकाएँ, जाने क्या तरस नहीं खाती हैं,
निज विनोद के हित कुलवामाओं को कलपाती है। [२४]

औशीनरी की असहायावस्था का कवि ने बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया है। वह कहती है

पति के सिवा योषिता का कोई आधार नहीं है।
जब तक है यह दशा नारियाँ व्यथा कहाँ पायेंगी
आँसू छिपा हँसेंगी फिर हँसते हँसते रोयेंगी। [२५]

अथवा

कितना विलक्षण न्याय है।
कोई न पास उपाय है।
अवलम्ब है सबको मगर नारी बहुत असहाय है। [२६]

उर्वशी के पुत्र आयु के समक्ष अपनी मनोव्यथा व्यक्त करती हुई औशीनरी कहती है कि विधाता ने नारी के भाग्य में रुदन ही सिरजा है

और हाय तब भी मैं कवच लिया भार नारी हूँ
रुदन छोड़ विधि ने सिरजा क्या और भाग्य नारी का। [२७]

इस प्रकार परिणीता नारी का जो रूप उर्वशी महाकाव्य में अंकित हुआ है उसमें दो विशेषताएँ स्पष्ट दिखायी देती हैं। प्रथम पत्नी नारी का पति के प्रति पूर्ण समर्पण भाव दूसरे परिणीता नारी के जीवन की मूक व्यथा जिसे वह अन्तस्तल में सहेज कर जीवनयापन करती है।

माता—आयु की जननी होने के कारण उर्वशी माता है किन्तु माता के दायित्व का सम्यक् निर्वाह सुकन्या ही करती है। नारी के मातृत्व की प्रशंसा काव्य के सभी पात्रों ने मुक्त कण्ठ से की है। उच्छृंखल स्वभाव वाली अप्सराएँ भी मातृत्व के गौरव को स्वीकार करती है। मेनका के शब्दों में

पर रम्भे ! क्या कभी बात यह भी मन में आती है
माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है ?

---

[२४] उर्वशी, द्वितीय अंक पृ० ३
[२५] वही, पृ० २८
[२६] वही पृ० ४०
[२७] वही पंचम अंक पृ० १५८

गलती है हिमशिला सत्य है गठन देह की खोकर
पर हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर ?
युवा जननि को देख शान्ति कैसी मन म जगती है
रूपमती भी सखी ! मुझ तो वह प्रिया लगती है।
जो गोदी म लिये क्षीरमुख शिशु को सुला रही हो
अथवा खड़ी प्रसन्न पुत्र का पालना झुला रही हो। [२८]

मातृत्व-पद की प्राप्ति से पति पत्नी का प्रणय दृढ़तर हो जाता है। दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध रूपी मृदुल धागे रेशम की कड़ियों के समान मजबूत हो जाते हैं

यह भी क्या वे नहीं जानते सन्तति के आने पर
पति पत्नी का प्रणय और भी दृढ़तर हो जाता है ?
बाँधा रहती कभी मृदुल धागों से शिरिष सुमन के
किन्तु अंक म तनय पयस के आते ही अचल म
वही शिरिष के तार रेशमी कड़ियाँ बन जाते है।
और कौन है जो तोड़ सके उस इस बंधन को ?
रेशम जितना ही कोमल उतना ही दृढ़ होता है। [२९]

मातृत्व की महिमा से मण्डित गर्भिणी नारी को महर्षि च्यवन सत्वशीला और लोकोत्तर कहते हैं। उनका मत है कि नारी का प्रजनन-कर्म किसी तपश्चरण से कम नहीं है

और नारियों म भी जब गर्भिणी सत्व शीला को
देख मुझे सम्मानपूर्ण करुणा सी हो आती है।
कितनी विवश किन्तु कितनी लोकोत्तर वह लगती है।
× × ×
कितना सह यातना पालती प्रिया भविष्य जगत का ?
कह सकता है कौन पूर्ण महिमा इस तपश्चरण की ? [३०]

महर्षि च्यवन के अनुसार प्रजा सृष्टि यज्ञ में नारी का महत्त्वपूर्ण अनुदान है। नारी रूपी महासेतु पर चलकर ही नए मनुज अदृश्य जगत से आते हैं

नारी ही वह महासेतु जिस पर अदृश्य से चल कर
नव मनुज नव प्राण दृश्य जग में आते रहते हैं।

---

[२८] उर्वशी प्रथम अंक पृ० १६
[२९] वही चतुर्थ अंक पृ० १२१
[३०] वही पृ० ११६

नारी ही वह कोष्ठ देव दानव, मनुष्य स छिप कर
महाशून्य चुपचाप जहाँ आकर ग्रहण करता है।
× × ×
सच पूछो तो प्रजा सृष्टि म क्या है भाग पुरुष का ?
यह तो नारी ही है जो सब यत्न पूर्ण करती है। [31]

मातृत्व भाव का प्रदर्शन कवि न उवशी सुकन्या और औशीनरी तीनो क चरित्र म किया है। आयु के प्रति तीनो नारियो म अतुल वात्सल्य भाव है। उवशी अप्सरा है किन्तु आयु को जन्म देन क कारण उसम मातृत्व का गौरव आ जाता है। चित्रलेखा स वह कहती है कि यदि मैं मानवी नहीं हू तो क्या मैंन मानव रत्न लाल को तो जन्म दिया है।[32] वात्सल्य भाव स भरकर आयु को चमकारते हुए वह अलौकिक आनन्द की अनुभूति करती है

कितनी मृदुल ऊर्मि प्राणो म अगम अपार सुखो की।
दुग्ध धवल यह दृष्टि मनोरम कितना अमृत-सरस है।
और स्पर्श म यह तरंग सी क्या है मोम सुधा की
अंक लगाने ही आँखो की पलकें भर जाती हैं। [33]

उवशी से लालन-पालन क लिए आयु को लेकर सुकन्या भी वात्सल्य भाव स भर जाती है। आयु क सम्बन्ध म वह नाना कल्पनाए करती है। आयु को गोद म लेकर पुचकारते हुए वह कहती है कि मेरा मुन्ना घुटनो क बल दौड दौड कर कभी हिरणो क कान पकडेगा कभी कपोत कको क डैनो को पकडेगा। और जब बड़ा होकर चलने लगेगा तो शशको गिलहरियों कुरग छौनो स रार ठानेगा।[34] तनिक और बडा होकर साधारण क लिए वन जाया करेगा। सायंकाल गायें चराकर सिर पर कुशा दभ और समिधा का बोझ लेकर लौटा करेगा। फिर पवित्र होकर महर्षि क साथ यज्ञवेदी पर बठकर मन्त्रोच्चार सहित हवन करेगा। हवन धूम स जब उसकी आँखो म वाष्प उमड आयेंगे तो मैं अपने अंचल स उसकी आँखें पोछ दूँगी

हवन धूम स आँखो म जब वाष्प उमड आवेंगे
तब मैं उनको नयन पोछ दूगी अपने अंचल स। [35]

---

[31] उवशी चतुर्थ अंक पृ० ११७
[32] वही पृ० ११८
[33] वही, पृ० १२०
[34] वही पृ० १२६
[35] वही, पृ० १ ०

आयु को पाकर औशीनरी राजमहिषी से राजमाता हो जाती है। आयु को देखकर औशीनरी भी मातृत्व भाव से भर जाती है। उसके मन को यही वेदना सालती है कि आयु यदि अपनी बाल्यावस्था में ही मिल जाता तो उसका पालन पोषण करके अनन्त सुख की अनुभूति करती

आ बेटा ! तू जुड़ा प्राण छाती से तुझे लगाकर।

[आयु को हृदय से लगाती है]

कितना भव्य स्वरूप ! नयन नासिका ललाट चिबुक में
महाराज की आकृतियाँ का पूरा बिम्ब पड़ा है।
हाय पालती कितने सुख कितनी उमंग आशा से
मिला मुझे होता यदि मेरा तनय कहीं बचपन में। [36]

प्रत्युत्तर में आयु से कवि ने जो कहलाया है उसमें मातृत्व-पक्ष की महिमा झलकती है। आयु कहता है—मां ! हताश मत हो। मैं माताओं के स्वर्णिम भविष्य का अग्रदूत बनकर आया हूं। मैंने मां का केवल दूध ही नहीं पिया वरन करुणामयी त्रिया के क्षीरोज्ज्वल कल्पनालोक में पल कर बड़ा हुआ हूं। आयु कहता है कि उसके जीवन में माता की ममता ही मूल्यवान रही है

जो कुछ मिला मातृ ममता से मां के सजल हृदय से
पिता नहीं मैंने जीवन में माताएं देखी हैं।
दिया एक ने जन्म दूसरी मां ने लगा हृदय से
पाल पोस कर बड़ा किया आंखों का अमृत पिला कर
अब मैं होकर युवा खोजते हुए यहां आया हूं
राजमुकुट को नहीं तीसरी मां के ही चरणों को।
मां ! मैं पीढ़ नव किशोर पन्ने तेरा धरा हूं। [37]

इस प्रकार मातृत्व की व्यंजना उर्वशी सुकन्या और औशीनरी तीनों के चरित्र में हुई है।

यहां तक उर्वशी महाकाव्य में उल्लिखित नारी पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं और नाना रूपों (प्रेयसी पत्नी माता आदि) का विवेचन किया गया। अब हम काव्य में नारी के प्रति कवि के सामान्य दृष्टिकोण का विश्लेषण करेंगे।

पुरुरवा उर्वशी का आख्यान (जो प्रस्तुत महाकाव्य की रचना का कथात्मक

---

[36] उर्वशी पंचम सर्ग पृ १५३

[37] वही पृ १६५

आधार है) मूलतः ऋग्वेद में उपलब्ध है। इस दृष्टि से यदि हम वैदिक कालीन नारी की सामाजिक दशा का ऐतिहासिक स्रोतों से पता लगायें तो पाते हैं कि आदिम सामाजिक संगठन का रूप गण-संगठन द्वारा होता था जिसका आधार मातृ सत्ता था।[३८] इस मातृ-सत्तात्मक-समाज में नारी कनवती था गृह की स्वामिनी और सम्पत्ति की प्रभु था।[३९] इतिहासकारों का मत है कि वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति जितना ऊंचा था उतना बाद में कभी नहीं रहा।[४०] समाज के मानसिक एवं धार्मिक नेतृत्व में भी स्त्रियों का हाथ था।[४१] आर्यों के समाज में स्त्रियों को पुरुषों के समान सभी अधिकार रहते थे इसी से उनको पुरुषों की अर्धांगिनी भी कहा गया है। स्त्री के बिना घर को घर नहीं माना जाता था। अतिथि सत्कार तथा धार्मिक कार्य स्त्रियों द्वारा सम्पादित होते थे और उनके बिना कोई यज्ञ या उपासना तथा अर्चना मान्य नहीं था। उनको वेद पठन-पाठन का पूर्ण अधिकार था। घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा इत्यादि ऋषि-पत्नियाँ मन्त्रों की टीकाकार थी। शास्त्रार्थों में या सभाओं में उनको भाग लेने की पूरी स्वतन्त्रता थी। सम्पत्ति अधिकार में उनको भी न्याय था।[४२] संक्षेप में नारी के विकास एवं अधिकार की दृष्टि से वैदिक युग का इतिहास नारी का स्वर्णकाल है।[४३] अस्तु—

वैदिककालीन नारी के सम्बन्ध में उपर्युक्त ऐतिहासिक सन्दर्भों में उर्वशी महाकाव्य के रचयिता की नारी सम्बन्धी धारणाओं का अध्ययन किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दिनकरजी ने प्रस्तुत काव्य के नारी पात्रों को एक ओर तो वैदिककालीन नारी की गरिमा से मण्डित चित्रित किया है तो दूसरी ओर कालान्तर काल में अद्यावधि नारी के प्रति पुरुष के स्वच्छन्द धारी व्यवहार, सामाजिक असमानता और उसकी विवशतापूर्ण स्थितियों का भी अंकन किया है।

---

[३८] श्री अमृतपाद डांगे भारत पृ० ४६ (अनु० आदित्य मिश्र)

[३९] डा० भगवतशरण उपाध्याय भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण पृ० २४७

[४०] हरिदत्त वेदालंकार भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ५१

[४१] डा० वनीप्रसाद हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ० ७

[४२] डॉ० गोपीनाथ शर्मा भारत का सम्पूर्ण इतिहास, पृ० ९

[४३] डा० श्यामसुन्दर व्यास हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण पृ० ९४

न्निकरजी की धारणा है कि मानवता के इतिहास मे नारी और पुरुष के योगदान का समान रूप से महत्त्वाकन नही किया गया है। इतिहासो की दृष्टि केवल पुरुषो के पौरुष सघर्ष और यशोगान तक केन्द्रित रही है। नारी की मूक वेदना का इतिहास ने मुखरित नही किया है

इतिहासो की सकल दृष्टि केन्द्रित बस एक क्रिया पर।
किन्तु नारिया क्रिया नही प्रेरणा प्रानि करणा है
उद्गम स्थली अदृश्य जहा से सभी कर्म उठते है।
× × ×
जनपदी इतिहास शूरता का सघर्ष सुयश का
किन्तु हाय शूरता नारिया की नीरव होती है
वह सशन्त आघात नहा ममता है कष्ट सहन है। [४४]

उर्वशी की मुकन्या कहती है कि नारिया इतिहास की धारा से छिन्न नही है। समरक्षेत्र के थके पुरुष की प्रेरणा नारी ही होती है। नयी ऊर्मि और नूतन उमग से सजाकर प्रति प्रात नारी ही पुरुष को जीवन रण मे भेजती है और समरक्षेत्र से लौटे हुए पुरुष से सायकाल नारी ही दिन भर का इतिहास कभी आसू बहाकर और कभी मन्द स्मिति सहित सुनती है। अतत इतिहास नारी के आदान के प्रति मौन क्यो है ? इस प्रश्न का निदान कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है

नारी क्रिया नही वह केवल क्षमा शान्ति करणा है।
इसीलिए इतिहास पहुचता जभी निकट नारी के
हो रहता वह अचल या कि फिर कविता बन जाता है। [४५]

नारी को वासना का प्रतीक या मायावनि कहा जाता रहा है। कवि ने ऐसे मन्तव्या का स्वीकार नही किया है। उसकी मान्यता है कि

'नारी जब देखती पुरुष को इच्छा भरे नयन से
नही जगाती केवल उद्दाम अनल रुधिर मे
मन मे किसी कान्त कवि को भी जन्म दिया करता है
नर समेट रखता बाहो मे स्थूल देह नारी की
शोभा की आभा तरग से कवि क्रीडा करता है। [४६]

---

[४४] उर्वशी पचम अक पृ० १६३

[४५] वही पृ० १६४

[४६] वही तृतीय अक पृ० ६१

कवि के मतानुसार दिव्य मानवीय गुणों के निकट भी पुरुष की अपेक्षा नारी ही है

'और देवि! जिन दिव्य गुणों को मानवता कहते हैं
उसके भी अत्यधिक निकट नर नहीं मात्र नारी है।
जितना अधिक प्रभुत्व तृषा से पीड़ित पुरुष-हृदय है
उतने पीड़ित कभी नहीं रहते हैं प्राण त्रिया के।'[५७]

इस प्रकार उर्वशी महाकाव्य में अथान्त कवि ने नारी के गौरव गरिमा को प्रतिष्ठित करने का अभिनन्दनीय प्रयास किया है। वास्तव में उर्वशी महाकाव्य नारी की महिमा का काव्य है। उसमें परम्परित और प्रगतिशील सन्दर्भों में एक साथ नारी का स्वरूप विश्लेषण हुआ है। नारी जाति के भविष्य के प्रति भी कवि मंगलाकांक्षी है। औशीनरी के शब्दों में

नारी का स्वर्णिम भविष्य जाने वह अभी कहाँ है!
हम तो चले भोग उसको जो सुख दुख हम बदा था
मिले अधिक उज्ज्वल उदार युग आगे की ललना को।[५८]

---

५७ उर्वशी पंचम अंक पृ० १६४
५८ वही पृ० ४८